

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्र अष्टमो भागः

आख्यातिकः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां सप्तमो भागः।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृत व्याख्यासहितः।



ओ३म्

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्य अष्टमो भागः

आख्यातिकः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां सप्तमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृत व्याख्यासहितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां दशमं पुस्तकम् ।

प्रकाशक :
वैदिक पुस्तकालय
दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर (राजस्थान)

अष्टमावृत्ति : १०००

विक्रमाब्दः २०६०

मूल्य :- रु० १५०.०० पै०

मुद्रक :
राधा प्रेस
कैलाशनगर, दिल्ली-३१

॥ ओ३म् ॥

अथ भूमिका

यह अष्टाध्यायी का सातवां भाग और पठनपाठन-व्यवस्था में दशवां पुस्तक है। 'आख्यात' उसको कहते हैं कि जो समग्र प्रकृति प्रत्ययों के संयोग से भाव, कर्म्म, कर्त्ता, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल, एक, द्वि और बहुत अर्थों के वाचक हैं। इस ग्रन्थ में मुख्य करके आख्यात शब्दों ही का व्याख्यान किया है, इससे इसको 'आख्यातिक' कहते हैं।

प्रश्न—धातु किनको कहते हैं ?

उत्तर—जो सत्ता आदि विविध प्रकार के अर्थों को धारण करें।

प्रश्न—वे कौन हैं ?

उत्तर—भू आदि शब्द।

प्रश्न—भू आदि शब्द कै प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—दो प्रकार के, एक—सामान्यार्थवाची और दूसरे—विशेषार्थवाची ? १—'सामान्यार्थवाची' उनको कहते हैं कि जिनका योग सब विशेषार्थवाचकों के साथ रहे। जैसे—**'योऽस्ति स भवति, यो भवति स करोति'**—जो है सो होता, और जो होता है सो ही करता है और जो नहीं है, उसका होना क्या, और जो नहीं होता उसके करने का तो क्या ही सम्भव है। दूसरे २—'विशेषार्थवाचक' उनको कहते हैं कि जिनका प्रयोग विशेष व्यवहारों में किया जावे। जैसे—**'देवदत्तः किं करोति ? स ब्रूते—पचति, भुङ्क्ते, पठति, ददाति वा इत्यादि'**—जैसे किसी ने किसी से पूछा कि देवदत्त क्या करता है, वह उत्तर देवे कि पकाता, भोजन करता, पढ़ता अथवा दान देता है।

प्रश्न—आख्यात का क्या लक्षण है ?

उत्तर—**'भावप्रधानमाख्यातम्'**—जो धातु से परे लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश किये जाते हैं, वे भावप्रधान अर्थात् भू आदि धातुओं के सत्ता आदि अर्थों के वाचक होते हैं, उन्ही को 'आख्यात' कहते हैं।

प्रश्न—कितने अर्थों में लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश होते हैं ?

उत्तर—तीन अर्थात् भाव, कर्म्म और कर्त्ता अर्थों में। भाव दो प्रकार का होता है, एक आभ्यन्तर, दूसरा वाह्य। १—'आभ्यन्तर भाव' उसको कहते हैं कि जो धात्वर्थमात्र में स्थित होकर सामान्य अर्थ का वाचक होता है। जिसके एक होने से एक ही वचन होता है। जैसे—**'आस्यते भवता भवद्भ्यां भवद्भिर्वा। आसितव्यम्। भवितव्यम्'** इत्यादि। इसमें कदापि द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग नहीं हो सकता। और २—'वाह्यभाव' उसको कहते हैं कि जिसमें एक, द्वि और बहुवचन के प्रयोग होवें। जैसे—**'पच्यते ओदनः। पच्येते ओदनौ। पच्यन्ते ओदना इति'**। **'कृद्विहितो भावो द्रव्यवद्भवति ॥ महाभाष्य अ० ३। पा० १। सू० ६७ ॥'** द्रव्यों के समान इसके अनेक प्रकार होने से एक, द्वि और बहुवचनान्त प्रयोग होते हैं। जैसे—**'भावः। भावौ। भावाः। पाकः। पाकौ। पाकाः'** इत्यादि।

'कर्म्म' उसको कहते हैं कि जो कर्त्ता के करने से ही किया जाय। जैसे—**'देवदत्तः कटं करोति'** इत्यादि। यहां कर्त्ता के किये विना चटाई कदापि नहीं बन सकती। **'कर्त्ता'** उसको कहते हैं कि जो स्वाधीन साधनों से युक्त होकर क्रिया करने में स्वतन्त्र होवे। जैसे—देवदत्त कर्त्ता, चटाई कर्म्म और करना क्रिया है। इसमें विशेष यह कि—**'इदं विचार्य्यते—भावकर्मकर्त्तारः सार्वधातुकार्था वा स्युर्विकरणार्था वेति। एवं तर्हीदं स्यात्—यदा भावकर्मणोर्लस्तदा कर्त्तरि विकरणाः। यदा कर्त्तरि लस्तदा भावकर्मणोर्विकरणाः' ॥ महाभाष्य अ० ३। पा० १। सू० ६७ ॥**

यह विचरना चाहिये कि भाव, कर्म और कर्त्ता अर्थों में तिङ् प्रत्यय हों वा विकरण शप् आदि होवें। इसकी व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिये कि जब भाव कर्म अर्थों में लकार हों, तब तो कर्त्ता में विकरण, और जब कर्त्ता में लकार हों तब भाव कर्म अर्थों में विकरण होवें। अर्थात् एक तिङन्त क्रिया में दोनों अर्थ रहें। जैसे—**'ग्रामं गच्छति'** यहां कर्त्ता में लकार और कर्म में द्वितीया और कर्म के साथ शप् प्रत्यय का एकाधिकरण समझना चाहिये। इस प्रकार सर्वत्र जानो।

प्रश्न—किन धातुओं से लकार किन अर्थों में होते हैं ?

उत्तर—अकर्म्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता अर्थ में तथा सकर्म्मक धातुओं से कर्म्म और कर्त्ता अर्थ में होते हैं।

प्रश्न—अकर्म्मक और सकर्म्मक धातुओं का क्या लक्षण है ?

उत्तर—**'कर्म्मस्थाभावकानां कर्म्मस्थक्रियाणां च कर्त्ता कर्म्मवद्भवतीति वक्तव्यम्। कर्तृस्थभावकानां कर्तृस्थक्रियाणां च कर्त्ता कर्मवन्मा भूदिति। कर्म्मस्थभावकानाम्-आसयति देवदत्तं शाययति देवदत्तं, स्थापयति देवदत्तम्। कर्म्मस्थक्रियाणाम्—गामवरुणद्धि। करोति कटम्। पचत्योदनम्। कर्तृस्थ-भावकानाम्—चिन्तयति, मन्त्रयते। कर्तृस्थक्रियाणाम्—गच्छति, धावति, हसति' ॥ महाभाष्य अ० ३। पा० १। सू० ८७। आ० ५॥**

धातु दो प्रकार के होते हैं—एक सकर्म्मक, दूसरे अकर्म्मक। १—'सकर्म्मक' उनको कहते हैं कि जिनका भाव और क्रिया कर्त्ता से भिन्न के लिये हों, और जिनका भाव और क्रिया कर्त्ता ही के लिये हों, वे २—'अकर्म्मक' कहाते हैं। सकर्म्मकभावयुक्त धातुओं के उदाहरण—**'आसयति देवदत्तं, शाययति देवदत्तं, स्थापयति देवदत्तम्'** इत्यादि। यहां देवदत्तसंज्ञक कर्म्म में ही बैठना, सोना और स्थित होना रूप भाव है। कर्मस्थक्रिय धातुओं के उदाहरण—**'गामवरुणद्धि, करोति कटं, पचत्योदनम्'** इत्यादि। यहां गौ, चटाई और ओदनरूप कर्म ही में रोकना, बनना और पकनारूप क्रिया हैं, इससे इस प्रकार के धातु **'सकर्म्मक'** कहाते हैं।

अकर्म्मकों में कर्तृस्थभावक धातुओं के उदाहरण 'देवदत्तश्चिन्तयति, मन्त्रयते, अस्ति, भवति, तिष्ठति, आस्ते च' इत्यादि। यहां चिन्तन, विचारना, होना, ठहरना और बैठना आदि भाव कर्त्ता ही में हैं। कर्तृस्थक्रिय धातुओं के उदाहरण—'गच्छति, धावति, हसति, क्रुध्यति, शाम्यति' इत्यादि। यहां चलना, दौड़ना, हंसना, क्रोध और शान्ति आदि क्रिया कर्त्ता ही में रहती हैं, इसलिये इस प्रकार के धातु 'अकर्म्मक' कहाते हैं। ※

'क्रिया का लक्षण'—'का पुनः क्रिया? ईहा। का पुनरीहा? चेष्टा। का पुनश्चेष्टा? व्यापारः। सर्वथा भवाञ्छब्दैरेव शब्दान् व्याचष्टे न किंचिदर्थजातं निदर्शयत्येवंजातीयका क्रियेति। क्रिया नामेयमत्यन्ताऽपरिदृष्टा; अशक्या पिण्डीभूता निदर्शयितुम्। यथा गर्भो निर्लुठितः। साऽसावनुमानगम्या। कोऽसावनुमानः? इह सर्वेषु साधनेषु सन्निहितेषु यदा पचतीत्येतद्भवति सा नूनं क्रिया। अथवा यया देवदत्त इह भूत्वा पाटलिपुत्रे भवति सा नूनं क्रिया'॥ महाभाष्य अ० १। पा० ३। सू० १। आ० १॥

※ सकर्म्मक और अकर्म्मक धातुओं की व्यवस्था कई प्रकार से समझी जाती है। मुख्य तो यही है कि जिस प्रकरण में प्रयुक्त क्रिया हो उसका अर्थ किसी कर्म के साथ सम्भवित होवे तो सकर्म्मक, नहीं तो अकर्म्मक। और जो धातु सकर्म्मक हैं वे ही कभी देश काल और वस्तु के भेद से अकर्म्मक, और अकर्म्मक सकर्म्मक भी हो जाते हैं। और जितने धातु अकर्म्मक हैं वे सब किसी पदार्थ के आश्रय से सकर्म्मक हो जाते हैं। जैसे—**'अध्वानमास्ते'** यह आस धातु अकर्म्मक है, इस का मार्ग ही कर्म हो जाता है। इस प्रकरण को 'कारकीय' ग्रन्थ के कर्म्मकारक प्रकरण में भी लिख चुके हैं। अर्थात् जिस २ की कर्मसंज्ञा वहां करदी है, उस उस अर्थ का जिस २ धातु के साथ सम्भव हो उस २ को सकर्म्मक, अन्य सब अकर्म्मक जानने चाहियें॥

भूमिका

'क्रिया' उसको कहते हैं कि जो कुछ आत्मा, मन, प्राण, इन्द्रिय और शरीर में चेष्टा होती है, जैसे कोई मनुष्य चलते हुए हाथ को देख कर अनुमान करता है कि जिससे यह हाथ चलता है वही 'क्रिया' है। जो अनुमान से जानने योग्य है, वह आंख आदि इन्द्रियों से ग्रहण करने में कैसे आ सकती है ? किन्तु विज्ञान ही से दिखलाई देती है।

धातु और प्रत्ययस्थ अनुबन्धों के प्रयोजन—जिन धातुओं के उदात्त अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, ए और ओ, ये अनुबन्ध इत्संज्ञक होते हैं, उनसे परस्मैपद, और जिन के पूर्वोक्त ही अनुदात्त अकारादि स्वर इत्संज्ञक हों, उन और व्यञ्जनों में ङकार जिनका इत्संज्ञक होता है, उनसे भी आत्मनेपद होता है। जिसका स्वरित अकारादि तथा ञकार इत्संज्ञक हो, उनसे आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों होते हैं। जिनका आकार इत् जाता है, उन और जिनका ईकार इत् जाता है, उनसे परे निष्ठासंज्ञक प्रत्ययों को इट् का आगम नहीं होता। जिनका ह्रस्व इकार इत् जाता है, उनको नुम् का आगम होता है।

जिनका उकार इत् जाता है, उनसे परे क्त्वा प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इडागम नहीं होता। जिनका ऊकार इत् जाता है, उनसे परे सामान्य आर्द्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता। जिनका ह्रस्व ऋकार इत् जाता है, चङ्परक णिच् परे हो तो उनके उपधा को ह्रस्व नहीं होता। जिनका लृकार इत् जाता है, उनसे परे च्लि प्रत्यय के स्थान में अङ् आदेश होता है।

जिनका एकार इत् जाता है, उनको इडादि सिच् के परे परस्मैपद में वृद्धि नहीं होती है। जिनका ओकार इत् जाता है, उनसे परे निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। जिनका ञि इत् जाता है, उनसे परे वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय होता है। जिनका टु इत् जाता है, उनसे परे अथुच् प्रत्यय होता है। जिनका डु इत् जाता है, इन से क्त्रि प्रत्यय

होता है। और जिनका प इत् जाता है, उनसे स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय होता है। इत्यादि प्रयोजन जानो।

अब संक्षेप में प्रत्ययस्थ अनुबन्धों के प्रयोजन कहते हैं—जिनका ककार और ङकार इत् जाता है, वे प्रत्यय परे हों तो अङ्ग को गुण और वृद्धि नहीं होती। वचि, स्वपि आदि धातुओं को संप्रसारण और अन्तोदात्त स्वर भी होता है। और कित् ङित् के परे ग्रह आदि धातुओं को संप्रसारण भी होता है और ञित् णित् प्रत्यय के परे अजन्त अङ्ग तथा उपधाभूत अकार को वृद्धि होती और प्रकृति को आद्युदात्त स्वर भी होता है। चित् का अन्तोदात्तस्वर प्रयोजन है। टित् का प्रयोजन ङीप् प्रत्यय। डित् का प्रयोजन टिलोप। तित् का प्रयोजन स्वरित स्वर होता है।

आगमों के प्रयोजन—टित्, कित् और मित् ये तीन प्रकार के आगम होते हैं। इनके नियम ये हैं कि प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय में टित् आगम जिसको विधान करें उसके आदि का अवयव; कित् आगम जिसको विधान करें उसके अन्त का अवयव; और मित् आगम जिसको विधान करें उसके अन्त अच् से परे होता है।

प्रश्न—आदि और अन्त का क्या लक्षण है?

उत्तर—**'यस्मात् पूर्वं नास्ति परमस्ति स आदिरित्युच्यते। यस्मात् पूर्वमस्ति परं च नास्ति सोऽन्त इत्युच्यते'॥ महाभाष्य अध्याय १। पाद १। सूत्र २१॥** जिसके पूर्व कुछ न हो और पर हो वह 'आदि' कहाता है, और जिसके पूर्व कुछ है और पर नहीं है उसको 'अन्त' कहते हैं।

प्रश्न—कौन कौन धातु सेट् और कौन कौन अनिट् होते हैं।

उत्तर—**'अथ के पुनरनुदात्ताः? आदन्ता अदरिद्राः। इवर्णान्ताश्चाश्वि शिव डी शी दीधी वेवीङः। उकारान्ता यु रु णु क्षु क्ष्णूर्णुवर्जम्। ऋदन्ताश्चाजागृ वृङ् वृञः। शकिः कवर्गान्तानाम्। पचि वचि सिचि मुचि रिचि विचि प्रच्छि यजि भजि भञ्जि रञ्जि सृजि त्यजि भुजि भ्रस्जि मस्जि रुजि**

अनिट् स्वरान्तो भवतीति दृश्यता-
मिमांस्तु सेटः प्रवदन्ति तद्विदः ।
अदन्तमृदन्तमृतांश्च वृङ्वृञौ
श्विडीङिवर्णेष्वथ शीङ्श्रिञावपि ॥१॥
गणस्थमूदन्तमुतां च रुस्नुवौ
क्षुवन्तथोर्णोतिमथो युणुक्ष्णवः ।
इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चिता-
स्ततो हलन्तानपि सन्निबोधत ॥२॥

धातु दो प्रकार के होते हैं—एक स्वरान्त, दूसरे व्यञ्जनान्त । उनमें स्वरान्त एकाच् धातु सब अनिट् होते हैं, परन्तु आकारान्त, दीर्घ ऋकारान्त, ह्रस्व ऋकारान्तों में वृङ् वृञ्, इवर्णान्तों में श्वि डीङ् शीङ् और श्रिञ्, गणों में पढ़े ऊकारान्त सब, तथा उवर्णान्तों में रु स्नु क्षु ऊर्णु यु णु और क्ष्णु, इन सबको छोड़ के अर्थात् ये अकारान्त आदि जो गिनाये हैं, सब सेट् हैं ।*

इसके आगे हलन्त—

शकिस्तु कान्तेष्वनिडेक इष्यते
घसिश्च सान्तेषु वसिः प्रसारणी ।

---

* स्वरान्तों में महाभाष्यकार ने अनेकाच् की अपेक्षा छोड़ के आकारान्तों में दरिद्रा और इवर्णान्तों में दीधीङ् वेवीङ् धातु गिनाये हैं । और कारिका बनानेवालों का अभिप्राय यह है कि (एकाच उपदेशेऽनु० ॥ ७ । २ । १०) सूत्र में जो एकाच् ग्रहण है, उसका आश्रय लेकर ये धातु सेट् और अनिट् हैं । अर्थात् दोनों प्रकार का व्याख्यान ठीक है, इससे महाभाष्य और कारिकाओं में परस्पर कुछ विरोध नहीं आ सकता ।

रभिस्तु भान्तेष्वथ मैथुने यभि-
स्ततस्ततृतीयो लभिरेव नेतरे ।।३।।

ककारान्तों में एक शक । सकारान्तों में घस और निवासार्थवाला वस तथा भकारान्तों में रभ, लभ और मैथुन् अर्थवाला यभ, ये तीन धातु अनिट् हैं, बाकी सब सेट् समझने चाहियें ।

यमिर्यमन्तेष्वनिडेक इष्यते
रमिश्च यश्च श्यनि पठ्यते मनिः ।
नमिश्चतुर्थो हनिरेव पञ्चमो
गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम् ।।४।।

मकारान्तों में यम, रम, नम, गम ये चार नकारान्तों में इन तथा दिवादिगण में पढ़ा मन ये दो धातु अनिट् हैं ।

पचिं वचिं विचिरिचिरञ्जिप्रच्छतीन्
निजिं सिचिं मुचिभजिभञ्जिभृज्जतीन् ।
त्यजिं यजिं युजिरुजिसञ्जिमज्जतीन्
भुजिं स्वजिं सृजिविजी विद्धयनिट्स्वरान् ।।५।।

चकारान्तों में पच, वच, विच, रिच, सिच, मुचि ये छः । छकारान्तों में एक प्रच्छ । जकारान्तों में रञ्ज, निज, भज, भञ्ज, भ्रस्ज, त्यज, यज, युज, रुज, सञ्ज, मस्ज, भुज, स्वञ्ज, मृज, विज ये पन्द्रह धातु अनिट् हैं, बाकी सब सेट् समझना चाहिये ।

अदिं हदिं स्कन्दिभिदिच्छिदिक्षुदीन्
शदिं सदिं स्विद्यतिपद्यती खिदिम् ।
तुदिं नुदिं विद्यति विन्त इत्यपि
प्रतीहि दान्तान्दश पञ्च चानिटः ।।६।।

दकारान्तों में अद, हृद, स्कन्द, भिद, छिद, क्षुद, शद, सद; स्विद, पद, विद ये तीनों दिवादिगण के तथा विद रुधादिगण का भी, खिद, तुद, नुद ये पन्द्रह धातु अनिट् हैं।

रुधिस्सराधिर्युधिबन्धसाधयः
क्रुधिक्षुधी शुध्यतिबुध्यती व्यधिः।
इमे तु धान्ता दश येऽनिटो मता-
स्ततः परं सिध्यतिरेव नेतरे ॥७॥

धकारान्तों में रुध, राध, युध, बन्ध, साध, क्रुध, क्षुध, दिवादि गण का शुध, बुध, तथा सिध, और व्यध ये ग्यारह धातु अनिट् हैं ॥

तपिं तिपिं चापिमथो वपिं स्वपिं
लिपिं लुपिं तृप्यतिदृप्यती सृपिम्।
स्वरेण नीचेन शपिं छुपिं क्षिपिं
प्रतीहि पान्तान् पठितांस्त्रयोदश ॥८॥

पकारान्तों में तप, तिप, आप, वप, स्वप, लिप, लुप, दिवादि गण के तृप, दृप, ये दो; सृप, शप; छुप, क्षिप ये तेरह धातु अनिट् हैं ॥

दिशिं दृशिं दंशिमथो मृशिं स्पृशिं
रिशिं रुशिं क्रोशतिमष्टमं विशिम्।
लिशिं च शान्ताननिटः पुराणगाः
पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान् ॥९॥

शकारान्तों के दिश, दृश, दंश, मृश, स्पृश, रिश, रुश, क्रुश, विश, लिश ये दश धातु अनिट् हैं ॥

शिषिं पिषिं शुष्यतिपुष्यती त्विषिं
विषिं शिलषिं तुष्यतिदुष्यती द्विषिम् ।
इमान्दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ
गणेषु षान्तान् कृषिकर्षती तथा ॥१०॥

षकारान्तों में शिष, पिष, त्विष, विष, श्लिष, द्विष, दिवादिगण के शुष, पुष, तुष, दुष ये चार, और तुदादि और भ्वादि दोनों गण का कृष ये ग्यारह धातु अनिट् हैं ॥

दिहिर्दुहिर्मेहतिरोहती वहि-
र्नहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः ।
इमेऽनिटोऽष्टाविह मुक्तसंशया
गणेषु हान्ताः प्रविभज्य कीर्त्तिताः ॥११॥

हकारान्तों में दिह, दुह, मिह, रुह, वह, नह, दह, लिह ये धातु अनिट् हैं। जहां सेट् गिनाये हैं वहां बाकी अनिट् और जहां अनिट् गिनाये हैं वहां बाकी सेट् समझ लेना चाहिये ॥

इस ग्रन्थ के जितने सेट् अनिट् धातु हैं, उन सब की व्यवस्था मुख्य तो यही समझनी चाहिये और उदात्तोपदेश से सेट् और अनुदात्तोपदेश से अनिट् समझते हैं। जो धातु उपदेश में उदात्त हैं, उन पर कोई चिह्न नहीं होता और जो उपदेश में अनुदात्त होते हैं उनके आदि वर्ण के नीचे अनुदात्त की तिर्छी रेखा कर देते थे और परस्मैपद, आत्मनेपद के लिये यह संकेत था कि जिनका अन्त्य वर्ण अनुदात्त चिह्नित इत् हो और जो उपदेश में ङित् हों उनसे आत्मनेपद शेषों से परस्मैपद और जिनके अन्त्य वर्ण स्वरितसंज्ञक इत् हों उनसे तथा जो उपदेश में ञित् हों उनसे उभयपद समझते थे। इससे बहुत लाघव के साथ सब बोध हो जाता था, अब विद्या की प्रवृत्ति कम होजाने के कारण यह परम्परा बिगड़ गई है।

अब इस ग्रन्थ में अनुदात्त से अनिट्, अनुदात्तेत् से आत्मनेपद, और उदात्त से सेट्, उदात्तेत् से परस्मैपद समझते हैं, फिर भी आत्मनेपदी और परस्मैपदी शब्द भी सर्वत्र अत्यन्त सुगम होने के लिये लिख दिये हैं कि जिससे किसी को भ्रम न पड़ सके। इन सब प्रकारों से इत्संज्ञक वर्णों और सेट् अनिट् की व्यवस्था को ठीक ठीक जान के पढ़ने पढ़ानेवाले सब लोग शुद्ध प्रयोगों से व्यवहार और अर्थज्ञान से उपयुक्त हों। जो धातु उपदेश में उदात्त (सेट्) हैं, उनसे परे आर्द्धधातुक प्रत्ययों को इडागम होजाता है और जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्) हैं, उनसे परे आर्द्धधातुकसंज्ञक प्रत्ययों को इडागम नहीं होता है।

इस ग्रन्थ में ग्यारह लकार अर्थात् लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ, लिङ्, लुङ्, लृङ्, क्रम से लिखे हैं। अन्य ग्रन्थों में लेट् लकार केवल वैदिकप्रयोगविषयक है सो नहीं लिखा है, यहां विस्तारपूर्वक इसके प्रयोग लिखेंगे। लिङ् दो वार इसलिये लिखा है कि इसके दो प्रकार के अर्थों में दो प्रकार के प्रयोग होते हैं।

और दशगण अर्थात् भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि क्रम से लिखे हैं। इसके पीछे बारह प्रक्रिया अर्थात् णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, यङ्लुगन्त, नामधातु, कण्ड्वादि, प्रत्ययमाला, आत्मनेपद, परस्मैपद, भावकर्म्म, कर्म्मकर्त्ता और लकारार्थ ये भी क्रम से विस्तारपूर्वक लिखे जावेंगे और इतना ही तिङन्त का विषय है, इसी को 'आख्यात' भी कहते हैं और जो सूत्र सामान्य करके सब धातुओं में लगते हैं, उनको प्रथम प्रथम एक ही वार लिखेंगे और जो किन्हीं विशेष धातुओं में लगते हैं उनको एकवार लिखकर पीछे जहां उनका सम्बन्ध होगा, वहां वहां इस ग्रन्थ की सूत्र संख्या जो उनके आगे लिखी होगी, व्याख्या में रख दिया करेंगे, उसके अनुसार उन सूत्रों का सम्बन्ध सब लोग वहां वहां देख लेवें॥

इति भूमिका॥

अथ

आख्यातिके धातूनां

सूचीपत्रम्

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
अट्ट	२६३	भ्वा०	आ०	सेट्	६२	६
"	१५९९	चुरा०	पर०	"	३१३	१८
अठि	२७०	भ्वा०	आ०	"	६२	१४
अड	३६८	"	पर०	"	७०	४
अड्ड	३५८	"	"	"	६९	१४
अण	४५८	"	"	"	८४	१९
"	१२१३	दिवा०	आ०	"	२५३	१३
अत	३८	भ्वा०	पर०	"	३५	१६
अति	६१	"	"	"	४३	१४
अद	१०४८	अदा०	"	अनिट्	१८९	४
अदि	६२	भ्वा०	"	सेट्	४३	१४
अन	११०८	अदा०	"	"	२२१	९
अन्ध	१९७३	चुरा०	उभ०	"	३३३	१३
अबि	३९०	भ्वा०	आ०	"	७२	२४
अभि	३९७	"	"	"	७३	१०
अभ्र	५७६	"	पर०	"	९७	३
अम	४८०	"	"	"	८६	२५
"	१७६६	चुरा०	उभ०	"	३२२	१६
अमि	८५१ ※	भ्वा०	पर०	"	१३३	१६
अम्बर	२०३३	कं०	"	"	३८४	२२
अय	४८९	भ्वा०	आ०	"	८९	१
अरर	२००७	कं०	पर०	"	३८३	२१
अर्क	१६८६	चुरा०	"	"	३१८	६
अर्च	२१३	भ्वा०	"	"	५६	१
"	१८५१	चुरा०	उभ०	"	३२५	१६

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः	पृ०	पं०
आप्लृ	१२९८	स्वा० पर० अनिट्	२६८	१२
,,	१८८७	चुरा० उभ. ,,	३२७	१९.
आस	१०५८	अदा० आ० सेट्	१९९	१.
इक्	१०८५	,, पर० अनिट्	२१३	१.
इख	१४२	भ्वा० ,, सेट्	५०	१३
इखि	१४३	,, ,, ,,	५०	१३
इगि	१५६	,, ,, ,,	५०	१४
इङ्	१०८४	अदा० आ० अनिट्	२११	१८
इट	३२७	भ्वा० पर० सेट्	६६	१९.
इण्	१०८३	अदा० ,, अनिट्	२१०	१५.
इदि	६३	भ्वा० ,, सेट्	४३	१८
इन्धी	१४८६	रुधा० आ० ,,	२९२	१५.
इरज्	१९९५	कं० पर० ,,	३८३	९.
इरञ्	१९९६	,, उभ० ,,	३८३	९.
इरस्	१९९४	,, पर० ,,	३८३	९.
इल	१३९६	तुदा० ,, ,,	२८०	१
,,	१७०३	चुरा० ,, ,,	३१९	३
इला	२०१९ *	कं० ,, ,,	३८४	७
इवि	६०७	भ्वा० ,, ,,	१००	१४
इष	११६५	दिवा० ,, ,,	२४४	१४
,,	१५६३	क्र्या० ,, ,,	३०८	६
इषु	१३९०	तुदा० ,, ,,	२७९	१५
इषुध	२०१०	कं० ,, ,,	२८३	२४
ई	१०८६ *	अदा० ,, अनिट्	२१३	१३
ईक्ष	६३०	भ्वा० आ० सेट्	१५०	४

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
उध्रस	१७८८	चुरा०	उभ०	सेट्	३२३	२४
उन्दी	१४९५	रुधा०	पर०	"	१९४	१२
उब्ज	१३४२	तुदा०	"	"	२७५	२४
उभ	१३५८	"	"	"	२७७	२
उम्भ	१३५९	"	"	"	२७७	२
उरस्	२०२९	कं०	"	"	३८४	१८
उर्द	२०	भ्वा०	आ०	"	३३	७
उर्वी	५८९	"	पर०	"	९९	२१
उलडि	१५८० ❋	चुरा०	"	"	३११	१९
उष	७१७	भ्वा०	"	"	११७	२
उषस्	१९९७	कं०	"	"	३८३	११
उहिर्	७६०	भ्वा०	"	"	१२१	२०
ऊठ	३४८ ❋	"	"	"	६८	१८
ऊन	१९३७	चुरा०	उभ०	"	३३०	२०
ऊयी	४९८	भ्वा०	आ०	"	९०	९
ऊर्ज	१५८७	चुरा०	पर०	"	३१२	१६
ऊर्णुञ्	१०७६	अदा०	उभ०	"	२०३	१७
ऊष	७०४	भ्वा०	पर०	"	११५	२२
ऊह	६६८	"	आ०	"	१०७	२४
ऋ	९७१	"	पर०	अनिट्	१५९	१९
"	११३५	जुहो०	"	"	२३९	१९
ऋक्षि	१३१४ ❋	स्वा०	"	सेट्	२७१	१४
ऋच	१३४१	तुदा०	"	"	२७५	२३
ऋच्छ	१३३५	"	"	"	२७५	१५
ऋज	१८४	भ्वा०	आ०	"	५३	१६

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
कटी	३२९	भ्वा०	पर०	सेट्	६६	१९
कटे	३०३	,,	,,	,,	६४	१४
कठ	३४३	,,	,,	,,	६८	६
कठि	२७३	,,	आ०	,,	६२	१६
,,	१८९६	चुरा०	उभ०	,,	३२८	८
कड	३७०	भ्वा०	पर०	,,	७०	८
,,	१४१९	तुदा०	,,	,,	२८१	१२
कडि	२९१	भ्वा०	आ०	,,	६३	२०
,,	३७० *	,,	पर०	,,	७०	९
,,	१६२४	चुरा०	,,	,,	३१४	१८
कड्ड	३५९	भ्वा०	,,	,,	६९	१५
कण	४६३	,,	,,	,,	८४	१९
,,	८१८	,,	,,	,,	१३१	५
,,	१७६१	चुरा०	उभ०	,,	३२२	७
कंण्डूञ्	१९८७	कं०	,,	,,	३८२	१५
कत्थ	३७	भ्वा०	आ०	,,	३५	१०
कत्र	१९६३	चुरा०	उभ०	,,	३३२	३
कथ	१९००	,,	,,	,,	३२८	१७
कद	७९६ *	भ्वा०	आ०	,,	१२९	१३
कदि	७१	,,	पर०	,,	४५	५
,,	७९६	,,	आ०	,,	१२९	२
कनी	४७६	,,	पर०	,,	८५	२३
कपि	३८७	,,	आ०	,,	७२	२१
कबृ	३९१	,,	,,	,,	७३	२
कमि	८५१ *	,,	पर०	,,	१३३	१६

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
किट	३२८	भ्वा.	पर.	सेट्	६६	१९
कित	१०३०	,,	,,	,,	१७७	१४
किल	१३९२	तुदा.	,,	,,	२७९	१९
कीट	१६८३	चुरा	,,	,,	३१८	३
कील	५४३	भ्वा.	,,	,,	९५	३
कु	१०७९	अदा.	,,	अनिट्	२०६	१३
कुक	९२	भ्वा.	आ.	सेट्	४७	२२
कुङ्	९८७	,,	,,	अनिट्	१६४	१०
,,	१४३९ *	तुदा.	,,	,,	२८३	६
कुच	१९२	भ्वा.	पर.	सेट्	५४	११
,,	८९१	,,	,,	,,	१४१	१
,,	१४०७	तुदा.	,,	,,	२८०	२०
कुजु	२०७	भ्वा.	,,	,,	५५	९
कुञ्च	१९३	,,	,,	,,	५४	१३
कुट	१४०५	तुदा.	,,	,,	२८०	१२
,,	१७४४ *	चुरा.	आ.	,,	३२१	७
कुट्ट	१५९६	,,	पर.	,,	३१३	१४
,,	१७४८	,,	आ.	,,	३२१	१२
कुठि	३५२	भ्वा.	पर.	,,	६९	६
,,	१६२६ *	चुरा.	,,	,,	३१४	२२
कुड	१४२२	तुदा.	,,	,,	२८१	१६
,,	१४२८	,,	,,	,,	२८१	२३
कुडि	२७९	भ्वा.	आ.	,,	६३	२
,,	३३१	,,	पर.	,,	६६	२४
,,	१६२५	चुरा	,,	,,	३१४	२०

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
कूट	१७४७	चुरा.	आ.	सेट्	३२१	११
,,	१९३९	,,	उभ.	,,	३३०	२३
कूण	१७३४	चुरा.	आ.	,,	३२०	१९
,,	१९४४	,,	उभ.	,,	३३१	४
कूल	५४४	भ्वा.	पर.	,,	९५	४
कृञ्	१२९१	स्वा.	उभ.	अनिट्	२६५	२०
,,	१५१०	तना.	,,	,,	२९८	६
कृड	१४२१	तुदा.	पर.	सेट्	२८१	१५
कृती	१४७३	,,	,,	,,	२८९	९
,,	१४८५	रुधा.	,,	,,	२९२	११
कृप	१९१८	चुरा.	उभ.	,,	३२९	१७
कृपू	७८६	भ्वा.	आ.	,,	१२७	३
,,	१७९४	चुरा.	उभ.	,,	३२४	८
कृवि	६१८	भ्वा.	पर.	,,	१०२	२०
कृश	१२६५	दिवा.	,,	,,	२६१	२०
कृष	१०२७	भ्वा.	,,	अनिट्	१७६	२१
,,	१३२५	तुदा.	उभ.	,,	२७३	१५
कॄ	१४४७	,,	पर.	सेट्	२८४	१६
,,	१५३५	क्र्या.	,,	,,	३०४	१७
कॄञ्	१५२४	,,	उभ.	,,	३०३	१५
कॄत	१६९६	चुरा.	पर.	,,	१३८	१६
केपृ	३७८	भ्वा.	आ.	,,	७२	१
केला	२०१८	कं.	पर.	,,	३८४	५
केलृ	५५६	भ्वा.	,,	,,	९५	२३
केवृ	५२४	,,	आ.	,,	९३	१

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
क्लमु	१२४५	दिवा०	पर०	सेट्	२५९	१९
क्लिदि	१५	भ्वा०	आ०	,,	३२	२
,,	७४	भ्वा०	पर०	,,	४५	९
क्लिदू	१२८०	दिवा०	,,	,,	२६२	१३
क्लिश	११९९	,,	आ०	,,	२५०	१६
क्लिशू	१५६०	क्र्या०	पर०	,,	३०८	१
क्लीबृ	३९२	भ्वा०	आ०	,,	७३	५
क्लुङ्	९९५ *	,,	आ०	अनिट्	१६४	२०
क्लेश	६२७	,,	,,	सेट्	१०४	८
क्वण	४६४	,,	पर०	,,	८४	१९
क्वथे	८८०	,,	,,	,,	१३७	१०
क्षजि	७९३	,,	आ०	,,	१२८	२०
,,	१६६४	चुरा०	पर०	,,	३१६	१४
क्षणु	१५०३	तना०	उभ०	,,	२९६	४
क्षप	१९८६ *	चुरा०	पर०	,,	३३४	१०
क्षपि	१६६३	,,	,,	,,	३१६	१०
क्षपिः	८४२ *	भ्वा०	,,	,,	१३२	१९
क्षमूस्	४५६	,,	आ०	,,	८०	९
,,	१२४४	दिवा०	पर०	,,	२५९	१३
क्षर	८८५	भ्वा०	,,	,,	१३८	४
क्षल	१६३९	चुरा०	,,	,,	३१५	१४
क्षि	२४५	भ्वा०	,,	अनिट्	६०	१०
,,	१३१५	स्वा०	,,	,,	२७१	१०
,,	१४४५	तुदा०	,,	,,	२८४	११
क्षिणु	१५०४	तना०	उभ०	सेट्	२९७	१०

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
खट	३१८	भ्वा०	पर०	सेट्	६६	१
खट्ट	१६७५	चुरा०	”	”	३१७	२०
खड	१६२२	चुरा०	पर०	”	३१४	१८
खडि	२९२	भ्वा०	आ०	”	६३	२१
”	१६२३	चुरा०	पर०	”	३१४	१८
खद	५०	भ्वा०	”	”	४०	२४
खनु	९१३	”	उभ०	”	१४३	२०
खर्ज	२३८	”	पर०	”	५७	१८
खर्द	६०	”	”	”	४३	१२
खर्ब	४३३	”	”	”	७७	२०
खर्व	६०२	”	”	”	१००	१०
खल	५६५	”	”	”	९६	१०
खव	१५५९ *	क्र्या०	”	”	३०८	१७
खष	७०७	भ्वा०	”	”	११६	१
खाद्द	४९	”	”	”	४०	२१
खिट	३११	”	”	”	६५	१८
खिद	१२०८	दिवा०	आ०	अनिट्	२५२	२०
”	१४७४	तुदा०	पर०	”	२८९	१२
”	१४८७	रुधा०	आ०	”	२९३	३
खुङ्	९८८	भ्वा०	”	”	१६४	१०
खुजु	२०८	”	पर०	सेट्	५५	९
खुड	१४२७ *	तुदा०	”	”	२८१	२०
खुडि	१६२७	चुरा०	”	”	३१५	१
खुर	१३८१	तुदा०	”	”	२७	१४
खुर्द	२२	भ्वा०	आ०	”	३३	१७

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
गर्द	१७०९	चुरा०	पर०	सेट्	३१९	११
गर्ध	१७१०	,,	,,	,,	३१९	१२
गर्ब	४३४	भ्वा०	,,	,,	७७	२०
गर्व	६०३	,,	,,	,,	१००	१०
,,	१९५५	चुरा०	आ०	,,	३३१	२०
गर्ह	६५७	भ्वा०	,,	,,	१०६	१५
,,	१८९४	चुरा०	उभ०	,,	३२८	६
गल	५६६	भ्वा०	पर०	,,	९६	११
,,	१७४५	चुरा०	आ०	,,	३२१	८
,,	१७८३	,,	उभ०	,,	३२३	१६
गल्भ	४०५	भ्वा०	आ०	,,	७४	२
गल्ह	६५७	,,	,,	,,	१०६	२५
गवेष	१९३२	चुरा०	उभ०	,,	३३०	१४
गा	११४३	जुहो०	पर०	अनिट्	२४१	१८
गाङ्	९८५	भ्वा०	आ०	,,	१६३	२१
गाधृ	४	,,	,,	सेट्	३१	१
गाहू	६६९	,,	,,	,,	१०८	४
गु	१४३७	तुदा०	पर०	अनिट्	२८२	२०
गुङ्	९८४	भ्वा०	आ०	,,	१६३	१८
,,	९८९	,,	,,	,,	१६४	१०
गुज	२११	,,	पर०	सेट्	५५	२१
,,	१४०८	तुदा०	,,	,,	२८०	२१
गुजि	२१२	भ्वा०	,,	,,	५५	२१
गुठि	१६२६ *	चुरा०	,,	,,	३१४	२२
गुड	१४०९	तुदा०	,,	,,	२८०	२२

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
गुडि	१६२६	चुरा०	पर०	सेट्	३१४	२१
गुण	१९४३	,,	उभ०	,,	३३१	१
गुद	२४	भ्वा०	आ०	,,	३३	१७
गुध	११५७	दिवा०	पर०	,,	२४४	१
,,	१५५५	क्र्या०	,,	,,	३०७	११
गुप	१००७	भ्वा०	आ०	,,	१६८	१०
,,	१२७२	दिवा०	पर०	,,	२६२	३
,,	१८१६	चुरा०	उभ०	,,	३२४	१७
गुपू	४०८	भ्वा०	पर०	,,	७४	१२
गुफ	१३५६	तुदा०	,,	,,	२७७	१
गुम्फ	१३५७	,,	,,	,,	२७७	१
गुर	१७४०	चुरा०	आ०	,,	३२१	२
गुरी	१४३४	तुदा०	,,	,,	२८२	१०
गुर्द	२३	भ्वा०	,,	,,	३३	१७
,,	१७११	चुरा०	पर०	,,	३१९	१३
गुर्वी	५९४	भ्वा०	,,	,,	१००	३
गुहू	९३१	,,	उभ०	,,	१४५	२३
गूरी	११९२	दिवा०	आ०	,,	२४९	२३
गृ	९७२	भ्वा०	पर०	अनिट्	१६०	१९
गृज	२५७	,,	,,	सेट्	६१	७
गृजि	२५८	,,	,,	,,	६१	७
गृधु	१२८४	दिवा०	,,	,,	२६३	४
गृह	१९४७	चुरा०	आ०	,,	३३१	९
गृहू	६७०	भ्वा०	,,	,,	१०९	२५
गॄ	१४४८	तुदा०	पर०	,,	२८४	२१

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
गॄ	१५३७	क्र्या०	पर०	सेट्	३०४	२०
,,	१७५३	चुरा०	आ०	,,	३२१	१८
गेपृ	३७९	भ्वा०	,,	,,	७२	१
गेवृ	५१७	,,	,,	,,	९२	२३
गेषृ	६३४	,,	,,	,,	१०५	१३
गै	९५२	,,	पर०	अनिट्	१५५	६
गोम	१९२५	चुरा०	उभ०	सेट्	३३०	३
गोष्ट	२६६	भ्वा०	आ०	,,	६२	६
ग्रथि	३६	,,	,,	,,	३५	९
ग्रन्थ	१५५१	क्र्या०	पर०	,,	३०७	६
,,	१८७२	चुरा०	उभ०	,,	३२६	१८
,,	१८८६	,,	,,	,,	३२७	१७
ग्रस	१७९५	,,	,,	,,	३२४	१२
ग्रसु	६५०	भ्वा०	आ०	,,	१०६	१३
ग्रह	१५७१	क्र्या०	उभ०	,,	३०९	६
ग्राम	१९४१	चुरा०	,,	,,	३३१	१
ग्रुचु	२०५	भ्वा०	पर०	,,	५५	९
ग्लसु	६५१	,,	आ०	,,	१०६	१३
ग्लहृ	६७१	,,	,,	,,	११०	२२
ग्ला	८४९	,,	पर०	अनिट्	१३३	१२
ग्लुचु	२०६	,,	,,	सेट्	५५	९
ग्लुञ्चु	२०९	,,	,,	,,	५५	१४
ग्लेपृ	३७६.	,,	आ०	,,	७१	२२
ग्लेवृ	८१५	,,	,,	,,	९२	२३
ग्लेषृ	६३४ ❋	,,	,,	,,	१०५	१४

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
घृ	१६९३	चुरा०	पर०	सेट्	३१८	१३
घृणि	४५०	भ्वा०	आ०	,,	७९	१
घृणु	१५०७	तना०	उभ०	,,	२९७	१८
घृषु	७२९	भ्वा०	पर०	,,	११८	७
घ्रा	९६१	,,	,,	अनिट्	१५६	९
ङुङ्	९९१	,,	आ०	,,	१६४	१०
चक	९४	,,	,,	सेट्	४८	५
,,	८०७	,,	पर०	,,	१३०	१६
चकासृ	१११२	अदा०	,,	,,	२२५	१
चक्क	१६३७	चुरा०	,,	,,	३१५	१३
चक्षिङ्	१०५४	अदा०	आ०	अनिट्	१९५	२२
चञ्चु	१९८	भ्वा०	पर०	सेट्	५५	१
चट	१७६७	चुरा०	उभ०	,,	३२२	१७
चटे	३०३ *	भ्वा०	पर०	,,	६४	२३
चडि	२८७	,,	आ०	,,	६३	१३
चण	८२०	,,	पर०	,,	१३१	७
चते	८९९	,,	उभ०	,,	१४१	७
चदि	६९	,,	पर०	,,	४५	१
चदे	९००	,,	उभ०	,,	१४२	१७
चन	८२७	,,	पर०	,,	१३१	१३
,,	१८८९	चुरा०	उभ०	,,	३२७	२४
चप	४१२	भ्वा०	पर०	,,	७६	२६
,,	१६६९ *	चुरा०	,,	,,	३१६	२१
चपि	१६६२	,,	,,	,,	३१६	९
चम	८५१ *	भ्वा०	,,	,,	१३३	१६
चमु	४८४	,,	,,	,,	८७	९

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
चिती	३९	भ्वा०	पर०	सेट्	३७	२०
चित्र	१९६५	चुरा०	उभ०	,,	३३३	२
चिरि	१३१६	स्वा०	पर०	,,	२७१	१०
चिल	१३९४	तुदा०	,,	,,	२७९	२२
चिल्ल	५५२	भ्वा०	,,	,,	९५	१५
चीक	१८७५	चुरा०	उभ०	,,	३२६	२२
चीभृ	३९५	भ्वा०	आ०	,,	७३	८
चीव	१८१९	चुरा०	उभ०	,,	३२४	१७
चीवृ	९१४	भ्वा	,,	,,	१४४	३
चुक्क	१६३८	चुरा०	पर०	,,	३१५	१३
चुच्य	५३२	भ्वा०	,,	,,	९३	२०
चुट	१४१६	तुदा०	,,	,,	२८१	१०
,,	१६५६	चुरा०	,,	,,	३१६	४
चुटि	१७०२	,,	,,	,,	३१९	२
चुट्ट	१५९८	,,	,,	,,	३१३	१६
चुड	१४३२	तुदा०	,,	,,	२८२	४
चुडि	३३४	भ्वा०	,,	,,	६७	५
चुड्ड	३५७	,,	,,	,,	६९	१३
चुद	१६३४	चुरा०	,,	,,	३१५	११
चुप	४१५	भ्वा०	,,	,,	७७	३
चुबि	४४१	,,	,,	,,	७८	६
,,	१६७८	चुरा०	,,	,,	३१७	२२
चुर	१५७२	,,	,,	,,	३११	३
चुरण	२०१३	कं०	,,	,,	३८३	२६
चुल	१६४४	चुरा०	,,	,,	३१५	१९

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः	पृ०	पं०
जसु	१२४९	दिवा० पर० सेट्	२६०	१८
,,	१७१५	चुरा० ,, ,,	३१९	१७
,,	१७६४	,, उभ० ,,	३२२	१४
जागृ	११९०	अदा० पर० ,,	२२२	४
जि	५८१	भ्वा० ,, अनिट्	९८	१
,,	९८१	,, ,, ,,	१६३	४
जिमु	४८७	,, ,, सेट्	८७	२४
जिरि	१३१७	स्वा० ,, ,,	२७१	१०
जिवि	६१४	भ्वा० ,, ,,	१००	२२
,,	१८३७	चुरा० उभ० ,,	३२५	२
जिपु	७१८	भ्वा० पर० ,,	११७	१३
जीव	५८०	,, ,, ,,	९९	१
जुगि	१६४	,, ,, ,,	५१	२४
जुड	१३६५	तुदा० ,, ,,	२७७	१४
,,	१४१८	,, ,, ,,	२८१	११
,,	१६८९	चुरा० ,, ,,	३१८	१०
जुतृ	३०	भ्वा० आ० ,,	३५	१
जुन	१३५५ *	तुदा० पर० ,,	२७७	१५
जुष	१८८०	चुरा० उभ० ,,	३२७	७
जुषी	१३२७	तुदा० आ० ,,	२७४	६
जूरी	११९४	दिवा० ,, ,,	२५०	१
जूष	७०२	भ्वा० पर० ,,	११५	१८
जृभि	४००	,, आ० ,,	७३	२
जॄ	१५३३	क्र्या० पर० ,,	३०४	१४
,,	१८५७	चुरा० उभ० ,,	३२५	२४

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः	पृ०	पं०
जृष्	८४५	भ्वा० पर० सेट्	१३३	१
जृष	११६८	दिवा० पर० ,,	२४४	२२
जेषृ	६३७	भ्वा० आ० ,,	१०५	१७
जेहृ	६६४	,, ,, ,,	१०७	११
जै	९४९	,, पर० अनिट्	१५५	१
ज्ञप	१६६७	चुरा० ,, सेट्	३१६	१४
ज्ञा	८३६	भ्वा० ,, अनिट्	१३२	७
,,	१५४६	क्र्या० ,, ,,	३०६	१
,,	१७७८	चुरा० उभ० सेट्	३२३	११
ज्या	१५३८	क्र्या० पर० अनिट्	३०५	१
ज्युङ्	९९३	भ्वा० आ० ,,	१६४	२०
ज्रि	९८२	,, पर० ,,	१६३	४
,,	१८५८	चुरा० उभ० सेट्	३२५	२५
ज्वर	८००	भ्वा० पर० ,,	१२९	२३
ज्वल	८२९	,, ,, ,,	१३१	२२
,,	८४८	,, ,, ,,	१३३	७
,,	८६५	,, ,, ,,	१३६	१
झट	३१५	,, ,, ,,	६५	२२
झमु	४८७	,, ,, ,,	८७	९
झर्झ	७३९	,, ,, ,,	१२०	४
,,	१३३९	तुदा० ,, ,,	२७५	२०
झष	७१०	भ्वा० ,, ,,	११६	१
,,	९२६	,, उभ० ,,	१४५	१५
झॄ	१५३३ *	क्र्या० पर० ,,	३०४	१४
झृष	११६९	दिवा० ,, ,,	२४४	२२

धातवः	धातुसंख्या	गणावयः			पृ०	पं०
णल	८७२	भ्वा०	पर०	सेट्	१३६	१३
णश	१२३२	दिवा०	पर०	”	२५६	२४
णस	६४७	भ्वा०	आ०	”	१०६	७
णह	१२०४	दिवा०	उभ०	अनिट्	२५१	१३
णासृ	६४५	भ्वा०	आ०	सेट्	१०६	४
णिक्ष	६७९	”	पर०	”	११४	१४
णिज	१०६३	अदा०	आ०	”	२००	१
णिजिर्	११३०	जुहो०	उभ०	अनिट्	२३७	३
णिदि	६७	भ्वा०	पर०	सेट्	४४	२०
णिद	९०६	”	उभ०	”	११४३	२
णिल	१३९९	तुदा०	पर०	”	२८०	५
णिवि	६१०	भ्वा०	”	”	१००	१९
णिश	७४३	”	”	”	१२०	१४
णिसि	१०६२	अदा०	आ०	”	१९९	२३
णीञ्	९३६	भ्वा०	उभ०	अनिट्	१५०	९
णीव	५८६	”	पर०	सेट्	९९	१५
णु	१०७१	अदा०	”	”	२०२	१७
णुद	१३२१	तुदा०	उभ०	अनिट्	२७२	१२
”	१४६४	”	पर०	”	२८७	१९
णू	१४३५	”	”	सेट्	२८२	१३
णेद	९०७	भ्वा०	उभ०	”	१४३	२
णेषृ	६३७	”	आ०	”	१०५	१७
तक	११९	”	पर०	”	४९	१९
तकि	१२०	”	”	”	५०	१
तक्ष	६८५	”	”	”	११४	२४

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
तक्षू	६७५	भ्वा०	पर०	सेट्	११३	१७
तगि	१५१	"	"	"	५०	१४
तञ्चु	१९९	"	"	"	५५	१
तञ्चू	१४९७	रूधा०	"	"	२९	१
तट	३१७	भ्वा०	"	"	६५	२५
तड	१६२१	चुरा०	"	"	३१४	१७
"	१८४४	"	उभ०	"	३२५	२
तडि	२८९	भ्वा०	आ०	"	६३	१८
तत्रि	१७२४	चुरा०	आ०	"	३२०	९
तनु	१५०१	तना०	उभ०	"	२९६	४
"	१८८८	चुरा०	"	"	३२७	२१
तन्तस्	२००२	कं०	पर०	सेट्	३८३	१७
तप	१०२२	भ्वा०	"	अनिट्	१७३	२१
"	११९७	दिवा०	आ०	"	२५०	८
"	१८६१	चुरा०	उभ०	सेट्	३२६	५
तमु	१२४०	दिवा०	पर०	"	२५९	४
तय	४९४	भ्वा०	आ०	"	८९	१
तरण	२०३०	कं०	पर०	"	३८४	१९
तर्क	१८२५	चुरा०	उभ०	"	३२४	१८
तर्ज	२३६	भ्वा०	पर०	"	५७	१६
"	१७२७	चुरा०	आ०	"	३२०	९
तर्द	५८	भ्वा०	पर०	"	४३	९
तल	१६४०	चुरा०	"	"	३१५	१५
तसि	१७७५	चुरा०	उभ०	"	३२३	९
तसु	१२५०	दिवा०	पर०	"	२६०	१९

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
तायृ	५०४	भ्वा०	आ०	सेट्	९१	१६
तिक	१३०४	स्वा०	पर०	,,	२७०	३
तिक्ङ	१०६	भ्वा०	आ०	,,	३८	११
तिग	१३०५	स्वा०	पर०	,,	२७०	३
तिज	१००८	भ्वा०	आ०	,,	१६८	१९
,,	१६९५	चुरा०	पर०	,,	३१८	१५
तिपृ	३७२	भ्वा०	आ०	अनिट्	७०	१८
तिम	११६०	दिवा०	पर०	सेट्	२४४	९
तिरस्	२०२७	कं०	,,	,,	३८४	१६
तिल	५५३	भ्वा०	,,	,,	९५	१९
,,	१३९३	तुदा०	,,	,,	२७९	२१
,,	१६५०	चुरा०	,,	,,	३१५	२४
तिल्ल	५५३ ॐ	भ्वा०	,,	,,	२२	१५
तीक्ङ	१०७	भ्वा०	आ०	,,	४८	११
तीम	११६१	दिवा०	पर०	,,	२४४	९
तीर	१९६०	चुरा०	उभ०	,,	३३१	२२
तीव	५८५	भ्वा०	पर०	,,	९९	१५
तु	१०८०	अदा०	,,	अनिट्	२०६	१५
तुज	२५३	भ्वा०	,,	सेट्	६१	४
,,	१६०४	चुरा०	,,	,,	३१४	१
तुजि	२५४	भ्वा०	,,	,,	६१	५
,,	१६०५	चुरा०	पर०	,,	३१४	१
,,	१८०१	,,	उभ०	,,	३२४	१५
तुट	१४१५	तुदा०	पर०	,,	२८१	८
तुड	१४२५	,,	,,	,,	२८१	१९

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
तुड्ड	३६१	भ्वा०	पर०	सेट्	६९	१९
तुण	१३७१	तुदा०	"	"	२७७	२१
तुत्थ	१९८६ *	चुरा०	"	"	३३४	२१
तुद	१३२०	तुदा०	उभ०	अनिट्	२७२	३
तुप	४१६	भ्वा०	पर०	सेट्	७७	६
"	१३४८	तुदा०	"	"	२७६	२१
तुफ	४२०	भ्वा०	"	"	७७	६
"	१३५०	तुदा०	"	"	२७६	२१
तुबि	४४०	भ्वा०	"	"	७८	४
"	१७००	चुरा०	"	"	३१८	२४
तुभ	७७५	भ्वा०	आ०	"	१२४	२३
"	१२७९	दिवा०	पर०	"	२६२	११
"	१५५९	क्र्या०	"	"	३०७	२४
तुम्प	४१७	भ्वा०	"	"	७७	६
"	१३४९	तुदा०	"	"	२७६	२१
तुम्फ	४२१	भ्वा०	"	"	७७	६
"	१३५१	तुदा०	"	"	२७६	२१
तुर	११३९	जुहो०	"	"	२४०	२१
तुरण	२०१४	कं०	"	"	३८४	१
तुर्वी	५९०	भ्वा०	"	"	९९	२१
तुल	१६४१	चुरा०	"	"	३१५	१६
तुष	१२२२	दिवा०	"	अनिट्	२५४	२४
तुस	७३१	भ्वा०	"	सेट्	११८	९
तुहिर	७५८	"	"	"	१२१	२०
तुड्ड	३६१	"	"	"	६९	२०

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
तूण	१७३५	चुरा०	आ०	सेट्	३२०	२०
तूरी	११९०	दिवा०	,,	,,	२४९	२१
तूल	५४६	भ्वा०	पर०	,,	९५	८
तूप	६९५	,,	,,	,,	११५	११
तृंहू	१३८९	तुदा०	,,	,,	२७९	१२
तृक्ष	६८०	भ्वा०	,,	,,	११४	१५
तृणु	१५०६	तना०	उभ०	,,	२९७	१७
तृदिर्	१४८४	रुधा०	,,	,,	२९२	६
तृप	१२३३	दिवा०	पर०	अनिट्	२५७	९
,,	१३१०	स्वा०	,,	सेट्	२७१	१
,,	१३४६	तुदा०	,,	,,	२७६	९
,,	१८६२	चुरा०	उभ०	,,	३२६	७
तृफ	१३४६ *	तुदा०	पर०	,,	२७६	१४
तृम्प	१३४७	,,	,,	,,	२७६	९
तृम्फ	१३४७ *	,,	,,	,,	२७६	१४
तृप	१२६६	दिवा०	,,	,,	२६१	२१
तृह	१४९३	रुधा०	,,	,,	२९४	५
तृहू	१३८७	तुदा०	,,	,,	२७९	१२
तॄ	१००६	भ्वा०	,,	,,	१६७	२
तेज	२४०	,,	,,	,,	५९	१२
तेपृ	३७३	,,	आ०	,,	७०	१८
तेवृ	५१४	,,	,,	,,	९२	१९
त्यज	१०२३	,,	पर०	अनिट्	१७३	२४
त्रकि	९८	,,	आ०	सेट्	४८	१०
त्रख	१६०	,,	पर०	,,	५१	१७

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
त्रखि	१६१	भ्वा०	पर०	सेट्	५१	१७
त्रदि	७०	,,	,,	,,	४५	३
त्रपिः	८४२ *	,,	,,	,,	१३२	१७
त्रपूष्	३८६	,,	आ०	,,	७२	७
त्रस	१७८७	चुरा०	उभ०	,,	३२३	२३
त्रसि	१८०७	,,	,,	,,	३२४	१६
त्रसी	११५४	दिवा०	पर०	,,	२४३	१६
त्रुट	१४१४	तुदा०	,,	,,	२८१	६
,,	१७४४	चुरा०	आ०	,,	३२१	६
त्रुप	४१८	भ्वा०	पर०	,,	७७	६
त्रुफ	४२२	,,	,,	,,	७७	६
त्रुम्प	४१९	,,	,,	,,	७७	६
त्रुम्फ	४२३	,,	,,	,,	७७	६
त्रैङ	१००२	,,	आ०	अनिट्	१६६	८
त्रौक्ट	१००	,,	,,	सेट्	४८	१०
त्वक्षू	६७६	,,	पर०	,,	११३	१७
त्वगि	१५२	,,	,,	,,	५०	१४
त्वच	१३४०	तुदा०	,,	,,	२७५	२२
त्वञ्चु	२००	भ्वा०	,,	,,	५५	१
त्वरा	७९९	,,	आ०	,,	१२९	१६
त्विष	१०३८	,,	उभ०	अनिट्	१७९	१४
त्सर	५७४	,,	पर०	सेट्	९६	२२
थिपृ	३७२ *	,,	आ०	,,	७०	१८
थुड	१४२६	तुदा०	पर०	,,	२८१	२०
थुर्वी	५९१	भ्वा०	,,	,,	९९	२१

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
थेपृ	३७३ ❋	भ्वा०	आ०	सेट्	७१	२०
दंश	१०२६	"	पर०	अनिट्	१७६	६
दक्ष	६२८	"	आ०	सेट्	१०४	२२
"	७९४	"	"	"	१२८	२१
दघ	१३१९	स्वा०	पर०	"	२७१	५
दण्ड	१९७४	चुरा०	उभ०	"	३३३	१५
दद	१७	भ्वा०	आ०	"	३२	१७
दध	८	"	"	"	३०	१६
दमु	१२४१	दिवा०	पर०	"	२७०	११
दम्भु	१३०८	स्वा०	"	"	२५९	६
दय	४९६	भ्वा०	आ०	"	९०	६
दरिद्रा	११११	अदा०	पर०	"	२२३	१४
दल	५६८	भ्वा०	"	"	९६	१३
"	१७९७	चुरा०	उभ०	"	३२४	१४
दलिः	८४२ ❋	भ्वा०	पर०	"	१३२	१७
दशि	१७२१	चुरा०	आ०	"	३२०	५
दस	१७२१ ❋	"	"	"	३२०	७
दसि	१७२१ ❋	"	"	"	३२०	७
"	१८०९	"	उभ०	"	३२४	१६
"	१८३१	"	"	"	३२५	१
दसु	१२५१	दिवा०	पर०	"	२६०	२०
दह	१०२८	भ्वा०	"	अनिट्	१७७	१
दाञ्	११२८	जुहो०	उभ०	"	२३५	७
दाण्	९६५	भ्वा०	पर०	"	१५७	६
दान	१०३१	"	उभ०	सेट्	१७८	८

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः	पृ०	पं०
दाप्	१०९७	अदा० पर० अनिट्	२१५	१०
दाशृ	९१७	भ्वा० उभ० सेट्	१४४	१५
,,	१३१८	स्वा० पर० ,,	२७१	१०
दासृ	९२९	भ्वा० उभ० ,,	१४५	२०
दिवि	६२२	,, पर० ,,	१००	२२
दिवु	११४४	दिवा० ,, ,,	२४२	५
,,	१७५२	चुरा० आ० ,,	३२१	१७
,,	१७७०	,, उभ० ,,	३२२	२३
दिश	१३२२	तुदा० ,, अनिट्	२७२	१३
दिह	१०५२	अदा० ,, ,,	१९५	६
दीक्ष	६२९	भ्वा० आ० सेट्	१०५	१
दीङ्	११७२	दिवा० ,, अनिट्	२४६	१
दीधीङ्	१११४	अदा० ,, सेट्	२२६	१५
दीपी	११८८	दिवा० ,, ,,	२४९	१६
दु	९७९	भ्वा० पर० अनिट्	१६२	१९
,,	१२९४	स्वा० ,, ,,	२६७	१४
दुःख	१९७८	चुरा० उभ० सेट्	३३३	१९
,,	२००५	कं० पर० ,,	३८३	१८
दुर्वी	५९२	भ्वा० ,, ,,	९९	२१
दुल	१६४२	चुरा० ,, ,,	३१५	१७
दुवस्	२०२६	कं० पर० ,,	३८४	१५
दुष	१२२३	दिवा० ,, अनिट्	२५५	१
दुह	१०५१	अदा० उभ० ,,	१९४	६
दुहिर	७५९	भ्वा० पर० सेट्	१२१	२०

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
दूङ्	११७१	दिवा०	आ०	सेट्	२४५	२१
दॄ	१३१९	स्वा०	पर०	,,	२७१	१०
दृङ्	१४४९	तुदा०	आ०	अनिट्	२८५	११
दृप	१२३४	दिवा०	पर०	,,	२५७	२०
,,	१३५२	तुदा०	,,	सेट्	२७६	२३
,,	१८६६	चुरा०	उभ०	,,	३२६	११
दृभ	१८६८	,,	,,	,,	३२६	१४
दृभी	१३६२	तुदा०	पर०	,,	२७७	७
,,	१८६७	चुरा०	उभ०	,,	३२६	१३
दृम्फ	१३५३	तुदा०	पर०	,,	२७६	२३
दृशिर्	१०२५	भ्वा०	,,	अनिट्	१७५	९
दृह	७५४	भ्वा०	,,	सेट्	१२१	१५
दृहि	७५५	,,	,,	,,	१२१	१५
दॄ	८३३	,,	,,	,,	१३२	४
,,	१५३२	क्र्या०	,,	,,	३०४	१३
देङ्	९९९	भ्वा०	आ०	अनिट्	१६५	९
देवृ	५१५	,,	,,	सेट्	९२	१९
दैप्	९५१	,,	पर०	अनिट्	१५६	१
दो	११८६	दिवा०	,,	,,	२०८	१४
द्यु	१०७७	अदा०	,,	,,	२०६	२
द्युत	७६२	भ्वा०	आ०	सेट्	१२२	११
द्यै	९४०	,,	पर०	अनिट्	१५४	७
द्रम	४८१	,,	,,	सेट्	८७	३
द्रा	१०९२	अदा०	,,	अनिट्	२१५	१
द्राखि	६९१	भ्वा०	,,	सेट्	११५	६

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
धू	१४३६	तुदा०	पर०	सेट्	२८२	१७
धूञ्	१२९३	स्वा०	उभ०	,,	२६७	१
,,	१५२६	क्र्या०	,,	,,	३०३	२०
धूञ	१८८३	चुरा०	,,	,,	३२७	९
धूप	४०९	भ्वा०	पर०	,,	७६	१५
,,	१८१७	चुरा०	उभ०	,,	३२४	४
धूरी	११९१	दिवा०	आ०	,,	२४९	१३
धूश	१६८२ *	चुरा०	पर०	,,	३१८	२
धूष	१६८२ *	,,	,,	,,	३१८	२
धूस	१६८२	,,	,,	,,	३१८	१
धृङ्	९९७	भ्वा०	आ०	अनिट्	१६५	१
,,	१४५०	तुदा०	,,	,,	२८५	१५
धृज	२२८	भ्वा०	पर०	सेट्	५७	६
धृजि	२२९	,,	,,	,,	५७	६
धृञ्	९३५	,,	उभ०	अनिट्	१४९	१६
धृष	१८९९	चुरा०	,,	सेट्	३२८	१२
धृषा	१३०७	स्वा०	पर०	,,	२७०	९
धॄ	१५३३ *	क्र्या०	,,	,,	३०४	१५
धेक	१९६२	चुरा०	उभ०	,,	३३२	२
धेट्	९३७	भ्वा०	पर०	अनिट्	९६	२०
धेपृ	३८५	,,	आ०	सेट्	७२	४
धोर्ऋ	५७३	,,	पर०	,,	९६	२०
ध्मा	९६२	,,	,,	अनिट्	१५६	१७
ध्यै	९४३	,,	,,	,,	१५४	१४
ध्रज	२२६	,,	,,	सेट्	५७	६

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
ध्रजि	२२७	भ्वा०	पर०	सेट्	५७	६
ध्रण	४७४	,,	,,	,,	८५	२०
ध्रस	१५६२	क्र्या०	,,	,,	३०८	४
ध्राक्षि	६९२	भ्वा०	,,	,,	११५	६
ध्राखृ	१२७	,,	,,	,,	५०	५
ध्राघृ	११६	,,	आ०	,,	४९	६
ध्राड़ृ	२९७	भ्वा०	आ०	,,	६४	१
ध्रु	९७८	,,	पर०	अनिट्	१६२	१६
,,	१४३८	तुदा०	,,	,,	२८३	१
ध्रुव	१४३८ *	,,	,,	सेट्	२८३	१
ध्रेकृ	८०	भ्वा०	आ०	,,	४७	६
ध्रै	९४२	,,	पर०	अनिट्	१५४	१३
ध्वंसु	७७७	,,	आ०	सेट्	१२५	१
ध्वज	२३०	,,	पर०	,,	५७	६
ध्वजि	२३१	,,	,,	,,	५७	१
ध्वण	४६७	,,	,,	,,	८४	२०
ध्वन	८४१	,,	,,	,,	१३२	१६
,,	८६२	,,	,,	,,	१३५	१२
,,	१९३८	चुरा०	उभ०	,,	३३०	२२
ध्वनि	८४२ *	भ्वा०	पर०	,,	१३२	१७
ध्वाक्षि	६९३	,,	,,	,,	११५	६
ध्वृ	९७४	,,	,,	अनिट्	१६१	१
नक्क	१६३५	चुरा०	,,	सेट्	३१५	१२
नट	१५८३	,,	,,	,,	३१२	७
,,	१८३५	,,	उभ०	,,	३२५	१

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः	पृ०	पं०
नदि	६८	भ्वा० पर० सेट्	४४	२१
नम	८४८ ❋	,, ,, अनिट्	१३३	७
नर्द	५६	,, ,, सेट्	४३	६
नल	१८४५	चुरा० उभ० ,,	३२५	२
नहि	१८४२	,, ,, ,,	३२५	२
नाथृ	६	भ्वा० आ० ,,	३०	११
नाधृ	७	,, ,, ,,	३०	११
निवास	१९३४	चुरा० उभ० ,,	३३०	१६
निष्क	१७३२	,, आ० ,,	३२०	१६
नील	५१४	भ्वा० पर० ,,	९४	२४
नृती	११५३	दिवा० ,, ,,	२४३	८
नॄ	८३४	भ्वा० ,, ,,	१३२	४
,,	१५३४	क्र्या० ,, ,,	३०४	१६
पक्ष	६८६	भ्वा० ,, ,,	११५	१
,,	१५८८	चुरा० ,, ,,	३१२	१७
पच	१०३३	भ्वा० उभ० अनिट्	१७८	१४
पचि	१८२	भ्वा० आ० सेट्	५३	११
,,	१६९४	चुरा० पर० ,,	३१८	१४
पट	३०५	भ्वा० ,, ,,	६५	३
,,	१७९८	चुरा० उभ० ,,	३२४	१५
,,	१९०५	,, ,, ,,	३२९	३
पठ	३४०	भ्वा० पर० ,,	६७	२०
पडि	२९०	,, आ० ,,	६३	१९
,,	१६५८	चुरा० पर० ,,	३१६	६
पण	४५३	भ्वा० आ० ,,	७९	११

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
पन	१९१९	चुरा०	उभ०	सेट्	३२९	६
पत्लृ	८७९	भ्वा०	पर०	,,	१३६	२४
पथ	१५९२ ॐ	चुरा०	,,	,,	३१३	९
पथि	१६१७	,,	,,	,,	३१४	१३
पथे	८८१	भ्वा०	,,	,,	१३७	१२
पद	१२०७	दिवा०	आ०	अनिट्	२५२	१५
,,	१९४६	चुरा०	,,	सेट्	३३१	८
पन	४५४	भ्वा०	,,	,,	७९	१२
पम्पस्	२००३	कं०	पर०	,,	३८३	१७
पय	४९१	भ्वा०	आ०	,,	८९	१
पयस्	२०३१	कं०	पर०	,,	३८४	२०
पर्ण	१९८६ ॐ	चुरा०	उभ०	,,	३३४	८
पर्दं	२९	भ्वा०	आ०	,,	३४	१८
पर्पं	४२४	,,	पर०	,,	७७	१९
पर्बं	४२८	,,	,,	,,	७७	१९
पर्बं	५९७	,,	,,	,,	१००	५
पल	८७३	,,	,,	,,	१३६	१५
पल्पूल	१९३०	चुरा०	उभ०	,,	३३०	१०
पश	१७६५	,,	,,	,,	३२२	१५
पष	१९११	,,	,,	,,	३२९	९
पसि	१६५९	,,	पर०	,,	३१६	६
पा	९६०	भ्वा०	,,	अनिट्	१५६	४
,,	१०९४	अदा०	,,	,,	२१५	४
पार	१९५९	चुरा०	उभ०	सेट्	३३१	२२
पाल	१६५२	,,	पर०	,,	३१५	२६

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
पि	१४४३	तुदा०	पर०	अनिट्	२८४	७
पिच्छ	१६१८	चुरा०	,,	सेट्	३१४	१४
पिज	१६०६	,,	,,	,,	३१४	१
पिजि	१०६५	अदा०	आ०	,,	२००	४
,,	१६०७	चुरा०	पर०	,,	३१४	७
,,	१८०३	,,	उभ०	,,	३२४	१५
पिट	३२०	भ्वा०	पर०	,,	६६	४
पिठ	३४९	,,	,,	,,	६८	२०
पिडि	२८३	,,	आ०	,,	६३	८
,,	१७१६	चुरा०	पर०	,,	३१९	१८
पिवि	६०८	भ्वा०	,,	,,	१००	१९
पिश	१४७५	तुदा०	,,	,,	२८९	१६
पिष्लृ	१४९०	रुधा०	,,	अनिट्	२९३	१८
पिस	१६१०	चुरा०	,,	सेट्	३१४	४
पिसि	१८०७	,,	उभ०	,,	३२४	१६
पिसृ	७४०	भ्वा०	पर०	,,	१२०	८
पीङ्	११७९	दिवा०	आ०	अनिट्	२४७	१२
पीड	१५८२	चुरा०	पर०	सेट्	३११	२३
पील	५४०	भ्वा०	,,	,,	९४	२३
पीव	५८३	,,	,,	,,	९९	१५
पुंस	१६८०	चुरा०	,,	,,	३१७	२४
पुट	३३३	भ्वा०	,,	,,	६७	१
,,	१४०६	तुदा०	,,	,,	२८०	१९
,,	१७९९	चुरा०	उभ०	,,	३२४	१५
,,	१९६१	,,	,,	,,	३३२	१

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
पूरी	१८४६	चुरा०	उभ०	सेट्	३२५	४
पूर्ण	१६७१ ※	"	पर०	"	३१७	२३
पूल	५४७	भ्वा०	"	"	९५	९
"	१६४९	चुरा०	"	"	३१७	२३
पूष	६९६	भ्वा०	"	"	११५	१२
पृ	११२३ ※	जुहो०	"	अनिट्	२३२	१३
"	१२८६	स्वा०	"	"	२६८	६
पृङ्	१४४०	तुदा०	आ०	"	२८३	१२
पृच	१८५०	चुरा०	उभ०	सेट्	३२५	१३
पृची	१०६७	अदा०	आ०	"	२००	१५
"	१५००	रुधा०	पर०	"	२९५	८
पृजि	१०६५ ※	अदा०	आ०	"	२००	९
पृड	१३६७	तुदा०	पर०	"	२७७	१७
पृण	१३६८	"	"	"	२७७	१८
पृथ	१५९२	चुरा०	"	"	३१३	३
पृषु	७२६	भ्वा०	"	"	११८	१
पॄ	११२३	जुहो०	"	"	२३१	६
"	१५२८	क्र्या०	"	"	३०४	८
"	१५८६	चुरा०	"	"	३१२	११
पेलृ	५६०	भ्वा०	"	"	९६	३
पेवृ	५१९	"	आ०	"	९२	२३
पेपृ	६३५	"	"	"	१०५	१५
पेसृ	७४१	"	पर०	"	१२०	८
पै	९५५	"	"	अनिट्	१५५	१२
पैणृ	४७३	"	"	सेट्	८५	१६

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
फल	५४९	भ्वा०	पर०	सेट्	९५	११
फला	५३५	,,	,,	,,	९४	११
फुल्ल	५५१	,,	,,	,,	९५	१४
फेलृ	५६१	,,	,,	,,	९६	३
बण	४७५	,,	,,	,,	८५	२०
बद	५१	,,	,,	,,	४१	१५
बध	१०१०	भ्वा०	आ०	,,	१६९	१
,,	१५८५	चुरा०	पर०	,,	३१२	१०
बन्ध	१५४७	क्र्या०	,,	अनिट्	३०६	५
बर्ब	४३०	भ्वा०	,,	सेट्	७७	१९
बर्ह	६५८	,,	आ०	,,	१०७	२
,,	१७०१	चुरा०	पर०	,,	३१९	९
बल	८७४	भ्वा०	,,	,,	१३६	१७
,,	१६७१	चुरा०	,,	,,	३१६	२३
बल्ह	६५९	भ्वा०	आ०	,,	१०७	२
वसु	१२५२ ❋	दिवा०	पर०	,,	२६०	२३
बस्त	१७२९	चुरा०	आ०	,,	३२०	१४
बाधृ	५	भ्वा०	,,	,,	३०	७
बाहृ	६६५	,,	आ०	,,	१०७	११
बिट	३२५	,,	पर०	,,	६६	१४
बिदि	६४	,,	,,	,,	४४	१४
बिल	१३९८	तुदा०	,,	,,	२८०	४
,,	१६४९	चुरा०	,,	,,	३१५	२३
बिस	१२५५	दिवा०	पर०	,,	२६१	५
बुक्क	१७५९	चुरा०	उभ०	,,	३२२	३

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः	पृ०	पं०
भण	४६१	भ्वा० पर० सेट्	८४	१९
भदि	१२	,, आ० ,,	३१	२२
भर्व	६००	,, पर० ,,	१००	९
भर्त्स	१७२८	चुरा० आ० ,,	३२०	१२
भल	५१०	भ्वा० ,, ,,	९२	९
,,	१७४६	चुरा० ,, ,,	३२१	१०
भल्ल	५११	भ्वा० ,, ,,	९२	९
भष	७१६	,, पर० ,,	११७	१
भस	११३७	जुहो० ,, ,,	२४०	८
भा	१०८९	अदा० ,, अनिट्	२१४	२१
भाज	१९३५	चुरा० उभ० सेट्	३३०	१७
भाम	४५५	भ्वा० आ० ,,	८०	६
,,	१९२१	चुरा० उभ० ,,	३२९	२०
भाष	६३२	भ्वा० आ० ,,	१०५	९
भासृ	६४४	,, ,, ,,	१०६	३
भिक्ष	६२६	,, ,, ,,	१०४	१६
भिंदि	६५	,, पर० ,,	४४	१४
भिदिर्	१४७७	रुधा० उभ० अनिट्	२९१	७
भिषज्	२००८	कं० पर० सेट्	३८३	२२
भिषणज्	२००९	,, ,, ,,	३८३	२३
भी	११२१	जुहो० ,, अनिट्	२३०	११
भुज	१४९२	रुधा० ,, ,,	२९४	१
भुजो	१४५५	तुदा० ,, ,,	२८६	२३
भुरण	२०१५	कं० ,, सेट्	३८४	२
भुवो	१७९३	चुरा० उभ० ,,	३२२	१३

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
भ्रूण	१७३६	चुरा०	आ०	सेट्	३२०	२०
भ्रेजृ	१८८	भ्वा०	,,	,,	५३	२३
भ्रेषृ	९११	,,	उभ०	,,	१४४	२२
भ्लक्ष	९२८	,,	,,	,,	१४५	१७
भ्लाशृ	८५९	,,	आ०	,,	१३४	२१
भ्लेषृ	९२०	,,	उभ०	,,	१४४	२२
मकि	९०	,,	आ०	,,	४७	२०
मख	१३४	,,	पर०	,,	५०	१२
मखि	१३५	,,	,,	,,	५०	१२
मगध	२००१	कं०	,,	,,	३८३	१५
मगि	१५०	भ्वा०	पर०	सेट्	५०	१४
मघि	११२	,,	आ०	,,	४९	२
,,	१६७	,,	पर०	,,	५२	१
मच	१७९	,,	आ०	,,	५३	६
मचि	१८१	,,	,,	,,	५३	९
मठ	३४२	,,	पर०	,,	६८	४
मठि	२७२	,,	आ०	,,	६२	१६
मडि	२८१	,,	,,	,,	६३	४
,,	३३०	,,	पर०	,,	६६	२३
,,	१६२९	चुरा०	,,	,,	३१५	४
मण	४६२	भ्वा०	,,	,,	८४	१९
मन्त्रि	१७२५	चुरा०	आ०	,,	३२०	१०
मथि	४६	भ्वा०	पर०	,,	३९	२
मथे	८८२	,,	,,	,,	१३७	१३
मद	१७५१	चुरा०	आ०	,,	३२१	१६

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
महीङ्	२०२४	कं०	आ०	सेट्	३८४	१२
मा	११००	अदा०	पर०	अनिट्	२१५	१९
माक्षि	६९०	भ्वा०	,,	सेट्	११५	४
माङ्	११२५	जुहो	आ०	अनिट्	२३३	१०
,,	११८०	दिवा०	,,	,,	२४७	१४
मान	१००९	भ्वा०	,,	सेट्	१६९	१
,,	१७५५	चुरा०	,,	,,	३२१	२०
,,	१८९२	,,	उभ०	,,	३२८	३
मार्ग	१८९५	,,	,,	,,	३२८	७
मार्जं	१६९१	,,	पर०	,,	३१८	१०
माहृ	९३०	भ्वा०	उभ०	,,	१४५	२१
मिच्छ	१३३६	तुदा०	पर०	,,	२७५	१८
मिजि	१८०२	चुरा०	उभ०	,,	३२४	१५
मिञ्	१२८८	स्वा०	,,	अनिट्	२६४	१८
मिथृ	९०२ *	भ्वा०	,,	सेट्	१४२	२०
मिदा	७६४	,,	आ०	,,	१२३	१५
,,	१२८१	दिवा०	पर०	,,	२६२	१६
मिदिं	१५७९	चुरा०	,,	,,	३११	१६
मिदृ	९०२	भ्वा०	उभ०	,,	१४२	२०
मिधृ	९०४	,,	,,	,,	१४२	२३
मिल	१४०३	तुदा०	पर०	,,	२८०	८
,,	१४६७	,,	उभ०	,,	२८८	७
मिवि	६०९	भ्वा०	पर०	,,	१००	१९
मिश	७४४	,,	,,	,,	१२०	१७
मिश्र	१९६९	चुरा०	उभ०	,,	२३३	७

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
मुष	१५६८	ऋया०	पर०	सेट्	३८०	१४
मुस	१२५८	दिवा०	,,	,,	२६१	८
मुस्त	१६७४	चुरा०	,,	,,	३१७	२०
मुह	१२३६	दिवा०	,,	,,	२५८	११
मूङ्	१००४	भ्वा०	आ०	,,	१६६	१५
मूञ्	१५२१	ऋया०	उभ०	,,	३०३	८
मूत्र	१९५७	चुरा०	,,	,,	३३१	२०
मूर्छा	२२१	भ्वा०	पर०	,,	५६	१८
मूल	५४८	,,	,,	,,	९५	१०
,,	१६४५	चुरा०	,,	,,	३१५	२०
मूष	६९७	भ्वा०	,,	,,	११५	१३
मृक्ष	६८४	,,	,,	,,	११४	२२
मृग	१९४८	चुरा०	आ०	,,	३३१	१०
मृङ्	१४४१	तुदा०	,,	अनिट्	२८३	१७
मृजू	१८९७	चुरा०	उभ०	सेट्	३२८	९
मृजूप्	११०४	अदा०	पर०	,,	२१८	२१
मृड	१३६६	तुदा०	,,	,,	२७७	१६
,,	१५५४	ऋया०	,,	,,	३०७	१०
मृण	१३७०	तुदा०	,,	,,	२७७	२०
मृदु	१५५३	ऋया०	,,	,,	३०७	९
मृधु	९०९	भ्वा०	उभ०	,,	१४३	४
मृश	१४६३	तुदा०	पर०	अनिट्	२८७	१७
मृशि	१८३२	चुरा०	उभ०	सेट्	३२५	१
मृष	१२०२	दिवा०	,,	,,	२५१	२
,,	१८९८	चुरा०	,,	,,	३२८	११

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
यत	१७८१	चुरा०	उभ०	सेट्	३२३	१५
यती	३०	भ्वा०	आ०	,,	३४	२१
यत्रि	१५७४	चुरा०	पर०	,,	३११	६
यभ	१०१७	भ्वा०	,,	अनिट्	१७२	१
यम	८५३	,,	,,	,,	१३३	२०
,,	१०२१	,,	,,	,,	१७३	१६
,,	१६६८	चुरा०	,,	सेट्	३१६	१८
यसु	१२४८	दिवा०	,,	,,	२६०	८
या	१०८७	अदा०	,,	अनिट्	२१४	९
याचृ	८९७	भ्वा०	उभ०	सेट्	१४२	१०
यु	१०७०	अदा०	पर०	,,	२०२	३
,,	१७५६	चुरा०	आ०	,,	३२१	२१
युगि	१६३	भ्वा०	पर०	,,	५१	२४
युच्छ	२२३	,,	,,	,,	५६	२१
युज	१२१५	दिवा०	आ०	अनिट्	२५३	१८
,,	१८४९	चुरा०	उभ०	सेट्	३२५	१३
युजिर्	१४८२	रुधा०	,,	अनिट्	२९१	२०
युञ्	१५१७	क्र्या०	,,	,,	३०२	२३
युतृ	३१	भ्वा०	आ०	सेट्	३५	१
युध	१२११	दिवा०	,,	अनिट्	२५३	७
युप	१२७३	,,	पर०	सेट्	२६२	४
यूष	७०१	भ्वा	,,	,,	११५	१७
योटृ	३००	,,	,,	,,	६४	११
रक्ष	६७८	,,	,,	,,	११४	१२
रख	१३८	,,	,,	,,	५०	१३

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः	पृ०	पं०
रय	४९७	भ्वा० आ० सेट्	९०	८
रवि	६१६	,, पर० ,,	१०२	१८
रस	७३४	,, ,, ,,	११८	९
,,	१९७९	चुरा० उभ० ,,	३३३	२१
रह	७५२	भ्वा० पर० ,,	१२१	११
,,	१६७०	चुरा० ,, ,,	३१६	२२
,,	१९०७	,, उभ० ,,	३२९	४
रहि	७५३	भ्वा० पर० ,,	१२१	१४
,,	१८४१	चुरा० उभ० ,,	३२५	२
रा	१०९५	अदा० पर० अनिट्	२१५	८
राखृ	१२४	भ्वा० ,, सेट्	५०	५
राघृ	११३	,, आ० ,,	४९	६
राजृ	८५६	,, उभ० ,,	१३४	१२
राध	१२१८	दिवा० पर० अनिट्	२५४	९
,,	१३००	स्वा० ,, ,,	२६८	२१
रासृ	६४६	भ्वा० आ० सेट्	१०६	४
रि	१३१४	स्वा० पर० अनिट्	२७१	१०
,,	१४४२	तुदा० ,, ,,	२८४	७
रिख	१५९	भ्वा० ,, सेट्	५१	१७
रिगि	१५७	,, ,, ,,	५०	१४
रिच	१८५९	चुरा० उभ० सेट्	३२६	१
रिचिर्	१४७९	रुधा० ,, अनिट्	२९१	१३
रिफ	१३४५	तुदा० पर० सेट्	२७६	४
रिवि	६१५	भ्वा० ,, ,,	१०२	१८

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
रुप	१२६८	दिवा०	पर०	सेट्	२६१	२४
"	१७१७	चुरा०	"	"	३१९	१९
रुह	८९३	भ्वा०	"	अनिट्	१४१	८
रूक्ष	१९५८	चुरा०	उभ०	सेट्	३३१	२१
रूप	१९८१	"	"	"	३३३	२३
रूष	६९९	भ्वा०	पर०	"	११५	१४
रेकृ	८१	भ्वा०	आ०	सेट्	४७	१०
रेखा	२०२५	कं०	पर०	"	३८४	१३
रेट्ट	८९८	भ्वा०	उभ०	"	१४२	१५
रेपृ	३८२	"	आ०	"	७२	३
रेभृ	३९६	"	"	"	७३	९
रेवृ	५२५	"	"	"	९३	३
रेषृ	६४०	"	"	"	१०५	१९
रै	९४४	"	पर०	अनिट्	१५४	१७
रोड़ृ	३६६	"	"	सेट्	७०	२
रौड़ृ	३६५	"	"	"	७०	१
लक्ष	१५७६	चुरा०	"	"	३११	१०
"	१७४२	"	आ०	"	३२१	३
लख	१४०	भ्वा०	पर०	"	५०	१३
लखि	१४१	"	"	"	५०	१३
लगि	१४७	"	"	"	५०	१३
लगे	८१०	"	"	"	१३०	२२
लघि	१०९	"	आ०	"	४८	११
"	१६८	"	पर०	"	५२	२
"	१८०५	चुरा०	उभ०	"	३२४	१६

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
ला	१०९६	अदा०	पर०	अनिट्	२१५	९
लाखृ	१२५	भ्वा०	,,	सेट्	५०	५
लाघृ	११४	,,	आ०	,,	४९	६
लाछि	२१६	,,	पर०	,,	५६	५
लाज	२४९	,,	,,	,,	६०	२३
लाजि	२५०	,,	,,	,,	३०	२३
लाट	२०२२	कं०	,,	,,	३८४	१०
लाभ	१९८४	चुरा०	उभ०	,,	३३४	१
लिख	१४०४	तुदा०	पर०	,,	२८०	९
लिंगि	१५८	भ्वा०	,,	,,	५०	१४
,,	१७८५	चुरा०	उभ०	,,	३२३	१९
लिट्	२०२१	कं०	पर०	,,	३८४	९
लिप	१४७१	तुदा०	उभ०	अनिट्	२८९	१
लिश	१२१७	दिवा०	आ०	,,	२५४	१
,,	१४५९	तुदा०	पर०	,,	२८७	४
लिह	१०५३	अदा०	उभ०	,,	१९५	७
ली	१५४१	क्र्या०	पर०	,,	३०५	१३
,,	१८५४	चुरा०	उभ०	सेट्	३२५	२०
लीङ्	११७७	दिवा०	आ०	अनिट्	२४६	२३
लुजि	१६०९	चुरा०	पर०	सेट्	३१४	१
लुञ्च	१९५	भ्वा०	,,	,,	५४	१६
लुट	३२३	,,	,,	,,	६६	१०
,,	७६९	,,	आ०	,,	१२४	१५
,,	१४२०	तुदा०	पर०	,,	२८१	१३
,,	१८००	चुरा०	उभ०	,,	३२४	१५

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
लुटि	३३८	भ्वा०	पर०	सेट्	६७	११
लुठ	३४७	,,	,,	,,	६८	१४
,,	७७०	,,	आ०	,,	१२४	१५
,,	१२६०	दिवा०	पर०	,,	२६१	१३
,,	१४२० ※	तुदा०	,,	,,	२८१	१४
लुठि	३३८ ※	भ्वा०	,,	,,	६७	१८
,,	३५३	,,	,,	,,	६९	८
,,	३५६	,,	,,	,,	६९	१२
लुण्ठ	१६०१	चुरा०	,,	,,	३१३	२२
लुथि	४५	भ्वा०	,,	,,	३९	२
लुप	१२७५	दिवा०	,,	,,	२६२	४
लुप्लृ	१४६९	तुदा०	उभ०	अनिट्	२८८	२०
लुबि	४३९	भ्वा०	पर०	सेट्	७८	४
,,	१६९९	चुरा०	,,	,,	३१८	२४
लुभ	१२७६	दिवा०	,,	,,	२६२	८
,,	१३४४	तुदा०	,,	,,	२७५	२६
लूञ्	१५२२	क्र्या०	उभ०	,,	३०३	९
लूष	६९८	भ्वा०	पर०	,,	११५	१४
,,	१६५३	चुरा०	,,	,,	३१६	१
लेख	२०२० ※	कं०	,,	,,	३८४	८
लेखा	२०२०	,,	,,	,,	३८४	८
लेट्	१९९१	,,	,,	,,	३८३	५
लेपृ	३८३	भ्वा०	आ०	,,	७२	३
लेला	१९९३	कं०	पर०	,,	३८३	८
लोकृ	७७	भ्वा०	आ०	,,	४५	२१

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
लोकृ	१८२१	चुरा०	उभ०	सेट्	३२४	१७
लोचृ	१७२	भ्वा०	आ०	,,	५२	१९
,,	१८२२	चुरा०	उभ०	,,	३२४	१७
लोट्	१९९२	कं०	पर०	,,	३८३	५
लोड़ृ	३६७	भ्वा०	,,	,,	७०	२
लोष्ट	२६७	,,	आ०	,,	६२	६
वकि	८९	,,	,,	,,	४७	१७
,,	९६	,,	,,	,,	४८	१०
वक्ष	३८३	,,	पर०	,,	११४	१७
वख	१३२	,,	,,	,,	५०	१२
वखि	१३३	,,	,,	,,	५०	१२
वगि	१४९	,,	,,	,,	५०	१४
वघि	१११	,,	आ०	,,	४९	२
वच	११०१	अदा०	पर०	अनिट्	२१५	२२
,,	१८९१	चुरा०	उभ०	सेट्	३२८	१
वज	२६१	भ्वा०	पर०	,,	६१	११
वच्चु	१९७	,,	,,	,,	५५	१
,,	१७४९	चुरा०	आ०	,,	३२१	१३
वट	३०९	भ्वा०	पर०	,,	६५	१६
,,	८०३	,,	,,	,,	१३०	८
,,	१९०६	चुरा०	उभ०	,,	३२९	३
,,	१९६७	,,	,,	,,	३३३	५
वटि	१९६७ *	,,	,,	,,	३३३	६
वठ	३४१	भ्वा०	पर०	,,	६८	१
वठि	२७१	,,	आ०	,,	६२	१५

धातवः	धातुसंख्यां	गणादयः			पृ०	पं०
वल	५०६	भ्वा०	आ०	सेट्	९२	१
वलिः	८४२ ❋	,,	पर०	,,	१३२	१७
वल्क	१६१३	चुरा०	,,	,,	३१४	६
,,	१९६४	,,	उभ०	,,	३३३	१
वल्ग	१४५	भ्वा०	पर०	,,	५०	१३
वल्गु	१९८९	कं०	,,	,,	३८३	१
वल्भ	४०४	भ्वा०	आ०	,,	७४	१
वल्ल	५०७	,,	,,	,,	९२	१
वल्ह	६५९	,,	,,	,,	१०७	२
,,	१८१५	चुरा०	उभ०	,,	३२४	१७
वश	१११८	अदा०	पर०	,,	२२८	१
वष	७१२	भ्वा०	,,	,,	११६	१
वस	१०४२	,,	,,	अनिट्	१८१	१७
,,	१०६०	अदा०	आ०	सेट्	१९९	१०
,,	१७९०	चुरा०	उभ०	,,	३२४	२
,,	१९८६ ❋	,,	पर०	,,	३३४	११
वसु	१२५२	दिवा०	,,	,,	२६०	२१
वस्क	१०२	भ्वा०	आ०	,,	४८	११
वह	१०४१	,,	उभ०	अनिट्	१८१	३
वहि	६५३	,,	आ०	सेट्	१०६	१९
वा	१०८८	अदा०	पर०	अनिट्	२१४	१८
वाक्षि	६८९	भ्वा०	,,	सेट्	११५	४
वाछि	२१७	,,	,,	,,	५६	९
वाड्	२९५	,,	आ०	,,	६३	२४
वात	१९३१	चुरा०	उभ०	,,	३३०	१२

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
वी	१०८६	अदा०	पर०	अनिट्	२१३	१३
वीर	१९५१	चुरा०	उभ०	सेट्	३३१	१२
वुक्क	१२१	भ्वा०	पर०	"	५०	२
वुस	१२५३ ※	दिवा०	"	"	२६१	२
वृ	९६९	भ्वा०	"	अनिट्	१५९	१
वृक	९३	"	आ०	सेट्	४७	२२
वृक्ष	३२४	"	"	"	६६	११
वृङ्	१५४८	क्र्या०	"	"	६०६	१६
वृजी	१०६६	अदा०	"	"	२००	११
"	१४९९	रुधा०	पर०	"	२९५	७
"	१८५५	चुरा०	उभ०	"	३२५	२१
वृञ्	१२९२	स्वा०	"	"	२६६	१
"	१८५६	चुरा०	"	"	३२५	२३
वृण	१३६९	तुदा०	पर०	"	२७७	१९
वृतु	७८२	भ्वा०	आ०	"	१२५	१०
"	१८२६	चुरा०	उभ०	"	३२४	१८
वृधु	७८३	भ्वा०	आ०	"	१३७	१६
"	१५२७	चुरा०	उभ०	"	३२४	१८
वृश	१२६४	दिवा०	पर०	"	२६१	१९
वृष	१७५०	चुरा०	आ०	"	३२१	१४
वृषु	७२७	भ्वा०	पर०	"	११८	१
वृहि	१८१३	चुरा०	उभ०	"	३२४	१६
वृहू	१३८६	तुदा०	पर०	"	२७९	५
वॄ	१५२९	क्र्या०	"	"	३०४	१०
वॄञ्	१५२५	"	उभ०	"	३०३	१७

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
वेञ्	१०४३	भ्वा०	उभ०	अनिट्	१८२	५
वेण्	९१२	"	"	सेट्	१४३	१३
वेथृ	३४	"	आ०	"	३५	४
वेद	१९९८	चुरा०	पर०	"	३८३	१२
वेनृ	९१२ *	भ्वा०	उभ०	"	१४३	१३
वेपृ	३७७	"	आ०	"	७१	२३
वेल	१९२९	चुरा०	उभ०	"	३३०	८
वेलृ	५५४	भ्वा०	पर०	"	९५	२२
वेल्ल	५५९	"	"	"	९५	२२
वेवीङ्	१११५	अदा०	आ०	"	२२६	१५
वेष्ट	२६४	भ्वा०	"	"	६२	४
वेहृ	६६३	"	"	"	१०७	११
वै	९५६	"	पर०	अनिट्	१५५	१२
व्यच	१३३२	तुदा०	"	सेट्	२७५	८
व्यथ	७८८	भ्वा०	आ०	"	१३९	७
व्यध	१२१९	दिवा०	पर०	अनिट्	२५४	१४
व्यय	९१६	भ्वा०	उभ०	सेट्	१४४	१३
"	१९८०	चुरा०	"	"	३३३	२२
व्युष	११५१	दिवा०	पर०	"	२४३	६
"	१२५३	"	"	"	२६०	२५
व्युस	१२५३ *	"	"	"	२६०	२६
व्येञ्	१०४४	भ्वा०	उभ०	अनिट्	१८४	१
व्रज	२६२	"	पर०	सेट्	६१	११
"	१६६०	चुरा०	"	"	३१६	७
व्रण	१९८५	"	उभ०	"	३३४	२

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
व्रश्चू	१३३१	तुदा०	पर०	सेट्	२७५	१
व्री	१५३९	ऋया०	"	अनिट्	३०५	९
व्रीङ्	११७८	दिवा०	आ०	"	२४७	८
व्रीड	११६४	"	पर०	सेट्	२४४	१२
व्रुड	१४३१	तुदा०	"	"	२८२	४
व्ली	१५४२	ऋया०	"	अनिट्	३०५	१८
शंसु	७४९	भ्वा०	"	सेट्	१२१	४
शक	१२२५	दिवा०	"	अनिट्	२५५	१३
शकि	८७	भ्वा०	आ०	सेट्	४७	१४
शक्लृ	१२९९	स्वा०	पर०	अनिट्	२६८	१८
शगि	१५३	भ्वा०	"	सेट्	५०	१४
शच	१७३	"	आ०	"	५२	२०
शट	३०८	"	पर०	"	६५	१३
शठ	३५०	"	"	"	६८	२३
"	१६०२	चुरा०	"	"	३१३	२३
"	१७३७	"	आ०	"	३२०	२२
"	१९०३	"	उभ०	"	३२९	१
शडि	२८८	भ्वा०	आ०	"	६३	१६
शण	८२१	"	पर०	"	१३१	७
शद्लृ	८८९	"	"	अनिट्	१३९	२१
"	१४६६	तुदा०	"	"	२८८	१
शप	१०३७	भ्वा०	उभ०	"	१७९	९
"	१२०६	दिवा०	"	"	२५२	५
शब्द	१७६०	चुरा०	"	सेट्	३२२	४
शम	८५२	भ्वा०	पर०	"	१३३	१८

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
शम	१७४१	चुरा०	आ०	सेट्	३२१	३
शमु	१२३९	दिवा०	पर०	"	२५८	२२
शम्ब	१५९४	चुरा०	"	"	३१३	११
शर्ब	४३५	भ्वा०	"	"	७७	२०
शर्व	६०५	"	"	"	१००	१२
शल	५०५	"	आ०	"	९१	२०
"	८७७	"	पर०	"	१३६	२४
शल्भ	४०३	"	आ०	"	७३	२६
शव	७४६	"	पर०	"	१२०	२१
शश	७४७	"	"	"	१२०	२३
शष	७११	"	"	"	११६	१
शसि	६४९	"	आ०	"	१०६	९
शसु	७४८	"	पर०	"	१२१	१
शाखृ	१२८	"	"	"	५०	१०
शाडृ	२९८	"	आ०	"	६४	३
शान	१०३२	"	उभ०	"	१७८	८
शासु	१०५९	अदा०	आ०	"	१९९	५
"	११ १३	"	पर०	"	२२५	१५
शिक्ष	६२५	भ्वा०	आ०	"	१०४	१४
शिखि	१६२	"	पर०	"	५१	१७
शिघि	१६९	"	"	"	५२	३
शिजि	१०६४	अदा०	आ०	"	२००	३
शिञ्	१२८७	स्वा०	उभ०	अनिट्	२६४	१७
शिट	३१२	भ्वा०	पर०	सेट्	६५	२०
शिल	१४०१	तुदा०	"	"	२८०	७

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
शिष	७०८	भ्वा०	पर०	अनिट्	११६	१
,,	१८६०	चुरा०	उभ०	सेट्	३२६	३
शिष्लृ	१४८९	रुधा०	पर०	अनिट्	२९३	१२
शीक	१८३४	चुरा०	उभ०	सेट्	३२५	१
,,	१८७४	,,	,,	,,	३२६	२१
शीकृ	७६	भ्वा०	आ०	,,	४५	१७
शीङ्	१०६९	अदा०	,,	,,	२०१	८
शीभृ	३९४	भ्वा०	,,	,,	७३	७
शील	५४२	,,	पर०	,,	९५	१
,,	१९२७	चुरा०	उभ०	,,	३३०	५
शुच	१९१	भ्वा०	पर०	,,	५४	७
शुचिर्	१२०३	दिवा०	उभ०	,,	२५१	७
शुच्य	५३१	भ्वा०	पर०	,,	९३	२०
शुठ	३५१	,,	,,	,,	६९	३
,,	१६८७	चुरा०	,,	,,	३१८	८
शुठि	३५१ ※	भ्वा०	,,	,,	६९	४
,,	३५४	,,	,,	,,	६९	११
,,	१६८८	चुरा०	,,	,,	३१८	९
शुध	१२२९	दिवा०	,,	अनिट्	२५५	२३
शुन	१३७५	तुदा०	,,	सेट्	२७८	१
शुन्ध	७५	भ्वा०	,,	,,	४५	१०
शुन्ध	१८८०	चुरा०	उभ०	,,	३२७	४
शुभ	४८६	भ्वा०	पर०	,,	७८	१३
,,	७७२	,,	आ०	,,	१२४	१८
,,	१३६०	तुदा०	पर०	,,	२७७	४

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
शुम्भ	४४७	भ्वा०	पर०	सेट्	७८	१३
,,	१३६१	तुदा०	,,	,,	२७७	४
शुल्क	१६६१	चुरा०	,,	,,	३१६	८
शुल्ब	१६५४	,,	,,	,,	३१६	२
शुष	१२२१	दिवा०	,,	अनिट्	२५४	२३
शूर	१९५०	चुरा०	आ०	सेट्	३३१	१२
शूरी	११९५	दिवा०	,,	,,	२५०	३
शूर्प	१६५५	चुरा०	पर०	,,	३१६	३
शूल	५४५	भ्वा०	,,	,,	९५	७
शूष	७००	,,	,,	,,	११५	१६
शृधु	७८४	,,	आ०	,,	१२६	१
,,	९०८	,,	उभ०	,,	१४३	४
,,	१७८०	चुरा०	,,	,,	३२३	१४
शॄ	१५२७	क्र्या०	पर०	,,	३०४	३
शेलृ	५६२	भ्वा०	,,	,,	९६	३
शेवृ	५२२	,,	आ०	,,	९३	१
शै	९५३	,,	पर०	अनिट्	१५५	८
शो	११८३	दिवा०	,,	,,	२४८	१
शोणृ	४७०	भ्वा०	,,	सेट्	८५	१३
शौटृ	२९९	,,	,,	,,	६४	८
श्च्युतिर्	४१	,,	,,	,,	३८	१९
श्मील	५३७	,,	,,	,,	९४	१८
श्यैङ्	१०००	,,	आ०	अनिट्	१६६	३
श्रकि	८५	,,	,,	सेट्	४७	११
श्रगि	१५४	,,	पर०	,,	५०	१४

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
श्रण	८२२	भ्वा०	पर०	सेट्	१३१	७
,,	१६२०	चुरा०	,,	,,	३१४	१६
श्रथ	८२३	भ्वा०	,,	,,	१३१	११
,,	१५८४	चुरा०	,,	,,	३१२	८
,,	१८७०	,,	उभ०	,,	३२६	१६
,,	१९११	,,	,,	,,	३२९	१७
श्रथि	३५	भ्वा०	आ०	,,	३५	६
श्रन्थ	१५४९	क्र्या०	पर०	,,	३०६	२३
,,	१८८५	चुरा०	उभ०	,,	३२७	१७
श्रमु	१२४२	दिवा०	पर०	,,	२५९	७
श्रा	८३५	भ्वा०	,,	अनिट्	१३२	६
,,	१०९१	अदा०	,,	,,	२१४	२४
श्रिञ्	९३२	भ्वा०	उभ०	सेट्	१४७	१६
श्रिषु	७२२	,,	पर०	,,	११७	२२
श्रीञ्	१५१३	क्र्या०	उभ०	अनिट्	३०१	१५
श्रु	९७७	भ्वा०	पर०	,,	१६१	१७
श्रै	९५४	,,	,,	,,	१५५	८
श्रोणृ	४७१	,,	,,	सेट्	८५	१४
श्लकि	८६	,,	आ०	,,	४७	११
श्लगि	१५५	,,	पर०	,,	५०	१४
श्लथ	८२४	,,	,,	,,	१३१	११
श्लाखृ	१२९	,,	,,	,,	५०	१०
श्लाघृ	११७	,,	आ०	,,	४९	९
श्लिष	१२२४	दिवा०	पर०	अनिट्	२५५	२३
,,	१६१६	चुरा०	,,	सेट्	३१४	१२

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
श्लिषु	७२३	भ्वा०	पर०	सेट्	११७	२२
श्लोकृ	७८	,,	आ०	,,	४७	१
श्लोणृ	४७२	,,	पर०	,,	८५	१५
श्वकि	९७	,,	आ०	,,	४८	१०
श्वच	१७४	,,	,,	,,	५२	२२
श्वचि	१७५	,,	,,	,,	५२	२२
श्वठ	१६०३	चुरा०	पर०	,,	३१३	२३
,,	१९०४	,,	उभ०	,,	३२९	१
श्वठि	१६०३ *	,,	पर०	,,	३१३	२४
श्वभ्र	१६६६	,,	,,	,,	३१६	१३
श्वर्त्त	१६६५	,,	,,	,,	३१६	१२
श्वल	५६९	भ्वा०	,,	,,	९६	१६
श्वल्क	१६१२	चुरा०	,,	,,	३१४	६
श्वल्ल	५७०	भ्वा०	,,	,,	९६	१६
श्वस	११०७	अदा०	,,	,,	२२१	४
श्वि	९०४७	भ्वा०	,,	,,	१८६	५
श्विता	७६३	,,	आ०	,,	१२३	११
श्विदि	१०	,,	,,	,,	३१	१५
षगे	८१३	,,	पर०	,,	१३०	२३
षघ	१३०६	स्वा०	,,	,,	२७०	८
षच	१७१	भ्वा०	आ०	,,	५२	१४
,,	१०३४	,,	उभ०	,,	१७८	२०
षञ्ज	१०२४	,,	पर०	अनिट्	१७५	४
षट	३२२	,,	,,	सेट्	६६	८
षट्ट	१६७६	चुरा०	,,	,,	३१७	२२

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
षण	४७९	भ्वा०	पर०	सेट्	८६	८
षणु	१५०२	तना०	उभ०	,,	२९७	६
षद	१८७९	चुरा०	,,	,,	३२७	२
षद्लृ	८८८	भ्वा०	पर०	अनिट्	१३९	७
,,	१४६५	तुदा०	,,	,,	२८७	२२
षप	४१३	भ्वा०	,,	सेट्	७७	१
षम	८६३	,,	,,	,,	१३५	२१
षम्ब	१५९३	चुरा०	,,	,,	३१३	१०
षर्ज	२३४	भ्वा०	,,	,,	५७	१२
षर्ब	४३६	,,	,,	,,	७७	२०
षर्व	६०६	,,	,,	,,	१००	१२
षल	५६७	,,	,,	,,	९६	१२
षस	११११	अदा०	,,	,,	२२७	११
षस्ज	२१०	भ्वा०	,,	,,	५५	१४
षह्	८८६	,,	आ०	,,	१३८	१३
,,	११६६	दिवा०	पर०	,,	२४४	१७
,,	१८५२	चुरा०	उभ०	,,	३२५	१७
षान्त्व	१६११	,,	पर०	,,	३१४	५
षिच	१४७२	तुदा०	उभ०	अनिट्	२८९	३
षिञ्	१२८६	स्वा०	,,	,,	२६४	१५
,,	१५१५	क्र्या०	,,	,,	३०२	१
षिट	३१३	भ्वा०	पर०	सेट्	६५	२०
षिध	४७	,,	,,	,,	३९	८
षिधु	१२३०	दिवा०	,,	अनिट्	२५६	१
षिधू	४८	भ्वा०	,,	सेट्	३९	१२

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
षिभु	४४४	भ्वा०	पर०	सेट्	७८	११
षिम्भु	४४५	"	"	"	७८	११
षिल	१४०२	तुदा०	"	"	२८०	७
षिवु	११४५	दिवा०	"	"	२४२	१५
षु	९७६	भ्वा०	"	अनिट्	१६१	१२
"	१०७८	अदा०	"	"	२०६	७
षुञ्	१२८५	स्वा०	उभ०	"	२६४	३
षुट्ट	१६००	चुरा०	पर०	सेट्	३१३	१८
षुर	१३७९	तुदा०	"	"	२७८	६
षुह	११६७	दिवा०	"	"	२४४	१७
षू	१४४६	तुदा०	"	"	२८४	१३
षूङ्	१०६८	अदा०	आ०	"	२००	१९
"	११७०	दिवा०	"	"	२४५	१३
षूद	२५	भ्वा०	"	"	३३	३३
"	१७६३	चुरा०	उभ०	"	३२२	१३
षृभु	४४२	भ्वा०	पर०	"	७८	७
षृम्भु	४४३	"	"	"	७८	७
षेलृ	५६३	"	"	"	९६	३
षेवृ	५१६	"	आ०	"	९२	२३
षै	९५०	"	पर०	अनिट्	१५५	१
षो	११८५	दिवा०	"	"	२४८	१०
ष्टक	८०६	भ्वा०	"	सेट्	१३०	१५
ष्टगे	८१४	"	"	"	१३०	२३
ष्टभि	३९९	"	आ०	"	७३	१२
ष्टम	८६४	"	पर०	"	१३५	१

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
ष्टिघ	१३०३	स्वा०	आ०	सेट्	२६९	१७
ष्टिपृ	३७४	भ्वा०	"	"	७०	१८
ष्टिम	११६२	दिवा०	पर०	"	२४४	९
ष्टीम	११६३	"	"	"	२४४	९
ष्टुच	१८३	भ्वा०	आ०	"	५३	१३
ष्टुञ्	१०८१	चुरा०	उभ०	अनिट्	२०७	२
ष्टुप्	१७१९	"	पर०	सेट्	३१९	२१
ष्टभु	४०७	भ्वा०	आ०	"	७४	५
ष्टेपृ	३७५	"	"	"	७०	१८
ष्टै	९५७	"	पर०	अनिट्	१५५	२०
ष्टयै	९४६	"	"	"	१५४	१८
ष्ठन	४७७	"	"	सेट्	८६	४
ष्ठल	८७०	"	"	"	१३६	१०
ष्ठा	९६३	"	"	अनिट्	१५६	२३
ष्ठिवु	५८०	"	"	सेट्	९७	१२
"	११४७	दिवा०	"	"	२४२	१७
ष्णसु	११४९	"	"	"	२४३	३
ष्णा	१०९०	अदा०	"	अनिट्	२१४	२२
ष्णिह्	१२३८	दिवा०	"	सेट्	२५८	१६
"	१६१४	चुरा०	"	"	३१४	७
ष्णु	१०७५	अदा०	"	"	२०३	१३
ष्णसु	११४८	दिवा०	"	"	२४३	१
ष्णुह्	१२३७	"	"	"	२५८	१३
ष्णै	९५८	भ्वा०	"	अनिट्	१५५	२२
ष्मिङ्	९८३	"	आ०	"	१६३	२४

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
सूर्क्ष्य	६८७	भ्वा०	पर०	सेट्	११५	३
सृ	९७०	,,	,,	अनिट्	१५९	४
,,	११३६	जुहो०	,,	,,	२३९	१९
सृक्ष	६८१	भ्वा०	,,	सेट्	११४	१५
सृज	१२१६	दिवा०	आ०	अनिट्	२५३	२१
,,	१४५२	तुदा०	पर०	,,	२८६	६
सृप्लृ	१०२०	भ्वा०	,,	,,	१७२	१३
संक	८२	,,	आ०	सेट्	४७	११
स्कन्दिर्	१०१६	,,	पर०	अनिट्	१७१	१३
स्कभि	४००	,,	आ०	सेट्	७३	१२
स्कम्भु	सौत्र	सौत्र	पर०	,,	३०२	३
स्कुञ्	१५१६	क्र्या०	उभ०	अनिट्	३०२	२
स्कुदि	९	भ्वा०	आ०	सेट्	३१	७
स्कुम्भु	सौत्र	सौत्र	पर०	,,	३०२	३
स्खद	७९२	भ्वा०	आ०	,,	१२८	१९
स्खदिः	८५४	,,	पर०	,,	१३३	२२
स्खल	५६४	,,	,,	,,	९६	७
स्खलिः	८४२ ※	,,	,,	,,	१३२	१७
स्तन	१९०८	चुरा०	उभ०	,,	३२९	५
स्तम्भु	सौत्र	सौत्र	पर०	,,	३०२	३
स्तुम्भु	,,	,,	,,	,,	३०२	३
स्तृञ्	१२९०	स्वा०	उभ०	अनिट्	२६५	१२
स्तृहू	१३८८	तुदा०	पर०	सेट्	२७९	१२
स्तॄञ्	१५२३	क्र्या०	उभ०	,,	३०३	११
स्तेन	१९८५	चुरा०	,,	,,	३३१	५

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
स्फुर्च्छा	२२२	भ्वा०	पर०	सेट्	५६	१९
स्फुल	१४३०	तुदा०	,,	,,	२८२	३
स्फूर्जा	२४४	भ्वा०	,,	,,	५९	२२
स्मिङ्	१६१५ *	चुरा०	आ०	,,	३१४	१०
स्मिट	१६१५	,,	पर०	,,	३१४	९
स्मील	५३८	भ्वा०	,,	,,	९४	१८
स्मृ	८३२	,,	,,	अनिट्	१३२	१
,,	९६८	,,	,,	,,	१५८	२२
,,	१२९७ *	स्वा०	,,	,,	२६८	७
स्यन्दू	७८५	भ्वा०	आ०	सेट्	१२६	८
स्यम	१७३९	चुरा०	,,	,,	३२१	१
स्यमु	८६०	भ्वा०	पर०	,,	१३५	१२
स्रंसु	७७६	,,	आ०	,,	१२५	१
स्रकि	८४	,,	,,	,,	४७	११
स्रम्भु	४०६	,,	,,	,,	७४	३
,,	७८१	,,	,,	,,	१२५	९
स्रिवु	११४६	दिवा०	पर०	,,	२४२	१६
स्रु	९७५	भ्वा०	,,	अनिट्	१६१	५
स्रेकृ	८३	,,	आ०	सेट्	४७	११
स्वन	८४३	,,	पर०	,,	१३२	२२
,,	८६१	,,	,,	,,	१३५	१२
स्वर	१९१२	चुरा०	उभ०	,,	३२९	११
स्वर्द	१९	भ्वा०	आ०	,,	३२	२५
स्वाद	२८	,,	,,	,,	३४	१७
,,	१८४८ *	चुरा०	उभ०	,,	३२५	७

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः			पृ०	पं०
स्वृ	९६७	भ्वा०	पर०	अनिट्	१५८	७
हट	३२१	,,	,,	सेट्	६६	६
हठ	३४५	,,	,,	,,	६८	१०
हद	१०१४	,,	आ०	अनिट्	१७१	१
हन	१०४९	अदा०	पर०	,,	१९१	३
हम्म	४८२	भ्वा०	,,	सेट्	८७	३
हय	५३०	,,	,,	,,	९३	१७
हर्य	५३३	,,	,,	,,	९३	२२
हल	८७१	,,	,,	,,	१३६	११
हसे	७४२	,,	,,	,,	१२०	११
हाक्	११२७	जुहो०	,,	अनिट्	२३४	४
हाङ्	११२६	,,	आ०	,,	२३३	२०
हि	१२९५	स्वा०	पर०	,,	२६८	१
हिक्क	८९५	भ्वा०	उभ०	सेट्	१४२	१
हिट	३२६ *	,,	पर०	,,	६६	१५
हिडि	२७७	,,	आ०	,,	६२	२२
हिल	१४००	तुदा०	पर०	,,	२८०	६
हिवि	६११	भ्वा०	,,	,,	१००	२२
हिष्क	१७३१ *	चुरा०	आ०	,,	३२०	१५
हिसि	१४९४	रुधा०	पर०	,,	२९४	५
,,	१८७७	चुरा०	उभ०	,,	३२६	२५
हु	११२०	जुहो०	पर०	अनिट्	२२९	३
हुडि	२७८	भ्वा०	आ०	सेट्	६३	१
,,	२८६	,,	,,	,,	६३	११
हुडृ	३६२	,,	पर०	,,	६९	२२

धातवः	धातुसंख्या	गणादयः	पृ०	पं०
हूर्छा	२२०	भ्वा० पर० सेट्	५६	१४
हूल	८७८	,, ,, ,,	१३६	२४
हुड़ृ	३६३	जुहो० ,, ,,	६९	२२
हृ	११३४	क्र० ,, अनिट्	२३९	८
हृणीङ्	२०२३	भ्वा० आ० सेट्	३८४	११
हृत्र्	९३४	दिवा० उभ० अनिट्	१४९	१५
हृप	१२६७	भ्वा० पर० सेट्	२६१	२३
हृपु	७३०	,, ,, ,,	११८	८
हेठ	२७५	क्र्या० आ० ,,	६२	२०
,,	१५७०	भ्वा० पर० ,,	३०९	१
हेड	८०२	,, ,, ,,	१३०	४
हेड़ृ	७०३	,, आ० ,,	६३	२२
हेपृ	३८४	,, ,, ,,	७२	४
हेषृ	६४१	,, ,, ,,	१०५	१९
होड़ृ	२९४	,, ,, ,,	६३	२२
,,	३६४	,, पर० ,,	६९	२२
ह्नुङ्	१११९	अदा० आ० अनिट्	२२८	११
ह्मल	८३१	भ्वा० पर० सेट्	१३१	२४
,,	८४८ *	,, ,, ,,	१३३	७
ह्लगे	८११	,, ,, ,,	१३०	२३
ह्लस	७३२	,, ,, ,,	११८	९
ह्लाद	२६	,, आ० ,,	३४	१०
ह्ली	११२२	जुहो० पर० अनिट्	२३०	२३
ह्लीच्छ	२१९	भ्वा० ,, सेट्	५६	१३
ह्लेषृ	६४२	,, आ० ,,	१०५	१९

॥ इत्याख्यातिकस्य धातूनामकारादिक्रमेण सूचीपत्रम् ॥

* ओ३म् *

अथ आख्यातिकः

—०—

१—भूसत्तायाम् (होना), उदात्त, उदात्तेत् परस्मैभाषः—

यह धातु परस्मैपदी है। भू शब्द सत्ता (होने) अर्थ का वाचक है। इस अर्थ को कहने के योग्य होने से भू शब्द समर्थ है। जो इससे किसी अर्थ का बोध न होता तो असमर्थ समझा जाता, फिर असमर्थ से कोई कार्य्य भी नहीं हो सकता। इस विषय की परिभाषा (समर्थः पदविधिः) सन्धिविषय में लिख चुके हैं; और शब्द का लक्षण भी नामिक की भूमिका में लिखा है।

भू शब्द सत्ता अर्थ के साथ समर्थ हुआ तो इसकी धातुसंज्ञा होकर कृत् प्रत्ययों की उत्पत्ति आदि कार्य होते हैं।

१—भूवादयो धातवः ॥१।३।१*॥

यह सूत्र प्रातिपदिक संज्ञा का अपवाद है क्योंकि सामान्य अर्थवान् शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा कही है, उसमें यह धातु संज्ञा विशेष है भू शब्द से लेकर जो दशगणों में शब्द पढ़े हैं, उन सबकी धातु संज्ञा होती है।

इससे 'भू' शब्द की धातु संज्ञा होकर—

२—धातोः ॥३।१।९१॥

सब धातुसंज्ञक शब्दों से तव्यत् आदि प्रत्यय होते हैं।

---

* इन तीनों अङ्कों में से पहिले से अध्याय, दूसरे से पाद और तीसरे से सूत्रसंख्या समझनी चाहिये।

३—कृदतिङ् ।।३।१।९३।।

धातु से विहित जो [तिङ् भिन्न] प्रत्यय हैं, वे कृत्संज्ञक हों।

यहां तिङन्त की अपेक्षा में—

४—वर्त्तमाने लट् ।।३।२।१२३।।

आरम्भ से लेकर जब तक क्रिया की समाप्ति न हो तब तक वर्त्तमान काल समझना चाहिये। उस वर्त्तमान अर्थ के वाचक धातुओं से 'लट्' प्रत्यय हो।

अब ये कृत्संज्ञक लट् आदि प्रत्यय भाव, कर्म्म और कर्त्ता इन तीन अर्थों में सामान्य करके [प्राप्त] होते हैं। उनका विभाग—

५—लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ।।३।४।६९।।

सकर्म्मक धातुओं से कर्म्म और कर्त्ता अर्थ में तथा अकर्म्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता अर्थ में लकार होते हैं।

यहां 'भू' धातु से कर्त्ता अर्थ में 'लट्' आया। 'भू+लट्' इस अवस्था में—

६—हलन्त्यम् ।।१।३।३।।

उपदेश में धातु आदि के समुदाय का जो अन्त्य वर्ण है, वह इत्संज्ञक होवे।

७—तस्य लोपः ।।१।३।९।।

इत्संज्ञा वाले वर्ण का लोप हो जाता है।

यहां टकार की इत्संज्ञा और लोप होकर, प्रत्यय के आदि लकार की भी इत्संज्ञा (लशक्वतद्धिते) [२०वें] सूत्र से प्राप्त है सो अगले सूत्र में लकार के स्थान में आदेश विधानरूप ज्ञापक से नहीं होती।

८—लस्य ।।३।४।७७।।

लकार के स्थान में वक्ष्यमाण आदेश हों।

९–तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ॥३।४।७८॥

तिप्, तस्, झि; सिप्, थस्, थ; मिप्, वस्, मस्; त, आताम्, झ; थास्, आथाम्, ध्वम्; इट्, वहि, महिङ्। ये अठारह (१८) आदेश लकार के स्थान में होते हैं।

१०–लः परस्मैपदम् ॥१।४।९९॥

लकार के स्थान में जो अठारह आदेश हैं, वे परस्मैपदसंज्ञक हों।

इसमें सामान्य करके विधान है परन्तु उसके अपवाद (तङाना०) [९४वें] सूत्र से तङ् आदि नव (९) की आत्मनेपद संज्ञा की है। इससे तिप् पर्य्यन्त नव (९) की ही परस्मैपद संज्ञा जानो।

अब 'भू' धातु से परस्मैपद हों वा आत्मनेपद, इस सन्देह की निवृत्ति के लिये—

११–शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥१।३।७८॥

जिन धातुओं से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय कहे हैं, उनको छोड़ के शेष धातुओं से परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय हों।

यहाँ 'भू' से तिप् आदि नव (९) प्रत्यय प्राप्त हुए।

१२–तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ॥१।४।१०१॥

तिङ्सम्बन्धी जो तिप् आदि प्रत्यय हैं, वे यथाक्रम से तीन-तीन प्रथम, मध्यम और उत्तमसंज्ञक हों। अर्थात् तिप्, तस्, झि प्रथम; सिप्, थस्, थ मध्यम और मिप्, वस्, मस्, उत्तम पुरुष जानो।

१३–तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ॥१।४।१०२॥

वे ही तिङ्सम्बन्धी तिप् आदि तीन-तीन समुदाय प्रत्येक एकवचन, द्विवचन और बहुवचनसंज्ञक हों। अर्थात् तिप् एकवचन, तस् द्विवचन और झि बहुवचन। इसी प्रकार सिप् आदि में जानो।

१४–युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ।।१।४।१०५।।

तिङन्तक्रिया का अर्थं जिस युष्मद्पदवाच्य में रहे, तो उस युष्मत् शब्द उपपद के रहते हुए, युष्मद् शब्द का प्रयोग हो वा न हो, तो भी धातु से मध्यम पुरुष हो।

१५–अस्मद्युत्तमः ।।१।४।१०७।।

तिङन्त के साथ एकाधिकरण अस्मत् शब्द उपपद हो, उसका प्रयोग हो वा न हो, तो भी धातु से उत्तमपुरुष हो।

१६–शेषे प्रथमः ।।१।४।१०८।।

युष्मद् और अस्मद् से भिन्न तिङन्त के साथ एकाधिकरण नाम उपपद हो, उसका प्रयोग हो वा न हो, तो भी धातु से प्रथमपुरुष हो।

यहां शेष कर्त्ता की विवक्षा में लकार के स्थान में जो तिबादि आदेश हैं, उनमें से प्रथम पुरुष का एकवचन 'तिप्' आया। 'भू+तिप्' इस अवस्था में—

१७–यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ।।१।४।१३।।

जिस धातु वा प्रातिपदिक से जिस प्रत्यय का विधान हो, वही प्रत्यय परे हो तो तदादि शब्दरूप अर्थात् जिससे परे जो प्रत्यय करें उसी प्रत्यय के परे पूर्व जो शब्दरूप है सो अङ्गसंज्ञक हो और उस प्रत्यय का आदि अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय के बीच में जो विकरण प्रत्यय है, उसकी भी अङ्ग संज्ञा हो जावे।

१८–तिङ्शित् सार्वधातुकम् ।।३।४।११३।।

धातु के अधिकारमात्र में कहे जो तिङ् और शित् प्रत्यय, वे सार्वधातुकसंज्ञक हों। इससे तिप् आदि की सार्वधातुक संज्ञा हुई।

१९–कर्त्तरि शप् ।।३।१।६८।।

कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे हो, तो धातु से परे शप् प्रत्यय हो।

इस से भू और तिप् के बीच में शप् प्रत्यय हो कर, 'भू+शप्+तिप्' इस अवस्था में दोनों हल् पकारों की (६) से इत्संज्ञा होकर (७) से लोप होकर 'भू+श+ति' रहा।

२०–लशक्वतद्धिते ॥१।३।८॥

[तद्धित को छोड़कर] प्रत्यय के आदि में जो लकार, शकार और कवर्ग उनकी इत्संज्ञा होवे।

इस से 'श्' की इत्संज्ञा होकर (७) से लोप हो गया। 'भू+अ+ति' इस अवस्था में—

२१–सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ॥७।३।८४॥

गुण वृद्धि आदि संज्ञा और [इनका] इक् ही के स्थान में नियम होना, सन्धिविषय में लिख चुके हैं। सार्वधातुक और आर्द्धधातुकसंज्ञक प्रत्यय परे हों तो इगन्त अङ्ग के स्थान में गुण आदेश हो।

इससे उकार का अन्तरतम ओकार गुण होकर 'भो+अ+ति' इस अवस्था में—

२२–एचोऽयवायावः ॥६।१।७८॥

एच् प्रत्याहार के स्थान में अय्, अव्, आय्, आव्, ये चार आदेश यथासंख्य करके हों। [इससे] ओकार को 'अव्' होकर=भवति।

द्विवचन की विवक्षा में 'भव+तस्'। तिङ् प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा नामिक में हो चुकी है। इसका फल—

२३–न विभक्तौ तुस्माः ॥१।३।४॥

यहां तस् के सकार की इत् संज्ञा प्राप्त है, उसका निषेध करते हैं। विभक्ति में जो तवर्ग, सकार और मकार वे इत्संज्ञक न हों।

तिङन्त की पदसंज्ञा भी कर चुके हैं, नामिक में—

२४–ससजुषो रुः ॥८।२।६६॥

पदान्त सकार और सजुष् शब्द के अन्त वर्ण को रु आदेश हो।

३०—लिट् च ॥३।४।११५॥

यह सूत्र सार्वधातुक संज्ञा का अपवाद है। लिट् के स्थान में जो तिप् आदि आदेश हैं, वे आर्द्धधातुकसंज्ञक हों।

यहां एक संज्ञा का अधिकार तो है ही नहीं, इस कारण पक्ष में सार्वधातुक संज्ञा भी प्राप्त है, इसलिये एव शब्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये कि आर्द्धधातुक संज्ञा ही हो, अन्य नहीं।

३१—परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ॥३।४।८२॥

धातु से परे लिट् लकार के स्थान में परस्मैपदसंज्ञक जो तिप् आदि आदेश, उनको णल् आदि नव आदेश यथासंख्य करके हो जावें। 'भू+णल्'।

३२—चुटू ॥१।३।७॥

प्रत्यय के आदि जो चवर्ग, टवर्ग उनकी इत्संज्ञा हो।

यहां णकार लकार की इत्संज्ञा और लोप होकर 'भू+अ' इस अवस्था में द्विर्वचन, यणादेश गुण, वृद्धि आदि कार्य्य भी प्राप्त हैं, उन सबका बाधक वुक् होता है—

३३—भुवो वुग् लुङ्लिटोः ॥६।४।८८॥

अजादि लुङ् और लिट् लकार परे हों, तो भू अङ्ग को वुक् का आगम होता है। उक्मात्र की इत्संज्ञा होकर 'भूव्+अ'।

३४—एकाचो द्वे प्रथमस्य ॥६।१।१॥

यह अधिकारसूत्र है। धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होवे।

३५—अजादेर्द्वितीयस्य ॥६।१।२॥

यहां भी एकाच् की अनुवृत्ति आती है। अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे।

३६—लिटि धातोरनभ्यासस्य ॥६।१।८॥

लिट् लकार परे हो, तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्विर्वचन होवे।

इस में विशेष यह है कि जहां धातुओं में अनेक अच् होते हैं, वहां प्रथम एकाच् और द्वितीय एकाच् अवयव को कहना बन सकता है और जिन में एक ही अच् है, वहां उसी एकाच् अवयव को द्वित्व हो जाता है।

यहां भी एकाच् अवयव 'भूव्' मात्र को द्विर्वचन होकर 'भूव् × भूव् × अ' यहां—

३७—पूर्वोऽभ्यासः ॥६।१।४॥

द्विर्वचन का जो पूर्वभाग है, वह अभ्यास संज्ञक हो।

[इससे] प्रथम 'भूव्' की अभ्याससंज्ञा होकर—

३८—हलादिः शेषः ॥७।४।६०॥

अभ्यास का आदि हल् शेष रहे, अन्य हलों का लोप हो जावे।

इससे प्रथम 'भूव्' के व् का लोप होके 'भू+भूव्+अ'।

३९—ह्रस्वः ॥७।४।५९॥

अभ्यास के अच् को ह्रस्व आदेश हो। [इससे] ह्रस्व उकार हुआ।

४०—भवतेरः ॥७।४।७३॥

लिट् लकार परे हो, तो भू धातु के अभ्यास को अकार आदेश हो।

ह्रस्व उकार को प्रमाणकृत आन्तर्य्य से ह्रस्व अकार होकर 'भ+भूव्+अ'।

४१—अभ्यासे चर्च ॥८।४।५४॥

अभ्यास में जो झल् उनको चर् और जश् आदेश हों।
यहां भकार को बकार हो जाता है।

४२—असिद्धवदत्राभात् ॥६।४।२२॥

इस सूत्र से लेकर इस पाद की समाप्ति पर्य्यन्त एक प्रयोग में दो [समानाश्रय] कार्य्य प्राप्त हों, तो पर कार्य को असिद्ध मानकर पूर्वविहित कार्य हो जावे।

इससे वुक् के आगम को असिद्ध मानकर उवङ् आदेश प्राप्त होता है। इसलिये—

४३—वा०—वुग्युटावुवङ्यणोः कर्त्तव्ये सिद्धौ वक्तव्यौ ॥ ६।४।२२॥

उवङ् और यणादेश करने में वुक् और युट् का आगम यथासंख्य करके असिद्ध न माने जावें, किन्तु सिद्ध ही समझने चाहियें। इस से उवङ् नहीं होता=बभूव।

'बभूव+अतुस्' यहां द्विर्वचन और वुगागम से प्रथम ही गुण प्राप्त है—

४४—इन्धिभवतिभ्यां च ॥१।२।६॥

इन्धि और भू धातु से परे जो अपित् लिट् वह कित्संज्ञक हो।

तिप् सिप् मिप् के स्थान में जो आदेश होते हैं वे पित्, अन्य सब अपित् समझे जाते हैं। पित् विषय में गुण वृद्धि के बाधक वुक् को अवकाश मिल जाने से, यहां अपित् विषय में परत्व से गुण प्राप्त है।

४५—क्ङिति च ॥१।१।५॥

कित्, गित् और ङित् प्रत्यय परे हों, तो इक् के स्थान में गुणवृद्धि न हो। इससे गुण का निषेध होकर बभूव्+अतुस्=बभूवतुः। बभूव्+उस्=बभूवुः। बभूव्+थल्—

४६—आर्द्धधातुकस्येड् वलादेः ॥७।२।३५॥

अङ्ग से परे जो वलादि आर्द्धधातुक उसको इट् का आगम हो।

[इससे] थल् आदि में इट् होकर=बभूविथ।

बभूव्+अथुस्=बभूवथुः। बभूव्+अ=बभूव। बभूव्+णल्=बभूव। बभूव्+इट्+व=बभूविव। बभूव्+इट्+म+बभूविम।

इसके पश्चात् क्रम से प्राप्त 'लुट्'—

४७—अनद्यतने लुट् ॥३।३।१५॥

जिस समय से विचार करने लगें, तब से अर्द्धरात्रिपर्य्यन्त अद्यतन और अर्द्धरात्रि के पश्चात् हुए कार्य्य को अनद्यतन कहते हैं। सो भूत,

भविष्यत् दोनों के साथ सम्बन्ध रखता है। भविष्यत् अनद्यतन के अर्थ के वाचक धातु से लुट् लकार होवे। 'भू+लुट्'।

४८—स्यतासी लृलुटोः ॥३।१।३३॥

यहां किसी अनुबन्धविशेष की सूचना नहीं की, इससे (लृ) करके लृट् और लृङ् दोनों का बोध होता है। और यह सूत्र शप् आदि विकरण प्रत्ययों का अपवाद है। [लृ और] लुट् लकार परे हो, तो धातु से स्य और तासि प्रत्यय यथासंख्य करके हों।

यहां लुट् के परे तासि हुआ। भू+तासि+लुट्—

४९—आर्द्धधातुकं शेषः ॥३।४।११४॥

धात्वधिकार में कहे तिङ् और शित् प्रत्ययों से भिन्न जो प्रत्यय, वे आर्द्धधातुकसंज्ञक होते हैं।

इससे तासि प्रत्यय की आर्द्धधातुक संज्ञा और लुट् के स्थान में तिबादि आदेश होकर 'भू+तासि+तिप्' यहां तासि में अनुनासिक इकार की इत्संज्ञा और लोप होकर—

५०—लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥२।४।८५॥

लुट् लकार के प्रथम पुरुष को डा, रौ और रस् आदेश यथासंख्य करके हों।

तिप् के स्थान में डा आदेश होकर, ड्कार की इत् संज्ञा होने से, तास् प्रत्यय के आस् मात्र का लोप होकर 'भू+इत्+आ' यहां—

५१—पुगन्तलघूपधस्य च ॥७।३।८६॥

सार्वधातुक और आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों, तो पुगन्त और लघु वर्ण जिसकी उपधा में हो उसको गुण हो।

इससे इट् के आगम को लघूपध मान कर गुण प्राप्त हुआ। इसलिये—

५२—दीधीवेवीटाम् ॥१।१।६॥

दीधी और वेवी धातु तथा इट् का आगम इनको गुण वृद्धि न हों। फिर आर्धधातुक तास् के परे 'भू' को गुण और अवादेश होकर=भविता।

५३–रि च ॥७।४।५१॥

रेफादि प्रत्यय परे हो, तो तास् और अस्ति के सकार का लोप हो जावे।

भवितास्+रौ=भवितारौ। भवितास्+रस्=भवितारः।

५४–तासस्त्योर्लोपः ॥७।४।५०॥

सकारादि प्रत्यय परे हो, तो तास् और अस्ति के सकार का लोप हो जावे। जैसे—भवितास् सिप्=भवितासि।

भवितास्+थस्=भवितास्थः। भवितास्+थ=भवितास्थ। भवितास्+मिप्=भवितास्मि। भवितास्+मिप्=भवितास्मि। भवितास्+वस्=भवितास्वः। भवितास्+मस्=भवितास्मः।

५५–लृट् शेषे च ॥३।३।१३॥

क्रियार्थ क्रिया उपपद हो वा न हो, तो भी भविष्यत् अर्थ के वाचक धातु से 'लृट्' लकार होवे।

'भू+लृट्' यहां (४८) से स्य प्रत्यय, गुण, तिबादि आदेश, स्य प्रत्यय को इट् का आगम और अवादेश होकर—

५६–आदेशप्रत्यययोः ॥८।३।५९॥

इण् और कवर्ग से परे जो आदेश और प्रत्यय का अवयव सकार उस को मूर्द्धन्य आदेश हो जावे।

जैसे—भवि+स्य+तिप्=भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः॥

५७–लिङर्थे लेट् ॥३।४।७॥

यहां छन्द की अनुवृत्ति आती है। जो विधि आदि और हेतु हेतुमान् लिङ् लकार के अर्थ हैं, उनमें धातुमात्र से वैदिकप्रयोगविषयक 'लेट्' लकार होवे।

यहां भू धातु से लेट्, तिबादि आदेश होकर 'भू+तिप्' इस अवस्था में शप् विकरण प्राप्त है।

५८–सिब् बहुलं लेटि ।।३।१।३४।।

धातु से सिप् प्रत्यय हो, लेट् लकार परे हो तो, बहुल करके ।

विकल्प का पर्य्यायवाची 'बहुल' ग्रहण समझना चाहिये । इसी से पक्ष में शप् भी होता है । 'सिप्' में से इप् मात्र की इत् संज्ञा हो जाती है ।

५९–वा० सिब् बहुलं णिद्वक्तव्यः ॥

सिप् प्रत्यय बहुल = विकल्प से णित् समझना चाहिये ।

सिप् को आर्धधातुक मानकर इडागम हो जाता है ।

६०–अचो ञ्णिति ॥७।२।११५॥

अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो ञित्, णित् प्रत्यय परे हों तो ।

ऊकार को औ वृद्धि होकर 'भ्+औ+इ+स्+ति' यहां—

६१–लेटोऽडाटौ ।।३।४।९४।।

लेट् लकार को अट् और आट् के आगम पर्य्याय से हों, सो पित् हों । अर्थात् अपित् प्रत्यय से पृथक् पित्त्व धर्म आगम में समझा जावे । टकार की इत् संज्ञा होकर 'भावि+स्+अ+पित्' = भाविषति; 'भाविष्+आट्+ति = भाविषाति ।

६२–इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ।।३।४।९७।।

लेट् लकार सम्बन्धी परस्मैपदविषयक इकार का लोप विकल्प करके हो ।

अवसान में झलों के स्थान में चर् आदेश विकल्प करके होते हैं । भाविषत्; भाविषात्; भाविषद्; भाविषाद् ।

जिस पक्ष में णित् संज्ञा के न हो से वृद्धि नहीं होती, वहां भविषति; भविषाति; भविषत्; भविषात्; भविषद्; भविषाद् ।

और सिप् प्रत्यय के विकल्प से जिस पक्ष में शप् होता है, वहां भवति; भवाति; भवत्; भवात्; भवद्; भवाद् ।

तस्—अन्य सब कार्य्य पूर्व के समान। भाविषतः; भाविषातः; भविषतः; भविषातः; भवतः; भवातः।

झि—भाविषन्ति; भाविषान्ति; इकार लोप होने के पश्चात् संयोगान्त तकार का लोप होकर=भाविषन्; भाविषान्; भविषन्ति; भविषान्ति; भविषन्; भविषान्, भवन्ति; भवान्ति; भवन्; भवान्।

सिप्—भाविषसि; भाविषासि; यहां इकार लोप के पश्चात् सकार को विसर्जनीय होजाते हैं=भाविषः; भाविषाः; भविषसि; भविषासि; भविषः; भविषाः; भवसि; भवासि; भवः; भवाः।

थस्—भाविषथः; भाविषाथः; भविषथः; भविषाथः; भवथः; भवाथः।

मिप्—यहां अट् पक्ष में भी एकादेश को पूर्व का अन्त अवयव मानने से अदन्त अङ्ग को दीर्घ होकर एक ही प्रकार के प्रयोग होते हैं। भाविषामि २। भाविषाम् २। भविषामि २। भविषाम् २। भवामि २। भवाम् २।

वस् मस्—

६३–स उत्तमस्य ॥३।४।६८॥

लेट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प करके लोप होवे।

भाविषाव २; भाविषावः २; भविषाव २; भविषावः २; भवाव २; भवावः २। भाविषाम २; भाविषामः २; भविषाम २; भविषामः २; भवाम २; भवामः २॥

६४–लोट् च ॥३।३।१६२॥

विधि आदि अर्थों में धातु से 'लोट्' लकार हो और—

६५–आशिषि लिङ्लोटौ ॥३।३।१७३॥

आशीर्वाद अर्थ में भी लिङ् और लोट् लकार हो। 'भव+ति' इस अवस्था में—

६६–एरुः ॥३।४।८६॥

लोट् लकार के इकार को उकार आदेश हो जावे। भवतु।

६७–तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ॥७।१।३५॥

आशीर्वाद अर्थ में जो तु और हि उनको तातङ् आदेश विकल्प करके होवे।

यहां तात् आदेश के कहने और तृतीयाध्याय के चतुर्थ पाद में (एरुः) सूत्र के आगे पढ़ने से लोट् के अन्त्य इकार को उ आदेश विकल्प करके हो ही जाता, फिर इतने गौरव और अन्त्य पढ़ने से ज्ञापक होता है कि तातङ् आदेश ङित्करण अन्यत्र अल् के स्थान में होने के लिये नहीं, किन्तु गुण वृद्धि के निषेध और सम्प्रसारण आदि कार्य्य होने के लिये है। अङ्मात्र की इत्संज्ञा होकर=भवतात्॥

लोट् लकार को लङ्वत् कार्य हो।

६८–लोटो लङ्वत् ॥३।४।८५॥

लङ्वत् शब्द में वतिप्रत्यय षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियों के स्थान में हो सकता है। सो यहां षष्ठ्यर्थ में वति समझना चाहिये, सप्तम्यर्थ में नहीं। क्योंकि लङ् के परे जो अट् का आगम आदि कार्य्य होते हैं, वे लोट् के परे न हों।

६९–तस्थस्थमिपान्तान्तन्तामः ॥३।४।१०१॥

ङित् लकार के जो तस्, थस्, थ और मिप् उनको ताम्, तम्, त और अम् आदेश यथासंख्य करके हों। जैसे—भवताम्।

'भव+झि' (६६) से उ होकर=भवन्तु। 'भव+सिप्—

७०–सेर्ह्यपिच्च ।३।४।८७॥

लोट् लकार का जो सि उसको अपित् हि आदेश होवे।

पित्वधर्म का अतिदेश आदेश में प्राप्त है, इसलिये अपित् कहा है। (६७) से तातङ् होकर=भवतात्। पक्ष में—

७१–अतो हेः ॥६।४।१०५॥

अदन्त अङ्ग से परे जो हि उसका लुक् हो जावे । भव ।
भव+थस्=भवतम् । भव+थ=भवत ।

७२–मेर्निः ॥३।४।८९॥

लोट् लकार का जो मि उसको नि आदेश हो ।

यहां इकार उच्चारणरूप ज्ञापक से ही उकारादेश नहीं होता है । 'भव+मिप्=भवानि ।

७३–नित्यं ङितः ॥३।४।९९॥

ङित् लकार के उत्तम पुरुष का जो सकार उसका. नित्य ही लोप होवे । भवाव । भवाम ॥

७४–अनद्यतने लङ् ॥३।२।१११॥

अनद्यतन भूत अर्थ के वाचक धातु से 'लङ्' लकार होवे ।

७५–लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ॥६।४।७१॥

लुङ्, लङ् और लृङ् लकार परे हों, तो धातु को उदात्त अट् का आगम हो ।[यह] भू के आदि में होता है ।

७६–इतश्च ॥३।४।१००॥

ङित् लकार का जो परस्मैपदविषयक इकार उसका लोप होवे । अभवत् ।

अभव+तस्=अभवताम् (६९) से ताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभव+मिप्=अभवम् (६९) से अम् और पररूप एकादेश होता है । अभवाव । अभवाम ॥

७७–विधिनिमन्त्रणाऽमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ॥ ३।३।१६१

विधि=प्रेरणा, निमन्त्रण=किसी से प्रतिज्ञा करना, आमन्त्रण=यथेष्ट आचरण, अधीष्ट=सत्कारपूर्वक ठहराना, सम्प्रश्न=सम्यक् पूछना, प्रार्थना=मांगना इन अर्थों में धातु से 'लिङ्' लकार होवे । भव+तिप्—

७८–यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ।।३।४।१०३।।

यह सूत्र सीयुट् का अपवाद है। परस्मैपदविषयक लिङ् लकार को यासुट् का आगम हो, सो उदात्त और ङित्संज्ञक हो जावे।

इस आगम को उदात्तविधान करने से ज्ञापक होता है कि अन्य आगम जिनमें स्वर विशेष का विधान न किया हो, वे सब अनुदात्त होते हैं। और लकार के स्थान में जो तिप् आदि आदेश होते हैं, वे ङित् नहीं होते। क्योंकि उनके ङित् होने से उनको हुआ आगम भी ङित् हो ही जाता, फिर ङित् कहने से यही ज्ञापक होता है कि यहाँ स्थानिवद्भाव नहीं होता।

७९–सुट् तिथोः ।।३।४।१०७।।

लिङ् लकार के जो तकार थकार, उनको सुट् का आगम हो।

सुट् का आगम यासुट् का बाधक इसलिये नहीं होता कि लिङ् को यासुट् और तकार थकार को सुट् कहने से विषयभेद हो जाता है। और एक विषय में उत्सर्गापवाद की प्रवृत्ति होती है।

८०–लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ।।७।२।७९।।

सार्वधातुकविषयक अनन्त्य सकार का लोप हो जावे।

इससे यासुट् और सुट् दोनों के सकारों का लोप हो जाता है। और आशिष् लिङ् में परस्मैपद और आत्मनेपद में आर्धधातुक विषय के होने से ये सकार बने रहते हैं। 'भव+या+तिप्'—

८१–अतो येयः ।।७।२।८०।।

अदन्त अङ्ग से परे जो सार्वधातुक का अवयव या उसको इय् आदेश होवे।

(लोपो व्योर्वलि) सूत्र से हल् यकार का लोप होकर 'भव+इ+तिप्'=भवेत्। भव+इ+तस्=भवेताम्।

८२–झेर्जुस् ॥३।४।१०८॥

लिङ् लकार का जो झि उसको जुस् आदेश होवे। जकार की इत्संज्ञा [होकर]—

८३–उस्यपदान्तात् ॥६।१।९६॥

अपदान्त अवर्ण से उस् परे हो, तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होजावे।

इसकी प्राप्ति तो है, परन्तु परत्व और नित्यत्व से इय् आदेश होजाता है, फिर प्राप्ति नहीं रहती। इस सूत्र का काम अदादि गण में पड़ेगा कि जहां इय् आदेश की प्राप्ति नहीं होती। 'भव+इय्+उस्'=भवेयुः।

भव+इय्+सिप्=भवेः। भव+इय्+थस्=भवेतम्। भव+इय्+थ=भवेत। भव+इय्+मिप्=भवेयम्। भव+इय्+वस्=भवेव। भव+इय्+मस्=भवेम॥

आशीर्वाद अर्थ में (६५) सूत्र से 'लिङ्' आया।

८४–लिङाशिषि ॥३।४।११६॥

आशीर्वाद अर्थ में जो लिङ् उसके स्थान में जो तिबादि आदेश, वे आर्धधातुकसंज्ञक हों।

८५–किदाशिषि ॥३।४।१०४॥

परस्मैपदविषयक लिङ् लकार को जो यासुट् का आगम ङित् कहा है, वह आशीर्वाद अर्थ में कित् समझना चाहिये।

आर्धधातुक संज्ञा होने से शप् विकरण प्राप्त नहीं, अन्य किसी का विधान नहीं है। यहां पदान्त में संयोग के आदि यासुट् के सकार का लोप हो जाता है। भू+यास्+तिप्=भूयात्। भू+यास्+तस्=भूयास्ताम्। भू+यास्+झि=भूयासुः। भू+यास्+सिप्=भूयाः। भू+यास्+थस्=भूयास्तम्। भू+यास्+थ=भूयास्त। भू+यास्+मिप्=भूयासम्। भू+यास्+वस्=भूयास्व। भू+यास्+मस्=भूयास्म॥

८६—लुङ् ।।३।२।११०।।

सामान्य भूत अर्थ के वाचक धातुओं से 'लुङ्' लकार हो।

शप् विकरण की प्राप्ति में—

८७—च्लि लुङि ।।३।१।४३।।

लुङ् लकार परे हो, तो धातु से च्लि प्रत्यय होवे।

८८—च्लेः सिच् ।।३।१।४४।।

लुङ् लकार परे हो, तो च्लि के स्थान में सिच् आदेश हो जावे।

इकार चकार की इत्संज्ञा हो जाती है।

८९—गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ।।२।४।७७।।

गाति, स्था, घुसंज्ञक, पा, भू इन धातुओं से परे जो सिच् उसका लुक् होजावे।

सिच् का लुक् होने पश्चात् उसको स्थानिवत् मान के उससे परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक तिप् को ईट् का आगम प्राप्त है, इसलिये—

९०—वा०—आहि भुवोरीट्प्रतिषेधः * ।।

आह आदेश और भू से परे जो सिच् का लुक् उसको स्थानिवद्भाव न हो।

स्थानिवत् के निषेध से ईट् का आगम नहीं होता। अब 'भू' अङ्ग को तिप् के परे गुण पाता है, इसलिये—

९१—भूसुवोस्तिङि ।।७।३।८८।।

अव्यवहित सार्वधातुक तिङ् परे हो, तो भू और सू अङ्गों को गुण न होवे।

---

* इस वार्त्तिक को सिद्धान्तकौमुदीवालों ने न समझकर (अस्तिसिचोऽपृक्ते) इस सूत्र का व्याख्यान मूल महाभाष्य और काशिका आदि से विपरीत किया है। जो कदाचित् उनका व्याख्यान ठीक होवे, तो वार्त्तिक व्यर्थ हो जावे। और असम्भव अभिप्राय सूत्र से निकाला है, इसलिये मान्य नहीं हो सकता। क्योंकि ऋषियों के अभिप्राय से विरुद्ध इनके पाण्डित्य को कौन मान सकता है?

(७५) सूत्र से अडागम होकर 'अट्+भू+सिच्+तिप्'=अभूत्। अभू+तस्=अभूताम्। अभू+वुक्+झि=अभूवन्। अभू+सिप्=अभूः। अभू+थस्=अभूतम्। अभू+थ=अभूत। अभू+वुक्+मिप्=अभूवम्। अभू+वस्=अभूव। अभू+मस्=अभूम।

९२-न माङ्योगे ॥६।४।७४॥

माङ् अव्ययशब्द के योग में लुङ्, लङ् और लृङ् लकारों को जो अट् और आट् के आगम कहे हैं, वे न हों।

जैसे—इह मा भूत्, मा भवान् भूत्, मा स्म भवत्; मा स्म भूत् इत्यादि में अट् का आगम नहीं होता। और आट् के आगम का निषेध आगे अजादि धातुओं में दिखाया जावेगा॥

९३-लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियाऽतिपत्तौ ॥३।३।१३९॥

जो हेतु, हेतुमद्भाव आदि लिङ् लकार के निमित्त अर्थ हैं, उनमें क्रिया की असिद्धि गम्यमान हो, तो धातु से 'लृङ्' लकार हो जावे।

(७५) से अट् और स्य प्रत्यय आदि कार्य्य होकर 'अट्+भू+इट्+स्य+तिप्'=अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्य+मिप्=अभविष्यम्, यहां अम् के अकार के साथ पररूप हो जाता है। अभविष्याव। अभविष्याम॥

अथ तवर्गीयान्ताश्चतुस्सप्ततिः॥

अब यहां से आगे एध आदि तवर्गीयान्त ७४=चौहत्तर धातुओं का व्याख्यान है।

२ एध वृद्धौ=बढ़ना—

भू धातु में जितने सामान्य-विषयक सूत्र लिखे हैं, वे यहां नहीं लिखे जावेंगे। पूर्ववत् वर्त्तमान अर्थ में 'लट्' आया।

९४–तङानावात्मनेपदम् ॥१।४।१००॥

लकार के स्थान में तङ् और आन=शानच् आदि, आत्मनेपदसंज्ञक आदेश हों।

इससे त से लेकर महिङ् तक नव=९ का ग्रहण है।

९५–अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥१।३।१२॥

अनुदात्त वर्ण जिनका इत् गया हो, और ङित धातुओं से त आदि नव=९ आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों।

यहां भी 'एध' में अनुदात्त अकार इत् जाता है, इस कारण इससे आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय आये। 'शप्' विकरण होकर—

९६–टित आत्मनेपदानां टेरे ॥३।४।७९॥

टित् लकारों के स्थान में जो आत्मनेपदसंज्ञक आदेश, उनके टिभाग को ए आदेश हो जावे।

यहां समुदाय को आदेश विधान नहीं, इस कारण अन्त्य अल् के स्थान में नहीं होता। 'एध्+शप्+त'=एधते।

९७–सार्वधातुकमपित् ॥१।२।४॥

सार्वधातुकसंज्ञक अपित् प्रत्ययों की ङित् संज्ञा हो।

९८–आतो ङितः ॥७।२।८१॥

अदन्त अङ्ग से परे जो ङित् प्रत्ययों का अकार, उसको इय् आदेश हो जावे। आम् भाग को एकार होकर 'एध्+शप्+आताम्'=एधेते।

एध्+शप्+झ=एधन्ते।

९९–थासः से ॥३।४।८०॥

टित् लकार के थास् को से आदेश होवे। 'एध्+शप्+थास्'=एधसे।

एध्+शप्+आथाम्=एधेथे। एध्+शप्+ध्वम्=एध्वे। एध्+शप्+इट्=एधे, यहां गुण एकार के परे पररूप एकादेश हो जाता है। एध्+शप्+वहि=एधावहे। एध्+शप्+महिङ्=एधामहे॥

१००—इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ।।३।१।३६।।

'लिट्' लकार परे हो, तो इजादि और गुरुमान् धातुओं से आम् प्रत्यय हो जावे, परन्तु ऋच्छ धातु से न होवे ।

१०१—आमः ।।२।४।८१।।

आम् से परे जो लि उसका लुक् हो जावे ।

इससे 'लिट्' का लुक् होकर—

१०२—कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ।।३।१।४०।।

इस सूत्र में लिट् ग्रहण किया है । इसी से यहां लुक् हुए, लिट् का रूपातिदेश समझना चाहिये ।

आमन्त से लिट् लकार परे हो तो, कृञ्, भू और अस् धातुओं का अनुप्रयोग अर्थात् इन सामान्य धातुओं का आम्प्रत्ययान्त एध आदि विशेष धातुओं से परे एक प्रयोग में समावेश किया जावे ।

आत्मनेपद प्रकरण में अनुप्रयोग शब्द के साथ कृञ् धातु का ग्रहण किया है, इसी ज्ञापक से (कृभ्वस्तियोगे०) इस सूत्र से लेकर (कृञो०) इस सूत्र में कृञ् के ञकारपर्यन्त प्रत्याहार ग्रहण से तीनों धातुओं का अनुप्रयोग किया जाता है । और ये कृञ् आदि तीनों धातु सामान्यार्थ-वाचक और आम्प्रत्ययान्त विशेषार्थवाचक हैं । इस कारण एक अर्थ के साथ दोनों धातुओं का सम्बन्ध हो जाता है । यह कृञ् धातु ञित् है ।

१०३—स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ।१।३।६३।।

यह सूत्र परस्मैपद का बाधक है । क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होवे, तो स्वरित और ञित् धातुओं से आत्मनेपद हो, अन्यत्र परस्मैपद ।

इससे क्रिया का फल अन्य के लिये होने में भी कृञ् धातु से परस्मै-पद प्राप्त है, इसलिये—

१०४–आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य ॥१।३।६३॥

जिस धातु से आम्प्रत्यय किया हो, उससे जो आत्मनेपद होता हो, तो अनुप्रयुक्त कृञ् से भी आत्मनेपद और आम्प्रत्ययान्त धातु परस्मैपद हो तो परस्मैपद हो जावे।

यहां 'एध' धातु आत्मनेपदी है, इसलिये कृञ् से भी आत्मनेपद प्रत्यय ही होते हैं।

१०५–लिटस्तझयोरेशिरेच ॥३।४।८१॥

लिट् लकार के स्थान में जो त और झ हैं, उनको एश् और इरेच् आदेश यथासंख्य करके हो जावें।

'त' सम्पूर्ण के स्थान में शित् आदेश होकर 'एध्+आम्+कृ+ए' इस अवस्था में एकार की कित्संज्ञा होने से गुण, वृद्धि तो प्राप्त नहीं परन्तु द्विर्वचन का बाधक परत्व से यणादेश हो जाता है। उसको स्थानिवत् मान कर पुन: द्विर्वचन होता है। 'एध्+आम्+कृ+कृ+ए'—

१०६–उरत् ॥७।४।६६॥

अभ्यास के ऋकार को अत् आदेश होवे।

ऋ के स्थान में रपर होने के नियम से अर् होकर रेफ का लोप (३८) से हो जाता है।

१०७–कुहोश्चुः ॥७।४।६२॥

अभ्यास के जो कवर्ग और हकार उनको चवर्ग आदेश होता है। एध्+आम्+चकृ+ए=एधाञ्चक्रे । एध्+आम्+चकृ+आताम्=एधाञ्चक्राते। एधाञ्चकृ+इरेच्=एधाञ्चक्रिरे।

१०८–एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ॥७।२।१०॥

उपदेश में जो एकाच् अनुदात्त धातु हो, उससे परे वलादि आर्द्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम न हो।

इससे थास् के स्थान में 'से' के परे इडागम न हुआ। एधाञ्चकृ+थास्=एधाञ्चकृषे। एधाञ्चक्राथे।

१०९—इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ॥८।३।७८॥

इणन्त अङ्ग से परे जो षीध्वम्, लुङ् और लिट् का धकार उसको मूर्द्धन्य आदेश हो।

धकार का अन्तरतम ढकार हो जाता है। एधाञ्चकृ+ध्वम्=एधाञ्चकृढ्वे।

एधाञ्चकृ+इट्=एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे॥

'भू' का अनुप्रयोग पूर्व के समान कि जैसा साधन केवल 'भू' का लिट् में लिख आये हैं। एधाम्बभूव। एधाम्बभूवतुः। एधाम्बभूवुः। एधाम्बभूविथ। एधाम्बभूवथुः। एधाम्बभूव। एधाम्बभूव। एधाम्बभूविव। एधाम्बभूविम॥

११०—अत आदेः ॥७।४।७०॥

अभ्यास के आदि अकार को दीर्घादेश होवे।

'अस्' धातु के अभ्यास के अकार को पररूप एकादेश प्राप्त है, इसलिये दीर्घादेश कहा है। एध्+आम्+अ+अस्+णल्=एधामास। एधामासतुः। एधामासुः। एधामासिथ। एधामासथुः। एधामास। एधामास। एधामासिव। एधामासिम।

यहां अस् धातु को आर्धधातुकविषय में भू आदेश अस् धातु के अनुप्रयोगवचन सामर्थ्य से ही नहीं होता॥

इसके आगे 'लुट्'। प्रथम पुरुष त, आताम्, झ के स्थान में डा आदि आदेश हो के एधिता। एधितारौ। एधितारः। एधितासे। एधितासाथे।

१११—धि च ॥८।२।२५॥

धकारादि प्रत्यय परे हो, तो सकार का लोप हो जावे।

यहां 'ध्वम्' प्रत्यय के परे तास् के सकार का लोप हो जाता है। 'एधितास्+ध्वम्=एधिताध्वे।

११२—ह एति ।।७।४।५२।।

एकार परे हो, तो तास् और अस्ति के सकार को हकारादेश होवे। 'एधितास्+इट्'=एधिताहे।

एधितास्वहे। एधितास्महे।।

इसके आगे 'लृट्' स्य आदि सब कार्य्य होकर 'एध्+इट्+स्य+त'=एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिंष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे।

अब इसके आगे क्रम से 'लेट्'। प्रथम शप् का अपवाद सिप् विकरण—

११३—वैतोऽन्यत्र ।।३।४।९६।।

अकार को जहां ऐकार कहा है, उस विषय को छोड़ के लेट् लकार सम्बन्धी जो एकार उसको ऐकार आदेश विकल्प करके हो जावे।

टिभाग को जो एकारादेश कह चुके हैं, उसी एकार को यहां ऐकार समझना चाहिये। एध्+इट्+सिप्+अट्+त=एधिषतै; एध्+इट्+सिप्+आट्+त=एधिषातै; एधिषते; एधिषाते। शप् पक्ष में—एधतै; एधातै; एधते; एधाते।

११४—आत ऐ ।।३।४।९५।।

लेट् लकार सम्बन्धी आकार को ऐकार आदेश नित्य ही हो जावे।

इससे आताम्, आथाम् के आकार को ऐकार होता है। उस ऐकार के परे अट् आट् को वृद्धि एकादेश हो जाने से रूपभेद नहीं होता। 'एध्+इट्+सिप्+अट्+आताम्'=एधिषैते; एधिषैते; एधैते; एधैते।

झ—एधिषन्तै; एधिषान्तै; एधिषन्ते; एधिषान्ते; एधन्तै; एधान्तै; एधन्ते; एधान्ते।

थास्—एधिषसै; एधिषासै; एधिषसे; एधिषासे; एधसै; एधासै; एधसे; एधासे।

आथाम्—एधिषैथे; एधिषैथे; एधैथे; एधैथे।

ध्वम्—एधिषध्वै; एधिषाध्वै; एधिषध्वे; एधिषाध्वे; एधध्वै; एधाध्वै, एधध्वे; एधाध्वे।

इट्—एधिषै; एधिषे; एधै; एधे। यहाँ जिस पक्ष में इट् प्रत्यय के एकार को ऐकार आदेश होता है, वहां अट् और आट् में आगम को वृद्धि एकादेश होजाने से प्रयोग भिन्न नहीं होते।

वहि—एधिषावहै; एधिषावहे; एधावहै; एधावहे।

महिङ्—एधिषामहै; एधिषामहे; एधामहै; एधामहे। यहां भी जब अट् होता है, तब यञादि सार्वधातुक प्रत्ययों के परे दीर्घ होजाने से एक ही प्रकार के प्रयोग होजाते हैं॥

'लोट्'—

११५–आमेतः ॥३।४।९०॥

लोट् लकार का जो एकार, उसको आम् आदेश हो जावे।

टिभाग को जो एकार कहा है, उसी को यहां आम् आदेश समझना चाहिये। 'एध्+शप्+त'=एधताम्। एधेताम्; एधन्ताम्।

११६–सवाभ्यां वामौ ॥३।४।९१॥

सकार, वकार से परे जो लोट् लकार का एकार उस को व और अम् आदेश यथासंख्य करके हों। 'एध्+शप्+थास्'=एधस्व।

एधेथाम्। एधध्वम्।

११७–एत ऐ ॥३।४।९३॥

लोट् लकार के उत्तम पुरुष का जो एकार, उसको ऐ आदेश होवे। यह आम् आदेश का बाधक है।

११८–आडुत्तमस्य पिच्च ॥३।४।९२॥

लोट् लकार के उत्तम पुरुषको आट् का आगम हो, वह पित् होजावे।

अपित् सार्वधातुक को पित् आगम होने से गुण आदि कार्य्य और सम्प्रसारण का निषेध हो जाता है परन्तु यहां भ्वादिगण में इसका कुछ

काम नहीं पड़ता, क्योंकि यहां तो शप् प्रत्यय को मान कर सब काम होते हैं। किन्तु अदादि, जुहोत्यादि में काम पड़ेगा। और भू धातु में भी इस आट् के आगम का सम्बन्ध होता है। यहां सर्वत्र शप् के अकार के साथ दीर्घ एकादेश हो जाता है। एध्+शप्+आट्+ऐ=एधै। एधावहै। एधामहै ॥

इसके आगे 'लङ्'। पूर्व के समान अन्य सब कार्य्य जानो।

११९–आडजादीनाम् ॥६।४।७२॥

लुङ्, लङ् और लृङ् लकार परे हों, तो अजादि धातुओं को आट् का आगम होजावे।

अट् का अपवाद आट् का आगम है। वृद्धि एकादेश होकर 'आट्+एध्+अ+त'=ऐधत। ऐधेताम्। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्। ऐधध्वम्। ऐधे+ऐधावहि। ऐधामहि ॥

आगे 'लिङ्'—

१२०–लिङः सीयुट् ॥३।४।१०२॥

लिङ् लकार को सीयुट् का आगम हो। सीयुट् और सुट् दोनों सकारों का लोप (८०) से होकर 'एध+अ+इय्+त'=एधेत। एधेयाताम्।

१२१–झस्य रन् ॥३।४।१०५॥

लिङ् लकार का जो झकार, उसको रन् आदेश हो जावे। एधेरन्। एधेथाः। एधेयाथाम्। एधेध्वम्।

१२२–इटोऽत् ॥३।४।१०६॥

लिङ् लकार के स्थान में जो इट् आदेश, उसको अत् आदेश होजावे तपकरण दीर्घ की निवृत्ति के लिये है। एधेय। एधेवहि। एधेमहि ॥

'आशिष् लिङ्' की आर्धधातुक संज्ञा होने से सकार का लोप नहीं होता। सीयुट् और सुट् दोनों सकारों को मूर्द्धन्यादेश (५६) से हो जाता

है। 'एध्+इट्+सीयुट्+सुट्+त'=एधिषीष्ट। यहां मूर्द्धन्य षकार के योग में तवर्ग को टवर्ग हो जाता है।

और 'आताम्' में तकार को कहा सुट् का आगम आकार से परे होता है। 'एध्+इट्+सीयुट्+आ+सुट्+ताम्'=एधिषीयास्ताम्।

एधिषीरन्। यहां रेफादि रन् आदेश के परे सीयुट् के यकार का लोप हो जाता है।

एधिषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। एधिषीध्वम्। एधिषीय। एधिषीवहि। एधिषीमहि॥

इसके आगे 'लुङ्'—

इसमें कुछ विशेष नहीं है। 'आट्+एध्+सिच्+त'=ऐधिष्ट। ऐधिषाताम्।

१२३—आत्मनेपदेष्वनतः ॥७।१।५॥

यह सूत्र अन्त आदेश का बाधक है। अकारभिन्न से परे आत्मनेपद-विषयक प्रत्यय के आदि झकार को अत् आदेश होवे। 'ऐध्+इट्+स+झ'=ऐधिषत।

ऐधिष्ठाः। ऐधिषाथाम्।

ध्वम् के धकार को (१०९) सूत्र से मूर्द्धन्य नहीं होता, क्योंकि इट् इणन्त अङ्ग नहीं है*। 'ऐध्+इट्+स्+ध्वम्'=ऐधिध्वम्। यहां (१११) से सकार का लोप हो जाता है।

---

* सिद्धान्तकौमुदी में जो 'एधिढ्वम्' प्रयोग लिखा है, सो किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता क्योंकि इट् इणन्त अंग कैसे समझा जावे। (इणः षीध्वं०) सूत्र में अंग ग्रहण का यही प्रयोजन है कि "एधिषीध्वं" यहां मूर्द्धन्यादेश न हो जावे। और लुङ् लकार में कदाचित् सिच् की अङ्गसंज्ञा होने से इट् की भी अङ्ग संज्ञा हो जावे, सो भी सिच् लोप को असिद्ध वा स्थानिवत् मानें तो असिद्धि की प्राप्ति ही नहीं। क्योंकि लोपविधायक सूत्र से मूर्द्धन्यविधायक सूत्र त्रिपादी में भी परे हैं। स्थानिवत् में सिच् स्थानी है, उसको कोई कार्य्य करना नहीं। और सिच् को स्थानिवत् मानने से सान्त अङ्ग होगा इणन्त नहीं, फिर 'एधिढ्वम्' प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है।

ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि ॥

'लृङ्'—इसमें कुछ विशेष नहीं । आट्+एध्+इट्+स्य+त= ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि* ॥

३—स्पर्द्ध सङ्घर्षे=घिसना और ईर्ष्या—

इसके प्रयोग 'एध' के समान जानने । जैसे—स्पर्द्धते । स्पर्द्धते । इत्यादि ।

परन्तु 'लिट्' के रूप विशेष हैं—

१२४—शर्पूर्वाः खयः ॥७।४।६१॥

अभ्याससम्बन्धी शर् जिन के पूर्व हैं, वे खय् बाकी रहें, अन्य हलों का लोप हो जावे । 'स्पर्द्ध+स्पर्द्ध+त' (१०५) से एश्=पस्पर्द्धे । पस्पर्द्धाते । पस्पर्द्धिरे । पस्पर्द्धिषे । पस्पर्द्धाथे । पस्पर्द्धिध्वे । पस्पर्द्धे । पस्पर्द्धिवहे । पस्पर्द्धिमहे ।

स्पर्द्धिता । स्पर्द्धिष्यते । स्पर्द्धिषतै; स्पर्द्धिषातै: स्पर्द्धिषते; स्पर्द्धिषाते इत्यादि । स्पर्द्धताम् । अस्पर्द्धत । स्पर्द्धेत । स्पर्द्धिषीष्ट । अस्पर्द्धिष्ट । अस्पर्द्धिष्यत ॥

---

* एक यह नियम इस ग्रन्थ में पढ़ने-पढ़ानेवालों को ध्यान में रखना चाहिये, कि 'भू' के तुल्य परस्मैपदी धातुओं के प्रयोग और एध के समान आत्मनेपदी धातुओं के प्रयोग समझें । यहां से आगे सब धातुओं के ग्यारहों लकारों के एक-एक प्रयोग लकारों के क्रमानुसार लिखेंगे । और जहां विशेष सूत्र लग के विशेष प्रयोग बनेंगे, वहां सब रूप लिख दिया करेंगे, और असिद्ध प्रयोग चिह्नित अवयवों के सहित रक्खे जाते हैं, वे आगे विशेष-विशेष धातुओं के प्रयोगों ही में रक्खेंगे । और जो एक अर्थ में एक प्रकार के बहुत धातु होंगे उनमें से एक के प्रयोग लिख दिया करेंगे, उसी के समान दूसरों के समझने होंगे ॥

४ गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च=सत्कार, प्राप्त होने की इच्छा, गांठना—

गाधते। अभ्यास के अच् को ह्रस्व और गकार को जकार होकर 'जगाध्+ए'=जगाधे। जगाधाते। जगाधिरे०। गाधिता। गाधिष्यते। गाधिषतै; गाधिषातै०। गाधताम्। अगाधत। गाधेत। गाधिषीष्ट। अगाधिष्ट। अगाधिष्यत॥

५ बाधृ विलोडने=हटा देना—

बाधते। बबाधे। बाधिता। बाधिष्यते। बाधिषतै; बाधिषातै; बाधिषते; बाधिषाते इत्यादि। बाधताम्। अबाधत। बाधेत। बाधिषीष्ट। अबाधिष्ट। अबाधिष्यत॥

७-८ नाथृ, नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीः षु=याच्ञा-मांगना, उपताप-पीड़ा, ऐश्वर्य-उत्तम पदार्थ, आशीः-इच्छा—

'आशीर्वाद' अर्थ ही में नाथ् धातु से आत्मनेपद, और अर्थों में परस्मैपद होता है। जैसे-सर्पिषो नाथते; अन्यत्र नाथति। नाथतः। नाथन्ति इत्यादि। शेष रूप 'बाध्' के समान होते हैं॥

८ दध धारणे=धारण करना—दधते। दधेते। दधन्ते इत्यादि।

१२५—अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ॥६।४।१२०॥

जिस लिट् को मान के धातु के अभ्यास को आदेश नहीं हुआ हो, उसके परे धातु के अभ्यास का लोप हो, और दो हलों के बीच में जो अकार है, उसको एकार आदेश हो जावे, कित् लिट् परे हो तो। जैसे— 'द+दध्=ए'+देधे। देधाते। देधिरे। देधिषे। देधाथे। देधिध्वे। देधे। देधिवहे। देधिमहे॥

दधिता। दधिष्यते।

'लेट्' में विशेष—

१२६–अत उपधायाः ॥७।२।११६॥

अङ्ग के उपधा अकार को ञित्, णित् प्रत्ययों के परे वृद्धि हो जावे। इससे णित् पक्ष में वृद्धि होती है। दाधिषतै; दाधिषातै, दाधिषते; दाधिषाते; दधिषतै; दधिषातै; दधिषते; दधिषाते; दधतै; दधातै; दधते; दधाते; दाधिषैते २; दधिषैते २; दधैते २ इत्यादि।

दधताम्। अदधत। दधेत। दधिषीष्ट। अदधिष्ट। अदधिष्यत॥

९ स्कुदि, आप्रवणे = कूदना—

१२७–इदितो नुम् धातोः ॥७।१।५८॥

जिस धातु का इ इत् गया हो, उसको नुम् का आगम हो।

'नुम्' मित् का आगम अन्त्य अच् से परे हुआ। 'स्कुनुम्+द्+शप्+त' = स्कुन्देते; स्कुन्दते; स्कुन्दन्ते।

'लिट्' में—चुस्कुन्दे; चुस्कुन्दाते; चुस्कुन्दिरे। स्कुन्दिता। स्कुन्दिष्यते। स्कुन्दिषतै; स्कुन्दिषातै। स्कुन्दताम्। अस्कुन्दत। स्कुन्देत। स्कुन्दिषीष्ट। अस्कुन्दिष्ट। अस्कुन्दिष्यत॥

१० श्विदि श्वैत्ये = श्वेत होना—

श्विन्दते। शिश्विन्दे। श्विन्दिता। श्विन्दिष्यते। श्विन्दिषतै, श्विन्दिषातै। श्विन्दताम्। अश्विन्दत। श्विन्देत। श्विन्दिषीष्ट। अश्विन्दिष्ट अश्विन्दिष्यत॥

११ वदि अभिवादनस्तुत्योः = नमस्कार और प्रशंसा—

वन्दते। ववन्दे। वन्दिता। वन्दिष्यते। वन्दिषतै; वन्दिषातै। वन्दताम्। अवन्दत। वन्देत। वन्दिषीष्ट। अवन्दिष्ट। अवन्दिष्यत॥

१२ भदि कल्याणे सुखे च = शुभ गुणों को प्राप्त होना और सुखी होना—

भन्दते। बभन्दे। भन्दिता। भन्दिष्यते। भन्दिषतै; भन्दिषातै। भन्दताम्। अभन्दत। भन्देत। भन्दिषीष्ट। अभन्दिष्ट। अभन्दिष्यत॥

१३. मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु = स्तुति—प्रशंसा करना मोद—हर्ष होना, मद—अभिमान, स्वप्न—सोना, कान्ति कामना करना; गति—ज्ञान, गमन, प्राप्ति—

मन्दते । ममन्दे । मन्दिता । मन्दिष्यते । मन्दिषतै; मन्दिषात; मन्दिषते; मन्दिषाते इत्यादि । मन्दताम् । अमन्दत । मन्देत । मन्दिषीष्ट । अमन्दिष्ट । अमन्दिष्यत ॥

१४. स्पदि किञ्चिच्चलने = मन्द-मन्द चलना—

स्पन्दते । पस्पन्दे । स्पन्दिता । स्पन्दिष्यते । स्पन्दिषतै; स्पन्दिषातै । स्पन्दताम् । अस्पन्दत । स्पन्देत । स्पन्दिषीष्ट । अस्पन्दिष्ट । अस्पन्दिष्यत ॥

१५. क्लिदि परिदेवने = दुःखी होना—

क्लिन्दते । चिक्लिन्दे । क्लिन्दिता । क्लिन्दिष्यते । क्लिन्दिषतै; क्लिन्दिषातै । क्लिन्दताम् । अक्लिन्दत । क्लिन्देत । क्लिन्दिषीष्ट । अक्लिन्दिष्ट । अक्लिन्दिष्यत ॥

१६. मुद हर्षे = आनन्द होना—मोदते । मुमुदे । मोदिता । मोदिष्यते । मोदिषतै; । मोदिषातै । मोदताम् । अमोदत । मोदेत । मोदिषीष्ट । अमोदिष्ट । अमोदिष्यत ॥

१७. दद दाने = देना—ददते ।

१२८—न शसददवादिगुणानाम् ।।६।४।१२६।।

दद धातु को लिट् लकार में अकार को एकार और अभ्यास का लोप प्राप्त है, इसलिये यह सूत्र है। शस, दद, वकारादि और गुण हुए अकार को एकार तथा उनके अभ्यास का लोप न होवे । 'दद्+दद्+ए' = ददे; ददाते; ददिरे । ददिता । ददिष्यते । दादिषतै; दादिषातै; दादिषते; दादिषाते; ददिषतै; ददिषातै; ददिषते; ददिषाते इत्यादि । ददताम् । अददत । ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत ॥

१८-१९ ष्वद, स्वर्द आस्वादने = स्वाद लेना—

१२९—धात्वादेः षः सः ।।६।१।६४।।

धातु के आदि षकार को सकारादेश होवे ।

स्वदते । स्वर्दते । सस्वदे । सस्वर्दे । स्वदिता । स्वर्दिता । स्वदिष्यते । स्वर्दिष्यते । स्वादिषतै; स्वादिषातै । स्वर्दिषतै; स्वर्दिषातै । स्वदताम् । स्वर्दताम् । अस्वदत । अस्वर्दत । स्वदेत । स्वर्देत । स्वदिषीष्ट । स्वर्दिषीष्ट । अस्वदिष्ट । अस्वर्दिष्ट । अस्वदिष्यत । अस्वर्दिष्यत ।।

२० उर्द माने क्रीडायां च=तोलना, खेलना—

१३०—उपधायां च ।।८।२।७८।।

धातु के उपधाभूत हल् जिन से परे हों, ऐसे रेफ और वकार की उपधा इक् को दीर्घ हो जावे । इससे उर्द धातु के उकार को सब लकारों में दीर्घ ऊकार हो जाता है । ऊर्दते ।

और यह धातु इजादि गुरुमान् भी है, इससे एध् के समान लिट् लकार में आम् प्रत्यय आदि सब कार्य हो जाते हैं । ऊर्दाञ्चक्रे; ऊर्दाञ्चक्राते; ऊर्दाञ्चक्रिरे । ऊर्दाम्बभूव । ऊर्दामास । ऊर्दिता । ऊर्दिष्यते । ऊर्दिषतै; ऊर्दिषातै । ऊर्दताम् । (११९) और्दत । ऊर्देत । ऊर्दिषीष्ट । और्दिष्ट । और्दिष्यत ।।

२१—२४ कुर्द, खुर्द, गुर्द, गुद क्रीडायामेव=खेलने ही में—

पूर्व के समान उपधा को दीर्घ होकर कूर्दते । खूर्दते । गूर्दते । चुकूर्दे । चुखूर्दे । जुगुर्दे । गोदते । जुगुदे । कूर्दिता । कूर्दिष्यते । कूर्दिषतै; कूर्दिषातै । कूर्दताम् । अकूर्दत । कूर्देत । कूर्दिषीष्ट । अकूर्दिष्ट । अकूर्दिष्यत । गोदिता । गोदिष्यते । गोदिषतै; गोदिषातै । गोदताम् । अगोदत । गोदेत । गोदिषीष्ट । अगोदिष्ट । अगोदिष्यत ।।

२५ षूद क्षरणे=झरना वा नष्ट होना—

(१२९) सूदते । सुसूदे । सूदिता । सूदिष्यते । सूदिषतै; सूदिषातै । सूदताम् । असूदत । सूदेत । सूदिषीष्ट । असूदिष्ट । असूदिष्यत ।।

जो धातु उपदेश में मूर्द्धन्य षकारादि हैं, उनकी व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिये कि—

भा०—अज्दन्त्यपराः सादयः षोपदेशाः । स्मिङ्, स्वदि, स्विदि, स्वञ्ज, स्वपयश्च । सृपि, सृजि, स्तृ, स्त्या सेक्, सृ वर्जम् ।।६।१।६४।।

जिन धातुओं के सकार से अच् तथा दन्त्य अक्षर परे हों, वे सब षोपदेश धातु समझने चाहियें। दन्त्य अक्षरों में दन्त्यौष्ठ वकार का ग्रहण नहीं होता है। इसी से ष्वस्क आदि धातु पृथक् पढ़े हैं । और सृप् आदि धातु अज्दन्त्यपर हैं, इनको षोपदेश नहीं समझना चाहिये ।।

२६ ह्लाद अव्यक्ते शब्दे = स्पष्ट उच्चारण का न होना—

ह्लादते । जह्लादे । ह्लादिता । ह्लादिष्यते । ह्लादिषतै; ह्लादिषातै । ह्लादताम् । अह्लादत । ह्लादेत । ह्लादिषीष्ट । अह्लादिष्ट । अह्लादिष्यत ।।

२७ ह्लादी सुखे च = सुख होना—

यहां 'चकार' से अव्यक्त शब्द की अनुवृत्ति आती है। और इसी प्रकार जिन-जिन धातुओं के अर्थ के पश्चात् चकार पढ़ा हो, वहां-वहां सर्वत्र पूर्व धातु के अर्थ का सम्बन्ध समझ लेना चाहिये। ह्लादते । जह्लादे इत्यादि ।।

२८ स्वाद आस्वादने = चाखना—स्वादते । सस्वादे ।।

२९ पर्द कुत्सिते शब्दे = निन्दित शब्द करना—

पर्दते । पपर्दे । पर्दिता । पर्दिष्यते । पर्दताम् । अपर्दत । पर्देत । पर्दिषीष्ट । अपर्दिष्ट । अपर्दिष्यत ।।

३० यती प्रयत्ने = पुरुषार्थ—यतते । येते; येताते; येतिरे । यतिता । यतिष्यते । यातिषतै; यातिषातै । यतताम् । अयतत । यतेत । यतिषीष्ट । अयतिष्ट । अयतिष्यत ।।

३१-३२ युतृ, जुतृ भासने = प्रकाश होना—

योतते । युयुते । जोतते । जुजुते । योतिता । जोतिता । योतिष्यते । जोतिष्यते इत्यादि ।।

३३-३४ विथृ, वेथृ याचने = मांगना—वेथते । विविथे । विवेथे, अभ्यास को ह्रस्व इकार हो जाता है । वेथिता । वेथिष्यते ।।

३५ श्रथि शैथिल्ये = शिथिलता—

इदित् को नुम् (१२७) से होकर श्रन्थते । शश्रन्थे । श्रन्थिता । श्रन्थिष्यते ।।

३६ ग्रथि कौटिल्ये = टेढ़ापन—ग्रन्थते । जग्रन्थे ।।

३७ कत्थ श्लाघायाम् = प्रशंसा—

कत्थते । चकत्थे । कत्थिता । कत्थिष्यते । कत्थिषतै; कत्थिषातै । कत्थताम् । अकत्थत । कत्थेत । कत्थिषीष्ट । अकत्थिष्ट । अकत्थिष्यत ।।

इत्येधादय उदात्ता उदात्तेत आत्मनेपदिनः षट्त्रिंशत् ।।

अथाष्टात्रिंशत् परस्मैपदिनः

अब तवर्गान्तों में ३८ अड़तीस धातु परस्मैपदी हैं—

३८ अत सातत्यगमने = निरन्तर चलना—परस्मैपद में तिप् आदि ९ नव प्रत्यय आये । 'अत्+शप्+तिप्' = अतति । अततः । अतन्ति । अतसि । अतथः । अतथ । अतामि । अतावः । अतामः ।

'लिट्'—में द्विर्वचन होने के पश्चात् अभ्यास को दीर्घ (११०) से और एकादेश होकर आत । आततुः । आतुः । आतिथ । आतथुः । आत । आत । आतिव । आतिम ।

'लुट्'—अतिता । अतितारौ । अतितारः । अतितासि । अतितास्थः । अतितास्थ । अतितास्मि । अतितास्वः । अतितास्मः ।

'लृट्'—अतिष्यति । अतिष्यतः । अतिष्यन्ति । अतिष्यसि । अतिष्यथः । अतिष्यथ । अतिष्यामि । अतिष्यावः । अतिष्यामः ।

'लेट्'—आतिषति । आतिषाति । अतिषति । अतिषाति इत्यादि ।

'लोट्'—अततु; अततात् । अतताम् । अतन्तु । अत; अततात् । अततम् । अतत । अतानि । अताव । अताम ।

'लङ्'—(११९) से आट् और उसके साथ वृद्धि होकर आतत् । आतताम् । आतन् । आतः । आततम् । आतत । आतम् । आताव । आताम ।

'लिङ्'—अतेत् । अतेताम् । अतेयुः । अतेः । अतेतम् । अतेत । अतेयम् । अतेव । अतेम ।

'आशिष् लिङ्'—संयोगादि यास् के सकार का (स्कोः संयोगा०) सूत्र से लोप होकर अत्यात् । अत्यास्ताम् । अत्यासुः । अत्याः । अत्यास्तम् । अत्यास्त । अत्यासम् । अत्यास्व । अत्यास्म ।

'लुङ्'—

१३१—अस्तिसिचोऽपृक्ते ।।७।३।९६।।

अस्ति धातु और सिच् प्रत्यय से परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक को ईट् का आगम हो ।

'आत्+इट्+स्+ईट्+त्' इस अवस्था में—

१३२—इट ईटि ।।८।२।२८।।

इट् से परे सकार का लोप हो ईट् परे हो तो ।

फिर त्रिपादी में हुए सिच् के लोप को असिद्ध मान कर संधि प्राप्त नहीं है, इसलिए—

१३३—वा०—सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ।।

८ । २ । ३ ।।

दीर्घ एकादेश करने में सिच् के सकार का लोप सिद्ध समझना चाहिये ।

फिर दीर्घ एकादेश होकर आतीत् । आतिष्टाम् ।

१३४—सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ।।३।४।१०९ ।।

सिच् प्रत्यय, अभ्यस्तसंज्ञक धातु और विद् धातु से परे जो ङित् लकार का झि उसको जुस् आदेश होवे।
यहां सिच् से परे झि को जुस् होता है। 'आट्+अत्+सिच्+जुस्'= आतिषुः।

१३५—वदव्रजहलन्तस्याचः ।।७।२।३।।

परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो, तो वद, व्रज और हलन्त धातुओं के अच् की वृद्धि होवे।

यहां 'अच्' ग्रहण इक् की निवृत्ति के लिये है। वद, व्रज धातु भी हलन्त हैं, इनका पृथक् ग्रहण इसलिये है कि—लघु अकार जिनकी उपधा में हो उनको विकल्प से वृद्धि कही है, सो इन दोनों को नित्य ही होगी। इससे 'अत' धातु को वृद्धि प्राप्त हुई।

१३६—नेटि ।।७।२।४।।

इडादि सिच् परे हो, तो पूर्वोक्त हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि न होवे।

अत धातु को आट् के आगम पक्ष में तो वृद्धि होने न होने में कुछ भेद नहीं, परन्तु जहां आट् का निषेध है, वहां विशेष है। जैसे—मा भवानतीत्। अतिष्टाम्। अतिषुः।

आतीः। आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म।

['लृङ्'—] आतिष्यत्। आतिष्यताम्। आतिष्यन्। आतिष्यः। आतिष्यतम्। आतिष्यत। आतिष्यम्। आतिष्याव। आतिष्याम।।

३९ चिती संज्ञाने=ठीक-ठीक जानना—

(५१) सूत्र से लघूपध चित् धातु को गुण होकर 'चित्+शप्+तिप्' = चेतति। चेततः। चेतन्ति। चिचेत।

१३७—असंयोगाल्लिट् कित् ।।१।२।५।।

असंयोगान्त धातुओं से परे जो अपित् लिट् वह कित्संज्ञक होवे।

तिप्, सिप्, मिप् के स्थान में जो आदेश हैं, उनको छोड़ के अन्य अपित् समझने चाहियें, अतः (४५) से गुण नहीं होता। चिचिततुः। चिचितुः। चिचेतिथ। चिचितथुः। चिचित। चिचेत। चिचितिव। चिचितिम।

चेतिता। चेतिष्यति। चेतिषति, चेतिषाति, चेतति, चेताति, चेततु, चेतात् इत्यादि। चेततु, चेततात्। अचेतत्। चेतेत्। (८५, ४५) चित्यात्। अचेतीत्। अचेतिष्यत्॥

४० च्युतिर् आसेचने = सींचना—

(५१) से गुण च्योतति। चुच्योत। चुच्युततुः। च्योतिता। च्योतिष्यति। च्योतिषति, च्योतिषाति इत्यादि। च्योततु, च्योततात्। अच्योतत्। च्योतेत्। च्युत्यात्। च्युत्यास्ताम्। च्युत्यासुः इत्यादि।

१३८—इरितो वा ॥३।१।५७॥

जिस धातु का इर् भाग इत्संज्ञक हुआ हो, उस धातु से परे च्लि के स्थान में अङ् आदेश विकल्प करके होवे।

'अट्+च्युत्+अङ्+तिप्' = अच्युतत्। अच्युतताम्। अच्युतन्। अच्युतः। अच्युततम्। अच्युतत। अच्युतम्। अच्युताव। अच्युताम।

जिस पक्ष में 'अङ्' नहीं होता, वहां—अच्योतीत्। अच्योतिष्टाम्। अच्योतिषुः इत्यादि। अच्योतिष्यत्॥

४१ श्च्युतिर् क्षरणे = क्षरना वा नाश होना—

श्च्योतति। चुश्च्योत इत्यादि 'च्युत्' के समान जानो॥

४२ मन्थ विलोडने = विलोना—

मन्थति। मन्थतः। मन्थन्ति। ममन्थ। मन्थिता। मन्थिष्यति। मन्थिषति; मन्थिषाति, मन्थति; मन्थाति। मन्थतु। अमन्थत्। मन्थेत्।

१३९—अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ॥६।४।२४॥

कित् ङित् प्रत्यय परे हों, तो जिसका ह्रस्व इकार इत् न गया हो ऐसा जो हलन्त अङ्ग उसकी उपधा के नकार का लोप होवे।

(८५) से 'मन्थ्+यासुट्+तिप्' = मथ्यात्। अमन्थीत्। अमन्थिष्यत् ॥

४३-४६ कुथि, पुथि, लुथि, मथि हिंसासंक्लेशनयोः = मारना और अति दुःख देना—

(१२७) से नुम् होके कुन्थति। चुकुन्थ। कुन्थिता। कुन्थिष्यति। कुन्थिषति; कुन्थिषाति। कुन्थतु। अकुन्थत्। कुन्थेत्। कुन्थ्यात्—इदित् के होने से 'कुन्थ्यात्' में (१३९) से नकार का लोप नहीं हुआ। अकुन्थीत्। अकुन्थिष्यत्। 'पुथि' आदि के रूप 'कुथि' के समान होते हैं ॥

४७ षिध गत्याम् = ज्ञान, गमन, प्राप्ति—

यहां धातु के आदि षकार को स होकर सेधति। सेधतः सेधन्ति। सिषेध। सिषिधतुः। सिषिधुः। सेधिता। सेधिष्यिति। सेधिषति; सेधिषाति। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। असेधीत्। असेधिष्यत् ॥

४८ षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च = शिक्षा और मङ्गलाचरण—

इस धातु के सामान्यरूप तो पूर्व 'सिध' धातु के समान हैं। और दीर्घ ऊकार इत् गया है, इसलिये विशेष है—

१४०—स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ॥७।२।४४॥

स्वरति, सूति, सूयति, धूञ् और ऊदित् धातुओं से परे वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम हो।

'लिट्'—सिषेध। सिषिधतुः। सिषिधुः। अनिट् पक्ष में—'सिध्+थल्'।

१४१—झषस्तथोर्धोऽधः ॥८।२।४०॥

धा धातु को छोड़ के झष् प्रत्याहार से परे जो त और थ, उनको ध आदेश हो।

यहां थल् के थकार को ध होकर 'सिसिध्+ध = सिषेद्ध। यहां पूर्व धकार को झष् के परे जश्त्व हो जाता है। पक्ष में—सिषेधिथ। सिषिधथुः। सिषिध। सिषेध। सिषिध्व; सिषिधिव। सिषिध्म; सिषिधिम।

'लुट्'—'सिध्+तास्+डा' = सेद्धा, यहां भी पूर्ववत् तास् के तकार को धकार और पूर्व को जश्त्व होता है। सेद्धारौ। सेद्धारः। सेद्धासि। सेद्धास्थः। सेद्धास्थ। सेद्धास्मि। सेद्धास्वः। सेद्धास्मः।

सेट् पक्ष में—सेधिता। सेधितारौ। सेधितारः इत्यादि।

'लृट्'—सिध्+स्य+तिप्'=सेत्स्यति, यहां खर् के परे झल् धकार को (खरि च) सूत्र से चर् तकार हो जाता है। सेत्स्यतः। सेत्स्यन्ति। सेधिष्यति। सेधिष्यतः। सेधिष्यन्ति।

'लेट्'—सेत्सति, सेत्साति। सेधिषति, सेधिषाति। सेत्सत्, सेत्सात्। सेत्सद्, सेत्साद्। सेधति, सेधाति इत्यादि।

'लोट्'—सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। सिध्यास्ताम्। सिध्यासुः।

'लुङ्'—अनिट् पक्ष में—'अट्+सिध्+सिच्+ईट्+तिप्= असैत्सीत् (१३५,१३१)—

१४२-झलो झलि ॥८।२।२६॥

झल् से परे जो सकार, उसका लोप हो झल् परे हो तो।

'असिध्+स्+ताम्'+असैद्धाम्, यहाँ स लोप होने के पश्चात् ताम् के तकार को ध और पूर्व को जश्त्व हो जाता है। असिध्+स्+झि'= असैत्सुः। असिध्+स्+ईट्+सिप्=असैत्सीः। असिध्+स्=थस्= असैद्धम्। असैद्ध। असैत्सम्। असैत्स्व। असैत्स्म।

सेट् पक्ष में—असेधीत्। असेधिष्टाम्। असेधिषुः इत्यादि।

'लृङ्'—'अट्+सिध्+इट्+स्य+तिप्'=असेत्स्यत्। असेत्स्यताम्। असेत्स्यन्। असेत्स्यः। असेत्स्यतम्। असेत्स्यत। असेत्स्यम्। असेत्स्याव। असेत्स्याम। सेट् पक्ष में—असेधिष्यत्। असेधिष्यताम्। असेधिष्यन्।

४९ खादृ भक्षणे=खाना—इस धातु का ऋकार इत् जाता है। खादति। चखाद। खादिता। खादिष्याति। खादिषति, खादिषाति। खादतु। अखादत्। खादेत्। खाद्यात्। अखादीत्। अखादिष्यत्॥

५० खद स्थैर्ये हिंसायां च=स्थिर होना, मारना और चकार से भक्षण अर्थ का भी समुच्चय होता है—खदति।

'लिट्'—खद्+खद्+णल्' = चखाद (१२६)। चखदतुः। चखदुः। चखदिथ। चखदथुः। चख़द।

१४३—णलुत्तमो वा ॥७।१।९१॥

उत्तम पुरुष का णल् आदेश विकल्प करके णित् संज्ञक होवे।

स्वाभाविक णित् को विकल्प करने से प्राप्तविभाषा है। चखाद; चखद। णित् पक्ष में वृद्धि होती है, अन्यत्र नहीं।

खदिता। खदिष्यति। खदिषति; खदिषाति। खदतु। अखदत्। खदेत्। खद्यात्।

१४४—अतो हलादेर्लघोः ॥७।२।७॥

परस्मैपदविषयक इडादि सिच् परे हो, तो हलादि अङ्ग के लघु अकार को विकल्प करके वृद्धि होवे॥

अखादीत्; अखदीत्। यहाँ इडादि सिच् में वृद्धि निषेध प्राप्त है, इसलिये विधान है।

'लृङ्'—अखदिष्यत्॥,

५१ बद स्थैर्य्ये = स्थित होना—बदति। बबाद। बेदतुः। बेदुः।

१४५—थलि च सेटि ॥६।४।१२१॥

सेट् थल् परे हो, तो लिट् लकार को मान कर जिस धातु के आदि को कोई आदेश न हुआ हो, उसके अभ्यास का लोप और दो हलों के बीच में जो अकार है, उसको एकारादेश हो जावे।

'बद्+बद्+इट्+थल्' = बेदिथ। बेदथुः। बेद। बबाद। बबद। बेदिव। बेदिम। बदिता। बदिष्यति। बादिषाति, बादिषाति, बदिषति, बदिषाति, बदति, बदाति। बदतु। अबदत्। बदेत्। बद्यात्। अबादीत् (१४४); अबदीत्। अबदिष्यत्॥

५२ गद व्यक्तायां वाचि=स्पष्ट बोलना—गदति। जगाद। जगदतुः। गदिता। गदिष्यति। अगादीत्, अगदीत् इत्यादि॥

५३ रद विलेखने=काटना और खोतना—

रदति। रराद। रदिता। अरादीत्; अरदीत्॥

५४ णद अव्यक्ते शब्दे=अप्रकट शब्द होना—

१४६—णो नः ॥६।१।६५॥

धातु के आदि णकार को नकारादेश होवे।

नदति। ननाद। नेदतुः। नेदुः। नेदिथ। नेदथुः। नेद। ननाद। ननद। नेदिव। नेदिम। नदिता। नदिष्यति। नादिषति, नादिषाति। नदतु। अनदत्। नदेत्। नद्यात्। अनादीत्। अनदीत्॥

णोपदेश धातुओं की व्यवस्था—

भा०—सर्वे नादयो णोपदेशाः। नृति, नन्दि, नर्दि, नक्कि, नाटि, नाथृ, नाधृ, नृवर्जम्॥ अ० ६।१।६५॥

नकारादि धातु सब णोपदेश समझने चाहियें, परन्तु नृति आदि धातुओं को छोड़कर। अर्थात् नृति आदि णोपदेश नहीं क्योंकि णोपदेशों को कहा कार्य्य नृति आदि को नहीं होगा॥

५५ अर्द गतौ* याचने च=मांगना—अर्दति। अर्दतः। अर्दन्ति।

१४७—तस्मान्नुड् द्विहलः ॥७।४।७१॥

दीर्घ किये हुये अभ्यास के अकार से परे जो द्विहल् धातु उसको नुट् का आगम होवे॥

---

* इस बात पर भी ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि गति, हिंसा आदि अर्थ जो अनेक धातुओं के बहुधा आते हैं, उनके अर्थ भाषा में बार बार नहीं लिखेंगे। और जिस अर्थ के साथ चकार पढ़ते हैं, वहां पूर्व धातु के अर्थ का समुच्चय सर्वत्र समझना चाहिये॥

'नुट्' टित् होने से अभ्यास से परे द्वितीय भाग के आदि में होता है। 'आ+नुट्+अर्द्+णल्'=आनर्द। आनर्दतुः। आनर्दुः। आनर्दिथः। आनर्दथुः। आनर्द। आनर्द। आनर्दिव। आनर्दिम।

अर्दिता। अर्दिष्यति। अर्दिषति, अर्दिषाति,। अर्दतु। आर्दत्। अर्देत्। अर्द्यात्। आर्दीत्। आर्दिष्टाम्। आर्दिषुः। आर्दिष्यत्॥

५६-५७ नर्द, गर्द शब्दे=शब्द होना—नर्दति। गर्दति। ननर्द। जगर्द। नर्दिता। नर्दिष्यति। नर्दिषति, नर्दिषाति। नर्दतु। अनर्दत। नर्देत्। नर्द्यात्। अनर्दीत्। अनर्दिष्यत्॥

५८ तर्द हिंसायाम्=मारना—तर्दति। ततर्द॥

५९ कर्द कुत्सिते शब्दे=निन्दित शब्द करना—

कर्दति। चकर्द। अकर्दीत्॥

६० खर्द दन्दशूके=दांतों से काटना—

खर्दति। चखर्द। अखर्दीत्। अखर्दिष्यत्॥

६१–६२ अति, अदि बन्धने=बांधना—

(१२७) अन्तति। अन्दति। 'आ+अन्त्+णल्'=आनन्त (१४७)। आनन्द। अन्तिता। अन्तिष्यति। अन्तिषति, अन्तिषाति। अन्ततु। आन्तत्। अन्तेत्। अन्त्यात्। आन्तीत्। आन्तिष्यत्॥

६३ इदि परमैश्वर्य्ये=विद्या, धन, पुत्रादि की प्राप्ति—

'इद्+शप्+तिप्'=इन्दति।

यह धातु नुमागम होने के पश्चात् इजादि गुरुमान् हो जाता है। फिर (१००,१०१,१०२,१०३) इत्यादि सूत्रों में 'इन्द्+आम्+कृ+णल'=इन्दाञ्चकार। इन्दाञ्चक्रतुः। इन्दाञ्चक्रुः।

१४८—कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ॥७।२।१३॥

कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु, इन धातुओं से परे जो लिट् वलादि आर्द्धधातुक उसको इट् का आगम न होवे।

कृ आदि सब धातु अनिट् हैं, इनसे परे सामान्य आर्द्धधातुक को इट् का निषेध हो ही जाता, फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि जितने अनिट् धातु हैं, उन सब से परे लिट् को इडागम हो जावे, इन कृ आदि से परे न हो। इसी नियम से एधाञ्चकृषे; एधाञ्चकृवहे; एधाञ्चकृमहे; ऊर्दाञ्चकृषे इत्यादि में इट् नहीं होता। और थल् में विशेष है—

१४९—ऋतो भारद्वाजस्य ॥७।२।६३॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् जो ऋकारान्त धातु, उस से परे थल् वलादि आर्द्धधातुक को भारद्वाज आचार्य के मत में इट् का आगम न होवे।

'इन्दाञ्चकृ+थल' = इन्दाञ्चकर्थ, थल् के पित् होने से गुण हो जाता है।

इन्दाञ्चक्रथुः। इन्दाञ्चक्र। इन्दाञ्चकार (१४३); इन्दाञ्चकर। इन्दाञ्चकृव। इन्दाञ्चकृम।

इन्दिता। इन्दिष्यति। इन्दिषति, इन्दिषाति। इन्दतु। ऐन्दत्। इन्देत्। इन्द्यात्। ऐन्दीत्। ऐन्दिष्यत्॥

६४–६५ बिदि, भिदि अवयवे = अवयव करना—

बिन्दति। भिन्दति। बिबिन्द। बिभिन्द। बिन्दिता। बिन्दिष्यति। बिन्दिषति, बिन्दिषाति। बिन्दतु। अबिन्दत्। बिन्देत्। बिन्द्यात्। अबिन्दीत्। अबिन्दिष्यत्॥

६६ गडि वदनैकदेशे = मुख का अवयव—

गण्डति। जगण्ड। गण्डिता। गण्डिष्यति॥

६७ णिदि कुत्सायाम् = निन्दा—निन्दति। निनिन्द।

६८ टुनदि समृद्धौ = सम्पत् का होना—

१५०—आदिर्ञिटुडवः ॥१।३।५॥

धातु के आदि जो ञि, टु और डु इनकी इत्संज्ञा हो।

यहाँ टुनदि धातु के टु की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। नन्दति। ननन्द। नन्दिता। नन्दिष्यति॥

६९ चदि आह्लादने दीप्तौ च=आनन्द और प्रकाश का होना—चन्दति । चचन्द ॥

७० त्रदि चेष्टायाम्=अवयवों का चलाना ।

त्रन्दति । तत्रन्द । त्रन्दिता ॥

७१—७३ कदि, क्रदि, क्लदि आह्वाने रोदने च=बुलाना, रोना—

कन्दति । क्रन्दति । क्लन्दति । चकन्द । चक्रन्द । चक्लन्द । कन्दिता । कन्दिष्यति । कन्दिषति, कन्दिषाति । कन्दतु । अकन्दत् । कन्देत् । कन्द्यात् । अकन्दीत् । अकन्दिष्यत् ॥

७४ क्लिदि परिदेवने=क्लेश होना—क्लिन्दति । चिक्लिन्द । क्लिन्दिता ॥

७५ शुन्ध शुद्धौ=पवित्र करना=शुन्धति । शुशुन्ध । शुन्धिता । शुन्धिष्यति । शुन्धिषति, शुन्धिषाति । शुन्धतु । अशुन्धत् । शुन्धेत् । 'शुन्ध्+यासुट्+तिप्'=शुध्यात् (१३९) । अशुन्धीत् । अशुन्धिष्यत् ॥—

अतादय उदात्ता उदात्तेतोऽष्टत्रिंशत् परस्मैपदिनः समाप्ताः ॥

अथ चतुर्नवतिः कवर्गीयान्ताः ॥

अब आगे कवर्गीयान्त ९४ चौरानवें धातुओं का व्याख्यान है ।

उनमें प्रथम 'शीकृ' आदि ४२ बयालीस आत्मनेपदी हैं—

७६ शीकृ सेचने=सींचना—ऋकार की इत्संज्ञा । 'एध्' के समान प्रयोगसिद्धि जानो । शीकते । शिशीके । शीकिता । शीकिष्यते । शीकिषतै, शीकिषातै । शीकताम् । अशीकत । शीकेत । शीकिषीष्ट । अशीकिष्ट । अशीकिष्यत ॥

७७ लोकृ दर्शने=देखना—लोकते । लोकेते । लोकन्ते । लोकसे । लोकेथे । लोकध्वे । लोके । लोकावहे । लोकामहे ।

लुलोके । लुलोकाते । लुलोकिरे । लुलोकिषे । लुलोकाथे । लुलोकिध्वे । लुलोके । लुलोकिवहे । लुलोकिमहे ।

लोकिता । लोकितारौ । लोकितारः । लोकितासे । लोकितासाथे । लोकिताध्वे । लोकिताहे । लोकितास्वहे । लोकितास्महे ।

लोकिष्यते । लोकिष्येते । लोकिष्यन्ते । लोकिष्यसे । लोकिष्येथे । लोकिष्यध्वे । लोकिष्ये । लोकिष्यावहे । लोकिष्यामहे ।

लोकिषतै । लोकिषातै । लोकिषते । लोकिषाते । लोकतै । लोकातै । लोकते । लोकाते । लोकिषैते २ । लोकैते २ । लोकिषन्तै । लोकिषान्तै । लोकिषन्ते । लोकिषान्ते । लोकन्तै । लोकान्तै । लोकन्ते । लोकान्ते । लोकिषसै । लोकिषासै । लोकिषसे । लोकिषासे । लोकसै । लोकासै । लोकसे । लोकासे । लोकिषैथे २ । लोकैथे २ । लोकिषध्वै । लोकिषाध्वै । लोकिषध्वे । लोकिषाध्वे । लोकध्वै । लोकाध्वै । लोकध्वे । लोकाध्वे । लोकिषै २ । लोकिषे २ । लोकै २ । लोके २ । लोकिषावहै २ । लोकिषावहे २ । लोकावहै २ । लोकावहे २ । लोकिषामहै २ । लोकिषामहे २ । लोकामहै २ । लोकामहे २ ।

लोकताम् । लोकेताम् । लोकन्ताम् । लोकस्व । लोकेथाम् । लोकध्वम् । लोकै । लोकावहै । लोकामहै ।

अलोकत । अलोकेताम् । अलोकन्त । अलोकथाः । अलोकेथाम् । अलोकध्वम् । अलोके । अलोकावहि । अलोकामहि ।

लोकेत । लोकेयाताम् । लोकेरन् । लोकेथाः । लोकेयाथाम् । लोकेध्वम् । लोकेय । लोकेवहि । लोकेमहि ।

लोकिषीष्ट । लोकिषीयास्ताम् । लोकिषीरन् । लोकिषीष्ठाः । लोकिषीयास्थाम् । लोकिषीध्वम् । लोकिषीय । लोकिषीवहि । लोकिषीमहि ।

अलोकिष्ट । अलोकिषाताम् । अलोकिषत । अलोकिष्ठाः । अलोकिषाथाम् । अलोकिढ्वम् । अलोकिषि । अलोकिष्वहि । अलोकिष्महि ।

अलोकिष्यत । अलोकिष्येताम् । अलोकिष्यन्त । अलोकिष्यथाः । अलोकिष्येथाम् । अलोकिष्यध्वम् । अलोकिष्ये । अलोकिष्यावहि । अलोकिष्यामहि ॥

७८ श्लोकृ सङ्घाते=इकट्ठा करना—

इस धातु का अर्थ योगरूढ़ होने से धर्म का सञ्चय 'कीर्ति' और पदवाक्यों का संचय 'श्लोक' कहाता है। श्लोकते। शुश्लोके। श्लोकिता। श्लोकिष्यते। श्लोकिषतै, श्लोकिषातै। श्लोकताम्। अश्लोकत। श्लोकेत। श्लोकिषीष्ट। अश्लोकिष्ट। अश्लोकिष्यत।

७९-८० द्रेकृ, ध्रेकृ शब्दोत्साहयोः=शब्द करना और उत्साह होना—

द्रेकते। दिद्रेके। द्रेकिता। द्रेकिष्यते। द्रेकिषतै, द्रेकिषातै। द्रेकताम्। अद्रेकत। द्रेकेत। द्रेकिषीष्ट। अद्रेकिष्ट। अद्रेकिष्यत। ध्रेकते। दिध्रेके।

८१ रेकृ शङ्कायाम्=सन्देह करना—रेकते। रिरेके। रेकिता। रेकिष्यते॥

८२-८६ सेकृ, स्रेकृ, स्रकृ, श्रकि, श्लकि गत्यर्थाः=इन पांचों का गति अर्थ है—सेकते। सिसेके। स्रेकते। सिस्रेके। स्रङ्कते। सस्रङ्के। श्रङ्कते। शश्रङ्के। श्लङ्कते। शश्लङ्के॥

८७ शकि शङ्कायाम्=संशय होना—शङ्कते। शशङ्के॥

८८ अकि लक्षणे=चिह्न—अङ्कते। 'अङ्क+अङ्क्+एश्'=आनङ्के (११०, १४७)। आनङ्काते। आनङ्किरे। अङ्किता। अङ्किष्यते॥

८९ वकि कौटिल्ये=टेढ़ा होना—वङ्कते। ववङ्के। वङ्किता। वङ्किष्यते। वङ्किषतै, वङ्किषातै। वङ्कताम्। अवङ्कत। वङ्केत। वङ्किषीस्ट अवङ्किष्ट। अवङ्किष्यत॥

९९ मकि मण्डने=भूषण—मङ्कते। ममङ्के॥

९१ ककि लौल्ये=चलित होना—कङ्कते। चकङ्के॥

९२-९३ कुक, वृक आदाने=लेना—कोकते। चुकुके। वर्कते। ववृके॥

१५१—वा०—ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन॥ [१।२।४॥]

जिनकी उपधा में ऋकार हो, उन धातुओं से परे लिट् प्रत्यय, गुण होने से पूर्व विप्रतिषेध करके कित्वत् होजावे।

प्रयोजन यह है कि ऋदुपध धातुओं से भी लुट् आदि आर्धधातुक प्रत्ययों के परे गुण को अवकाश है। और अपित् लिट् अतुस् आदि में संप्रसारण, गुण का निषेध होना कित्व को अवकाश है। और 'ववृके' आदि में परत्व से गुण प्राप्त है, सो न हो जावे ॥

९४ चक तृप्तौ प्रतिघाते च=तृप्त होना और मारना—चकते। चेके; चेकाते; चेकिरे। चकिता। चकिष्यते। चाकिषतै; चाकिषातै; चकिषतै; चाकिषातै; चाकिषते; चाकिषाते; चकिषते; चकिषाते; चकतै; चकातै; चकते; चकाते; चाकिषैते २; चकिषैते २; चकैते २; इत्यादि। चकताम्। अचकत। चकेत। चकिषीष्ट। अचकिष्ट। अचकिष्यत ॥

९५—१०९ ककि, वकि, श्वकि, त्रकि, ढौकृ, त्रौकृ, ष्वस्क, वस्क, मस्क, टिकृ, टीकृ, तिकृ, तीकृ, रघि, लघि, गत्यर्थाः=ये १५ पन्द्रह धातु गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) अर्थ में हैं—

कङ्कते। चकङ्के। वङ्कते। ववङ्के। श्वङ्कते। शश्वङ्के। त्रङ्कते। तत्रङ्के। ढौकते। डुढौके। त्रौकते। तुत्रौके।

१५२–वा०–सादेशे सुब्धातुष्ठिवुष्वस्कतीनां सत्वप्रतिषेधः ॥ ६।१।६४ ॥

सुब्धातु=नामधातु, ष्ठिवु और ष्वस्क धातुओं के आदि षकार को दन्त्य सकार न होवे। जैसे—सुब्धातु—षोढ़ इवाचरति—षोढीयति। षण्ढीयति। ष्ठिवु धातु आगे आवेगा। ष्वस्क—

ष्वस्कते; ष्वस्कते; ष्वस्केन्ते। षष्वस्के। ष्वस्किता। ष्वस्किष्यते। ष्वस्किषतै; ष्वस्किषातै। ष्वस्कताम्। अष्वस्कत। ष्वस्केत। ष्वस्किषीष्ट। अष्वस्किष्ट। अष्वस्किष्यत।

वस्कते। ववस्के। मस्कते। ममस्के। टेकते। टिटिके; टिटिकाते; टिटिकिरे। टेकिता। टेकिष्यते। टेकिषतै; टेकिषातै। टेकताम्। अटेकत। टेकेत। टेकिषीष्ट। अटेकिष्ट। अटेकिष्यत। टीकते। टिटीके। तेकते तितिके। तीकते। तितीके। रङ्घते। ररङ्घे। लङ्घते। ललङ्घे ॥

लघि भोजननिवृत्तौ च = लङ्घन करना ॥

११०—११२ अघि, वघि, मघि गत्याक्षेपे = निन्दित चलना—अङ्घते । आनङ्घे; आनङ्घाते; आनङ्घिरे । अङ्घिता । अङ्घिष्यते । वङ्घते । ववङ्घे । मङ्घते । ममङ्घे ।

मघि कैतवे च = धूर्त्तपन ॥

११३—११६ राघृ, लाघृ, द्राघृ, ध्राघृ सामर्थ्ये = समर्थ होना—

राघते । रराघे । लाघते । ललाघे । द्राघते । दद्राघे । ध्राघते । दध्राघे ॥

द्राघृ आयामे च = विस्तार होना ॥

११७ श्लाघृ कत्थने = प्रशंसा करना—श्लाघते । शश्लाघे । श्लाघिता । श्लाघिष्यते । श्लाघिषतै; श्लाघिषातै । श्लाघताम् । अश्लाघत । श्लाघेत । श्लाघिषीष्ट । अश्लाघिष्ट । अश्लाघिष्यत ॥

इति शीकादय उदात्ता अनुदात्तेतो द्विचत्वारिंशद् आत्मनेभाषाः समाप्ताः ॥

ये शीक आदि सेट् आत्मनेपदी बयालीस ४२ धातु पूरे हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः ॥

अब आगे 'फक्क' आदि परस्मैपदी ५२ धातु लिखते हैं—

११८ फक्क नीचैर्गतौ = मंद मंद चलना वा अयोग्य व्यवहार करना—

फक्कति । पफक्क । फक्किता । फक्किष्यति । फक्किषति; फक्किषाति । फक्कतु । अफक्कत् । फक्केत् । फक्क्यात् । अफक्कीत् । अफक्किष्यत् ।

२१९ तक हसने = हसना—तकति । तताक । तेकतुः । तेकुः । तेकिथ । तेकथुः । तेक । तताक । ततक । तेकिव । तेकिम । तकिता । तकिष्यति । ताकिषति; ताकिषाति; तकिषति; तकिषाति; तकति; तकाति । तकतु । अतकत् । तकेत् । तक्यात् । अताकीत्; अतकीत्; अताकिष्टाम्; अतकिष्टाम् । अतकिष्यत ॥

१२० तकि कृच्छ्रजीवने = कष्ट से जीवना—तङ्कति । ततङ्क । तङ्किता ।

१२१ वुक्क भषणे = भूंसना—वुक्कति । वुवुक्क । वुक्किता । वुक्किष्यति ॥

१२२ कख हसने = हंसना—कखति । चकाख । कखिता । अकाखीत् । अकखीत् ॥

१२३—१२७ ओखृ, राखृ, लाखृ, द्राखृ, ध्राखृ शोषणालमर्थयोः = सूखना, भूषण, पर्याप्ति और निषेध—ऋकार की इत्संज्ञा । ओखति । राखति । ओखाञ्चकार (१००) इत्यादि सूत्र लगते हैं । ओखिता । ओखिष्यति । ओखिषति; ओखिषाति । ओखतु । औखत् । ओखेत् । ओख्यात् । औखीत् । औखिष्यत् ॥

[१२८-१२९ शाखृ, श्लाखृ व्याप्तौ = व्याप्त होना—शाखति । शशाख । शश्लाख ॥]

१३०—१५८ उख, उखि, वख, वखि, मख, मखि, णख, णखि, रख, रखि, लख, लखि, इख, इखि, ईखि, वल्ग, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, तगि, त्वगि, शगि, श्रगि, श्लगि, इगि, रिगि, लिगि गत्यर्थाः = गति—ओखति । 'उ + ओख् + णल्' इस अवस्था में—

१५३—अभ्यासस्याऽसवर्णे ॥ ६ । ४ । ७८ ॥

असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् आदेश हों ॥

यह सूत्र यणादेश का बाधक है । और गुण हो जाने से यह धातु इजादि गुरुमान् तो हो जाता है, परन्तु 'सन्निपातपरिभाषा' अर्थात् जो जिसके आश्रय से समर्थ होता है, वह उसका विरोधी न होना चाहिये । यहां लिडादेश 'णल्' प्रत्यय को मान कर गुण होता है । आम् प्रत्यय के होने से उसी लिडादेश णल् का लुक् हो जावे, इसलिये आम् नहीं होता । 'उ + ओख् + णल्' = उवोख ।

ऊखतुः, यहाँ सवर्ण अच् के परे उवङ् नहीं होता, सवर्णदीर्घ एकादेश हो जाता है। ऊखुः। उवोखिथ। ऊखथुः। ऊख। उवोख। ऊखिव। ऊखिम। ओखिता। ओखिष्यति। ओखिषति; ओखिषाति। ओखतु; ओखतात्। औखत्। ओखेत्। उख्यात्। औखीत्। औखिष्यत्। उङ्खति। उङ्खाञ्चकार; उङ्खाञ्चक्रतुः; उङ्खाञ्चकुः। उङ्खाम्बभूव। उङ्खामास।

ववाख। ववखतुः (१२८)। वङ्खति। ववङ्ख। मखति। ममाख; मेखतुः; मेखुः। मखिता। मखिष्यति। माखिषति; माखिषाति; मखिषति; मखिषाति; मखति; मखाति; माखिषत्; माखिषात्। माखिषद्; माखिषाद्; मखिषत्; मखिषात्; मखिषद्; मखिषाद्; मखत्; मखात्; मखद्; मखाद् इत्यादि। अमाखीत्। अमखीत्।

नखति। ननाख; नेखतुः। नङ्खति। ननङ्ख। एखति। इयेख (१५३)। एखिता। एखिष्यति। ऐखिषति; ऐखिषाति। एखतु; एखतात्। ऐखत्। ऐखेत्। इख्यात्। ऐखीत्। ऐखिष्यत्। इङ्खति। इङ्खाञ्चकार। ऐङ्खीत्। ईङ्खाञ्चकार। वल्गति। ववल्ग। रङ्गति। ररङ्ग। लङ्गति। ललङ्ग। अङ्गति। आनङ्ग (१४७)। वङ्गति। ववङ्ग। इङ्गति। इङ्गाञ्चकार। इङ्गामास। इङ्गाम्बभूव। इङ्गिता। इङ्गिष्यति इत्यादि।

१५९—१६२ रिख; त्रख, त्रखि; शिखि इत्यपि केचित्=रिख आदि चार धातु किन्हीं आचार्यों के मत में पूर्व उख आदि धातु के समान गत्यर्थ हैं—

रेखति। रिरेख; रिरिखतुः। रेखिता। रेखिष्यति। रेखिषति; रेखिषाति। रेखतु। अरेखत्। रेखेत्। रिख्यात्। अरेखीत्। अरेखिष्यत्। त्रखति। तत्राख। त्रङ्खति तत्रङ्ख। शिङ्खति। शिशिङ्ख॥

त्वगि कम्पने च=कांपना—त्वङ्गति। तत्वङ्ग॥

१६३—१६५ युगि, जुगि, बुगि वर्जने=वर्ज देना—युङ्गति। युयुङ्ग।

१६६ घघ हसने=हंसना—घघति। जघाघ; जघघ। घाघिषति; घाघिषाति; घघिषति; घघिषाति। अघाघीत्; अघघीत्। अघघिष्यत्॥

१६७ मघि मण्डने=समाधान करना—मङ्घति । ममङ्घ ॥

१६८ लघि शोषणे—लङ्घति । ललङ्घ ॥

१६९ शिघि आघ्राणे=सूंघना—

शिङ्घति । शिशिङ्घ । शिङ्घिता । शिङ्घिष्यति । शिङ्घिषति; शिङ्घिषाति । शिङ्घतु । अशिङ्घत् । शिङ्घेत् । शिङ्घ्यात् । अशिङ्घीत् । अशिङ्घिष्यत् ॥

इति फक्कादय उदात्ता उदात्तेतो द्विपंचाशत् समाप्ताः ॥

फक्क आदि ५२ धातु समाप्त हुए ॥

अथ चवर्गीयान्तास्त्रिनवतिः ॥

अब यहाँ से आगे ९३ तिरानवे धातुओं का व्याख्यान है । [उनमें प्रथम 'वर्च' आदि इक्कीस आत्मनेपदी हैं ।]

१७० वर्च दीप्तौ=प्रकाश होना—वर्चते । ववर्चे । वर्चिता । वर्चिष्यते । वर्चिषतै; वर्चिषातै । वर्चताम् । अवर्चत । वर्चेत । वर्चिषीष्ट । अवर्चिष्ट । अवर्चिष्यत ॥

१७१ षच सेचने सेवने च=सींचना, सेवा करना—

सचते । सेचे; सेचाते; सेचिरे । सचिता । सचिष्यते । साचिषतै; साचिषातै; साचिषते; साचिषाते; सचिषतै; सचिषातै; सचिषते; सचिषाते; सचतै; सचातै । सचते; सचाते । सचताम् । असचत । सचेत । सचिषीष्ट । असचिष्ट । असचिष्यत ॥

१७२ लोचृ दर्शने=देखना—लोचते । लुलोचे । लोचिषतै; लोचिषातै ॥

१७३ शच व्यक्तायां वाचि=स्पष्ट बोलना—

शचते । शेचे । शाचिषतै; शाचिषातै । अशचिष्ट ॥

१७४-१७५ श्वच, श्वचि गतौ—श्वचते । श्वञ्चते । शश्वचे । शश्वञ्चे । श्वचिषतै ॥

१७६ कच बन्धने = बांधना—कचते । चकचे । कचिता । कचिष्यते । काचिषतै; काचिषातै । कचताम् । अकचत । कचेत । कचिषीष्ट । अकचिष्ट । अकचिष्यत ॥

१७७—१७८ कचि, काचि दीप्तिबन्धनयोः = प्रकाश और बांधना—कञ्चते । काञ्चते । चकञ्चे । चकाञ्चे ॥

१७९—१८० मच, मुचि कल्कने = अभिमान करना—

मचते । मुञ्चते । मेचे । मुमुञ्चे । मचिता । मचिष्यते । माचिषतै; माचिषातै । मचताम् । अमचत । मचेत । मचिषीष्ट । अमचिष्ट । अमचिष्यत ॥

१८१ मचि धारणोच्छ्रायपूजनेषु = धारण, बढ़ना, सत्कार करना—मञ्चते । ममञ्चे । मञ्चिषतै; मञ्चिषातै ॥

१८२ पचि व्यक्तीकरणे = प्रकट करना—पञ्चते । पपञ्चे । पञ्चिषतै; पञ्चिषातै ॥

१८३ ष्टुच प्रसादे = प्रसन्न होना—स्तोचते । तुष्टुचे । स्तोचिषतै; स्तोचिषातै । स्तोचताम् । अस्तोचत । स्तोचेत । स्तोचिषीष्ट । अस्तोचिष्ट । अस्तोचिष्यत ॥

१८४ ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु = गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति,) स्थिति, संचय, समीप में वस्तु जोड़ना—अर्जते । 'ऋज्+ऋज्+एश्' = आनृजे (१०६; ३८; ११०; १४७); आनृजाते; आनृजिरे । अर्जिता । अर्जिष्यते । अर्जिषतै; अर्जिषातै । अर्जताम् । आर्जत । अर्जेत । अर्जिषीष्ट । आर्जिष्ट । आर्जिष्यत ॥

१८५—१८६ ऋजि, भृजी भर्जने = भूजना—ऋञ्जते । भर्जते । ऋञ्जाञ्चक्रे । बभृजे । ऋञ्जिता । भर्जिता । ऋञ्जिष्यते । आर्ञ्जिष्ट । अभर्जिष्ट ॥

१८७-१८९ एजृ, भ्रेजृ, भ्राज, दीप्तौ = प्रकाश होना—एजते । एजाञ्चक्रे । एजाम्बभूव । एजामास । एजिता । एजिष्यते । एजिषतै; एजिषातै । एजताम् । ऐजत । एजेत । एजिषीष्ट । ऐजिष्ट । ऐजिष्यत । भ्रेजते । बिभ्रेजे । भ्राजते । बभ्राजे इत्यादि ॥

१९० ईज गतिकुत्सनयोः=गति, निन्दा—ईजते। ईजाञ्चक्रे। ईजाम्बभूव। ईजामास। ईजिता। ईजिष्यते। ईजिषतै; ईजिषातै। ईजताम्। ऐजत। ईजेत। ईजिषीष्ट। ऐजिष्ट। ऐजिष्यत॥

इति वर्चादय उदात्त अनुदात्तेत एकविंशतिः समाप्ताः॥

अथ द्विसप्ततिर्व्रज्यन्ताः परस्मैपदिनः॥

अब यहां से आगे परस्मैपदी ७२ बहत्तर धातुओं का व्याख्यान है—

१९१ शुच शोके=शोचना—शोचति। शुशोच; शुशुचतुः। शोचिता। शोचिष्यति। शोचिषति; शोचिषाति; शोचिषत्; शोचिषात्; शोचिषद्; शोचिषाद्; शोचति; शोचाति। शोचतु। अशोचत्। शोचेत्। शुच्यात्। अशोचीत्। अशोचिष्यत्॥

१९२ कुच शब्दे तारे=एकरस शब्द होना—

कोचति। चुकोच। कोचिषति; कोचिषाति॥

१९३-१९४ कुञ्च, क्रुञ्च, गतिकौटिल्याल्पीभावयोः=टेढ़ा चलना, थोड़ा होना—

कुञ्चति। क्रुञ्चति। चुकुञ्च। चुक्रुञ्च। कुच्यात् (१३९)। क्रुच्यात्॥

१९५ लुञ्च अपनयने=दूर करना—

लुञ्चति। लुलुञ्च। लुञ्चिता। लुच्यात् (१३९) अलुञ्चत्। अलुञ्चिष्यत्॥

१९६ अञ्चु गतिपूजनयोः=गति और पूजा—

अञ्चति। अञ्चिषति; अञ्चिषाति। अच्यात्*॥

---

* अञ्चु धातु के नकार का लोप गति अर्थ में ही होता है। और 'नाञ्चेः पूजायाम्॥ अ० ६। ४। ३०॥' इस सूत्र से पूजा अर्थ में नकार का लोप नहीं होता, वहां 'अञ्च्यात्' प्रयोग होता है।

१९७—२०४ वच्चु, चञ्चु, तञ्चु, त्वञ्चु, म्रुञ्चु, म्लुञ्चु, म्रुचु, म्लुचु गत्यर्थाः—वञ्चति । वच्यात् । चच्यात् । तच्यात् । त्वच्यात् । म्रुच्यात् । म्लुच्यात् ।

१.५४—जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥ ३ । १ । ५८ ॥

जॄ, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु और श्वि धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उसके स्थान में अङ् आदेश विकल्प करके होवे।

अम्रुचत्; अम्रोचीत् । अम्लुचत्; अम्लोचीत् ॥

२०५—२०८ ग्रुचु, ग्लुचु, कुजु, खुजु, स्तेयकरणे = चोरी करना—

ग्रोचति । जुग्रोच । जुग्रुचतुः । ग्रोचिता । ग्रोचिष्यति । ग्रोचिषति; ग्रोचिषाति । ग्रोचतु । अग्रोचत् । ग्रोचेत् । ग्रुच्यात् । अग्रुचत् । अग्रोचीत् । ग्लोचति । ग्लुच्यात् । अग्लुचत् । अग्लोचीत् । कोजति । चुकोज । कुज्यात् । अकोजीत् । खुज्यात् । अखोजीत् ॥

२०९—२१० ग्लुञ्चु, षस्ज गतौ—ग्लुञ्चति । जुग्लुञ्च । ग्लुच्यात् (१३९) । अग्लुचत् । अग्लोचीत् । सज्जति* । ससज्ज । सज्जिता । सज्जिष्यति । सज्जिषति । सज्जिषाति । सज्जतु । असज्जत् । सज्जेत् । सज्ज्यात् । असज्जीत् । असज्जिष्यत् ।

'सज्जतिः' स्वरितेदित्येके—किन्हीं आचार्य्यों के मत में यह सज्ज धातु स्वरितेत् अर्थात् आत्मनेपदी भी है, इससे—सज्जते । ससज्जे इत्यादि प्रयोग भी होते हैं ॥

२११-२१२ [गुज] गुजि अव्यक्ते शब्दे = अप्रकट शब्द का होना—[गोजति । जुगोज ।] गुञ्जति । जुगुञ्ज । गुञ्ज्यात् । अगुञ्जीत् । अगुञ्जिष्यत् ॥

---

* सस्ज धातु के हल् सकार को 'स्तोः श्चुना श्चुः' इस सूत्र से शकार, और उस शकार को 'झलां जश् झशि' इस सूत्र से जकार हो जाता है ॥

२१३ अर्च पूजायाम्—अर्चति। आनर्च (११०; १४७)। अर्चिता। अर्चिष्यति। अर्चिषति; अर्चिषाति। अर्चतु। आर्चत्। अर्चेत्। अर्च्यात्। आर्चीत्। आर्चिष्यत्॥

२१४ म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे—म्लेच्छति। मिम्लेच्छ॥

२१५-२१६ लछ, लाछि लक्षण = चिह्न करना—

लच्छति। ललच्छ। लच्छिता लच्छिष्यति। लच्छिषति; लच्छिषाति। लच्छतु। अलच्छत्। लच्छेत्। लच्छ्यात्। अलच्छीत्। अलच्छिष्यत्। लाञ्छति। ललाञ्छ॥

२१७ वाछि इच्छायाम्—वाञ्छति। ववाञ्छ॥

२१८ आछि आयामे = विस्तार—आञ्छति। आञ्छ। आञ्छिता। आञ्छिष्यति। आञ्छिषति; आञ्छिषाति। आञ्छतु। आञ्छत्। आञ्छेत्। आञ्छ्यात्। आञ्छीत्। आञ्छिष्यत्॥

२१९ ह्रीछ लज्जायाम्—ह्रीच्छति। जिह्रीच्छ॥

२२० हुर्छा कौटिल्ये = कुटिलपन—(१३०) इस सूत्र से रेफ की उपधा को दीर्घ होकर हूर्छति। जुहूर्छ। हूर्छिता। हूर्छिष्यति। हूर्छिषति; हूर्छिषाति। हूर्छतु। अहूर्छत्। हूर्छेत्। हूर्छ्यात्। अहूर्छीत्। अहूर्छिष्यत्॥

२२१ मूर्छा मोहसमुच्छ्राययोः = अज्ञान, बढ़ना—मूर्छति। मुमूर्छ॥

२२२ स्फुर्छा विस्तृतौ = विस्तार—स्फूर्छति। पुस्फूर्छ (१२४) अस्फूर्छीत्॥

२२३ युच्छ प्रमादे—युच्छति। युयुच्छ॥

२२४ उछि उञ्छे = ऊंछना—

उञ्छति। उञ्छाञ्चकार। उञ्छाम्बभूव। उञ्छामास। उञ्छिता। उञ्छिष्यति। उञ्छिषति; उञ्छिषाति। उञ्छतु। औञ्छत्। उञ्छेत्। उञ्छ्यात्। औञ्छीत्। औञ्छिष्यत्॥

२२५ उछी विवासे=समाप्ति—व्युच्छति । उच्छति ।

उछी धातु के बहुधा वि उपसर्गपूर्वक ही प्रयोग आते हैं । और इस में धातुच्छकार के परे तुगागम होने से इजादि गुरुमान् होने से आम् प्रत्यय प्राप्त है । परन्तु उपदेश में इजादि गुरुमान् नहीं, इससे आम् प्रत्यय नहीं होता ॥

२२६—२३१ ध्रज, ध्रजि, धृज, धृजि, ध्वज, ध्वजि गतौ—

ध्रजति । ध्रञ्जति । धर्जति । धृञ्जति । ध्वजति । ध्वञ्जति । दध्राज । दध्रञ्ज । दधर्ज । दधृजतुः । दधृञ्ज । दध्वाज । दध्वञ्ज । अध्राजीत्; अध्रजीत् । अध्रञ्जीत् । अधर्जीत् । अधृञ्जीत् । अध्वाजीत्; अध्वजीत् । अध्वञ्जीत् ॥

२३२ कूज अव्यक्ते शब्दे—कूजति । चकूज । अकूजीत् ॥

२३३-२३४ अर्ज, षर्ज अर्जने=संचय करना—अर्जति । आनर्ज । अर्जिता । अर्जिष्यति । अर्जिषति; अर्जिषाति । अर्जतु । आर्जत् । अर्जेत् । अर्ज्यात् । आर्जीत् । आर्जिष्यत् सर्जति । ससर्ज ॥

२३५ गर्ज शब्दे=गर्जना—गर्जति । जगर्ज ॥

२३६ तर्ज भर्त्सने=धमकाना—तर्जति ॥

२३७ कर्ज व्यथने=पीड़ा देना—कर्जति । चकर्ज ॥]

२३८ खर्ज पूजने=सत्कार—खर्जति । चखर्ज ॥

२३९ अज गति-क्षेपणयोः=गति और फेंकना—

अजति; अजतः; अजन्ति ।

१५५–अजेर्व्यघञपोः ॥२।४।५६॥

घञ् और अप् प्रत्ययों को छोड़ कर अन्य आर्द्धधातुकविषय में अज धातु को वी आदेश होवे । यहाँ 'लिट्' में वी होकर 'वी+वी+णल्'=विवाय (६०) ।

१५६–एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ॥६।४।८२॥

संयोग जिसके पूर्व न हो, ऐसा जो अनेकाच् धातु का अवयव इवर्ण, उसको अच् परे हो तो यण् आदेश हो जावे। 'वी+वी+अतुस्,' = विव्यतुः। विव्युः।

यहाँ यणादेश होने के पश्चात् वकार की उपधा अभ्यास के इकार को (१३०) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है, परन्तु (स्वरदीर्घयलोपविधिषु लोपाजादेशो न स्थानिवत्) इस वार्त्तिक से दीर्घविधि के करने में लोपरूप जो अच् के स्थान में आदेश है, वही स्थानिवत् न हो अन्य आदेश तो स्थानिवत् हो ही जावे। इससे यणादेश के स्थानिवत् हो जाने से दीर्घ नहीं होता।

अब इस 'वि' अनिट् धातु से परे थल् में (१४८) सूत्र के नियम से नित्य इडागम प्राप्त हुआ।

१५७–अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ॥७।२।६१॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् जो अजन्त धातु, उनसे परे जो थल् वलादि आर्द्धधातुक, उसको इट् का आगम न होवे।

फिर (१४९) सूत्र से भारद्वाज आचार्य के मत में ऋकारान्तों के निषेध का नियम होने से भारद्वाज के मत में इस 'वी' धातु से परे थल् को इट् होता है, अन्य ऋषियों के मत में नहीं। 'वि वी इट् थल्' = विवयिथ; विवेथ।

विव्यथुः। विव्य। विवाय; (१४३) विवय, यहाँ णित् के विकल्प होने से पक्ष में (२१) से गुण हो जाता है। विव्यिव। विव्यिम।

और वलादि आर्द्धधातुकविषय में महाभाष्य के (इदमपि सिद्धं भवति प्राजितेति) इत्यादि व्याख्यानरूप प्रमाण से विकल्प करके 'वी' आदेश होता है। इससे थल् में 'आजिथ' यह भी प्रयोग होता है।

'लुट्'—वेता । वेतारौ । वेतारः । वेतासि । वेतास्थः । वेतास्थ । वेतास्मि । वेतास्वः । वेतास्मः । अजिता । अजितारौ । अजितारः ।

वेष्यति । वेष्यतः । वेष्यन्ति । अजिष्यति । वैषति; वैषाति; वैषत्; वैषात्; वैषद्; वैषाद्; वेषति; वेषाति: वेषत्: वेषात्; वेषद्; वेषाद् । आजिषति; आजिषाति; अजिषनि; अजिषानि इत्यादि । अजतु । आजत् । अजेत् । वीयात् ।

१५८–सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ॥७॥२।१॥

परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो, तो इगन्त अङ्ग को वृद्धि होवे । 'अट्+वी+सिच्+तिप्=अवैषीत् । अवैष्टाम् । अवैषुः । अवैषीः । अवैष्टम् । अवैष्ट । अवैषम् । अवैष्व । अवैष्म । आजीत्; आजिष्टाम् । आजिषुः । अवेष्यत् । आजिष्यत् ॥

२४० तेज पालने=पालना—

तेजति । तितेज । तेजिता । तेजिष्यति । तेजिषति; तेजिषाति । तेजतु । अतेजत् । तेजेत् । तेज्यात् । अतेजीत् । अतेजिष्यत् ॥

२४१ खज मन्थे=विलोडना—

खजति । चखाज; चखज । अखाजीत्; अखजीत् ॥

२४२ खजि गतिवैकल्ये=बुरे प्रकार चलना—

खञ्जति । चखञ्ज ॥

२४३ एजृ कम्पने=कांपना—

एजति । एजाञ्चकार । एजाम्बभूव । एजामास । एजिता । एजिष्यति । एजिषति; एजिषाति । एजतु । ऐजत् । एजेत् । एज्यात् । ऐजीत् । ऐजिष्यत् ।

२४४ टुओस्फूर्जा वज्रनिर्घोषे=भयंकर शब्द होना—टु की इत्संज्ञा (१५०) से और ओकार की (उपदेशे०) सूत्र से इत्संज्ञा होकर स्फूर्जति । पुस्फूर्ज । स्फूर्जिता । स्फूर्जिष्यति । स्फूर्जिषति; स्फूर्जिषाति ॥

२४५ क्षि क्षये=नाश—यह धातु अकर्म्मक और अनिट् है। क्षयति (२१)। क्षयतः। क्षयन्ति। क्षयसि। क्षयथः। क्षयथ। क्षयामि। क्षयावः। क्षयामः। चिक्षाय (६०)।

१५६–अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ॥६।४।७७॥

श्नु प्रत्यय, धातु और भ्रू शब्द इन के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् आदेश यथासंख्य करके हों, अच् परे हो तो। 'क्षि+क्षि+अतुस्'= चिक्षियतुः। चिक्षियुः।

चिक्षयिथ (१४८, १४९); चिक्षेथ; चिक्षियथुः। चिक्षिय। चिक्षाय। चिक्षय। चिक्षियिव। चिक्षियिम।

क्षेता। क्षेतारौ। क्षेतारः। क्षेष्यति। क्षैषति; क्षैषाति; क्षेषति; क्षेषाति। क्षयतु। अक्षयत्। क्षयेत्।

१६०–अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ॥७।४।२५॥

कृत्संज्ञक प्रत्यय और सार्वधातुक विषय को छोड़कर यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों, तो अजन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश हो।

'क्षि+यासुट्+तिप्' क्षीयात्। क्षीयास्ताम्। क्षीयासुः। क्षीयाः।

अक्षैषीत्। अक्षैष्टाम्। अक्षैषुः। अक्षैषीः। अक्षैष्टम्। अक्षैष्ट। अक्षैषम्। अक्षैष्व। अक्षैष्म। अक्षेष्यत्॥

२४६ क्षीज अव्यक्ते शब्दे—

क्षीजति। चिक्षीज। अक्षीजीत्। अक्षीजिष्यत्॥

२४७-२४८ लज, लजि भर्जने=भूंजना—

लजति। ललाज; ललज। लाजिषति; लाजिषाति। अलाजीत्; अलजीत्। लञ्जति। ललञ्ज॥

२४९-२५० लाज, लाजि भर्त्सने च=धमकाना—

लाजति। ललाज; ललाजतुः। लाञ्जति॥

२५१-२५२ जज, जजि युद्धे = लड़ाई—

जजति । जजाज; जजञ्ज । जाजिषति; जाजिषाति । अजाजीत्; अजजीत् । जञ्जति । जजञ्ज ॥

२५३ तुज हिंसायाम्—तोजति । तुतोज; तुतुजतुः । तोजिता ॥

२५४ तुजि पालने च = चकार से हिंसा अर्थ भी जानो—

तुञ्जति । तुतुञ्ज ॥

२५५—२६० गज, गजि, गृज, गृजि, मुज, मुजि शब्दार्थाः = शब्द होना—गजति । गञ्जति । गर्जति। गृञ्जति । मोजति । मुञ्जति । जगाज । जगञ्ज । जगर्ज । जगृञ्ज । मुमोज । मुमुञ्ज । अगाजीत्; अगजीत् ॥

गज मदे च = अहंकार—चकार से शब्दार्थ भी है ॥

२६१-२६२ वज, व्रज, गतौ—

वजति । ववाज । ववजतुः ववजुः । ववाज; ववज । वाजिषति; वाजिषाति । वजतु । अवजत् । वजेत् । वज्यात् । अवाजीत्; अवजीत् । अवजिष्यत् । व्रजति । वव्राज । अव्राजीत् (१३५) से नित्य वृद्धि होती है ।

१६१—तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ॥६।१।७॥

तुज आदि जिन धातुओं के अभ्यास को वेद में दीर्घादेश आवे, उसकी सिद्धि इस सूत्र से समझनी चाहिये । तूतुजानः । जागाज । मूमोज । वावाज । वाव्राज । दाधार । मामहानः इत्यादि । यह सूत्र सामान्य करके प्रवृत्त होता है ॥

इति शुचादय उदात्तेतः क्षिवर्जं [द्विसप्ततिः] परस्मैपदिनः समाप्ताः ॥

अथ टवर्गीयान्ता अष्टादशाधिकं शतम् ॥

अब टवर्गान्त ११८ एकसौ अठारह धातुओं का व्याख्यान है—

उनमे से प्रथम अट्टादि २६ धातु आत्मनेपदी हैं—

२६३ अट्ट अतिक्रमणहिंसनयोः = उल्लंघना, मारना—

अट्टते । आनट्टे । अट्टिता । अट्टिष्यते । अट्टिषतै । अट्टिषातै ।
अट्टताम् । आट्टत । अट्टेत । अट्टिषीष्ट । आट्टिष्ट । आट्टिष्यत ॥

२६४ वष्ट वेष्टने = लपेटना—वेष्टते । विवेष्टे । अवेष्टिष्ट ॥

२६५ चेष्ट चेष्टायाम् = क्रिया— चेष्टते । चिचेष्टे । अचेष्टिष्ट ॥

२६६-२६७ गोष्ट, लोष्ट सङ्घाते = समुदाय—

गोष्टते । जुगोष्टे । गोष्टिता । गोष्टिष्यते । गोष्टिषतै; गोष्टिषातै ।
गोष्टताम् । अगोष्टत । गोष्टेत । गोष्टिषीष्ट । अगोष्टिष्ट । अगोष्टिष्यत ।
लोष्टते । लुलोष्टे ॥

२६८ घट्ट चलने—घट्टते । जघट्टे । घट्टिता ॥

२६९ स्फुट विकसने = फैलना—

स्फोटते । पुस्फुटे । स्फोटिता । स्फोटिष्यते । स्फोटिषतै; स्फोटिषातै ।
स्फोटताम् । अस्फोटत । स्फोटेत । स्फोटिषीष्ट । अस्फोटिष्ट । अस्फोटिष्यत ॥

२७० अठि गतौ—अण्ठते । आनण्ठे ॥

२७१ वठि एकचर्य्यायाम् = एक का सेवन—वण्ठते । ववण्ठे ॥

२७२-२७३ मठि, कठि शोके = शोचना—मण्ठते । ममण्ठे ।
कण्ठते । चकण्ठे । कण्ठिता । कण्ठिष्यते । कण्ठिषतै; कण्ठिषातै । कण्ठताम् ।
अकण्ठत । कण्ठेत । कण्ठिषीष्ट । अकण्ठिष्ट । अकण्ठिष्यत ।

२७४ मुठि पालने = रक्षा—मुण्ठते । मुमुण्ठे ॥

२७५ हेठ विबाधायाम् = मूर्खता—हेठते । जिहेठे ॥

२७६ एठ च— एठते । एठाञ्चक्रे । एठाम्बभूव । एठामास ॥

२७७ हिडि गत्यनादरयोः = चलना, तिरस्कार—हिण्डते ।
जिहिण्डे । हिण्डिता । हिण्डिष्यते । हिण्डिषतै; हिण्डिषातै । हिण्डताम् ।
अहिण्डत । हिण्डेत । हिण्डिषीष्ट । अहिण्डिष्ट । अहिण्डिष्यत ॥

२७८ हुडि सङ्घाते—हुण्डते । जुहुण्डे ॥

२७९ कुडि दाहे=जलना—कुण्डते । चुकुण्डे ॥

२८० वडि विभाजने=विभाग करना—वण्डते । ववण्डे ॥

२८१ मडि च—मण्डते ॥

२८२ भडि परिभाषणे—बहुत बोलना—

भण्डते । बभण्डे । भण्डिता । भण्डिष्यते । भण्डिषतै; भण्डिषातै । भण्डताम् । अभण्डत । भण्डेत । भण्डिषीष्ट । अभण्डिष्ट । अभण्डिष्यत ॥

२८३ पिडि सङ्घाते— पिण्डते । पिपिण्डे ॥

२८४ मुडि मार्जने=शोधना—मुण्डते । मुमुण्डे ॥

२८५ तुडि तोडने=तोड़ना—तुण्डते ॥

२८६ हुडि वरणे=ग्रहण करना । हरण इत्येके=किन्हीं अचार्यों के मत में यह धातु हरने अर्थ में है—हुण्डते । जुहुण्डे ॥

२८७ चडि कोपे=क्रोध—चण्डते । चचण्डे । चण्डिता ॥ चण्डिष्यते । चण्डिषतै; चण्डिषातै । चण्डताम् । अचण्डत । चण्डेत । चण्डिषीष्ट । अचण्डिष्ट । अचण्डिष्यत ॥

२८८ शडि रुजायां सङ्घाते च=रोग, समुदाय—
शण्डते । शशण्डे ॥

२८९ तडि ताडने=ताड़ना—तण्डते । ततण्डे ॥

२९० पडि गतौ— पण्डते । पपण्डे ॥

२९१ कडि मदे=अहंकार—कण्डते । चकण्डे ॥

२९२ खडि मन्थे—खण्डते । चखण्डे ॥

२९३-२९४ हेडृ, होडृ अनादरे=तिरस्कार—
हेडते । होडते । जिहेडे । जुहोडे ॥

२९५ वाडृ आप्लाव्ये=सब प्रकार चलना—वाडते । ववाडे ॥

२९६-२९७ द्राडृ, ध्राडृ विशरणे = मारना
द्राडते । दद्राडे । ध्राडते । दध्राडे ॥

२९८ शाडृ श्लाघायाम् = अपनी प्रशंसा—शाडते । शशाडे ॥

इत्यट्टादय उदात्ता अनुदात्तेतः । षट्त्रिंशत् समाप्ताः ॥
ये 'अट्ट' आदि ३६ (आत्मनेपदी) धातु समाप्त हुए ।

अथ परस्मैपदिनः द्वासप्ततिः ॥

अब ७२ (बहत्तर) धातु परस्मैपदी कहते हैं—

२९९ शौटृ गर्वे = अभिमान—

शौटति । शुशौट । शौटिता शौटिष्यति । शौटिषति, शौटिषाति । शौटतु । अशौटत् । शौटेत् । शौट्यात् । अशौटीत् । अशौटिष्यत् ॥

३०० यौटृ बंधने = बांधना—यौटति ॥

३०१-३०२ म्लेटृ, म्रेडृ (?) म्रेडृ' उन्मादे = उन्मत्त होना—
म्लेटति । मिम्लेट । म्रेडति । मिम्रेड ॥

३०३ कटे वर्षावरणयोः = वर्षना, ढांकना—इस धातु का एकार इत्संज्ञक होता है, प्रयोजन आगे लिखा है । कटति । चकाट; चकटतुः; चकटुः । कटिता । कटिष्यति । काटिषति; काटिषाति; कटिषति; कटिषाति; कटति; कटाति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् ॥

विकल्प करके वृद्धि (१४४) से प्राप्त है, इसलिए—

१६२—ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ॥७।२।५॥

हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, ण्यन्त, श्वि और एकार जिनका इत् गया हो, उन धातुओं को वृद्धि न हो, इडादि सिच् परे हो तो अकटीत् । अकटिष्यत् ॥

चेटे इत्येके—

किन्हीं आचार्यों के मत में 'कटे' धातु के अर्थ में 'चटे' भी है—
चटति। अचटीत्॥

३०४-३०५ अट, पट गतौ—

अटति। आट; आटतुः; आटुः। आटीत्। आटिष्यत्। पटति। पपाट। पेटतुः। पेटुः। पेटिथ। पेटथुः। पेट। पपाट; पपट। पेटिव। पेटिम। पटिता। पटिष्यति। पाटिषति; पाटिषाति। पटतु। अपटत्। पटेत्। पटचात्। अपाटीत्; अपटीत्। अपटिष्यत्॥

३०६ रट परिभाषणे = बहुत बोलना—

रटति। रराट। रेटतुः। रेटुः। अराटीत्; अरटीत्। अरटिष्यत्॥

३०७ लट बाल्ये = बालकपन—

लटति। ललाट। लेटतुः। लाटिषति; लाटिषाति। लटतु। अलटत्। लटेत्। लटचात्। अलाटीत्; अलटीत्। अलटिष्यत्॥

३०८ शट रुजविशरणगत्यवसादनेषु = रोग, हिंसा, गति, पीड़ा—

शटति। शशाट। शटिता। शटिष्यति। अशाटीत्; अशटीत्। अशटिष्यत्॥

३०९ वट वेष्टने = लपेटना—

वटति। ववाट। ववटतुः (१२८)। अवाटीत्। अवटीत्॥

३१०-३११ किट, खिट त्रासे = भय—केटति। खेटति। चिकेट। चिकिटतुः। चिकिटुः। अकेटीत्। अखेटीत्॥

३१२-३१३ शिट, षिट अनादरे = तिरस्कार—

शेटति। सेटति। सिषेट॥

३१४-३१५ जट, झट, सङ्घाते = समुदाय

जटति। जजाट; जेटतुः। अजाटीत्; अजटीत्। जझाट; जझटतुः॥

३१६ भट भृतौ = सेवा—भटति। बभाट॥

३१७ तट उच्छ्राये = ऊंचाई—तटति। तताट॥

३१८ खट काङ्क्षायाम् = इच्छा—
खटति । चखाट । अखाटीत् । अखटीत् ॥

३१९ णट नृतौ = नाचना—नटति । ननाट; नेटतुः ॥

३२० पिट शब्दसङ्घातयोः = शब्द, समूह—
पेटति । पिपेट । अपेटीत् ॥

३२१ हट दीप्तौ च = प्रकाश—
हटति । जहाट । अहाटीत्; अहटीत् ॥

३२२ षट अवयवे = विभाग करना—
सटति । ससाट; सेटतुः । असाटीत्; असटीत् ॥

३२३ लुट विलोडने = विलोना—लोटति । लुलोट ।

३२४ चिट परप्रेष्ये = दूसरे की सेवा करना—

चेटति । चिचेट । चेटिता । चेटिष्यति । चेटिषति; चेटिषाति । चेटतु । अचेटत् । चेटेत् । चिटयात् । अचेटीत् । अचेटिष्यत् ॥

३२५ बिट शब्दे—बेटति । बिबेट ॥

३२६ विट आक्रोशे = कोशना—वेटति । विवेट ॥

हिट इत्येके—

किन्हीं आचार्यों के मत में 'विट' के स्थान में 'हिट' धातु आक्रोश अर्थ में है । हेटति । जिहेट ॥

३२७-३२९ इट, किट, कटी गतौ—

एटति । केटति । कटति । इयेट (१५३) । चिकेट । चकाट । कटिता । कटिष्यति । काटिषति; काटिषाति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कटयात् । अकाटीत्; अकटीत् । अकटिष्यत् ॥

३३० मडि भूषायाम् = शोभा—मण्डति । ममण्ड ॥

३३१ कुडि वैकल्ये = व्याकुलता—कुण्डति । चुकुण्ड ॥

३३२-३३२ मुट, पुट, मर्दने = मलना—

मोटति । पोटति । मुमोट । पुपोट । मोटिता । मोटिष्यति । मोटिषति; मोटिषाति । मोटतु । अमोटत् । मोटेत् । मुट्यात् । अमोटीत् । अमोटिष्यत् ॥

३३४ चुडि अल्पीभावे = थोड़ा होना—चुण्डति । चुचुण्ड ॥

३३५ मुडि खण्डने = काटना—

मुण्डति । मुमुण्ड । मुण्डिता । मुण्डिष्यति । मुण्डिषति; मुण्डिषाति । मुण्डतु । अमुण्डत् । मुण्डेत् । मुण्ड्यात् । अमुण्डीत् । अमुण्डिष्यत् ॥

३३६ पुडि चेत्येके—किन्हीं ऋषियों के मत में 'पुडि' धातु भी मुडि के समान खण्डन अर्थ में है ॥

३३७-३३८ रुटि, लुटि स्तेये = चोरी—रुण्टति । लुण्टति । रुरुण्ट । लुलुण्ट । लुण्टिता । लुण्टिष्यति । लुण्टिषति; लुण्टिषाति । लुण्टतु । अलुण्टत् । लुण्टेत् । लुण्ट्यात् । अलुण्टीत् । अलुण्टिष्यत् ॥

रुठि, लुठि इत्येके = किन्हीं आचार्यों के मत में 'रुठि लुठि' धातु भी चोरी अर्थ में हैं—रुण्ठति । लुण्ठति । रुरुण्ठ । लुलुण्ठ ॥

३३९ स्फुटिर विशरणे = मारना—

स्फोटति । पुस्फोट । स्फोटिता । स्फोटिष्यति । स्फोटिषति; स्फोटिषाति । स्फोटतु । अस्फोटत् । स्फोटेत् । स्फुट्यात् । अस्फुटत् । अस्फोटीत् (१३८) । अस्फोटिष्यत् ॥

३४० पठ व्यक्तायां वाचि = स्पष्ट बोलना—

पठति । पपाठ; पेठतुः; पेठुः । पेठिथ । पठिता । पठिष्यति । पाठिषति; पाठिषाति । पठिषति; पठिषाति । पठतु । अपठत् । पठेत् । पठ्यात् । अपाठीत्; अपठीत् । अपठिष्यत् ॥

३४१ वठ स्थौल्ये = मोटा होना—वठति; ववाठ; ववठतुः; ववठुः। वठिता। वठिष्यति। वाठिषति; वाठिषाति। वठतु। अवठत्। वठेत्। वठ्यात्। अवाठीत्; अवठीत्। अवठिष्यत्॥

३४२ मठ मदनिवासयोः = अभिमान, वसना—

मठति। ममाठ; मेठतुः। अमाठीत्; अमठीत्॥

३४३ कठ कृच्छ्रजीवने = दुःख से जीवना—

कठति। चकाठ; चकठतुः। अकाठीत्; अकठीत्॥

[३४४ रठ परिभाषणे = बहुत बोलना—

रठति। रराठ; रेठतुः। अराठीत्; अरठीत्॥

३४५ हठ प्लुतिशठत्वयोः = कूदना, मूर्खपन—

हठति। जहाठ; जहठतुः। अहाठीत्; अहठीत्। अहठिष्यत्॥

बलात्कार इत्येके—

किन्हीं आचार्यों के मत में 'हठ' धातु बलात्कार करने अर्थ में है।

३४६—३४८ रुठ, लुठ, उठ उपघाते = समीप से मारना—

रोठति। लोठति। रुरोठ। लुलोठ। रोठिता। रोठिष्यति। रोठिषति; रोठिषाति। रोठतु। अरोठत्। रोठेत्। रुठ्यात्। अरोठीत्। अरोठिष्यत्। ओठति। उवोठ (१५३); ऊठतुः; ऊठुः; उवोठिथ। औठीत्। औठिष्यत्॥

ऊठ इत्येके—किन्हीं आचार्यों के मत में यह 'ऊठ' दीर्घ ऊकारयुक्त धातु है, ह्रस्व नहीं। ऊठति। ऊठाञ्चकार। ऊठाम्बभूव। ऊठामास॥

३४९ पिठ हिंसासंक्लेशनयोः = हिंसा, अतिदुःख—

पेठति। पिपेठ। पेठिता। पेठिष्यति। पेठिषति; पेठिषाति। पेठतु। अपेठत्। पेठेत्। पिठ्यात्। अपेठीत्। अपेठिष्यत्॥

३५० शठ कैतवे च = चुगली, चकार से हिंसा और संक्लेशन अर्थ भी जानो—

शठति । शशाठ; शेठतुः । शठिता । शठिष्यति । शाठिषति; शाठिषाति । शठतु । अशठत् । शठेत् । शठ्यात् । अशाठीत्; अशठीत् । अशठिष्यत् ॥

३५१ शुठ प्रतिघाते=मारते हुए को मारना—शोठति । शुशोठ ॥

शुठि इत्येके—किन्हीं लोगों के मत में शुठि इदित् धातु भी प्रतिघात अर्थ में है । शुण्ठति । शुशुण्ठ ॥

३५२ कुठि च=यहां चकार से प्रतिघात अर्थ का सम्बन्ध होता है—कुण्ठति । चुकुण्ठ ॥

३५३ लुठि आलस्ये प्रतिघाते च=यहां पूर्वोक्त प्रतिघात अर्थ का समुच्चय चकार से किया और अतिस्पष्ट होने के लिये प्रतिघात शब्द पढ़ भी दिया है—लुण्ठति । लुलुण्ठ ॥

३५४ शुठि शोषणे=सोखना—शुण्ठति ॥

३५५-३५६ रुठि, लुठि गतौ—रुण्ठति । लुण्ठति ॥

३५७ चुड्ड भावकरणे=अभिप्राय जताना—चुड्डति । चुचुड्ड ॥

३५८ अड्ड अभियोगे=सर्वथा योग होना—अड्डति । आनड्ड ॥

३५९ कड्ड कार्कश्ये=कठोरपन—कड्डति । चकड्ड । अकड्डीत् ॥

३६० क्रीडृ विहारे=खेलना—

क्रीडति । चिक्रीड । क्रीड़िता । क्रीडिष्यति । क्रीडिषति; क्रीडाषाति । क्रीडतु । अक्रीडत् । क्रीडेत् । क्रीड्यात् । अक्रीडीत् । अक्रीडिष्यत् ॥

३६१ तुडृ तोडने=तोड़ना—तोडति । तुतोड ॥

तूडृ इत्येके—तूडति । तुतूड । तूडिता । तूडिष्यति । तूडिषति; तूडिषाति । तूडतु । अतूडत् । तूडेत् । तूड्यात् । अतूडीत् । अतूडिष्यत् ॥

३६२-३६४ हुडृ, हूडृ, होडृ गतौ—

होडति । जुहोड; जुहुडतुः । होडिता । होडिष्यति । होडिषति; होडिषाति । होडतु । अहोडत् । होडेत् । हुड्यात् । अहोडीत् । अहोडिष्यत् । हूडति । जुहूड । होडति । जुहोड; जुहोडतु; जुहोडुः ।

३६५ रौडृ अनादरे=तिरस्कार—रौडति । ररौड ।।

३६६-३६७ रोडृ, लोडृ उन्मादे=उन्मत्तपन—
रोडति । ररोड । लोडति । लुलोड ।।

३६८ अड उद्यमने=उद्यम—अडति । आड; आडतुः; आडुः ।।

३६९ लड विलासे—लडति । ललाड; लेडतुः । लडिता ।
लडिष्यति । लाडिषति; लाडिषाति । लडतु । अलडत् । लडेत् ।
लडयात् । अलाडीत्; अलडीत् । अलडिष्यत् ।।

३७० कड मदे=अहंकार—कडति । चकाड; चकडतुः ।।
कडि इत्येके—कण्डति । चकण्ड ।।

३७१ गडि वदनैकदेशे=मुख का अवयव—
गण्डति । जगण्ड । गण्डिता । गण्डिष्यति । गण्डिषति; गण्डिषाति ।
गण्डतु । अगण्डत् । गण्डेत् । गण्डयात् । अगण्डीत् । अगण्डिष्यत् ।।

इति शौटादय उदात्ता उदात्तेतो द्वासप्ततिः परस्मैपदिनः समाप्ताः ।।
ये 'शौटृ' आदि ७२ बहत्तर परस्मैपदी धातु समाप्त हुए ।।

अथ पवर्गीयान्ता द्वाशीतिः ।।

तत्रानुदात्तेतः स्तोभत्यन्ताश्चत्वारिंशत् ।

अब पवर्गान्त ८२ बयासी धातुओं का व्याख्यान है। इनमें ४० चालीस धातु आत्मनेपदी हैं—

३७२-३७५ तिपृ, तेपृ, ष्टिपृ, ष्टेपृ क्षरणार्थाः=झरना—

इनमें प्रथम तिप् धातु अनिट् है, सो भूमिका में सेट् अनिट् व्यवस्था को देखो। तेपते । तेपेते । तेपन्ते ।

तितिपे । तितिपाते । तितिपिरे । और लिट् वलादि आर्द्धधातुक में (१४८) सूत्र के नियम से इडागम हो जाता है। तितिपिषे । तितिपाथे । तितिपिध्वे । तितिपे । तितिपिवहे । तितिपिमहे ।।

तिप्+तास्+लुट् (१०८) सूत्र से इडागम का निषेध होकर—तेप्ता। तेप्तारौ। तेप्तारः। तेप्तासे। तेप्तासाथे। तेप्ताध्वे। तेप्ताहे। तेप्तास्वहे। तेप्तास्महे।

तेप्स्यते। तेप्स्येते। तेप्स्यन्ते। तेप्सतै; तेप्सातै। तेप्सते; तेप्साते। तेपतै; तेपातै। तेपते; तेपाते। तेपताम्। अतेपत। तेपेत॥

१६३–लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥१।२।११॥

इग्वान् हलन्त धातु से परे जो झलादि लिङ् और सिच्, सो कित्वत् हों आत्मनेपदविषय में।

यहां कित्संज्ञा होने से (४५) से गुण नहीं होता। तिप्सीष्ट। तिप्सीयास्ताम्। तिप्सीरन्॥

लुङ् में—अट्+तिप्+सिच्+त (१४२)=अतिप्त। अतिप्साताम्। अतिप्सत। अतिप्थाः। अतिप्साथाम्। अतिब्ध्वम् (१११)। अतिप्सि अतिप्स्वहि। अतिप्स्महि। अतेप्स्यत। अतेप्स्येताम्। अतेप्स्यन्त।

तितिपे—तिपृ और तेपृ धातु में लिट् में ही रूपभेद होता है। तेपिता। तेपिष्यते। तेपिषतै; तेपिषातै। तेपताम्। अतेपत। तेपेत। तेपिषीष्ट। अतेपिष्ट। अतेपिष्यत।

स्तेपते। तिष्टिपे। तिष्टिपाते। तिष्टिपिरे। स्तेपिता। स्तेपिष्यते। स्तेपिषतै; स्तेपिषातै। स्तेपताम्। अस्तेपत। स्तेपेत। स्तेपिषीष्ट। अस्तेपिष्ट। अस्तेपिष्यत। तिष्टेपे। तिष्टेपाते। तिष्टेपिरे।

थिपृ, थेपृ इत्यन्ये—थेपते। तिथिपे। तिथेपे॥

तेपृ कम्पने=कांपना—

३७६ ग्लेपृ दैन्ये=दीनता—ग्लेपते। जिग्लेपे॥

३७७ टुवेपृ कम्पने—

टु की इत्संज्ञा। वेपते। विवेपे। वेपिता। वेपिष्यते। वेपिषतै; वेपिषातै। वेपताम्। अवेपत। वेपेत। वेपिषीष्ट। अवेपिष्ट। अवेपिष्यत॥

३७८—३८० क्नेपृ, गेपृ, ग्लेपृ च = यहां चकार से कम्पन अर्थ का समुच्चय होता है—क्नेपते । गेपते । ग्लेपते ।।

३८१—३८३ मेपृ, रेपृ, लेपृ गतौ—मेपते । रेपते । लेपते ।।

३८४–३८५ हेपृ, धेपृ च = गति अर्थ में हैं—

हेपते । जिहेपे । धेपते । दिधेपे । धेपिता । धेपिष्यते । धेपिषतै; धेपिपातै । धेपताम् । अधेपत । धेपेत । धेपिषीष्ट । अधेपिष्ट । अधेपिष्यत ।।

३८६ त्रपूष् लज्जायाम्—त्रपते । त्रपेते । त्रपन्ते ।।

१६४–तॄफलभजत्रपश्च ।।६।४।१२२।।

तॄ, फल, भज और त्रप धातुओं के आकार को एकारादेश और अभ्यास का लोप होवे । त्रप्+त्रप्+एश्=त्रेपे। त्रेपाते । त्रेपिरे । त्रेपिषे । त्रेपाथे । त्रेपिध्वे । त्रेपे । त्रेपिवहे । त्रेपिमहे ।।

इस धातु का षकार इत् जाता है, उसका तो प्रयोजन कृदन्त में आवेगा, और ऊकार इत् जाने से ऊदित् होकर (१४०) सूत्र से वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प से इडागम होता है । त्रपिता । त्रप्ता । त्रप्तारौ । त्रप्तारः । त्रपिष्यते । त्रप्स्यते । त्रापिषतै; त्रापिषातै । त्रपिषतै; त्रपिषातै । त्रापिपते; त्रापिपाते । त्रपिपते; त्रपिपाते । त्राप्सतै; त्राप्सातै । त्राप्सते; त्राप्साते । त्रप्सते; त्रप्सातै । त्रप्सते; त्रप्साते; त्रपतै; त्रपातै । त्रपते; त्रपाते । इस प्रकार बीस-बीस प्रयोग आताम् आदि सब प्रत्ययों में जानो । त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत । त्रपिषीष्ट । अत्रपिष्ट । अत्रप्त (१४२) । अत्रप्साताम् । अत्रप्सत । अत्रपिष्यत । अत्रप्स्यत ।।

३८७ कपि चलने = चलना—

कम्पते । चकम्पे । कम्पिता । कम्पिष्यते । कम्पिषतै; कम्पिषातै । कम्पताम् । अकम्पत । कम्पेत । कम्पिषीष्ट । अकम्पिष्ट । अकम्पिष्यत ।।

३८८—३९० रबि, लबि, अबि शब्दे—

रम्बते । ररम्बे । लम्बते । ललम्बे । अम्बते । आनम्बे ।

लबि अवस्रंसने च = लटकना—चकार से शब्द ॥

३९१ कवृ वर्णे = रङ्ग—

कवते। चकवे। कविता। कविष्यते। कविषतै; कविषातै। कवताम्। अकवत। कवेत। कविषीष्ट। अकविष्ट। अकविष्यत ॥

३९२ क्लीवृ अधाष्ट्यें = भोलापन—क्लीवते। चिक्लीवे ॥

३९३ क्षीवृ मदे = अहङ्कार—क्षीबते। चिक्षीबे ॥

३९४ शीभृ कत्थने = कहना—शीभते। शिशीभे ॥

३९५ चीभृ च—यहां चकार से कत्थन अर्थ का समुच्चय होता है ॥

३९६ रेभृ शब्दे—रेभते। रिरेभे ॥

३९७-३९८ अभि, रभि इत्येके—

अम्भते। आनम्भे। रम्भते। ररम्भे ॥

३९९-४०० ष्टभि स्कभि प्रतिबन्धे = बांधना—

स्तम्भते। तस्तम्भे। स्तम्भिता। स्तम्भिष्यते। स्तम्भिषतै; स्तम्भिषातै। स्तम्भताम्। अस्तम्भत। स्तम्भेत। स्तम्भिषीष्ट। अस्तम्भिष्ट। अस्तम्भिष्यत। स्कम्भते। चस्कम्भे।

'स्तम्भ' धातु में इतना विशेष है कि जो उद् उपसर्ग इसके पूर्व हो, तो उसके सकार को पूर्वसवर्ण (उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) सूत्र से तकार हो जाता है—उत्तम्भते। उत्तम्भेते। इत्यादि ॥

४०१-४०२ जभी, जृभि गात्रविनामे = शरीर का मरोरना—

जभी धातु का दीर्घ ईकार इत् जाता है।

१६५—रधिजभोरचि ॥ ७। १ ६१ ॥

अजादि प्रत्यय परे हो, तो रध और जभ धातु को नुम् का आगम हो।

जम्भते। जजम्भे। जम्भिता। जम्भिष्यते। जम्भिषतै; जम्भिषातै। जम्भताम्। अजम्भत। जम्भेत। जम्भिषीष्ट। अजम्भिष्ट। अजम्भिष्यत। जृम्भते। जजृम्भे ॥

४०३ शल्भ कत्थने—शल्भते। शशल्भे ॥

४०४ वल्भ भोजने—वल्भते । ववल्भे ।।

४०५ गल्भ धाष्ट्र्ये=ढीठता—गल्भते । जगल्भे ।।

४०६ स्रम्भु प्रमादे=प्रमत्तपन—

स्रम्भते । सस्रम्भे ।। यह 'श्रम्भ' धातु तालव्यादि भी है । श्रम्भते ।।

४०७ ष्टभु स्तम्भने=रोकना—

स्तोभते । तुष्टुभे । स्तोभिता । स्तोभिष्यते । स्तोभिषतै; स्तोभिषातै । स्तोभताम् । अस्तोभत । स्तोभेत । स्तोभिषीष्ट । अस्तोभिष्ट । अस्तोभिष्यत ।।

इति तिपादय उदात्ता अनुदात्तेतस्तिपिवर्जमात्मनेभाषा चत्वारिंशत् समाप्ताः ।

ये पवर्गान्तों में तिप् आदि ४० (आत्मनेपदी) धातु समाप्त हुए ।।

अथ द्वाचत्वारिंशत् परस्मैपदिनः ।।

अब बयालीस ४२ धातु परस्मैपदी कहते हैं—

४०८ गुपू रक्षणे=रक्षा करना—

१६६–गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ।। ३ । १ । २८ ।।

गुपू, धूप, विच्छ, पण और पन धातुओं से स्वार्थ में आय प्रत्यय हो ।

यहां ऊदित् गुपू धातु से आय प्रत्यय होकर 'गुप्+आय' यहां आय प्रत्यय की (४९) से आर्द्धधातुक संज्ञा और (५१) से गुण होकर 'गोपाय' ।

१६७–सनाद्यन्ता धातवः ।।३।१।३२।।

सन् आदि प्रत्यय जिनके अन्त में हों, ऐसे प्रकृति प्रत्यय समुदायों की 'धातु' संज्ञा हो ।

सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचार अर्थ का क्विप्, णिच्, यङ, यक्, आय, ईयङ्, णिङ् ये सब सनादि प्रत्यय कहाते हैं ।।

यहाँ 'गोपाय' की धातुसंज्ञा होकर इससे लट् आदि लकारों की उत्पत्ति और भू आदि धातुओं के समान इसको भी धातु संज्ञा के सब

कार्य होते हैं। 'गोपाय+शप्+तिप्'=गोपायति। गोपायतः। गोपायन्ति। गोपायसि। गोयायथः। गोपायथ। गोपायामि। गोपायावः। गोपायामः। यहां शप् के अकार के साथ गोपाय के अकार को पररूप एकादेश हो जाता है।

१६८—आयादय आर्द्धधातुके वा ।।३।१।३१।।

आर्द्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में गोपाय आदि धातुओं से आय आदि प्रत्यय विकल्प करके हों। 'गोपाय+लिट्' यहां—

१६९—कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ।।३।१।३५।।

लिट् लकार परे हो, तो कास् धातु और प्रत्ययान्त धातुओं से आम् प्रत्यय हो, वेदविषय में न हो।

१७०—वा० कास्यनेकाज्ग्रहणं कर्त्तव्यम् ।।३।१।३५।।

(कास्प्र०) इस सूत्र पर वार्त्तिककार प्रत्यय ग्रहण के स्थान में अनेकाच् ग्रहण करते हैं, अर्थात् (कासनेकाच आममंत्रे लिटि) ऐसा सूत्र करना चाहिये। इसका प्रयोजन आगे आवेगा। अनेकाच् कहने से प्रत्ययान्त धातुओं का भी ग्रहण हो जाता है।

यहां 'गोपाय' प्रत्ययान्त धातु से आम् प्रत्यय होकर 'गोपाय+आम्+लिट्' यहां—

१७१—आर्द्धधातुके ।।६।४।४६।।

यह अधिकार सूत्र है।

१७२—अतो लोपः ।।६।४।४८।।

आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हो, तो अदन्त अङ्ग का लोप हो।

यहां 'गोपाय' के अन्त्य अकार का लोप होकर 'गोपाय् आम्+कृ+कृ+ णल्'=गोपायाञ्चकार (१०२) इत्यादि सूत्र लगते हैं। गोपायाञ्चक्रतुः। गोपायाञ्चक्रुः। गोपायाम्बभूव। गोपायामास।

और जिस पक्ष में (१६८) सूत्र से आय प्रत्यय नहीं होता, वहां जुगोप। जुगुपतुः। जुगुपुः।

यह धातु ऊदित् है, इस कारण वलादि आर्द्धधातुक में (१४०) सूत्र से विकल्प करके इडागम होता है। जुगोपिथ; जुगोप्थ; जुगुपथुः। जुगुप। जुगोप। जुगुपिव; जुगुब्व। जुगुपिम; जुगुम्म।

लुट्—गोपायिता। गोपायितारौ। गोपायितारः। आय प्रत्यय के अभावपक्ष में—गोपिता। गोपितारौ। गोपितारः। अनिट् पक्ष में—गोप्ता। गोप्तारौ। गोप्तारः।

गोपायिष्यति; गोपिष्यति; गोप्स्यति। गोपायिषति; गोपायिषाति; गोपिषति; गोपिषाति; गोप्सति; गोप्साति; गोपायति; गोपायाति। गोपायतु। अगोपायत्। गोपायेत्। गोपाय्यात् (१७२)। गोपाय्यास्ताम्। गोपाय्यासुः। गुप्यात्। अगोपायीत्; अगोपीत्; अगौप्सीत्। अगौप्ताम् (१४२)। अगौप्सुः। अगौप्सीः। अगौप्तम्। अगौप्त। अगोप्सम्। अगौप्स्व। अगौप्स्म। अगोपायिष्यत्; अगोपिष्यत्; अगोप्स्यत्।

४०९ धूप सन्तापे=दुःख होना—

धूपायति। धूपायतः। धूपायाञ्चकार। धूपायाम्बभूव। धूपायामास। (१६९) इत्यादि सूत्र लगते हैं। दुधूप (१६८)। दुधूपतुः। धूपायिता; धूपिता। धूपायिष्यति; धूपिष्यति। धूपायिषति; धूपायिषाति। धूपिषति; धूपिषाति। धूपायतु। अधूपायत्। धूपायेत्। धूपाय्यात्; धूप्यात्। अधूपायीत्; अधूपीत्। अधूपायिष्यत्; अधूपिष्यत्॥

४१०-४११ जप, जल्प व्यक्तायां वाचि=स्पष्ट बोलना—

जपति। जल्पति। जजाप। जेपतुः। जेपुः। जपिता। जपिष्यति। जापिषति; जापिषाति। जपतु। अजपत्। जपेत्। जप्यात्। अजापीत्; अजपीत्। अजपिष्यत्॥

जप मानसे च=विचारपूर्वक मन में जपना—

४१२-चप सान्त्वने=शान्त होना—चपति॥

४१३ षप समवाये=सम्बन्ध होना—सपति ॥

४१४ रप, लप व्यक्तायां वाचि—रपति । लपति । प्रलपति ॥

४१५ चुप मन्दायां गतौ=धीरे-धीरे चलना—

चोपति । चुचोप । चोपिता । चोपिष्यति । चोपिषति; चोपिषाति । चोपतु । अचोपत् । चोपेत् । चुप्यात् । अचोपीत् । अचोपिष्यत् ॥

४१६—४२३ तुप, तुम्प, त्रुप, त्रुम्प, तुफ, तुम्फ, त्रुफ, त्रुम्फ हिंसार्थाः—

तोपति । तुतोप । तोपिता । तोपिष्यति । तोपिषति; तोपिषाति । तोपतु । अतोपत् । तोपेत् । तुप्यात् । अतोपीत् । अतोपिष्यत् ।

तुम्पति । तुतुम्प । तुतुम्पतुः—यहां संयोगान्त तुम्प धातु से परे लिट् (१३७) से कित्वत् नहीं होता । इससे नलोप भी नहीं हुआ । और प्र उपसर्ग से परे (प्रात्तुम्पतौ गवि कर्त्तरि अ० ६ । १ । १५७ ॥) यह पारस्करप्रभृतिगण का सूत्र है । गौ कर्त्ता हो तो प्र उपसर्ग से परे तुम्प धातु को सुट् का आगम हो जाता है । प्रस्तुम्पति । और गण सूत्र में श्तिप् का निर्देश करने से—प्रतोतुम्पीति । यहां यङ्लुक् में सुट् नहीं होता ।

तुप्यात् । त्रुप्यात् । तुफ्यात् । त्रुफ्यात् (१३९) । अतुम्पीत् । अतुम्पिष्यत् ॥

४२४—४३७ पर्प, रफ, रफि, अर्ब, पर्ब, लर्ब, बर्ब, मर्ब, कर्ब, खर्ब, गर्ब, शर्ब, षर्ब, चर्ब गतौ, चर्ब अदने च=चर्ब धातु खाने और गति दोनों अर्थ में है—

पर्पति । पपर्प । रफति । रम्फति । अर्बति । आनर्ब । अर्बिता । अर्बिष्यति । अर्बिषति; अर्बिषाति । अर्बतु । आर्बत् । अर्बेत् । अर्ब्यात् । आर्बीत् । आर्बिष्यत् । पर्बति । लर्बति । बर्बति । मर्बति । कर्बति । खर्बति । गर्बति । शर्बति । सर्बति । चर्बति । चचर्ब । चर्बिता । चर्बिष्यति ।

चर्बिषति; चार्बिषाति । चर्बतु । अचर्बत् । चर्बेत् । चर्ब्यात् । अचर्बीत् । अचर्बिष्यत् ॥

४३८ कुबि अच्छादने=ढांकना—कुम्बति । चुकुम्ब ॥

४३९–४४० लुबि, तुबि अर्दने=गति और मांगना—

लुम्बति । तुम्बति । लुलुम्ब । तुतुम्ब ॥

४४१ चुबि वक्त्रसंयोगे=चूमना—चुम्बति । चुचुम्ब ॥

४४२–४४३ षृभु, षृम्भु हिंसार्थौ—

सर्भति । ससर्भ । सर्भिता । सर्भिष्यति । सर्भिषति; सर्भिषाति । सर्भतु । असर्भत् । सर्भेत् । सृभ्यात् । असर्भीत् । असर्भिष्यत् । सृम्भति । ससृम्भ । सृभ्यात् ॥

४४४–४४५ षिभु, षिम्भु इत्येके=किन्हीं लोगों के मत में ये दोनों धातु भी हिंसार्थक हैं—सेभति । सिम्भति । सिभ्यात् ॥

४४६–४४७ शुभ, शुम्भ भाषणे=बोलना—भासने इत्येके=प्रकाश—हिंसायामित्यन्ये*—

शोभति । शुशोभ । शोभिता । शोभिष्यति । शोभिषति; शोभिषाति । शोभतु । अशोभत् । शोभेत् । शुभ्यात् । अशोभीत् । अशोभिष्यत । शुम्भति । शुशुम्भ । शुभ्यात् ॥

इति गुपादय उदात्ता उदात्तेत द्विचत्वारिंशत्समाप्ताः ॥

ये गुप आदि ४२ बयालीस धातु समाप्त हुए ॥

अथानुनासिकान्ता द्विचत्वारिंशत् ॥

तत्रानुदात्तेतो दश ।

अब अनुनासिकान्त ४२ बयालीस धातु कहते हैं । उनमें प्रथम घिणी आदि दश आत्मनेपदी हैं—

---

* 'इत्येके' और 'इत्यन्ये' इत्यादि शब्द धातुपाठ में बहुधा आया करते हैं, उनका अर्थ कई वार लिख दिया है, अब आगे वार-वार नहीं लिखेंगे ॥

४४८—४५० घिणी, घुणि, घृणि ग्रहणे = ग्रहण करना—

घिण्णते। यहां नुम् का आगम होकर (ष्टुनाष्टुः अ० ८।४।४१॥) सूत्र से नुम् के तवर्ग नकार को टवर्ग णकार हो जाता है। घिण्णेते। घिण्णन्ते। जिघिण्णे। घिण्णिता। घिण्णिष्यते। घिण्णिषतैः; घिण्णिषातै। घिण्णताम्। अघिण्णत। घिण्णेत। घिण्णिषीष्ट। अघिण्णिष्ट। अघिण्णिष्यत। घुण्णते। घृण्णते॥

४५१–४५२ घुण, घूर्ण भ्रमणे = विचारना—

घोणते। जुघुणे। घोणिता। घोणिष्यते। घोणिषतैः घोणिषातै। घोणताम्। अघोणत्। घोणेत। घोणिषीष्ट। अघोणिष्ट। अघोणिष्यत। घूर्णते। जुघूर्णे॥

४५३–४५४ पण व्यवहारे स्तुतौ च = लेना, देना और प्रशंसा॥ पन च—

यहां चकार से स्तुति अर्थ का ही सम्बन्ध होता है, व्यवहार का नहीं। इसीलिये पन धातु पृथक् पढ़ा है, नहीं तो इकट्ठा ही पढ़ते। पण तथा पन धातु अनुदात्तेत् हैं, सो पन धातु से स्तुति अर्थ में ही आय प्रत्यय (१६६) सूत्र से होता है। इसके साहचर्य से पण धातु से भी आय प्रत्यय स्तुति अर्थ में ही होता है, और व्यवहार अर्थ में इसको आत्मनेपद होने का अवकाश मिलने से आयप्रत्ययान्त पण धातु से आत्मनेपद नहीं होता।

'पण+आय+शप्=तिप्' = पणायति। पणायतः। पणायन्ति पणायाञ्चकार; पणायाम्बभूव; पणायामास; (१५८) पेणे। पेणाते। पेणिरे। पणायितासि; पणितासे। पणायिष्यति; पणिष्यते। पणायतु। अपणायत्। पणायेत्। पणाय्यात्। पणिषीष्ट। अपणायीत्। अपणिष्ट। अपणायिष्यत्; अपणिष्यत्।

व्यवहार अर्थ में—पणते। पणेते। पणन्ते।

'पन' धातु स्तुति अर्थ में ही है—पनायति। पनायाञ्चकार; पनायाम्बभूव; पनायामास; पेने। पेनाते। पेनिरे। पनायितासि। पनितासे। पनायिष्यति; पनिष्यते। पनायिषति; पनायिषाति। पानिषतै। पानिषातै। पनायतु। अपनायत्। पनायेत्। पनाय्यात्। पनीषीष्ट। अपनायीत्। अपनीष्ट। अपनायिष्यत्; अपनिष्यत॥

४५५ भाम क्रोधे—

भामते। बभामे। भामितासे। भामिष्यते। भामिषतै; भामिषातै। भामताम्। अभामत। भामेत। भामिषीष्ट। अभामिष्ट। अभामिष्यत॥

४५६ क्षमूष् सहने=सहना—

क्षमते। यह भी धातु ऊदित् है। चक्षमे। चक्षमाते। चक्षमिरे। चक्षमिषे; चक्षसे। (१४०) से इट् का आगम विकल्प करके होता है। चक्षमाथे। चक्षमिध्वे; चक्षन्ध्वे। चक्षमे॥

१७३—म्वोश्च ॥८।२।६५॥

म और व परे हों तो मकारान्त धातु के मकार को नकारादेश होवे।

यहां व, म के परे क्षम धातु के मकार को न होकर मूर्द्धन्य षकार से परे णत्व हो जाता है—चक्षण्वहे; चक्षमिवहे। चक्षण्महे; चक्षमिमहे।

क्षमिता; क्षन्ता। क्षन्तारौ। क्षन्तारः। क्षन्तासे। क्षमिष्यते; क्षंस्यते। क्षामिषतै; क्षामिषातै। क्षमिषतै। क्षमिषातै; क्षामिषते; क्षामिषाते; क्षमिषते; क्षमिषाते; क्षांसतै; क्षांसातै; क्षांसते; क्षांसाते; क्षंसतै; क्षंसातै; क्षांसते; क्षंसाते; क्षमतै; क्षमातै; क्षमते; क्षमाते। इसी प्रकार बीस-बीस प्रयोग (आताम्) आदि सब प्रत्ययों में जानो।

क्षमताम्। अक्षमत। क्षमेत। क्षमिषीष्ट। क्षंसीष्ट। अक्षमिष्ट। अक्षंस्त। अक्षमिष्यत। अक्षंस्यत। यहां सर्वत्र अनिट् पक्ष में क्षम धातु के मकार को अनुस्वार हो जाता है।

४५७ कमु कान्तौ=इच्छा—

१७४—कमेर्णिङ् ॥३।१।३०॥

कम धातु से णिङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में।

पश्चात् (१६७) से धातुसंज्ञा और णिङ् प्रत्यय के परे (१२६) से कम के अकार को वृद्धि होके 'कामि' धातु से णिङ् प्रत्यय के ङित् होने से आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं—'कम्+णिङ्+शप्+त'=कामयते। कामयेते। कामयन्ते। 'कामि+आम्+लिट्—

१७५—अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ॥६।४।५५॥

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु प्रत्यय परे हों तो णि के स्थान में अय् आदेश हो।

(१७७) सूत्र से लोप पाया था सो न हो, अर्थात् लोप का अपवाद यह सूत्र है। कामयाञ्चक्रे (१६९)। कामयाञ्चक्राते। कामयाञ्चक्रिरे। कामयाम्बभूव, कामयामास। (१६८) सूत्र से णिङ् प्रत्यय के अभाव पक्ष में—चकमे। चकमाते। चकमिरे।

कामयिता। कामयितारौ। कामयितारः। कामयितासे; कमितासे। कामयिष्यते; कमिष्यते। कामयिषतै; कामयिषातै; कामिषतै; कामिषातै। कामयताम्। अकामयत। कामयेत। कामयिषीष्ट; कमिषीष्ट।

'कामि+च्लि+लुङ्' यहाँ च्लि प्रत्यय के स्थान में सिच् प्रत्यय प्राप्त है, उसका अपवाद—

१७६—णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥३।१।४८॥

ण्यन्त, श्रि, द्रु और स्रु धातुओं से परे च्लि प्रत्यय के स्थान में चङ् आदेश हो, कर्त्ता में लुङ् परे हो तो। 'अट+काम्+इ+चङ्+त' इस अवस्था में—

१७७–णेरनिटि ॥६।४।५१॥

अनिडादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो णि का लोप हो जावे।

इसी विषय में (१७६) सूत्र से यण् आदेश परत्व से प्राप्त है।

१७८–वा०—ण्यल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेन भवतः ॥६।४।१॥

णिलोप और (१५२) सूत्र से अकार का लोप ये दोनों कार्य इयङ्; यण्, गुण, वृद्धि और दीर्घ से पूर्वविप्रतिषेध करके हो जाते हैं।

णिलोप को 'कार्यते' यहां अवकाश है। क्योंकि 'कारि' धातु से 'यक्' प्रत्यय के परे भावकर्मप्रक्रिया में 'णि' का लोप होजाता है। और श्रियौ' यहां इयङ् आदेश को; 'विव्यतु; विव्यु;' यहां यण् आदेश को; चेता; 'स्तोता' यहां गुण' को 'सखायौ' यहां वृद्धि को और चीयते; स्तूयते; यहां दीर्घादेश को अवकाश है। और (णेरनिटि अ० ६। ४। ५१) सूत्र से ये सब इयङ् आदि कार्य परे हैं। इन सब कार्य्यों का और णिलोप का जहां एक प्रयोग में आकर झगड़ा पड़ता है, वहां परविप्रतिषेध मानने से इयङ् आदि कार्य प्राप्त हैं। वार्तिककार के प्रमाण से पूर्वविप्रतिषेध मानकर णिलोप हो जाता है, इयङ् आदि नहीं होते।

जैसे—'अट्+तक्षि+चङ्+तिप्'=अततक्षत्। यहां (१५९) सूत्र से इयङ् आदेश प्राप्त है, उसको बाध के णिलोप होता है। 'आट् आटि+चङ्+तिप'=आटिटत्। यहां (१५६) से यणादेश प्राप्त है, उससे पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप हो जाता है। 'कारि+युच्+टाप्=कारणा। यहां (२१) सूत्र से परत्व से गुण पाता है, उसका अपवाद होकर णिलोप होता है। 'कारि+ण्वुल्+सु'=कारकः। यहां (६०) सूत्र से वृद्धि प्राप्त है, उससे पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप होजाता है। और 'कारि+यक्+त' =कार्यते। यहां (१६०) सूत्र से परत्व से दीर्घ प्राप्त है, उससे भी पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप होजावे, इसलिये (ण्यल्लोपावि०) यह वार्त्तिक है।

और 'अट्+कामि+चङ्+त' यहां तो (१५६) सूत्र से यणादेश परत्व से प्राप्त है, उससे पूर्वविप्रतिषेध करके (१७७) सूत्र से णिलोप हो जाता है। फिर 'अट्+काम्+चङ्+त'। इस अवस्था में—

१७९—णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ॥७।४।१॥

चङ्परक णि के परे जिसकी अङ्ग संज्ञा है, उसकी उपधा को ह्रस्वादेश होजावे। यहां 'काम्' को ह्रस्व होकर—'अट्+कम्+चङ्+त' इस अवस्था में—

१८०—चङि ॥६।१।११॥

चङ् प्रत्यय परे हो तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव को और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होजावे।

'अट्+कम्+कम्+चङ्+त' यहां 'कम्' भाग को द्वित्व हुआ।

१८१—सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ॥७।४।९३॥

धातु का लघु अक्षर जिससे परे हो, ऐसा जो अभ्यास उसको जिस चङ् के परे अक् प्रत्याहार में किसी वर्ण का लोप न हुआ हो ऐसा णि परे हो, तो सन्वत् कार्य हों। अर्थात् सन् प्रत्यय के परे जो कार्य होता है सो अभ्यास को भी होजावे।

चङ् प्रत्यय के परे जो णि का लोप होता है, वह भी अक् लोप है। परन्तु इसी सूत्र में चङ् जिससे परे हो ऐसे णि की अपेक्षा होने से णिलोप से अन्य अग्लोप समझा जाता है। और णिलोप को स्थानिवत् मान के इस सूत्र के अर्थ की प्रवृत्ति होती है।

१८२—सन्यतः ॥७।४।७९॥

सन् प्रत्यय परे हो तो अभ्यास के अकार को इकार आदेश हो।

'अट्+किम्+कम्+चङ्+त' इस अवस्था में—

१८३–दीर्घो लघोः ॥७।४।९४॥

धातु के लघु अभ्यास को दीर्घ आदेश हो अनग्लोपी चङ्परक णि परे हो तो ।

यहां 'कि' को दीर्घ और (१०७) से ककार को चकार तथा (३८) से अभ्यास के हल् मकार का लोप और चङ् में चङ् का लोप होकर 'अट्+ची+कम्+अ+त'=अचीकमत । अचीकमेताम् । अचीकमन्त । अचीकमथाः । अचीकमेथाम् । अचीकमध्वम् । अचीकमे । अचीकमावहि । अचीकमामहि ।

और जिस पक्ष में आयादि णिङ् प्रत्यय (१६८) से नहीं होता, वहां—

१८४–वा०–कमेरुपसङ्ख्यानम् ॥३।१।४८॥

केवल कम धातु से परे जो च्लि उसके स्थान में चङ् आदेश होवे ।

'अट्+कम्+चङ्+त'=अचकमत (१८०) । अचकमेताम् । अचकमन्त । अचकमथाः । अचकमेथाम् । अचकमध्वम् । अचकमे । अचकमावहि । अचकमामहि ।

इति घिण्यादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषा दश समाप्ताः ।

ये घिणि आदि दश धातु समाप्त हुए ।।

अथ द्वात्रिंशत् परस्मैपदिनः ।

अब ३२ धातु अनुनासिकान्त परस्मैपदी कहते हैं—

४५८–४६७ अण, रण, वण, भण, मण, कण, क्वण, व्रण, भ्रण, ध्वण, शब्दार्थाः—

अणति । रणति । वणति । आण । आणतुः । आणुः । अणिता । अणिष्यति । आणिषति; आणिषाति । अणतु । आणत् । अणेत् । अण्यात् ।

आणीत् । आणिष्यत् । ववाण । ववणतुः (११८) । ववणुः । वणिता । वणिष्यति । वाणिषति; वाणिषाति । वणतु । अवणत् । वणेत् । वण्यात् । अवाणीत्; अवणीत् । अवणिष्यत् । भणति । बभाण । बभणतुः । अभाणीत्; अभणीत् । मणति । कणति । क्वणति । व्रणति । भ्रणति । ध्वणति ॥

४६८ धण इत्येके—धणति । दधाण । दधणतुः । धणिता । धणिष्यति । धाणिषति; धाणिषाति । धणतु । अधणत् । धणेत् । धण्यात् । अधाणीत्; अधणीत् । अधणिष्यत् ॥

४६९ ओणृ अपनयने=हटाना—

ओणति । ओणाञ्चकार; ओणाम्बभूव; ओणामास । ओणिता । ओणिष्यति । ओणिषति; ओणिषाति । ओणतु । औणत् । ओणेत् । ओण्यात् । औणीत् । औणिष्यत् ॥

४७० शोणृ वर्णगत्योः=रंग और गति—शोणति । शुशोण ॥

४७१ श्रोणृ सङ्घाते=समुदाय—श्रोणति । शुश्रोण ॥

४७२ श्लोणृ च=सङ्घात अर्थ में—श्लोणति । शुश्लोण ॥

४७३ पैणृ गतिप्रेरणश्लेषणेषु=गति, प्रेरणा और गीला करना—

पैणति । पिपैण । पिपैणतुः । पिपैणुः । पैणिता । पैणिष्यति । पैणिषति; पैणिषाति । पैणतु । अपैणत् । पैणेत् । पैण्यात् । अपैणीत् । अपैणिष्यत् ।

४७४-४७५ ध्रण, बण शब्दे—

यहां ध्रण धातु उपदेश में नान्त है, पीछे रेफ से परे णत्व होजाता है—ध्रणति । बणति । बबाण । बेणतुः ॥

४७६ कनी दीप्तिकान्तिगतिषु=प्रकाश, इच्छा और गति—

कनति। चकान। चकनतुः। कनिता। कनिष्यति। कानिषति; कानिषाति। कनतु। अकनत्। कनेत्। कन्यात्। अकानीत्; अकनीत्। अकनिष्यत्॥

४७७–४७८ ष्टन, वन शब्दे—

स्तनति। तस्तान। तस्तनतुः। स्तनिता। स्तनिष्यति। स्तानिषति; स्तानिषाति। स्तनतु। अस्तनत्। स्तनेत्। स्तन्यात्। अस्तानीत्; अस्तनीत्। अस्तनिष्यत्। वनति॥

४७९ वन, षण सम्भक्तौ = भक्ति—

वन धातु का दूसरा अर्थ होने से फिर पढ़ा है। सनति। ससान। सेनतुः। सेनुः।

यह बात सब धातुओं में समझना चाहिये कि जहां लिट् लकार को मान कर अभ्यास को कुछ आदेश होता है, वहीं (१२५) सूत्र से अनादेशादि निषेध लगता है कि जैसे—बभणतुः; बभणुः। और जहां धातु के आदि षकार को स और णकार को न हो जाता है, वहां निषेध नहीं लगता। इसी से—सेनतुः; सेनुः यहां एत्वाभ्यासलोप (१२५) से होता है।

सनिता। सनिष्यति। सानिषति; सानिषाति। सनतु। असनत्। सनेत्॥

१८५–ये विभाषा ॥६।४।४३॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों, तो जन, सन और खन धातुओं को आकार आदेश विकल्प करके हो।

अलोन्त्य परिभाषा के आश्रय से अन्त्य अल् नकार के स्थान में होता है। (८५) से यासुट् होता है। 'सन्+यासुट्+सुट्+तिप्' = सायात्; सन्यात्। असानीत्; असनीत्। असनिष्यत्॥

४८० अम गत्यादिषु = गति आदि (गति, शब्द और सम्भक्ति) अर्थों में अम् धातु है—

अमति । आम । आमतुः । आमुः । अमिता । अमिष्यति । आमिषति; आमिषाति । अमतु । आमत् । अमेत् । अम्यात् । आमीत् । आमिष्यत् ॥

४८१—४८३ द्रम, हम्म, मीमृ गतौ—

द्रमति । दद्राम । हम्मति । जहम्म । मीमति । मिमीम । द्रम धातु मकारान्त अकारोपध है । इसमें विकल्प से वृद्धि (१४४) से प्राप्त है । सो (१६२) सूत्र से नहीं होती । अद्रमीत् । अद्रमिष्यत् ॥

मीमृ शब्दे च—

यहाँ चकार गति और शब्द दोनों अर्थ का बोध होने के लिये है ॥

४८४—४८७ चमु, छमु, जमु, झमु अदने = खाना—

१८६–ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ॥ ७ । ३ । ७५ ॥

ष्ठिवु, क्लमु और चमु धातुओं के अच् को दीर्घ आदेश हो, शित् प्रत्यय परे हो तो । इस सूत्र से चम धातु को सामान्य करके दीर्घ प्राप्त है ।

१८७–वा०–दीर्घत्वमाङि चम इति वक्तव्यम् ॥७।३।७५॥

आङ् पूर्वक ही चम धातु को दीर्घ हो, सर्वत्र नहीं ।

आचामति । आचामतः । आचामन्ति । आङ् का नियम इसलिये किया है कि—उच्चमति; विचमति । यहाँ दीर्घ न हो ।

चचाम । चेमतुः । चेमुः । आचचाम । आचेमतुः । आचेमुः । चमिता । चमिष्यति । चामिषति; चामिषाति । चमतु । आचामतु । अचमत् । आचामत् । चमेत् । आचामेत् । चम्यात् । अचमीत् (१६२) । अचमिष्यत् । छमति । चच्छाम । चच्छमतुः । अच्छमीत् । जमति । जजाम । जेमतुः । जेमुः । जमिता । जमिष्यति । जामिषति; जामिषाति । जमतु । अजमत् । जमेत् । जम्यात् । अजमीत् । झमति । जझाम । जझमतुः ।

जिमु इत्येके—जेमति । जिजेम ॥

४८८ क्रमु पादविक्षेपे = पग फेंकना—

१८८—वा०—भ्राशम्लाशभ्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ॥ ३ । १ । ७० ॥

भ्राश, म्लाश, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटि और लष धातुओं से विकल्प करके श्यन् प्रत्यय हो, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो, और पक्ष में शप् हो जाता है।

इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा है, क्योंकि इनमें जो धातु दिवादिगण के हैं, उनसे तो श्यन् प्रत्यय नित्य ही प्राप्त है और अन्त गणों के धातुओं से अप्राप्त है। और श्यन् प्रत्यय तथा अन्य सब विकरण प्रत्यय स्य, तास्, सिप् आदि शप् प्रत्यय के अपवाद हैं॥

१८९—क्रमः परस्मैपदेषु ॥ ७ । ३ । ७६ ॥

परस्मैपदसंज्ञक शित् प्रत्यय परे हों, तो क्रम धातु के अच् को दीर्घ होवे।

'क्रम्+श्यन्+तिप्'=क्राम्यति; 'क्रम+शप्+तिप्=क्रामति। और 'परस्मैपद' का ग्रहण इसलिये है कि—आक्रमत आदित्यः; यहाँ पदव्यवस्था से आत्मनेपद में दीर्घ न होवे।

चक्रामः। चक्रमतुः। चक्रमुः। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्रामिषति; क्रामिषाति। क्राम्यतु; क्रामतु। अक्राम्यत्; अक्रामत्। क्रामेत्; क्राम्येत्। क्राम्यात्। अक्रमीत्। अक्रमिष्यत्॥

इत्यणादय उदात्ता उदात्तेतो द्वात्रिंशत् परस्मैभाषाः समात्ता।

ये ३२ बत्तीस धातु परस्मैपदी समाप्त हुए॥

अथ यवर्गीयान्ता अष्टाविंशत्यधिकं शतम्॥

अब एक सौ अट्ठाईस १२८ धातु यवर्गीयान्त कहते हैं।

[उनमें पहले ३७ सैंतीस धातु आत्मनेपदी हैं—]

४८९—४९५ अय, वय, पय, मय, चय, तय, णय, गतौ—

'अय्+शप्+त'=अयते।

१९०—दयायासश्च ।। ३ । १ । ३७ ।।

दय, अय और आस धातुओं से आम् प्रत्यय हो लिट् लकार परे हो तो।

'अय्+आम्+कृ+कृ+एश्'=अयाञ्चक्रे। अयाञ्चक्राते। अयाञ्चक्रिरे। अयितासे। अयिष्यते। आयिषतै; आयिषातै। अयताम्। आयत। अयेत।

१९१—विभाषेटः ।। ८ । ३ । ७९ ।।

इण् से परे जो इट् उससे परे जो सीध्व लुङ् और लिट् का धकार उसको मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो जावे।

धकार के स्थान में अन्तरतम आदेश ढकार हो जाता है—अयिषीष्ट। अयिषीयास्ताम्। अयिषीरन्। अयिषीष्ठाः। अयिषीयास्थाम्। अयिषीढ्वम्। अयिषीध्वम्। अयिषीय। अयिषीवहि। अयिषीमहि। आयिष्ट। आयिषाताम्। आयिषत। आयिष्ठाः। आयिषाथाम्। आयिढ्वम्; आयिध्वम्। आयिषि। आयिष्वहि। आयिष्महि। आयिष्यत।

१९२—उपसर्गस्यायतौ ।। ८ । २ । १९ ।।

अय धातु के परे पूर्व जो उपसर्ग उसके रेफ को लकार आदेश हो।

जैसे—'प्र+अयते'=प्लायते; पलायते। पलायाञ्चक्रे। निस् और दुस् उपसर्गों के सकार को रुत्व त्रिपादी में होता है, उसको असिद्ध मानने से निरयते; दुरयते प्रयोग होते हैं। और जहां निर्, दुर् उपसर्ग हों वहां निलयते; दुलयते रूप बनते हैं।

वयते। ववये (१२८)। वयिता। वयिष्यते। वायिषतै; वायिषातै। वयताम्। अवयत। वयेत। वयिषीष्ट। वयिषीढ्वम्; वयिषीध्वम्। अवयिढ्वम्; अवयिध्वम्। अवयिष्यत। पयते। पेये। पेयाते। पेयिरे। पयिषीढ्वम्। पयिषीध्वम्। अपयिढ्वम्; अपयिध्वम्।

इसी प्रकार मय आदि के जानो।

णय रक्षणे च = णय धातु के गति और रक्षा दोनों अर्थ हैं—

नयते। नेये। नयिता। नायिषतै; नायिषातै। नयताम्। अनयत। नयेत। नयिषीष्ट। नयिषीढ्वम्। नयिषीध्वम्। अनयिढ्वम्। अनयिध्वम्। अनयिष्यत।

४९६ दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु = देना, गति, रक्षा, मारना और लेना—दयते। दयाञ्चक्रे (१९०)। दयिता। दयिष्यते॥

४९७ रय गतौ—रयते। रेये॥

४९८ ऊयी तन्तुसन्ताने = सूत का फैलाना—ऊयते। ऊयाञ्चक्रे॥

४९९ पूयी विशरणे दुर्गन्धे च = मारना और दुर्गन्ध करना—

पूयते। पुपूये। पूयिता॥

५०० क्नूयी शब्दे उन्दे च = शब्द और गीलापन—

क्नूयते। चुक्नूये॥

५०१ क्ष्मायी विधूनने = कम्पाना—क्ष्मायते। चक्ष्माये॥

५०२-५०३ स्फायी, ओप्यायी वृद्धौ = बढ़ना—

स्फायते। पस्फाये।

ऊयी आदि धातुओं में दीर्घ ईकार इत् जाता है और प्यायी धातु में ओकार और ईकार दोनों की इत्संज्ञा होती है—प्यायते।

१९३–लिड्यङोश्च॥ ६। १। २९॥

लिट् लकार और यङ् प्रत्यय परे हो, तो प्यायी धातु को पी उपदेश हो।

'प्याय लिट्' इस अवस्था में प्रथम द्विर्वचन प्राप्त है; उसको बाधकर पी आदेश हो जाता है। पीछे इसकी प्राप्ति बनी रहने से द्वित्व होता है। 'पी+पी+एश्' = पिप्ये, (१५६) से यणादेश होता है। पिप्याते। पिप्यिरे। पिप्यिषे।

प्यायिता । प्यायिष्यते । प्यायिषतै; प्यायिषातै । प्यायताम् । अप्यायत । प्यायेत । प्यायिषीष्ट । प्यायिषीढ्वम्; प्यायिषीध्वम् (१९१) ।

१९४–दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ ३ । १ । ६१ ॥

दीपी, जनी, बुध, तायृ और प्यायी धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उसके स्थान में विकल्प करके चिण् आदेश होवे, त शब्द परे हो तो ।

यहाँ 'प्यायी' धातु से परे होता है, अन्य धातु आगे आवेंगे—

'अट्+प्याय्+चिण्+त' इस अवस्था में—

१९५–चिणो लुक् ॥ ६ । ४ । १०४ ॥

चिण् से परे जो प्रत्यय उसका लुक् हो ।

यहाँ चिण् से परे 'त' का लुक् होता है—'अट्+प्याय्+चिण्'= अप्यायि । यहाँ च् ण् की इत्संज्ञा और लोप हो जाता है । और जिस पक्ष में च्लि के स्थान में चिण् नहीं होता वहाँ—अप्यायिष्ट । अप्यायिषाताम् । अप्यायिषत । अप्यायिष्ठाः । अप्यायिषाथाम् । अप्यायिढ्वम्; अप्यायिध्वम् । (१९१) । अप्यायिषि । अप्यायिष्वहि । अप्यायिष्महि । अप्यायिष्यत ॥

५०४ तायृ सन्तानपालनयोः=अपत्य और रक्षा—

तायते । तायेते । तायन्ते । तताये । ततायिध्वे; ततायिढ्वे । तताये । ततायावहे । ततायामहे । तायितासे । तायिष्यते । तायिषतै; तायिषातै । तायताम् । अतायत । तायेत । तायिषीष्ट । अतायिष्ट । अतायिष्यत ॥

५०५ शल चलनसंवरणयोः=चलना और ढांकना—

शलते । शेले । शेलाते । शेलिरे । शलितासे । शलिष्यते । शालिषतै; शालिषातै । शलताम् । अशलत । शलेत । शलिषीष्ट । शलिषीढ्वम्; शलिषीध्वम् । अशलिष्ट । अशलिढ्वम्; अशलिध्वम् । अशलिष्यत ॥

५०६-५०७ वल, वल्ल संवरणे संचरणे च=संवरण और सम्यक् विचरना—वलते। वल्लते। ववले (१२८)। ववल्ले। वलिता। वलिष्यते। वालिषतै; वालिषातै। वलताम्। अवलत। वलेत। वलिषीष्ट। अवलिष्ट। अवलिष्यत॥

५०८-५०९ मल, मल्ल धारणे=पदार्थों का धारण करना—
मलते। मल्लते। मेले। मेलाते। मेलिरे। ममल्ले। मलिता। मलिष्यते। मालिषतै; मालिषातै। मलताम्। अमलत। मलेत। मलिषीष्ट। अमलिष्ट। अमलिष्यत॥

५१०-५११ भल, भल्ल परिभाषणहिंसादानेषु=बहुत बोलना, मारना और देना—भलते। भल्लते। बभले। बभल्ले। भलितासे। भलिष्यते। भालिषतै; भालिषातै। भलताम्। अभलत। भलेत। भलिषीष्ट। अभलिष्ट। अभलिष्यत॥

५१२ कल शब्दसंख्यानयोः=शब्द और गणना—
कलते। चकले। चकलिढ्वे; चकलिध्वे। कलितासे। कलिष्यते। कालिषतै; कालिषातै। कलताम्। अकलत। कलेत। कलिषीष्ट। कलिषीढ्वम्; कलिषीध्वम्। अकलिष्ट। अकलिढ्वम्। अकलिध्वम्। अकलिष्यत॥

५१३ कल्ल अव्यक्ते शब्दे=अप्रकट बोलना—कल्लते। चकल्ले॥

५१४-५१५ तेवृ, देवृ देवने=खेलना—
तेवते। देवते। तितेवे। दिदेवे। तितेविढ्वे; (१९१) तितेविध्वे। तेवितासे। तेविष्यते। तेविषतै; तेविषातै। तेवताम्। अतेवत। तेवेत। तेविषीष्ट। तेविषीढ्वम्; तेविषीध्वम्। अतेविष्ट। अतेविढ्वम्। अतेविध्वम्॥

५१६-५२१ षेवृ, गेवृ, ग्लेवृ, पेवृ, मेवृ, म्लेवृ सेवने=सेवन—
सेवते। सिषेवे। गेवते। जिगेवे। ग्लेवते। जिग्लेवे। पेवते। पिपेवे। मेवते। मिमेवे। म्लेवते। मिम्लेवे॥

५२२—५२४ शेवृ, खेवृ, केवृ इत्येके—

शेवते। शिशेवे। खेवते। चिखेवे। केवते। चिकेवे॥

५२५ रेवृ प्लवगतौ=शीघ्र चलना—

रेवते। रिरेवे। रेवितासे। रेविष्यते। रेविषतै; रेविषातै। रेवताम्। अरेवत। रेवेत। रेविषीष्ट। अरेविष्ट। अरेविष्यत॥

इत्ययादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः सप्तत्रिंशत्समाप्ताः॥

ये अय आदि ३७ आत्मनेपद धातु समाप्त हुए॥

अथ परस्मैपदिन [मव्यादयः] पञ्चनवतिः।

अब यवर्गान्तों में [मव्यादि] ९५ पच्यानवे धातु परस्मैपदी कहते हैं—

५२६ मव्य बन्धने=बांधना—मव्यति। ममव्य। ममव्यतुः। मव्यिता। मव्यिष्यति। मव्यिषति; मव्यिषाति। मव्यतु। अमव्यत्। मव्येत्। मव्यात्। अमव्यीत्। अमव्यिष्यत्॥

५२७—५२९ सूर्क्ष्य, ईर्क्ष्य, ईर्ष्य ईर्ष्यार्थाः=ईर्षा—

सूर्क्ष्यति। ईर्क्ष्यति। ईर्ष्यति। ईर्क्ष्याञ्चकार। ईर्ष्याञ्चकार। ईर्ष्याम्बभूव। ईर्ष्यामास। ईर्ष्यिता। ईर्ष्यिष्यति। ईर्ष्यिषति; ईर्ष्यिषाति। ईर्ष्यतु। ऐर्ष्यत्। ईर्ष्येत्। ईर्ष्यात्। ऐर्ष्यीत्। ऐर्ष्यिष्यत्॥

५३० हय गतौ—हयति। जहाय। जहयतुः। हयिता। हयिष्यति। हायिषति; हायिषाति। हयतु। अहयत्। हयेत्। हय्यात्। अहयीत्, (१६२) से वृद्धि नहीं होती॥

५३१-५३२ शुच्य, चुच्य अभिषवे=यंत्र से साररूप रस खींचना—शुच्यति। चुच्यति॥

५३३ हर्य गतिकान्त्योः=गति और इच्छा—हर्यति। जहर्य॥

५३४ अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु = भूषण, सामर्थ्य और निषेध—

अलति । आल । आलतुः । आलुः । अलिता । अलिष्यति । आलिषति; आलिषाति । अलतु । आलत् । अलेत् । अल्यात् ॥

१९६–अतो ल्रान्तस्य ॥७।२।२॥

अकार के समीप जो रेफ और लकार, तदन्त अङ्ग के अकार को वृद्धि हो, परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो।

(१४४) सूत्र से विकल्प करके वृद्धि प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। मा भवानालीत् । आलिष्टाम् । आलिषुः ।

अकार के समीप रेफ लकार इसलिये कहे हैं कि—'अवभ्रीत्, यहां अकार के समीप भकार है, रेफ नहीं ॥

५३५ ञिफला विशरणे = मरना —

इस धातु में 'ञि' और 'आ' दो वर्ण इत् होजाते हैं—फलति । पफाल । फेलतुः । फेलुः । यहां अभ्यास के झल् फकार को चर पकार होता है, इस कारण अनादेशादि के न होने से (१२५) से एत्वाभ्यासलोप नहीं प्राप्त है, सो (१६४) सूत्र से हो जाता है।

फलिता । फलिष्यति । फालिषति; फालिषाति । फलतु । अफलत् । फलेत् । फल्यात् । अफालीत् (१९६) । अफलिष्यत् ॥

५३६—५३९ मील, श्मील, स्मील, क्ष्मील निमेषणे = नेत्रों को शीघ्र खोलना मींचना—मीलति । मिमील । मीलिता । मीलिष्यति । मीलिषति; मीलिषाति । मीलतु । अमीलत् । मीलेत् । मील्यात् । अमीलीत् । अमीलिष्यत् । श्मीलति । शिश्मील । स्मीलति । सिस्मील । क्ष्मीलति । चिक्ष्मील ॥

५४० पील प्रतिष्टम्भे = रोकना—पीलति । पिपील ॥

५४१ नील वर्णे = नीला रङ्ग—नीलति । निनील ॥

५४२ शील समाधौ = निरन्तर योगाभ्यास करना—

शीलति । शिशील ॥

५४३ कील बन्धने = बांधना—कीलति । चिकील ॥

५४४ कूल आवरणे = ढांकना—कूलति । चुकूल । कूलिता । कूलिष्यति । कूलिषति; कूलिषाति । कूलतु । अकूलत् । कूलेत् । कूल्यात् । अकूलीत् । अकूलिष्यत् ॥

५४५ शूल रुजायां सङ्घाते च = पीड़ा और समूह—शूलति ॥

५४६ तूल निष्कर्षे = बाहर निकालना—तूलति । तुतूल ॥

५४७ पूल सङ्घाते—पूलति । पुपूल ॥

५४८ मूल प्रतिष्ठायाम्—मूलति ॥

५४९ फल निष्पत्तौ = सिद्ध होना—

फलति । पफाल । फेलतुः । फेलुः (१६४) । अफालीत् (१९६) ॥

५५० चुल्ल भावकरणे = अभिप्राय जानना—चुल्लति । चुचुल्ल ॥

५५१ फुल्ल विकसने = फूलना—फुल्लति । पुफुल्ल ॥

५५२ चिल्ल शैथिल्ये भावकरणे च = शिथिलता और अभिप्राय जानना—चिल्लति । चिचिल्ल । चिल्लिता । चिल्लिष्यति । चिल्लषति; चिल्लिषाति । चिल्लतु । अचिल्लत् । चिल्लेत् । चिल्ल्यात् । अचिल्लीत् । अचिल्लिष्यत् ॥

५५३ तिल गतौ—तेलति । तितेल । तितिलतुः । तेलिता । तेलिष्यति । तेलिषति ; तेलिषाति । तेलतु । अतेलत् । तेलेत् । तिल्यात् । अतेलीत् । अतेलिष्यत् ॥

तिल्ल इत्यन्ये—तिल्लति ॥

५५४—५५९ वेलृ, चेलृ, केलृ, खेलृ, क्ष्वेलृ, वेल्ल चलने = चलना—

वेलति । विवेल । विवेलतुः । वेलिता । वेलिष्यति । वेलिषति; वेलिषाति । वेलतु । अवेलत् । वेलेत् । वेल्यात् । अवेलीत् । अवेलिष्यत् ।

चेलति। चिचेल। केलति। चिकेल। खेलति। चिखेल। क्ष्वेलति।
चिक्ष्वेल। वेल्लति। विवेल्ल॥

५६०—५६३ पेलृ, फेलृ, खेलृ, शेलृ, षेलृ गतौ—

'खेलृ' धातु दूसरी वार अर्थ भिन्न होने से पढ़ा है—

पेलति। पिपेल। फेलति। पिफेल। शेलति। शिशेल। सेलति।
सिषेल॥

५६४ स्खल सञ्चलने=चलायमान होना—स्खलति। चस्खाल (१२४)। स्खलिता। स्खलिष्यति। स्खालिषति; स्खालिषाति। स्खलतु। अस्खलत्। स्खलेत्। स्खल्यात्। अस्खालीत् (१९६)। अस्खलिष्यत्।

५६५ खल सञ्चये—खलति। चखाल। अखालीत्॥

५६६ गल अदने=खाना—गलति। जगाल। अगालीत्॥

५६७ षल गतौ—सलति। सलाल। सेलतुः। सेलुः। असालीत्॥

५६८ दल विशरणे=मारना—दलति। ददाल। देलतुः। दलिता। दलिष्यति। दालिषति; दालिषाति। दलतु। अदलत्। दलेत्। दल्यात्। अदालीत्। अदलिष्यत्॥

५६९-५७० श्वल, श्वल्ल आशुगमने=शीघ्र चलना—

श्वलति। शश्वाल। अश्वालीत्। श्वल्लति। शश्वल्ल॥

५७१-५७२ खोलृ, खोऋ गतिप्रतिघाते=चलने से रुक जाना—

खोलति। चुखोल। खोरति। चुखोर। अखोलीत्। अखोरीत्॥

५७३ धोऋ गतिचातुर्य्ये=चतुराई से चलना—

धोरति। दुधोर। अधोरीत्॥

५७४ त्सर छद्मगतौ=टेढ़ा चलना—त्सरति। तत्सार। तत्सरतुः। त्सरिता। त्सरिष्यति। त्सारिषति; त्सारिषाति। त्सरतु। अत्सरत्। त्सरेत्। त्सर्यात्। अत्सारीत्। (१९६) अत्सरिष्यत्॥

५७५—क्मर हूर्च्छने=कुटिलता—

क्मरति । चक्मार । चक्मरतुः । अक्मारीत् ॥

५७६–५७९ अभ्र, वभ्र, मभ्र, चर=गत्यर्थाः—

अभ्रति । वभ्रति । मभ्रति । चरति । आचरति । प्रचरति । विचरति । आनभ्र, यहां अभ्यास को दीर्घ (११०) से और उस से परे द्विहल् धातु को नुट् का आगम (१४७) इत्यादि सूत्रों से होता है । ववभ्र ॥ आभ्रीत् । अवभ्रीत् । अमभ्रीत् । यहां अकार के समीप रेफ के न होने से (१९६) सूत्र से वृद्धि नहीं होती ।

चचार । चेरतुः । चरिता । चरिष्यति । चारिषति; चारिषाति । चरतु । अचरत् । चरेत् । चर्य्यात् । अचारीत् (१९६) अचरिष्यत् ।

चर भक्षणे च—चर धातु का यह दूसरा अर्थ होनें से पुनः पढ़ा है ॥

५८० ष्ठिवु निरसने=थूकना—इस धातु के आदि षकार को (१५२) वार्त्तिक से सकार नहीं होता और (१८६) सूत्र से इकार को दीर्घ होकर—ष्ठीवति । तिष्ठेव । तिष्ठिवतुः । तिष्ठिवुः ।

और इस धातु का दूसरा वर्ण किन्हीं आचार्यों के मत में ठकार ही है अर्थात् जब ठकार है तो षोपदेश नहीं और जब थकार है तब षोपदेश है । ठकार पक्ष में—टिष्ठेव । टिष्ठिवतुः । टिष्ठिवुः । इत्यादि प्रयोग अभ्यास ही में विशेष होंगे । टिष्ठेविथ । टिष्ठिवथुः । टिष्ठिव । टिष्ठेव । टिष्ठिविव । टिष्ठिविम । ष्ठेविता । ष्ठेष्यति । ष्ठेविषति; ष्ठेविषाति । ष्ठीवति; ष्ठीवाति । ष्ठीवतु । अष्ठीवत् । ष्ठीवेत् ।

१९७–हलि च ॥ ८ । २ । ७७ ॥

हल् प्रत्याहार में कोई वर्ण परे हो, तो रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा जो इक् उस को दीर्घ आदेश होवे । ष्ठिव्+यासुट्+सुट्+तिप्'= ष्ठीव्यात् ।

यहां यासुट् का यकार हल् प्रत्याहार में है । अष्ठेवीत् । अष्ठेविष्टाम् । अष्ठेविष्यत् ॥

५८१ जि जये=उन्नति को प्राप्त होना—

यह धातु अनिट् और अकर्मक है। क्योंकि इवर्णान्तों में जो सेट् पढ़े हैं, उनमें इसका पाठ नहीं। और इस धातु का स्वार्थ कर्त्ता से भिन्न अन्य किसी में नहीं घटता, इस कारण अकर्मक है। जि+शप्+तिप्'=जयति, (२१) सूत्र से गुण और (२२) से अय् आदेश होता है। जयतः। जयन्ति।

१९८–सन् लिटोर्जेः ॥ ७ । ३ । ५७ ॥

सन् और लिट् प्रत्यय परे हों, तो जि धातु के अभ्यास से परे उत्तर भाग को कवर्गादेश हो।

'जि+णल्' इस अवस्था में प्रथम (९०) सूत्र से वृद्धि होकर द्वित्व होता है। 'जै+जै+णल्'=जिगाय। यहां परभाग के जकार को गकार हो जाता है। जिग्यतुः। जिग्युः; (१५६) सूत्र से यणादेश होता है। जिगेथ, (१५७) सूत्र से थल् से इट् का निषेध और जिगयिथ (१४९) सूत्र से भारद्वाज के मत में ऋकारान्तों के निषेध का नियम होने से इडागम हो जाता है। जिग्यथुः। जिग्य। जिगाय (१४३); जिगय। जिग्यिव। जिग्यिम।

लुट्—जेता। जेतारौ। जेतारः। जेतासि। जेतास्थः। जेतास्थ। जेतास्मि। जेतास्वः। जेतास्मः।

लृट्—जेष्यति। जेष्यतः। जेष्यन्ति। जेष्यसि। जेष्यथः। जेष्यथ। जेष्यामि। जेष्यावः। जेष्यामः।

लेट्—जैषति। जैषाति। जैषत्। जैषात्। जैषद्। जैषाद्। जेषति। जेषाति। जेषत्। जेषात्। जेषद्। जेषाद्। जयति। जयाति। जयत्। जयात्। जयद्। जयाद् इत्यादि। इसी प्रकार तस् आदि में जानो।

लोट्—जयतु; जयतात्। जयताम्। जयन्तु। जय; जयतात्। जयतम्। जयत। जयानि। जयाव। जयाम।

लङ्—अजयत् । अजयताम् । अजयन् । अजयः । अजयतम् । अजयत । अजयम् । अजयाव । अजयाम ।

विधि लिङ्=जयेत् । जयेताम् । जयेयुः । जयेः । जयेतम् । जयेत । जयेयम् । जयेव । जयेम ।

आशीर्लिङ्—(१६०) सूत्र से दीर्घ होकर जीयात् । जीयास्ताम् । जीयासुः । जीयाः । जीयास्तम् । जीयास्त । जीयासम् । जीयास्व । जीयास्म ।

लुङ्—'अट्+जि+सिच्+तिप्'=अजैषीत्, (१५८) सूत्र से इकार को वृद्धि हो जाती है । अजैष्टाम् । अजैषुः । अजैषीः । अजैष्टम् । अजैष्ट । अजैषम् । अजैष्व । अजैष्म ।

लृङ्—अजेष्यत् । अजेष्यताम् । अजेष्यन् ॥

५८२ जीव प्राणधारणे=प्राणों का धारण करना—

जीवति । जिजीव । जीविता । जीविष्यति । जीनिषति; जीविषाति । जीवतु । अजीवत् । जीवेत् । जीव्यात् । अजीवीत् । अजीविष्यत् । 'जीव' धातु के गुरूपध होने से (५१) सूत्र से गुण नहीं होता ॥

५८३—५८६ पीव, मीव, तीव, णीव स्थौल्ये=मोटापन—

पीवति । मीवति । तीवति । नीवति ॥

५८७-५८८ क्षिवु, क्षेवु निरसने=फेंकना—

क्षेवति । चिक्षेव । चिक्षिवतुः । चिक्षिवुः । क्षेविता । क्षेविष्यति । क्षेविषति; क्षेविषाति । क्षेवतु । अक्षेवत् । क्षेवेत् । क्षीव्यात्, (१९७) सूत्र से वकार की उपधा को दीर्घ होता है । क्षेव्यात् । अक्षेवीत् । अक्षेविष्यत् ॥

५८९—५९३ उर्वी, तुर्वी, थुर्वी, दुर्वी, धुर्वी हिंसार्थाः—

(१३०) सूत्र से रेफ की उपधा उकारों को दीर्घ आदेश हो जाता है—ऊर्वति । ऊर्वाञ्चकार । ऊर्वाञ्चक्रतुः । ऊर्वाञ्चक्रुः । ऊर्वाञ्चकर्थ । ऊर्वाम्बभूव । ऊर्वामास । ऊर्विता । ऊर्विष्यति । ऊर्विषति; ऊर्विषाति ।

ऊर्वतु । और्वत् । ऊर्वेत् । ऊर्व्यात् । और्वीत् । और्विष्यत् । तूर्वति । तुतूर्व ।
थूर्वति । तुथूर्व । दूर्वति । दुदूर्व । धूर्वति । दुधूर्व ॥

५९४ गुर्वी उद्यमने = उद्यम—गूर्वति । जुगूर्व ॥

५९५ मुर्वी बन्धने = बांधना—मूर्वति । मुमूर्व ॥

५९६—५९८ पुर्व, पर्व, मर्व पूरणे = पूरा होना—

पूर्वति । पुपूर्व । पर्वति । पपर्व । पर्विता । पर्विष्यति । पर्विषति; पर्विषाति । पर्वतु । अपर्वत् । पर्वेत् । पर्व्यात् । अपर्वीत् । अपर्विष्यत् ॥

५९९ चर्व अदने = खाना—चर्वति । चचर्व ॥

६०० भर्व हिंसायाम्—भर्वति । बभर्व ॥

६०१—६०३ कर्व, खर्व, गर्व दर्पे = अहंकार करना—

कर्वति । चकर्व । खर्वति । चखर्व । गर्वति । जगर्व ॥

६०४—६०६ अर्व, शर्व, षर्व हिंसायाम्—

अर्वति । आनर्व । आनर्वतुः । शर्वति । सर्वति ॥

६०७ इवि व्याप्तौ = व्याप्त होना—इन्वति । इस धातु में नुम् के नकार को परसवर्ण की प्राप्ति न होने से वकार में मिल जाता है ।

इन्वाञ्चकार । इन्वाम्बभूव । इन्वामास । इन्विता । इन्विष्यति । इन्विषति; इन्विषाति । इन्वतु । ऐन्वत् । इन्वेत् । इन्व्यात् । ऐन्वीत् । ऐन्विष्यत् ॥

६०८–६१० पिवि, मिवि, णिवि सेवने सेचने च = सेवन करना और सींचना—

पिन्वति । पिपिन्व । मिन्वति । मिमिन्व । निन्वति । निनिन्व ॥

६११–६१२ हिवि, दिवि, धिवि, जिवि प्रीणनार्थाः = तृप्ति होना—

हिन्वति । जिहिन्व । दिन्वति । दिदिन्व । दिन्विता । दिन्विष्यति । दिन्विषति; दिन्विषाति । दिन्वतु । अदिन्वत् । दिन्वेत् । दिन्व्यात् । अदिन्वीत् । अदिन्विष्यत् ।

१९९–धिन्विकृण्व्योर च ॥ ३ । १ । ८० ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो धिन्वि और कृण्वि धातु से उ प्रत्यय और इन धातुओं को अकार आदेश हो जावे।

अकार आदेश सामान्य विधान होने से अलोन्त्यपरिभाषा के बल से अन्त्य अल् वकार के स्थान में होता है और यह उ प्रत्यय शप् का अपवाद है। उ प्रत्यय की तिङ और शित् से भिन्न होने के कारण (४९) सूत्र से आर्द्धधातुक संज्ञा होती है।

'धि+न्+अ+उ' (१७२) सूत्र से अकार का लोप होकर 'धिन्+उ+तिप्' इस अवस्था में उ आर्द्धधातुक प्रत्यय को मानकर धि के इकार को (५१) सूत्र से गुण प्राप्त है, सो (अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ॥ अ० १। १। ५७) इस परिभाषा सूत्र से अकार लोप के स्थानिवत् होने से गुण नहीं होता। फिर उ प्रत्यय को (२१) सूत्र से गुण होकर 'धिन्+ओ+तिप्'=धिनोति। 'धिन्+उ+तस्'=धिनुतः, यहां (९७) सूत्र से तस् की ङित् संज्ञा होकर। (४५) से गुण का निषेध होता है। धिन्वन्ति। धिनोषि। धिनुथः। धिनुथ। धिनोमि।

२००—लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ॥ ६ । ४ । १०७ ॥

संयोग जिसके पूर्व न हो ऐसा जो प्रत्यय का उकार उसका विकल्प करके लोप हो व और म परे हों तो। 'धिनु+वस्'=धिन्वः। धिन्मः। धिनुवः। धिनुमः।

दिधिन्व। दिधिन्वतुः। धिन्विता। धिन्विष्यति। धिन्विषति; धिन्विषाति; धिनवति; धिनवाति। यहां (२१) सूत्र से गुण होकर ओकार को अट् आ निमित्त अव् आदेश होता है।

धिनोतु; धिनुतात्। धिनुताम्। धिन्वन्तु।

२०१–उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ।। ६ । ४ । १०६ ।।

संयुक्त अक्षर जिसके पूर्व न हो ऐसा जो प्रत्यय का उकार तदन्त अङ्ग से परे जो हि उसका लुक् होवे । 'धिनु+हि'=धिनु ।

धिनुतात् । धिनुतम् । धिनुत । 'धिनु+मिप्'=धिनवानि । यहां (७२) सूत्र से नि आदेश और (११८) सूत्र से आट् का आगम पित् होकर वस् मस् में भी गुण हो जाता है । धिनवाव । धिनवाम ।

अधिनोत् । अधिनुताम् । अधिन्वन् । अधिनोः । अधिनुतम् । अधिनुत । अधिनवम् । अधिन्व; अधिनुव । अधिन्म; अधिनुम ।

विधिलिङ् में अदन्त अङ्ग से परे यासुट् के न होने से (८१) सूत्र से इय् आदेश नहीं होता—धिनुयात् । धिनुयाताम् । धिनुयुः । धिनुयाः । धिनुयातम् । धिनुयात । धिनुयाम् । धिनुयाव । धिनुयाम । और यहां (७८) से यासुट् के ङित् होने से (४५) सूत्र से गुण का निषेध होता है ।

और आशिष् लिङ् की (८४) सूत्र से आर्द्धधातुक संज्ञा होने से उ प्रत्यय नहीं होता—धिन्व्यात् । धिन्व्यास्ताम् । धिन्व्यासुः ।

अधिन्वीत् । अधिन्विष्टाम् । अधिन्विषुः । अधिन्विष्यत् । जिन्वति । जिजिन्व । जिन्विता । जिन्विष्यति । जिन्विषति; जिन्विषाति । जिन्वतु । अजिन्वत् । जिन्वेत् । जिन्व्यात् । अजिन्वीत् । अजिन्विष्यत् ।।

६१५—६१७ रिवि, रवि, धवि गत्यर्थाः—रिण्वति । रिरिण्व । रण्वति । ररण्व, यहां नुम् के नकार को णत्व होता है । धन्वति । दधन्व ।।

६१८ कृवि हिंसाकरणयोश्च=हिंसा और करना—

चकार से यह धातु गत्यर्थ भी है । और 'धिवि' धातु में जो सूत्र लगते हैं वे सब इसमें भी जानो, परन्तु—

२०२–वा०ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् ।। ८ । ४ । १ ।।

ऋवर्ण से परे जो नकार उसको णकार आदेश सामान्य से अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् के व्यवधान में भी हो ।

इस वार्तिक से नुम् के नकार को सर्वत्र ऋकार से परे णत्व होता है। 'कृ+नुम्+अ+उ+तिप्'=कृणोति। कृणुतः। कृण्वन्ति। कृणोषि। कृणुथः। कृणुथ। कृणोमि। कृण्वः; कृणुवः। कृण्मः; कृणुमः। चकृण्व। चकृण्वतुः। कृण्विता। कृण्विषति; कृण्विषाति; कृणवति; कृणवाति। कृणोतु। अकृणोत्। अकृण्व; अकृणुव। अकृण्म; अकृणुम। कृणुयात्। कृण्व्यात्। अकृण्वीत्। अकृण्विष्यत्॥

६१९' मव बंधने=बांधना=मवति। ममाव। मेवतुः। मेवुः। मविता। मविष्यति। माविषति; माविषाति। मवतु। अमवत्। मवेत्। मव्यात्। अमावीत्; अमवीत्। अमविष्यत्॥

६२० अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु=रक्षा, गति, शोभा, प्रीति, तृप्ति, बोध होना, प्रवेश करना, सुनना, अध्यक्ष का कार्य साधना, मांगना, चेष्टा, इच्छा, प्रकाश, प्राप्ति, लिपटना, हिंसा, देना, विभाग करना और बढ़ाना—

अवति। आव। आवतुः। आवुः। अविष्यति। आविषति; आविषाति। अवतु। आवत्। अवेत्। अव्यात्। आवीत्। आविष्यत्॥

इति मव्यादय उदात्ता उदात्तेतो जयतिवर्जं परस्मैभाषाः पञ्चनवतिः॥

ये ९५ मव्य आदि परस्मैपद धातु समाप्त हुए॥

[अथैको वकारन्त उभयतो भाषः]

६२१ धावु गतिशुद्ध्योः=गति और शुद्धि—

यह धातु स्वरितेत् है अर्थात् इसका अन्त्य वर्ण स्वरित इत्संज्ञक होता है। (१०३) सूत्र से क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद, अन्यत्र परस्मैपद होता है। इसलिये उभयपद के प्रयोग होते हैं—

धावते । धावेते । धावन्ते । धावति । धावतः । धावन्ति । दधावे । दधाव । धावितासे । धावितासि । धाविष्यते । धाविष्यति । धाविषतै; धाविषातै; धाविषति; धाविषाति । धावताम् । धावतु । अधावत । अधावत् । धावेत । धावेत् । धाविषीष्ट । धाव्यात् । अधाविष्ट । अधावीत् । अधाविष्यत । अधाविष्यत् ॥

अथोष्मान्ता आत्मनेपदिनो द्विपञ्चाशत् ॥

अब ऊष्मान्त अर्थात् श, ष, स, ह ये वर्ण जिनके अन्त में हों, ऐसे ५१ इक्यावन आत्मनेपदी धातु कहते हैं—

६२२–६२३ धुक्ष, धिक्ष सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु = प्रकाश, दुःख और जीवन—धुक्षते । दुधुक्षे । धिक्षते । दिधिक्षे । धुक्षितासे । धुक्षिष्यते । धुक्षिषतै; धुक्षिषातै । धुक्षताम् । अधुक्षत । धुक्षेत । धुक्षिषीष्ट । अधुक्षिष्ट । अधुक्षिष्यत ॥

६२४ वृक्ष वरणे = ग्रहण करना—वृक्षते । ववृक्षे ॥

६२५ शिक्ष विद्योपादाने = विद्या का ग्रहण करना—

शिक्षते । शिशिक्षे ॥

६२६ भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च = भीख मांगना, मिले वा न मिले—भिक्षते । बिभिक्षे ॥

६२७ क्लेश अव्यक्तायां वाचि, बाधन इत्यन्ये = अस्पष्ट बोलना और किसी-किसी के मत में दुःख देने अर्थ में भी है—

क्लेशते । चिक्लेशे । क्लेशितासे । क्लेशिष्यते । क्लेशिषतै; क्लेशिषातै । क्लेशताम् । अक्लेशत । क्लेशेत । क्लेशिषीष्ट । अक्लेशिष्ट । अक्लेशिष्यत ॥

६२८ दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च = बढ़ना और शीघ्रता करना—

दक्षते । ददक्षे ॥

६२९ दीक्ष मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु = मुण्डन, यज्ञ, यज्ञोपवीतधारण, नियम, सत्यभाषण आदि वा चान्द्रायण तथा ब्रह्मचर्यादि का उपदेश—दीक्षते । दिदीक्षे ॥

६३० ईक्ष दर्शने = विचारपूर्वक देखना—

ईक्षते । ईक्षाञ्चक्रे । ईक्षाम्बभूव । ईक्षामास ॥

६३१ ईष गतिहिंसादर्शनेषु = गति, हिंसा और देखना—

ईषते । ईषाञ्चक्रे । ईषाम्बभूव । ईषामास । ईषितासे । ईषिष्यते । ईषिषतै; ईषिषातै । ईषताम् । ऐषत । ईषेत । ईषिषीष्ट । ऐषिष्ट । ऐषिष्यत ॥

६३२ भाष व्यक्तायां वाचि = स्पष्ट बोलना—

भाषते । बभाषे । भाषिता । भाषिष्यते । भाषिषतै; भाषिषातै । भाषताम् । अभाषत । भाषेत । भाषिषीष्ट । अभाषिष्ट । अभाषिष्यत ॥

६३३ वर्ष स्नेहने = चिकनाई—वर्षते । ववर्षे ॥

६३४ गेषृ अन्विच्छायाम् = खोजना—गेषते । जिगेषे ॥

ग्लेषृ इत्येके—ग्लेषते । जिग्लेषे ॥

६३५ पेषृ प्रयत्ने—पेषते । पिपेषे । पेषिता । पेषिष्यते; पेषिषतै । पेषिषातै । पेषताम् । अपेषत । पेषेत । पेषिषीष्ट । अपेषिष्ट । अपेषिष्यत ॥

६३६—६३९ जेषृ, णेषृ, एषृ, प्रेषृ गतौ—

जेषते । नेषते । एषते । एषाञ्चक्रे । एषाम्बभूव । एषामास । प्रेषते ॥

६४०—६४२ रेषृ, हेषृ, ह्लेषृ, अव्यक्ते शब्दे = गड़बड़ शब्द होना—

रेषते । रिरिषे । हेषते । जिहेषे । ह्लेषते । जिह्लेषे ॥

६४३ कासृ शब्दकुत्सायाम् = निन्दित शब्द का होना—

कासते । कासाञ्चक्रे । कासाम्बभूव । कासामास, (१६९; १७०) सूत्र वार्त्तिकों से यहां आम् प्रत्यय होता है । कासितासे । कासिष्यते ।

कासिषतै; कासिषातै। कासताम्। अकासत। कासेत। कासिषीष्ट। अकासिष्ट। अकासिष्यत॥

६४४ भासृ दीप्तौ—भासते। बभासे॥

६४५-६४६ णासृ, रासृ शब्दे—

नासते। रासते। ररासे। रासितासे। रासिष्यते। रासिषतै; रासिषातै। रासताम्। अरासत। रासेत। रासिषीष्ट। अरासिष्ट अरासिष्यत॥

६४७—णस कौटिल्ये=कुटिलता—नसते। नेसे। नेसाते॥

६४८ भ्यस भये=डरना—भ्यसते। बभ्यसे॥

६४९ आङः शसि इच्छायाम्—

इस धातु के पूर्व आङ् उपसर्ग इसलिये पढ़ा है कि इसी आङ् उपसर्ग का नियम रहे, अन्य उपसर्ग इसके पूर्व न लगे—आशंसते। आशशंसे। आशंसिता। आशंसिष्ट॥

६५०-६५१ ग्रसु, ग्लसु अदने=खाना—

ग्रसते। ग्लसते। जग्रसे। जग्लसे। ग्रसिता। ग्रसिष्यते। ग्रासिषतै; ग्रासिषातै। ग्रसताम्। अग्रसत। ग्रसेत। ग्रसिषीष्ट। अग्रसिष्ट। अग्रसिष्यत॥

६५२ ईह् चेष्टायाम्=क्रिया—ईहते। ईहाञ्चक्रे। ईहाम्बभूव। ईहामास। ईहिह्यंसे। ईहिष्यते। ईहिषतै; ईहिषातै। ईहताम्। ऐहत। ईहेत। ईहिषीष्ट। ऐहिष्ट। ऐहिष्यत॥

६५३-६५४ वहि, महि वृद्धौ=बढ़ना

वंहते। मंहते। ववंहे। वंहिता। वंहिष्यते। वंहिषतै; वंहिषातै। वंहताम्। अवंहत। वंहेत। वंहिषीष्ठ। अवंहिष्यत॥

६५५ अहि गतौ—अंहते। आनंते। आनंहाते। अंहिता। अंहिष्यते। अंहिषतै; अंहिषातै। अंहताम्। आंहत। अंहेत। अंहिषीष्ट। आंहिष्ट। आंहिष्यत॥

६५६-६५७ गर्ह, गल्ह कुत्सायाम्=निन्दा—

गर्हते । गल्हते । जगर्हे । जगल्हे ॥

६५८–६५९ बर्ह, बल्ह प्राधान्ये = श्रेष्ठता—

बर्हते । बबर्हे । बल्हते । बबल्हे ॥

६६०–६६१ वर्ह, वल्ह, परिभाषणहिंसाच्छादनेषु = बहुत बोलना, हिंसा और दबाना —वर्हते । वल्हते । पूर्व दोनों धातुओं और इन दोनों में इतना ही भेद है कि पहिले दोनों में पवर्गीय बकार और इन दोनों में यवर्गीय वकार है ॥

६६२ प्लिह गतौ = चलना—प्लेहते । पिप्लिहे । प्लेहिता । प्लेहिष्यते । प्लेहिषतै; प्लेहिषातै । प्लेहताम् । अप्लेहत । प्लेहेत । प्लेहिषीष्ट । अप्लेहिष्ट । अप्लेहिष्यत ॥

६६३–६६५ वेहृ, जेहृ, बाहृ प्रयत्ने = पुरुषार्थ—

वेहते । विवेहे । विवेहिढ्वे; विवेहिध्वे । वेहिता । वेहिष्यते । वेहिषतै; वेहिषातै । वेहताम् । अवेहत । वेहेत । वेहिषीष्ट । वेहिषीढ्वम्; वेहिषीध्वम् । अवेहिष्ट । अवेहिढ्वम्; अवेहिध्वम् । अवेहिष्यत । जेहते । जिजेहे । अजेहिष्ट । बाहते । बबाहे ॥

६६६ द्राहृ निद्राक्षये = जागना—द्राहते । दद्राहे । दद्राहिढ्वे; दद्राहिध्वे । द्राहितासे । द्राहिषतै; द्राहिषातै । द्राहताम् । अद्राहत । द्राहेत । द्राहिषीष्ट । अद्राहिष्ट । अद्राहिढ्वम्; अद्राहिध्वम् । अद्राहिष्यत ॥

निक्षेप इत्यन्ये—किन्हीं लोगों के मत में यह धातु 'धन रखने' अर्थ में है ॥

६६७ काशृ दीप्तौ = प्रकाश होना—

काशते । चकाशे । काशितासे । काशिष्यते । काशिषतै; काशिषातै । काशताम् । अकाशत । काशेत । काशिषीष्ट । अकाशिष्ट । अकाशिष्यत ॥

६६८ ऊह वितर्के = अनेक प्रकार के तर्क उठाना —

ऊहते । ऊहाञ्चक्रे । ऊहाम्बभूव । ऊहामास । ऊहिता । ऊहिष्यते । ऊहिषतै; ऊहिषातै । ऊहताम् । औहत । ऊहेत । ऊहिषीष्ट । औहिष्ट । औहिढ्वम्; औहिध्वम् । औहिष्यत ॥

६६९ गाहू विलोडने=बिलोना—यह भी धातु ऊदित् है । गाहते । गाहेते । गाहन्ते । गाहसे । गाहेथे । गाहध्वे । गाहे । गाहावहे । गाहामहे ।

लिट्—जगाहे । जगाहाते । जगाहिरे । जगाहिषे । और जिस पक्ष में (१४०) से इट् नहीं होता, वहाँ 'जगाह्+से' इस अवस्था में—

२०३—हो ढः ॥ ८ । २ । ३१ ॥

झल् जिससे परे हो वा पदान्त में जो हकार उसको ढकार आदेश हो ।

यहाँ 'गाह्' धातु के हकार को ढकार होकर—

२०४—एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ॥८।२।३७॥

झलादि स और ध्व परे हों तो, वा पदान्त में धातु का अवयव जो झषन्त एकाच् बश् प्रत्याहार में कोई वर्ण हो, उसको भष् आदेश हो ।

यहाँ 'गाह्' धातु के बश् गकार को भष् घकार हो जाता है । बश् प्रत्याहार से ब, ग, ड, द चार वर्ण हैं, और भष् प्रत्याहार में भी भ, घ, ढ, ध चार वर्ण हैं । इनका यथासंख्य क्रम तो लगता है परन्तु ड स्थानी के न होने से ढ आदेश कहीं नहीं आता । अब 'जघाढ्+से' इस अवस्था में—

२०५—षढोः कः सि ॥ ८ । २ । ४१ ॥

सकारादि प्रत्यय परे हों तो षकार और ढकार को ककार आदेश हो जावे ।

यहाँ ककार होकर 'जघाक्+से'=जघाक्षे, (५६) से षत्व हो जाता है और इसी ककार षकार के संयोग को क्ष बोलते हैं । परन्तु यह लिखने और बोलने की परिपाटी यथार्थ नहीं । ठीक तो यही है कि लिखने और बोलने में 'क्+ष्' के स्वरूप स्पष्ट विदित हों ।

जगाहाथे। जगाहिढ्वे (१९१); जगाहिध्वे। और जिस पक्ष से (१४०) से इट् का आगम नहीं होता, वहाँ 'जघाढ्+ध्वे' इस अवस्था में तवर्ग ध्वे के धकार को ढकार हो जाता है। पीछे—

२०६—ढो ढे लोपः ॥ ८ । ३ । १३ ॥

ढकार का लोप हो ढकार परे हो तो।

इस से 'गाह्' धातु के ढकार का लोप होकर जघाढ्वे। जगाहे। जगाहिवहे; जगाह्वहे। जगाहिमहे; जगाह्महे।

लुट्—गाहिता। गाहितारौ। गाहितारः। गाहितासे। अनिट् पक्ष में—'गाह्+तास्+डा'+गाढा, यहाँ (१४१) से तास् के तकार को धकार और (२०३) से ढत्व, (ष्टुना ष्टुः ॥ ८ । ४ । ४१) से धकार को ढकार और प्रथम ढकार का (२०६) से लोप होता है। गाढारौ। गाढारः। गाढासे। गाढासाथे। गाढाध्वे। गाढाहे। गाढास्वहे। गाढास्महे।

गाहिष्यते। गाहिष्येते। गाहिष्यन्ते। अनिट् पक्ष में—'गाह्+स्य+ते'=घाक्ष्यते। घाक्ष्येते। घाक्ष्यन्ते।

गाहिषतै; गाहिषातै। 'गाह्+स्+अट्+त'=घाक्षतै; घाक्षातै; गाहतै; गाहातै; गाहते; गाहाते।

गाहताम्। अगाहत। गाहेत। गाहिषीष्ट। घाक्षीष्ट। गाहिषीढ्वम्। गाहिषीध्वम्; घाक्षीध्वम्। अगाहिष्ट। अगाहिषाताम्। अगाहिषत। अनिट् पक्ष में—'अट्+गाह्+सिच्+त'=अगाढ, यहाँ (१४२) से सिच् के सकार का लोप, (१४१) से तकार को धकार और पूर्वोक्त रीति से सब काम जानो। अगाह्+सिच्+आताम्'=अघाक्षाताम्। अघाक्षत। 'अगाह्+सिच्+थास्'=अगाढाः। अघाक्षाथाम्। अगाहिढ्वम्; अगाहिध्वम्; अघाढ्वम्। अघाक्षि। अघाक्ष्वहि। अघाक्ष्महि। अगाहिष्यत। अघाक्ष्यत। अघाक्ष्येताम्। अघाक्ष्यन्त॥

६७० गृहू ग्रहणे=ग्रहण—गर्हते। जगृहे। जगृहाते। जगृहिरे।

यह भी धातु ऊदित् है और गाहू के समान सब काम हकारान्त के होंगे—जगृहिषे; जघृक्षे। जगृहाथे। जगृहिढ्वे; जगृहिध्वे; जघृढ्वे। जगृहे। जगृहिवहे; जगृह्वहे। जगृहिमहे; जगृह्महे। गर्हिता। गर्ढा। गर्ढारौ। गर्ढारः। गर्ढासे। गर्हिष्यते। घर्क्ष्यते। घर्क्ष्येते। घर्क्ष्यन्ते। गर्हिषतै; गर्हिषातै; घर्क्षतै; घर्क्षातै; गर्हतै; गर्हातै। गर्हताम्। अगर्हत। गर्हेत। गर्हिषीष्ट; घृक्षीष्ट, (१६३) से कित्वत् हो जाने से गुण नहीं होता। गर्हिषीढ्वम्; गर्हिषीध्वम्; घृक्षीध्वम्। अगर्हिष्ट। अगर्हिषाताम्। अगर्हिषत।

अनिट् पक्ष में—'अट्+गृह्+च्लि+त' इस अवस्था में—

२०७–शल इगुपधादनिटः क्सः ॥ ३ । १ । ४५ ॥

इक् जिसकी उपधा में हो ऐसा जो शलन्त धातु उससे परे जो च्लि प्रत्यय उसके स्थान में क्स आदेश हो।

यह सूत्र (८८) का अपवाद है। 'क्स' में से ककार की इत्संज्ञा होकर 'अट्+गृह्+स+त'=अघृक्षत। 'अट्+गृह्+स+आताम्' इस अवस्था में—

२०८–क्सस्याचि ॥ ७ । ३ । ७२ ॥

क्स प्रत्यय का लोप हो अजादि प्रत्यय परे हो तो।

यहाँ लोपरूप आदेश अन्त्य अल् के स्थान में होता है। 'अट्+गृह्+स+आताम्'=अघृक्षाताम्। अघृक्षन्त। अघृक्षथाः। अघृक्षाथाम्। अगर्हिढ्वम्; अगर्हिध्वम्; अघृक्षध्वम्। 'अट्+गृह्+क्स+इट्'=अघृक्षि, यहाँ भी अजादि इट् प्रत्यय के परे क्स के अकार का लोप हो जाता है। अघृक्षावहि। अघृक्षामहि। अगर्हिष्यत। अघर्क्ष्यत।

६७१ ग्लह च=यह धातु भी ग्रहण अर्थ में ही है—

ग्लहते। जग्लहे। ग्लहिता। ग्लहिष्यते। ग्लाहिषतै; ग्लाहिषातै। ग्लहताम्। अग्लहत। ग्लहेत। ग्लहिषीष्ट। अग्लहिष्ट। अग्लहिष्यत॥

६७२ घुषि कान्तिकरणे—इच्छा करना—

घुंषते। जुघुंषे। घुंषिता। घुंषिष्यते। घुंषिषतै; घुंषिषातै। घुंषताम्। अघुंषत। घुंषेत। घुंषिषीष्ट। अघुंषीष्ट। अघुंषिष्यत॥

इति घुक्षादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषा एकपञ्चाशत् समाप्ताः॥

ये घुक्ष आदि आत्मनेपदी ५१ इक्यावन धातु समाप्त हुए॥

अथोष्मान्ताः परस्मैपदिनः एकोननवतिः॥

अब ऊष्मान्तों में ८९ नवासी धातु परस्मैपदी कहते हैं—

६७३ घुषिर् अविशब्दने—इस शब्द में से तीन प्रकार का अर्थ होता है। एक तो विशब्दन=प्रतिज्ञा—उसका निषेध, दूसरा अवि—भेड़ का शब्द होना, और तीसरा वि=पक्षी के शब्द का निषेध अर्थात् अन्य प्राणी का शब्द होना—

घोषति। जुघोष। घोषितासि। घोषिष्यति। घोषिषति; घोषिषाति। घोषतु। अघोषत्। घोषेत्। घुष्यात्। और इस धातु में इर् भाग की इत्संज्ञा होती है, इस कारण (१३८) से च्लि के स्थान में अङ् विकल्प करके होता है—'अघुष्+अङ्+तिप्'=अघुषत्। अघुषताम्। अघुषन्। अघुषः। अघुषतम्। अघुषत। अघुषम्। अघुषाव। अघुषाम॥

सिच् पक्ष में—अघोषीत्। अघोषिष्टाम्। अघोषिषुः। अघोषिष्यत्॥

६७४ अक्षू व्याप्तौ—व्यापकता—

२०९—अक्षोऽन्यतरस्याम्॥ ३।१।७५॥

कर्तृवाची सार्वधातुक परे हो तो अक्षू धातु से श्नु प्रत्यय विकल्प करके होवे।

यह सूत्र (१९) का अपवाद है, इस कारण पक्ष में शप् ही होता है। 'श्नु' प्रत्यय के शकार की इत्संज्ञा होकर 'अक्ष्+नु+तिप्'+ अक्ष्णोति,, यहाँ नु के उकार को (२१) से गुण होता है। अक्ष्णुतः। अक्ष्णुवन्ति। यहाँ (१५९) से श्नु प्रत्यय को उवङ् आदेश होता है। अक्ष्णोषि। अक्ष्णुथः। अक्ष्णुथ। अक्ष्णोमि। अक्ष्णुवः। अक्ष्णुमः। (२००) से संयोग पूर्व होने से उकार का लोप विकल्प से नहीं होता।

जिस पक्ष में श्नु प्रत्यय नहीं होता, वहाँ शप्—अक्षति। अक्षतः। अक्षन्ति।

आनक्ष। आनक्षतुः। आनक्षुः। यह भी धातु ऊदित् है, इस कारण इट् का विकल्प होता है—आनक्षिथ। अनिट् पक्ष में—'आनक्ष्+थल् इस अवस्था में—

२१०—स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ॥ ८ । २ । २९ ॥

पदान्त में वा झल् जिस से परे हो ऐसा जो संयोग, उसकी आदि के जो स् और क् हैं, उनका लोप होवे।

यहाँ संयोग का आदि ककार है और झल् थकार परे है, उस 'क्' का लोप होकर थल् के थकार को (ष्टुना ष्टुः ॥ अ० ८। ४। ४१) सूत्र से ठकार हो जाता है—आनष्ठ। आनक्षथुः। आनक्ष। आनक्ष। आनक्षिव; आनक्ष्व। आनक्षिम; आनक्ष्म।

अक्षिता। अक्षितारौ। अनिट् पक्ष में—'अक्ष्+तास्+डा'= अष्टा। अष्टारौ। अष्टारः।

अक्षिष्यति। 'अक्ष्+स्य+तिप्' यहाँ (२१०) से संयोगादि ककार का लोप मूर्द्धन्य ष् को (१०५) से क् और षत्व होकर—अक्ष्यति। अक्ष्यतः। अक्ष्यन्ति।

अक्षिषति; अक्षिषाति; अक्षति; अक्षाति; अक्ष्णवति; अक्ष्णवाति इत्यादि। अक्ष्णोतु। अक्ष्णुतात्। अक्ष्णुताम्। अक्ष्णुवन्तु (१५९)

अक्ष्णुहि, यहाँ संयोगपूर्वक उकार के होने से हि का लुक् (२०१) से नहीं होता। अक्ष्णुतात्। अक्ष्णुतम्। अक्ष्णुत। अक्ष्णवानि। अक्ष्णवाव। अक्ष्णवाम। यहाँ आट् आगम के पित् (११८) से होने से श्नु को गुण हो जाता है। अक्षतु।

आक्ष्णोत्। आक्ष्णुताम्। आक्ष्णुवन्। आक्ष्णोः। आक्ष्णुतम्। आक्ष्णुत। आक्ष्णवम्। आक्ष्णुव। आक्ष्णुम। आक्षत्। अक्ष्णुयात्। अक्ष्णुयाताम्। 'अक्ष्णु+यासुट्+जस्'=अक्ष्णुयुः, यहाँ (८१) से इय् आदेश की प्राप्ति न होने से (८३) सूत्र से पररूप एकादेश हो जाता है। अक्ष्णुयाः। अक्ष्णुयातम्। अक्ष्णुयात। अक्ष्णुयाम्। अक्ष्णुयाव। अक्ष्णुयाम।

अक्षेत्। अक्षेताम्। अक्षेयुः। अक्ष्यात्। अक्ष्यास्ताम्। अक्ष्यासुः। मा भवानक्षीत्। अक्षिष्टाम्। अक्षिषुः, (१३६) से वृद्धि नहीं होती और अनिट् पक्ष में तो वृद्धि (१३५) से हो जाती है। 'आक्ष+सिच्+ईट्+तिप्'=आक्षीत्। 'आक्ष्+सिच्+तस्'=आष्टाम्' यहाँ संयोगादि ककार का लोप (२१०) से और सिच् के सकार का लोप (१४२) से होता है। आक्षुः। 'आक्ष्+सिच्+ईट्+सिप्'=आक्षीः। आष्टम्। आष्ट। आक्षम्। आक्ष्व। आक्ष्म। आक्षिष्यत्; आक्ष्यत्। आक्ष्याताम्। आक्ष्यन्॥

६७५–६७६ तक्षू, त्वक्षू तनूकरणे=सूक्ष्म करना—

२११–तनूकरणे तक्षः ॥ ३ । १ । ७६ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों, तो तनूकरण अर्थ में वर्त्तमान तक्ष धातु से श्नु प्रत्यय विकल्प करके हो।

यह सूत्र भी शप् का ही अपवाद है और यह भी ऊदित् है, इसलिये सब लकारों में इसका साधुत्व 'अक्षू' धातु के समान जानना चाहिये—तक्ष्णोति। तक्ष्णुतः। तक्ष्णुवन्ति। तक्षति। ततक्ष। ततक्षतुः। ततक्षुः। ततक्षिथ; ततष्ठ। तक्षिता; तष्टा। तष्टारौ। तष्टारः। तक्षिष्यति; तक्ष्यति। तक्षिषति; तक्षिषाति; तक्षति; तक्षाति; तक्ष्णवति; तक्ष्णवाति।

तक्ष्णोतु; तक्षतु। अतक्ष्णोत्; अतक्षत्। तक्ष्णुयात्; तक्षेत्। तक्ष्यात्। अतक्षीत्। अतक्षिष्टाम्। अतक्षिषुः। अताक्षीत्। अताष्टाम्। अताक्षुः। अतक्षिष्यत्। अतक्ष्यत्।

'त्वक्षू' धातु के प्रयोग आर्द्धधातुक विषय में ऊदित् के होने से तक्षू के तुल्य होते हैं। और सार्वधातुक में कुछ विशेष नहीं—त्वक्षति। तत्वक्ष। तत्वक्षिथ; तत्वष्ठ। त्वक्षिता; त्वष्टा। त्वक्षिष्यति; त्वक्ष्यति। त्वक्षिषति; त्वक्षिषाति; त्वक्षति; त्वक्षाति। त्वक्षतु। अत्वक्षत्। त्वक्षेत्। त्वक्ष्यात्। अत्वक्षीत्; अत्वाक्षीत्। अत्वाष्टाम्। अत्वाक्षुः। अत्वक्षिष्यत्। अत्वक्ष्यत्॥

६७७ उक्ष सेचने=सींचना—उक्षति। उक्षाञ्चकार। उक्षाम्बभूव। उक्षामास। उक्षिता। उक्षिष्यति। उक्षिषति; उक्षिषाति। उक्षतु। औक्षत्। उक्षेत्। उक्ष्यात्। औक्षीत्। औक्षिष्यत्॥

६७८ रक्ष पालने—रक्षति। ररक्ष। रक्षिता। रक्षिष्यति। रक्षिषति; रक्षिषाति। रक्षतु। अरक्षत्। रक्षेत्। रक्ष्यात्। अरक्षीत्। अरक्षिष्यत्॥

६७९ णिक्ष चुम्बने=चूमना—निक्षति। निनिक्ष॥

६८०-६८२ तृक्ष, स्तृक्ष, णक्ष गतौ—

तृक्षति। ततृक्ष। स्तृक्षति। सस्तृक्ष। नक्षति। ननक्ष॥

६८३ वक्ष रोषे=रिसाना—वक्षति। ववक्ष। वक्षिता। वक्षिष्यति। वक्षिषति; वक्षिषाति। वक्षतु। अवक्षत्। वक्षेत्। वक्ष्यात्। अवक्षीत्। अवक्षिष्यत्॥

सङ्घात इत्यन्ये—किन्हीं लोगों के मत में यह धातु सङ्घात अर्थ में है॥

६८४ मृक्ष सङ्घाते—मृक्षति। ममृक्ष।

म्रक्ष इत्येके—किन्हीं के मत में यह धातु रेफवान् है, ऋकारवान् नहीं॥

६८५ तक्ष त्वचने=ढांपना—तक्षति॥

६८६ पक्ष परिग्रह इत्येके = हठ करना—किन्हीं का मत है—
पक्षति । पपक्ष ॥

६८७ सूर्क्ष्य आदरे = मान्य करना—सूर्क्ष्यति । सुसूर्क्ष्य ॥

६८८–६९० काक्षि, वाक्षि, माक्षि काङ्क्षायाम् = अभिलाषा—
काङ्क्षति । वाङ्क्षति । माङ्क्षति ॥

६९१–६९३ द्राक्षि, ध्राक्षि, ध्वाक्षि घोरवासिते च = पाप में बसना—
द्राङ्क्षति । दद्राङ्क्ष । ध्राङ्क्षति । दध्राङ्क्ष । ध्वाङ्क्षति । दध्वाङ्क्ष ॥

६९४ चूष पाने = चूसना—चूषति । चुचूष । चूषिता । चूषिष्यति । चूषिषति; चूषिषाति । चूषतु । अचूषत् । चूषेत् । चूष्यात् । अचूषीत् । अचूषिष्यत् ॥

६९५ तूष तुष्टौ = सन्तोष करना—तूषति । तुतूष ॥

६९६ पूष वृद्धौ = बढ़ना—पूषति । पुपूष ॥

६९७ मूष स्तेये = चोरी—मूषति । मुमूष ॥

६९८–६९९ लूष, रूष भूषायाम् = शोभा—
लूषति । रूषति । लुलूष । रुरूष ।

७०० शूष प्रसवे = उत्पत्ति—शूषति । शुशूष ॥

७०१ यूष हिंसायाम्—यूषति । युयूष ॥

७०२ जूष च—जूषति । जुजूष ॥

७०३ भूष अलङ्कारे = गहना—भूषति । बुभूष । भूषिता । भूषिष्यति । भूषिषति; भूषिषाति । भूषतु । अभूषत् । भूषेत् । भूष्यात् । अभूषीत् । अभूषिष्यत् ॥

७०४ ऊष रुजायाम् = रोग—
ऊषति । ऊषाञ्चकार । ऊषाम्बभूव । ऊषामास ॥

७०५ ईष उञ्छे = ऊंछना—
ईषति । ईषाञ्चकार । ईषाम्बभूव । ईषामास ॥

७०६–७१५ कष, खष, शिष, जष, झष, शष, वष, मष, रुष, रिष हिंसार्थाः—

इन सबमें 'शिष' धातु अनिट् है। कषति। चकाष। चकषतुः। कषिता। कषिष्यति। काषिषति; काषिषाति। कषतु। अकषत्। कषेत्। कष्यात्। अकाषीत्; अकषीत्। अकषिष्यत्। खषति। चखाष।

शेषति। शिशेष। शिशिषतुः। शिशेषिथ, यहाँ (१४८) सूत्र के नियम से इट् हो जाता है, नहीं तो प्राप्ति नहीं थी। शेष्टा। शेष्टारौ। शेष्टारः। शेक्ष्यति। शेक्षति; शेक्षाति। शेषति; शेषाति। शेषतु। अशेषत्। शेषेत्। शिष्यात्। 'अट्+शिष्+क्स+तिप्'=अशिक्षत्। अशिक्षताम्। अशिक्षन्। अशिक्षः। अशिक्षतम्। अशिक्षत। अशिक्षम्। अशिक्षाव। अशिक्षाम। यहाँ च्लि के स्थान में क्स आदेश (२०७) से हो जाता है। अशिक्ष्यत्।

जषति। जजाष। जेषतुः। जेषुः। जषिता। जषिष्यति। जाषिषति; जाषिषाति। जषतु। अजषत्। जषेत्। जष्यात्। अजाषीत्; अजषीत्। झषति। जझाष। शषति। शशाष। शेषतुः। वषति। ववाष। ववषतुः, (१२८) से एत्वाभ्यासलोप का निषेध होता है। मषति। ममाष। मेषतुः।

रोषति। रुरोष। रेषति। रिरेष। ये दोनों धातु सेट् ही हैं, परन्तु तकारादि आर्द्धधातुक में विशेष है—

२१२–तीषसहलुभरुषरिषः॥ ७। २। ४८॥

ईषु, सह, लुभ, रुष और रिष धातुओं से परे जो तादि आर्द्धधातुक उसको इट् का आगम विकल्प करके हो।

इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसलिये है कि सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है, उसका विकल्प विशेष विषय में किया है—रोषिता; रोष्टा। रोष्टारौ। रोष्टारः। रेषिता; रेष्टा। रेषिष्यति। रेषिषति; रेषिषाति। रेषतु। अरेषत्। रेषेत्। रिष्यात्। अरेषीत्। अरेषिष्यत्॥

७१६ भष भर्त्सने=धमकाना—भषति। बभाष॥

७१७ उष दाहे=जलन—ओषति। ओषतः। ओषन्ति।

२१३–उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्॥ ३। १। ३७॥

उष, विद और जागृ धातुओं से आम् प्रत्यय विकल्प करके हो, लिट् लकार परे हो तो, वेद विषय को छोड़कर।

यह बात सर्वत्र के लिये ध्यान में रखनी चाहिये कि जिन-जिन एध आदि धातुओं से आम् प्रत्यय किया है, वहाँ-वहाँ सर्वत्र वेद में आम् प्रत्यय का निषेध है। जैसे—'एध्+एध्+एश्'=इयेधे (१५३) इत्यादि प्रयोगों की योजना वैदिक प्रयोगों में समझ लेना चाहिये।

ओषाञ्चकार। उवोष। ऊषतुः। और वेद में भी 'उवोष' ही होगा। ओषिता। ओषिष्यति। ओषिषति; ओषिषाति। ओषतु। औषत्। ओषेत्। उष्यात्। औषीत्। औषिष्यत्॥

७१८–७२० जिषु, विषु, मिषु सेचने=सींचना—

जेषति। जिजेष। विष धातु अनिट् है—वेषति। विवेष। विवेषिथ। विवेषिव। विवेषिम। मेषति। मिमेष। वेष्टा। वेक्ष्यति। वेक्षति; वेक्षाति। वेषति; वेषाति। वेषतु। अवेषत्। वेषेत्। विष्यात्। 'अविष्+क्स+तिप्'=अविक्षत्। अविक्षताम्। अविक्षन्। अवेक्ष्यत्॥

७२१ पुष पुष्टौ—'पुष' धातु अनिट् कारिका में दिवादिगण का निर्देश किया है, इस कारण यह सेट् है। पोषति। पुपोष। पोषिता। पोषिष्यति। पोषिषति; पोषिषाति। पोषतु। अपोषत्। पोषेत्। पुष्यात्। अपोषीत्। अपोषिष्यत्॥

७२२–७२५ श्रिषु, श्लिषु, प्रुषु, प्लुषु दाहे—

श्रेषति। श्लेषति। शिश्रेष। शिश्लेष। प्रोषति। पुप्रोष। प्लोषति। पुप्लोष। 'श्लिष' धातु भी अनिट् व्यवस्था में दिवादिगण का ही पढ़ा है॥

७२६-७२८ पृषु, वृषु, मृषु सेचने—पर्षति। वर्षति। मर्षति। पपर्ष। पपृषतुः। पपृषुः। पर्षिता। पर्षिष्यति। पर्षिषति; पर्षिषाति। पर्षति; पर्षाति। पर्षतु। अपर्षतु। पर्षेत्। पृष्यात्। अपर्षीत्। अपर्षिष्यत्।

मृषु सहने च, इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च—मृषु धातु के सहना और सींचना तथा पृषु, वृषु धातुओं के सींचना, हिंसा और संक्लेशन तीनों अर्थ हैं॥

७२९ घृषु संघर्षे=घिसना—घर्षति। जघर्ष॥

७३० हृषु अलीके=झूंठ—हर्षति। जहर्ष॥

७३१-७३४ तुस, ह्रस, ह्लस, रस शब्दे—

तोसति। तुतोस। तोसिता। तोसिष्यति। तोसिषति; तोसिषाति। तोसतु। अतोसत्। तोसेत्। तुस्यात्। अतोसीत्। अतोसिष्यत्। ह्रसति। जह्रास। ह्लसति। जह्लास। रसति। ररास। रेसतुः। रेसुः। रसिता। रसिष्यति। रासिषति; रासिषाति। रसतु। अरसत्। रसेत्। रस्यात्। अरसीत्; अरासीत्। अरसिष्यत्॥

७३५ लस श्लेषणक्रीडनयो=मिलना और खेलना—

लसति। ललास। लेसतुः॥

७३६ घस्लृ अदने=खाना—घसति। जघास। 'जघस्+अतुस्' इस अवस्था में—

२१४—गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि॥६।४।९८॥

गम, हन, जन, खन और घस धातुओं के उपधा अकार का लोप हो, अङ् भिन्न अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो।

यहाँ घकारस्थ अकार का लोप होकर (खरि च॥८।४।५५) सूत्र में घ् को क् करते समय (अचः परस्मिन् पूर्वविधौ॥१।१।५७) सूत्र से अकार को स्थानिवत् होने से चर् आदेश न हो सके, सो (न पदान्त०॥१।१।५८) सूत्र से चर्विधि में स्थानिवत् का निषेध

होकर चर् होता है। पीछे षत्व होकर—जक्षतुः। जक्षुः। 'जघस्+थल्' इस अवस्था में—

२१५—उपदेशेऽत्वतः ।७।२।६२॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट्, उपदेश में जो अकारवान् धातु है, उससे परे जो थल् उसको इट् का आगम न हो।

(१४८) सूत्र के नियम से लिट् मात्र में इट् प्राप्त है, उसका विशेष विषय में यह अपवाद है—जघस्थ। और भारद्वाज के मत में ऋकारान्तों को तास्वत्कार्य्य के नियम (१४९) से उपदेश में अकारवान् और अजन्तों को इडागम होजाता है—जघसिथ। जक्षथुः। जक्ष। जघास। जघस। जक्षिव। जक्षिम।

घस्ता। घस्तारौ। घस्तारः। घस्+स्य+तिप्' इस अवस्था में—

२१६—सः स्यार्द्धधातुके॥ ७। ४। ४९॥

सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हो, तो सकार को तकार आदेश हो।

यहां घस् के सकार को तकार होकर—घत्स्यति। घत्स्यतः। घत्स्यन्ति। घत्स्यसि। घात्सति; घात्साति। घत्सन्ति; घत्साति। घसति; घसाति। घसतु। अघसत्। घसेत्। घस्यात्।

२१७—पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु*॥ ३। १। ५५॥

दिवादिगण के पुष आदि, द्युतादि और लृ जिनका इत् गया हो उन धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय, उसके स्थान में अङ् आदेश हो, परस्मैपद विषय में कर्त्ता विषय में लुङ् लकार परे हो तो।

---

* इस सूत्र में भ्वादिगण के पुषादि धातुओं का ग्रहण इस कारण नहीं होता कि पुषादि के अन्तर्गत द्युतादि भी आजाते, फिर द्युतादि ग्रहण ज्ञापक से दिवादिगण के पुषादिकों का ग्रहण होता है॥

यहां लृदित् घस् धातु से अङ् होकर 'अट्+घस्=अङ्+तिप्'= अघसत् । अघसताम् । अघसन् । अघसः । अघसतम् । अघसत । अघसम् । अघसाव । अघसाम । अघत्स्यत् । अघत्स्यताम् । अघत्स्यन् ॥

७३७–७३९ जर्ज, चर्च, झर्झ परिभाषणहिंसातर्जनेषु=अधिक बोलना, हिंसा और धमकाना—जर्जति । जजर्ज । जर्जिता । जर्जिष्यति । जर्जिषति; जर्जिषाति । जर्जतु । अजर्जत् । जर्जेत् । जर्ज्यात् । अजर्जीत् । अजर्जिष्यत् । चर्चति । झर्झति । जझर्झ ॥

७४०–७४१ पिसृ, पेसृ गतौ—पेसति । पिपेस । पिपिसतुः । पिपेसतुः । पेसिता । पेसिष्यति पेसिषति; पेसिषाति । पेसतु । अपेसत् । पेसेत् । पिस्यात् । अपेसीत् । अपेसिष्यत् ॥

७४२ हसे हसने=हंसना—इस धातु का एकार इत् जाता है । हसति । जहास । जहसतुः । हसिता । हसिष्यति । हासिषति, हासिषाति । हसतु । अहसत् । हसेत् । हस्यात् । अहसीत् (१६२) । अहसिष्यत् ॥

७४३ णिश,समाधौ–समाहित होना—

नेशति । निनेश । नेशिता । नेशिष्यति । नेशिषति, नेशिषाति; नेशतु । अनेशत् । नेशेत् । निश्यात् । अनेशीत् । अनेशिष्यत् ॥

७४४–७४५ मिश, मश शब्दे रोषकृते च=शब्द और रिस करना—मेशति । मशति । ममाश । मेशतुः । मशिता । मशिष्यति । माशिषति; माशिषाति । मशतु । अमशत् । मशेत् । मश्यात् । अमाशीत्; अमशीत् । अमशिष्यत् ॥

७४६ शव गतौ—शवति । शशाव । शेवतुः । अशावीत्, अशवीत् । अशविष्यत् ॥

७४७ शश प्लुतगतौ=कूद-कूद कर चलना—

शशति । शशाश । शेशतुः । अशाशीत्; अशशीत् ॥

७४८ शंसु हिंसायाम्—शसति । शशास । शशसतुः, (१२८) से एत्वाभ्यास लोप का प्रतिषेध हो जाता है । शशसुः । शशसिथ । अशासीत्; अशसीत् ॥

७४९ शंसु स्तुतौ=गुणों का वर्णन—

शंसति । शशंस । अशंसीत् ॥

७५० चह परिकल्कने=सर्वथा मूर्खपन—चहति । चचाह । चेहतुः । चेहुः । चहिता । चहिष्यति । चाहिषति; चाहिषाति । चहतु । अचहत् । चहेत् । चह्यात् । अचहीत् (१६२) । अचहिष्यत् ॥

७५१ मह पूजायाम्=सत्कार—

महति । ममाह । मेहतुः । अमहीत् ॥

७५२ रह त्यागे=छोड़ना—रहति । रराह । रेहतुः । रहिता । रहिष्यति । राहिषति; राहिषाति । रहतु । अरहत् । रहेत् । रह्यात् । अरहीत् । (१६२) अरहिष्यत् ॥

७५३ रहि गतौ—रंहति । ररंह । रंह्यात् ॥

७५४–७५७ दृह, दृहि, बृह, बृहि, वृद्धौ—दर्हति । दृंहति । बर्हति । बृंहति । ददर्ह । ददृहतुः । दर्हिता । दर्हिष्यति । दर्हिषति; दर्हिषाति । दर्हतु । अदर्हत् । दर्हेत् । दृह्यात् । अदर्हीत् । अदर्हिष्यत् ।

बृहि शब्दे च—बृंहति । बृहिर् इत्येके—

बर्हति । बबर्ह । अबृहत् (१३८), अबर्हीत् ॥

७५८–७६० तुहिर, दुहिर, उहिर अर्दने=गति और मांगना—

तोहति । तुतोह । तुतुहतुः । तोहिता । तोहिष्यति । तोहिषति; तोहिषाति । तोहतु । अतोहत् । तोहेत् । तुह्यात् । अतुहत्; अतोहीत् । अतोहिष्यत् । दोहति । दुदोह । अदुहत्; अदोहीत् । अनिट्व्यवस्था में जो

'दुह' धातु पढ़ा है वह 'दिह' धातु के साहचर्य से अदादि का समझना चाहिये। ओहति। उवोह। ऊहतुः। ओहिता। मा भवानुहृत्। ओहीत्। ओहिष्यत्॥

७६१ अर्ह पूजायाम्=सत्कार—अर्हति। आनर्ह। आनर्हतुः। आनर्हुः। अर्हिता। अर्हिष्यति। अर्हिषति; अर्हिषाति। अर्हतु। आर्हत्। अर्हेत्। अर्ह्यात्। आर्हीत्। आर्हिष्यत्॥

इति घुषिरादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः समाप्ताः॥

घुषिर आदि ९१ परस्मैपद धातु समाप्त हुए॥

अथ द्युतादयः कृपूपर्यन्ताः पञ्चविंशत्यात्मनेपदिनः॥

अब द्युत आदि कृपूपर्यन्त २५ पच्चीस धातु आत्मनेपदी कहते हैं—

७६२ द्युत दीप्तौ=प्रकाश होना—द्योतते 'द्युत+द्युत्+एश्' इस अवस्था में—

२१८—द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम्॥ ७। ४। ६७॥

द्युति और स्वापि धातु के अभ्यास को संप्रसारण हो।

इस सूत्र में णिच् प्रत्ययान्त स्वापि धातु का ग्रहण है, सो णिजन्तप्रक्रिया में आवेगा। 'द्यु+द्युत्+एश्' यहाँ प्रथम द्यु के यकार के स्थान में इ संप्रसारण होकर 'द्+इ+उ+द्युत्+एश्'।

२१९—संप्रसारणाच्च॥ ६। १। १०८॥

संप्रसारण से अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होवे।

यहाँ इ संप्रसारण से परे उकार को पूर्वरूप होकर 'दि+द्युत्+एश्'=दिद्युते। दिद्युताते। दिद्युतिरे।

द्योतितासे। द्योतिष्यते। द्योतिषतै; द्योतिषातै। द्योतताम्। अद्योतत। द्योतेत। द्योतिषीष्ट।

२२०—द्युद्भ्यो लुङि ॥ १ । ३ । ९१ ॥

द्युत आदि धातुओं से परे जो लुङ् लकार, उसके स्थान में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों।

ये द्युत आदि धातु सामान्य करके आत्मनेपदी हैं। लुङ् में परस्मैपद किसी से प्राप्त नहीं, इस कारण इस सूत्र में अप्राप्त विभाषा है। फिर परस्मैपदविषय में अङ् होकर—अद्युतत्। अद्युतताम्। अद्युतन्। अद्युतः। अद्युततम्। अद्युतत। अद्युतम्। अद्युताव। अद्युताम। आत्मनेपद पक्ष में—अद्योतिष्ट। अद्योतिषाताम्। अद्योतिषत। अद्योतिष्यत॥

यहाँ से लेकर 'कृपू' धातु पर्यन्त सब धातुओं में (२२०; २१७) ये दोनों सूत्र लुङ् लकार में लगा करेंगे—

७६३ ञ्विता वर्णे=श्वेतवर्ण—इस धातु का आकार इत्संज्ञक होता है, उसका फल कृदन्त में आवेगा। श्वेतते। शिश्विते। श्वेतितासे। श्वेतिष्यते। श्वेतिषतै; श्वेतिषातै। श्वेतताम्। अश्वेतत। श्वेतेत। श्वेतिषीष्ट। अश्वितत्; अश्वेतिष्ट। अश्वेतिष्यत॥

७६४ ञिमिदा* स्नेहने=प्रीति—यहाँ (१५०) सूत्र से ञि की

---

* इस धातु पर जो भट्टोजिदीक्षित ने (मिदेर्गुणः॥ ७। ३। ८२) सूत्र लगाया है, सो सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि यह सूत्र दिवादिगण के मिद धातु से श्यन् प्रत्यय के अपित् होने से (५१) से गुण प्राप्त नहीं होता, वहीं लगता है। और काशिकाकार ने भी दिवादिगण के ही उदाहरण इस सूत्र पर दिये हैं। और लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन 'एश्' में शित्करण सर्वादेशार्थ है, गुण होने के लिये नहीं। और यह बात कभी नहीं हो सकती कि जो अन्त में शित् हो उसको शित् कार्य न हों, क्योंकि चानश् आदि की सार्वधातुक संज्ञा होती है। इस कारण एश् में भी गुण की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर यह सूत्र इस धातु पर लिखना अत्यन्त विरुद्ध है।

इत्संज्ञा और आकार भी इस धातु का इत् जाता है। मेदते। मिमिदे। मिमिदाते। मिमिदिरे। मेदिता। मेदिष्यते। मेदिषतै; मेदिषातै। मेदताम्। अमेदत। मेदेत। मेदिषीष्ट। अमिदत्; अमेदिष्ट। अमेदिष्यत ॥

७६५ ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः,=प्रीति और छोड़ देना—

यहाँ भी पूर्ववत् ञि और आ इत् जाते हैं। स्वेदते। सिष्विदे। अस्विदत्; अस्वेदिष्ट। अस्वेदिष्यत ॥

ञिक्ष्विदा इत्येके—क्ष्वेदते। चिक्ष्वेदे। अक्ष्विदत्; अक्ष्वेदिष्ट ॥

७६६ रुच दीप्तावभिप्रीतौ च=प्रकाश और अत्यन्त प्रीति—

रोचते। रुरुचे। रुरुचाते। रुरुचिरे। रोचितासे। रोचिष्यते। रोचिषतै; रोचिषातै। रोचताम्। अरोचत। रोचेत। रोचिषीष्ट। अरुचत्; अरोचिष्ट। अरोचिष्यत ॥

७६७ घुट परिवर्त्तने=सब ओर से वर्तना—

घोटते। जुघुटे। घोटितासे। घोटिष्यते। घोटिषतै; घोटिषातै। घोटताम्। अघोटत। घोटेत। घोटिषीष्ट। अघुटत्; अघोटिष्ट। अघोटिष्यत ॥

७६८–७७१ रुट, लुट, लुठ, उठ उपघाते=मारना—रोटते। रुरुटे। लोटते। लुलुटे। लोठते। लुलुठे। ओठते। ऊठे। ऊठाते। ऊठिरे। अरुटत्; अरोटिष्ट। अलुटत्; अलोटिष्ट। अलुठत्; अलोठिष्ट। औठत्; औठिष्ट ॥

७७२ शुभ दीप्तौ—शोभते। शुशुभे। शोभितासे। शोभिष्यते। शोभिषतै; शोभिषातै। शोभताम्। अशोभत। शोभेत। शोभिषीष्ट। अशुभत्; अशोभिष्ट। अशोभिष्यत।

७७३ क्षुभ संचलने=चलायमान होना—

क्षोभते। चुक्षुभे। अक्षुभत्; अक्षोभिष्ट ॥

७७४–७७५ णभ, तुभ हिंसायाम्—नभते। नेभे। नेभाते। नेभिरे। नभितासे। नभिष्यते। नाभिषतै; नाभिषातै। नभताम्। अनभत। नभेत। नभिषीष्ट। अनभत्; अनभिष्ट। अनभिष्यत। अतुभत्; अतोभिष्ट ॥

७७६-७७८ स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु अवस्रंसने=गिरना—ध्वंसु गतौ च—स्रंसते। सस्रंसे। ध्वंसते। दध्वंसे। भ्रंसते। बभ्रंसे। लुङ् लकार में अङ् प्रत्यय के परे (१३९) सूत्र से नकार के अनुस्वार का लोप होकर—अस्रसत्; अस्रंसिष्ट। अध्वसत्; अध्वंसिष्ट। अभ्रसत्; अभ्रंसिष्ट॥

७७९-७८० भ्रशु, भ्रंशु अधःपतने=नीचे गिरना—

भ्रशते। भ्रंशते। बभ्रशे। बभ्रंशे। भ्रशितासे। भ्रशिष्यते। भ्राशिषतै; भ्राशिषातै। भ्रशताम्। अभ्रशत। भ्रशेत। भ्रशिषीष्ट। अभ्रशत्; अभ्रशिष्ट। अभ्रशत्, अभ्रंशिष्ट। अभ्रशिष्यत॥

७८१ स्रंभु विश्वासे—स्रम्भते। सस्रम्भे। अस्रभत्; अस्रम्भिष्ट॥

७८२ वृतु वर्त्तने=वर्त्तना—वर्त्तते। वर्त्तेते। वर्त्तन्ते। वर्त्तसे। वर्त्तेथे। वर्त्तध्वे। वर्त्ते। वर्त्तावहे। वर्त्तामहे। ववृते। ववृताते। ववृतिरे। ववृतिषे। ववृताथे। ववृतिध्वे। ववृते। ववृतिवहे। ववृतिमहे। वर्त्तितासे।

२२१—वृद्भ्यः स्यसनोः॥ १। ३। ९२॥

वृतु आदि पांच धातुओं से परे स्य और सन् प्रत्यय के विषय में परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों।

यहाँ लृट् लकार में परस्मैपद तिप् आदि होकर—'वृत्+स्य+तिप्' इस अवस्था में इट् का आगम प्राप्त है, इसलिये—

२२२— न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः॥ ७। २। ५९॥

वृतु आदि चार धातुओं से परे जो सकारादि आर्द्धधातुक उसको इट् का आगम न हो, परस्मैपद विषय में।

फिर (५१) से गुण होकर—वर्त्स्यति। वर्त्स्यतः। वर्त्स्यन्ति। जिस पक्ष में परस्मैपद प्रत्यय नहीं होते वहाँ—वर्त्तिष्यते। वर्त्तिष्येते। वर्त्तिष्यन्ते।

वर्तिषतै; वर्तिषातै। वर्तताम्। वर्तेताम्। वर्तन्ताम्। अवर्तत। वर्तेत। वर्तिषीष्ट। अवृतत्, अवर्तिष्ट। अवर्त्स्यत्। अवर्तिष्यत॥

७८३-७८४ वृधु वृद्धौ=बढ़ना; शृधु शब्दकुत्सायाम्=निन्दित शब्द होना—इन दोनों धातुओं में वृतु के समान साधुत्व जानो। वर्धते। वर्धेते। वर्धन्ते। ववृधे। वर्धितासे। वर्त्स्यति, यहाँ दन्त्योष्ठ वकार के होने से भकार (२०४) से नहीं होता। वर्धिष्यते। वर्धिषत; वर्धिषातै। वर्धताम्। अवर्धत। वर्धेत। वर्धिषीष्ट। अवृधत्; अवर्धिष्ट। अवर्त्स्यत्; अवर्धिष्यत। शर्धते। शशृधे। शर्त्स्यति; शर्धिष्यते। अशृधत्; अशर्धिष्ट। अशर्त्स्यत्; अशर्धिष्यत॥

७८५ स्यन्दू प्रस्रवणे=झरना—

यह धातु ऊदित है, इस कारण वलादि आर्द्धधातुक विषय में इट् का आगम विकल्प (१४०) से होता है। स्यन्दते। स्यन्देते। स्यन्दन्ते। सस्यन्दे। सस्यन्दाते। सस्यन्दिरे। सस्यन्दिषे; सस्यन्त्से। सस्यन्दाथे। सस्यन्दिध्वे, सस्यन्ध्वे; यहाँ (झरो झरि सवर्णे।॥ ८। ४। ६४) इस सूत्र से न् से परे दकार का लोप विकल्प करके होता है। सस्यन्दे। सस्यन्दिवहे। सस्यन्दिमहे। सस्यन्द्वहे। सस्यन्म्वहे, यहाँ दकार को अनुनासिक (यरोऽनुनासिके०॥ ८। ४। ४५) सूत्र से विकल्प करके होता है।

स्यन्दिता। स्यन्दितारौ। स्यन्दितारः। स्यन्दितासे। स्यन्ता, यहाँ भी (झरो झरि०॥ ८। ४। ६४) सूत्र से दकार लोप होता है और लृट् में स्य प्रत्यय के परे परस्मैपद (२२१) से होकर (१४०) सूत्र अन्तरङ्ग भी है तो भी उसके विकल्प को बाधकर (२२२) सूत्र में चतुर्ग्रहण सामर्थ्य से परस्मैपदविषय में निषेध ही होता है—स्यन्त्स्यति। स्यन्दिष्यते; स्यन्त्स्यते। स्यन्दिषतै; स्यन्दिषातै। स्यन्त्सतै; स्यन्त्सातै। स्यन्दताम्। अस्यन्दत। स्यन्देत। स्यन्दिषीष्ट; स्यन्त्सीष्ट।

'अट्+स्यन्द्+अङ्+तिप्'=(२२०, २१७, १३९) से अस्यदत्। अस्यदताम्। अस्यदन्। आत्मनेपदविषय में—अस्यन्दिष्ट। अस्यन्दिषाताम्। अनिट्पक्ष में—अस्यन्त। अस्यन्त्साताम्। अस्यन्त्सत। अस्यन्थाः।

अस्यन्त्साथाम् । अस्यन्ध्वम् । अस्यन्त्सि । अस्यन्त्स्वहि । अस्यन्त्स्महि । अस्यन्त्स्यत्; अस्यन्दिष्यत; अस्यन्त्स्यत ॥

७८६ कृपू सामर्थ्ये = समर्थ होना—

२२३—कृपो रो लः ॥ ८ । २ । १८ ॥

कृपू धातु के गुण हुए और ऋकारविशिष्ट जो रेफ है उन दोनों को लकार आदेश होता है।

यहाँ ऋकार में जितना अंश रेफ का है उसको ल होकर 'क्लृप्' धातु होता है। फिर गुण (५१) से होकर—कल्पते। कल्पेते। कल्पन्ते। चक्लृपे। चक्लृपाते। चक्लृपिरे। यह भी धातु ऊदित् है, इस कारण इडागम भी विकल्प से होता है—चक्लृपिषे; चक्लृप्से। चक्लृपिध्वे; चक्लृब्ध्वे। चक्लृपिवहे; चक्लृप्वहे। चक्लृपिमहे; चक्लृम्महे; चक्लृप्महे।

२२४—लुटि च क्लृपः ॥ १ । ३ । ९३ ॥

लुट् लकार ष्य और सन् प्रत्यय परे हों, तो कृपू धातु से परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय विकल्प कर के होवें।

यहाँ परस्मैपद पक्ष में—

२२५—तासि च क्लृपः ॥ ७ । २ । ७२ ॥

कृप् धातु से परे जो तास् और सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय, उनको इट् का आगम न होवे परस्मैपदविषय में।

कल्प्ता। कल्प्तारौ। कल्प्तारः। कल्प्तासि। कल्पितासे; कल्प्तासे। कल्प्स्यति। कल्पिष्यते; कल्प्स्यते। कल्पिषतै; कल्पिषातै। कल्प्सतै; कल्प्सातै। कल्प्ताम्। अकल्पत। कल्पेत। कल्पिषीष्ट; क्लृप्सीष्ट। अक्लृपत्। अकल्पिष्ट; अक्लृप्त, (१४२) से सकार का लोप होता है। अकल्प्स्यत्। अकल्पिष्यत; अकल्प्स्यत ॥

(वृत्) सम्पूर्णो द्युतादिर्वृतादिश्च ॥
ये द्युत आदि और वृतु आदि २५ धातु समाप्त हुए ॥

अथ घटादयस्त्वरत्यन्ताः षोडशात्मनेपदिनः ॥

अब घटादि त्वर धातु पर्यन्त १६ धातु आत्मनेपदी कहते हैं—

७८७ घट चेष्टायाम्—घटते। जघटे। जघटाते। घटितासे। घटिष्यते। घाटिषतै; घाटिषातै। घटताम्। अघटत। घटेत। घटिषीष्ट। अघटिष्ट। अघटिष्यत ॥

७८८ व्यथ भयसञ्चलनयोः=डरना और चंचल होना—
व्यथते। व्यथेते। व्यथन्ते।

२२६–व्यथो लिटि ॥ ७। ४। ६८ ॥

व्यथ धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण हो लिट् लकार परे हो तो।

व्यथ् के य् को इ सम्प्रसारण होके (२१९) से पूर्वरूप एकादेश होता है—'व्यथ्+व्यथ्+एश्'=विव्यथे। विव्यथाते। विव्यथिरे। व्यथितासे। व्यथिष्यते। व्याथिषतै; व्याथिषातै। व्यथताम्। अव्यथत। व्यथेत। व्यथिषीष्ट। अव्यथिष्ट। अव्यथिष्यत।

७८९ प्रथ प्रख्याने=प्रसिद्धि—प्रथते। पप्रथे। अप्रथिष्ट ॥

७९० प्रस विस्तारे—प्रसते। पप्रसे ॥

७९१ म्रद मर्दने=मलना—म्रदते। मम्रदे ॥

७९२ स्खद स्खदने=दौड़ना—स्खदते। चस्खदे ॥

७९३ क्षजि गतिदानयोः=गति और देना—क्षञ्जते। चक्षञ्जे ॥

७९४ दक्ष गतिहिंसनयोः=गति और मारना—
दक्षते। ददक्षे। दक्षितासे। दक्षिष्यते। दक्षिषतै; दक्षिषातै। दक्षताम्। अदक्षत। दक्षेत। दक्षिषीष्ट। अदक्षिष्ट। अदक्षिष्यत ॥

७९५ क्रप कृपायां गतौ च—क्रपते । क्रपेते । क्रपन्ते । चक्रपे ॥

७९६–७९८ कदि, क्रदि, क्लदि वैक्लव्ये । वैकल्य इत्यन्ये—विविध प्रकार की गति और संख्या—

ये तीनों धातु तवर्गान्तों में परस्मैपदी आह्वान और रोदन अर्थ में लिख चुके हैं, फिर इनका यहाँ लिखना मित्संज्ञा, अर्थभेद और आत्मनेपद आदि के लिये है। और इस प्रकरण—'घट' धातु से लेकर 'फण गतौ' पर्यन्त—में बहुत ऐसे धातु लिखे हैं जिनमें से किन्हीं को पूर्व लिख चुके, कोई आगे के गणों में आवेंगे और बहुतेरे ऐसे भी हैं जो कहीं नहीं आवेंगे। मित् संज्ञा का गण सूत्र इसी प्रकरण में आगे लिखा है।

कन्दते । क्रन्दते । क्लन्दते । चकन्दे । चक्रन्दे । चक्लन्दे । कन्दितासे । कन्दिष्यते । कन्दिषतै; कन्दिषातै । कन्दताम् । अकन्दत । कन्देत । कन्दिषीष्ट । अकन्दिष्ट । अकन्दिष्यत ॥

कद, क्रद, क्लद इत्यन्ये—कदते । क्रदते । क्लदते । चकदे । चक्रदे । चक्लदे । कदितासे । कदिष्यते । कादिषतै; कादिषातै । कदताम् । अकदत । कदेत । कदिषीष्ट । अकदिष्ट । अकदिष्यत ॥

७९९ ञित्वरा सम्भ्रमे—सम्यक् भ्रान्ति—

त्वरते । तत्वरे । त्वरिता । त्वरिष्यते । त्वारिषतै; त्वारिषातै । त्वरताम् । अत्वरत । त्वरेत । त्वरिषीष्ट । अत्वरिष्ट । अत्वरिष्यत ॥

इति घटादयः षित उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः षोडश ॥

ये घट आदि १६ धातु षित्संज्ञक समाप्त हुए।

षित् का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा ॥

अथ ज्वरादयः फणान्ताः सप्तपञ्चाशत् परस्मैपदिनः ॥

अब ज्वर आदि फण धातु पर्यन्त ५७ सत्तावन परस्मैपदी कहते हैं—

८०० ज्वर रोगे—ज्वरति । जज्वार ॥

८०१ गड सेचने = सींचना—गडति। जगाड। जगडतुः। गडितासि। गडिष्यति। गाडिषति; गाडिषाति। गडतु। अगडत्। गडेत्। गड्यात्। अगाडीत्; अगडीत्। अगडिष्यत्॥

८०२ हेड वेष्टने = लपेटना—हेडति। जिहेड॥

यह धातु अनादर अर्थ में आत्मनेपद विषय में आ चुका है, इस धातु की अनादर अर्थ में मित् संज्ञा नहीं होगी, वहाँ हेडयति और मित्संज्ञा में ह्रस्व होकर—हिडयति॥

८०३–८०४ वट, भट परिभाषणे—वटति। ववाट। ववटतुः। वटितासि। वटिष्यति। वाटिषति; वाटिषाति। वटतु। अवटत्। वटेत्। वटयात्। अवाटीत्; अवटीत्। अवटिष्यत्। भटति। बभाट॥

८०५ णट नृतौ = नाचना—नटति। ननाट॥

यह धातु इसी अर्थ में परस्मैपदी आ चुका है, फिर यहाँ पढ़ने से यही प्रयोजन है कि नृति में भी दो भेद हैं एक नाटक, दूसरा नाचना। सो यहाँ नाचने अर्थ में मित्संज्ञा होती है॥

८०६ ष्टक प्रतिघाते = मारना—स्तकति। तस्ताक॥

८०७ चक तृप्तौ—चकति। चचाक। चेकतुः। चेकुः। अचाकीत्; अचकीत्॥

८०८ कखे हसने—कखति। अकाखीत् (१६२)॥

८०९ रगे शङ्कायाम्—रगति। रराग। रेगतुः। रेगुः। रगिता। रगिष्यति। रागिषति; रागिषाति। रगतु। अरगत्। रगेत्। रग्यात्। अरगीत्। अरगिष्यत्॥

८१० लगे सङ्गे = मिलना—लगति। अलगीत्॥

८११–८१४ ह्लगे, ह्लगे, षगे, ष्टगे सम्वरणे = ढांकना—

ह्लगति। ह्लगति। सगति। स्तगति। अह्लगीत्। अह्लगीत्। असगीत्। अस्तगीत्॥

८१५ कगे नोच्यते—कग धातु की विशेष अर्थ में मित्संज्ञा नहीं कहते, क्योंकि यह धातु सामान्यार्थवाची है। कगति। चकाग। अकगीत्॥

८१६-८१७ अक, अग कुटिलायां गतौ=टेढ़ा चलना—

अकति। अगति॥

८१८-८१९ कण, रण गतौ—कणति। चकाण। रणति। रराण। रेणतुः। अकाणीत्; अकणीत्। अराणीत्; अरणीत्॥

८२०-८२२ चण, शण, श्रण दाने च=शण गतावित्यन्ये=किन्हीं के मत में 'शण' धातु केवल गत्यर्थ ही है, दानार्थ नहीं। 'चण' और 'श्रण' धातुओं के दान और गति दोनों अर्थ हैं—

[चणति। शणति। श्रणति।]

८२३-८२६ श्रथ, श्लथ, क्रथ, क्लथ हिंसार्थाः—

श्रथति। श्लथति। क्रथति। क्लथति॥

८२७ चन च=चकार से हिंसा अर्थ का सम्बन्ध होता है—

चनति। चचान। चेनतुः। चनिता। चनिष्यति। चानिषति; चानिषाति। चनतु। अचनत्। चनेत्। चन्यात्। अचानीत्; अचनीत्। अचनिष्यत्॥

८२८ वनु च नोच्यते—

एक 'वनु' धातु तनादिगण में भी पढ़ा है। परन्तु उसका पाठ यहाँ मित्संज्ञा के लिये नहीं, इसी कारण इसके अपूर्व होने से इसका विशेष अर्थ यहाँ मित्संज्ञा प्रकरण में नहीं कहते। और तनादिगण का वनु धातु इसी ग्रन्थ में आगे पढ़ा है—वनति। ववान। अवानीत्; अवनीत्॥

८२९ ज्वल दीप्तौ—ज्वलति। जज्वाल। जज्वलतुः। जज्वलुः। अज्वालीत्, (१९६)। अज्वलिष्यत्॥

८३०-८३१ ह्वल, ह्मल सञ्चलने—

ह्वलति। ह्मलति। जह्वाल। जह्माल। अह्वालीत्। अह्मालीत्॥

८३२ स्मृ आध्याने=प्राप्ति की इच्छपूर्वक स्मरण करना—

यह धातु इसी गण में आगे चिन्ता अर्थ में लिखा है, इसके प्रयोग भी वहीं लिखे हैं, यहाँ आध्यान अर्थ में 'मित्संज्ञा' होती है ॥

८३३–८३४ दॄ भये=डर; नॄ नये=नम्रता—

ये दोनों धातु क्र्यादिगण में आवेंगे ॥

८३५ श्रा पाके=पकाना—यह अदादिगण का है ॥

८३६ ज्ञा मारणतोषणनिशामनेषु=मारना, सन्तोष और प्रत्यक्ष ज्ञान—इन अर्थों में ज्ञा धातु की मित्संज्ञा है, अन्यत्र नहीं। और यह धातु भी क्र्यादिगण का है ॥

८३७ चलिः कम्पने=कांपना—यह धातु पीछे आ चुका है ॥

८३८ छदिः ऊर्जने=बल वा प्राणपोषण—

यह चुरादिगण में आवेगा ।

८३९ लडिः जिह्वोन्मथने=जीभ चलाना—यह भी चुरादि का है ॥

८४० मदी हर्षग्लेपनयोः=आनन्द और दीनता—

यह दिवादिगण का है ॥

८४१ ध्वन शब्दे—यह इसी गण में आगे लिखा है ॥

८४२ दलि, वलि, स्खलि, रणि, ध्वनि, त्रपि, क्षपयश्च—

इनमें 'ध्वन' और 'रण' दोनों धातु आचुके, और 'दल' धातु विशरण, 'वल' सम्वरण, 'स्खल' संचलन और 'त्रपूष्' लज्जा अर्थ में आचुके हैं, और 'क्षै' धातु आगे इसी गण में आवेगा, उसका पुगन्त क्षपि निर्देश किया है ॥

८४३ स्वन अवतंसने—यह धातु शब्द अर्थ में आगे लिखा है ॥

घटादयो मितः (ग.)—'घट चेष्टायां' धातु से लेकर जितने धातु लिख चुके हैं, उन सबकी मित्संज्ञा होवे। इस मित्संज्ञा का प्रयोजन णिजन्त तथा कर्मकर्तृ प्रक्रिया और णमुल् प्रत्यय में आवेगा ॥

८४४-८४७ जनी, जॄष्, क्नसु, रञ्जोऽमन्ताश्च (ग.)—

जनी, जॄष, और रंज ये तीनों दिवादिगण के हैं, और क्नसु धातु यहाँ नवीन सामान्यार्थवाची पढ़ा है। अम् जिस के अन्त में हो ऐसे छम्; जम्, गम्, रम्, नम् आदि सब गणों के धातु मित्संज्ञक होते हैं—क्नसति। चक्नास। क्नसिता। क्नसिष्यति। क्नासिषति; क्नासिषाति। क्नसतु। अक्नसत्। क्नसेत्। क्नस्यात्। अक्नासीत्; अक्नसीत्। अक्नसिष्यत्॥

८४८ ज्वल, ह्वल, ह्मल, नमामनुपसर्गाद्वा (ग.)—

इनमें ज्वल, ह्वल और ह्मल धातु तो इसी मित्संज्ञा प्रकरण में लिख चुके हैं, और नम धातु अमन्त है, इस सबकी नित्य मित्संज्ञा प्राप्त है, उसका विकल्प होने से प्राप्तविभाषा है। परन्तु ये धातु उपसर्ग से परे न हों इतना विशेष है॥

८४९-८५१ ग्ला, स्ना, वनु, वमाञ्च (ग.)—अनुपसर्गपूर्वक ग्लै, स्ना, वनु और वम धातु की मित्संज्ञा विकल्प करके होवे। इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा यों है कि ग्ला, वनु और स्ना धातु की मित्संज्ञा प्राप्त नहीं, और वम धातु की अमन्त होने से प्राप्त है, उन दोनों का विकल्प किया है॥

न कम्यमिचमाम् (ग.) कम्, अम् और चम् धातुओं की मित्संज्ञा अमन्त होने से नित्य प्राप्त है, सो न होवे॥

८५२ शमो दर्शने (ग.)—शम् धातु की दर्शन अर्थ में मित्संज्ञा न होवे—निशामयति॥

८५३ यमोऽपरिवेषणे—यम धातु की अपरिवेषण अर्थात् भोजन से अन्य अर्थ में मित्संज्ञा न होवे॥

८५४ स्खदिरवपरिभ्याञ्च—अव और परि उपसर्गों से परे जो 'स्खद' धातु इसकी मित्संज्ञा न होवे॥

८५५ फण गतौ—फणति। पफाण।

२२७–फणां च सप्तानाम् ॥ ६ । ४ । १२५ ॥

फण, राजृ, भ्राजृ, भ्राशृ, भ्लाश, स्यमु और स्वन इन सात धातुओं के अवर्ण को एकारादेश और अभ्यास का लोप विकल्प करके हो, कित्संज्ञक लिट् और सेट् थल् परे हों तो।

इन धातुओं को एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं, इसलिये यह अप्राप्त विभाषा है—फेणतुः। फेणुः। पफणतुः। पफणुः। फेणिथ। पफणिथ।

फणिता। फणिष्यति। फाणिषति; फाणिषाति। फणतु। अफणत्। फणेत्। फण्यात्। अफणीत्; अफाणीत्। अफणिष्यत्॥

(वृत्) घटादयः समाप्ताः॥

ये घट आदि मित्संज्ञक धातु समाप्त हुए॥

---

८५६ राजृ दीप्तौ=उदात्तः स्वरितेत्—

यह धातु स्वरितेत् है, अर्थात् क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०३) से होता, और अन्यत्र परस्मैपद। इस प्रकार उभयपद के प्रयोग जानो।

राजते। राजेते। राजन्ते। राजति। राजतः। राजन्ति। रेजे, (२२७); रराजे। रराज। रेजतुः। रराजतुः। राजितासे। राजितासि। राजिष्यते। राजिष्यति। राजिषतै; राजिषातै। राजिषति; राजिषाति। राजतु। राजताम्। अराजत। अराजत्। राजेत। राजेत्। राजिषीष्ट। राज्यात्। अराजिष्ट। अराजीत्। अराजिष्यत। अराजिष्यत्॥

८५७–८५९ टुभ्राजृ, टुभ्राशृ, टुभ्लाशृ दीप्तौ=उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेपदिनः—

ये तीनों धातु आत्मनेपदी सेट् हैं। इन धातुओं के टु की इत्संज्ञा (१५०) से। भ्राजते। भ्रेजे (२२७); बभ्राजे। भ्राजितासे। भ्राजिष्यते। भ्राजिषतै; भ्राजिषातै। भ्राजताम्। अभ्राजत। भ्राजेत। भ्राजिषीष्ट। अभ्राजिष्ट। अभ्राजिष्यत।

भ्राश तथा भ्लाश धातु से विकल्प करके श्यन् (१८८) से, पक्ष में शप् होता है—भ्राश्यते। भ्राश्येते। भ्राश्यन्ते। भ्राशते। भ्रेशे; बभ्राशे। भ्राशितासे। भ्राशिष्यते। भ्राशिषतै; भ्राशिषातै। भ्राश्यतै; भ्राश्यातै। भ्राशतै; भ्राशातै। भ्राश्यताम्; भ्राशताम्। अभ्राश्यत; अभ्राशत। भ्राश्येत; भ्राशेत। भ्राशिषीष्ट। अभ्राशिष्ट। अभ्राशिष्यत। भ्लाश्यते; भलाशते। भ्लेशे; बभ्लाशे॥

अथ स्यमादयः परस्मैपदिनः षड्विंशतिः॥

अब स्यम आदि २६ छब्बीस धातु परस्मैपदी कहते हैं—

८६०–८६२ स्यमु, स्वन, ध्वन शब्दे—

स्यमति। सस्याम। स्येमतुः, (२२७); सस्यमतुः। स्यमितासि। स्यमिष्यति। स्यामिषति; स्यामिषाति। स्यमतु। अस्यमीत्, (१६२)। अस्यमिष्यत्। स्वनति। स्वेनतुः; सस्वनतुः। अस्वानीत्; अस्वनीत्; (१४४)। यहाँ तक फणादि सात धातु जो (२२७) सूत्र में कहे हैं समाप्त हुए।

ध्वनति। दध्वान। दध्वनतुः। ध्वनितासि। ध्वनिष्यति। ध्वानिषति; ध्वानिषाति। ध्वनतु। अध्वनत्। ध्वनेत्। ध्वन्यात्। अध्वानीत्; अध्वनीत्। अध्वनिष्यत्॥

८६३–८६४ षम, ष्टम अवैकल्ये=सुस्थिर होना—

समति। ससाम। सेमतुः। असमीत्, (१६२)। स्तमति। तस्ताम। तस्तमतुः। अस्तमीत्॥

८६५ ज्वल दीप्तौ—ज्वलति । जज्वाल । अज्वालीत्, (१९६) ॥

८६६ चल कम्पने=कांपना—चलति । चचाल । चेलतुः । चलितासि । चलिष्यति । चालिषति; चालिषाति । चलतु । अचलत् । चलेत् । चल्यात् । अचालीत्, (१९६) । अचलिष्यत् ॥

८६७ जल घातने=मारना—

जलति । जजाल । जेलतुः । अजालीत्, (१९६) ॥

८६८–८६९ टल, ट्वल वैक्लव्ये=विरुद्ध चाल—

टलति । टटाल । टेलतुः । ट्वलति । टट्वाल । टट्वलतुः । अटालीत् । अट्वालीत् । अट्वलिष्यत् ॥

८७० ष्ठल स्थाने—स्थलति । तस्थाल । अस्थालीत् ॥

८७१ हल विलेखने=खोदना व जोतना—

हलति । जहाल । अहालीत् ॥

८७२ णल गन्धे=बन्धन इत्येके—

नलति । ननाल । नेलतुः । अनालीत् ॥

८७३ पल गतौ—पलति । पेलतुः । अपालीत् ॥

८७४ बल प्राणने धान्यावरोधे च=जीवन और धानों का रोकना—

बलति । बबाल । बेलतुः । बेलुः । अबालीत् ॥

८७५ पुल महत्वे=बड़ा होना—

पोलति । पुपोल । पुपुलतुः । अपोलीत् ॥

८७६ कुल संस्त्याने बन्धुषु=भाई बन्धुओं का समूह—

कोलति । चुकोल । चुकुलतुः । कोलितासि । कोलिष्यति । कोलिषति; कोलिषाति । कोलतु । अकोलत् । कोलेत् । कुल्यात् । अकोलीत् । अकोलिष्यत् ॥

८७७–८७९ शल, हुल, पत्लृ गतौ—शलति । शशाल । शेलतुः । शेलुः । अशालीत्, (१९६) । होलति । जुहोल । अहोलीत् ॥

पतति । पपात । पेततुः । पतितासि । पतिष्यति । पातिषति, पातिषाति । पततु । अपतत् । पतेत् । पत्यात् ।

इस 'पत' धातु का लृ इत् जाता है, इससे अङ् (२१७) से होकर—

२२८—पतः पुम् ॥ ७ । ४ । १९ ॥

अङ् परे हो, तो पत धातु को पुम् का आगम होवे ।

पुम् मित् होने से अन्त्य अच् पकार से परे होता है—'अट्+प+पुम्+त्+अङ्+तिप्'=अपप्तत्, पुम् में से उम् भाग की इत्संज्ञा होती है । अपप्तताम् । अपप्तन् । अपप्तः । अपप्ततम् । अपप्तत । अपप्तम् । अपप्ताव । अपप्ताम् । अपतिष्यत् ॥

८८० क्वथे निष्पाके=अच्छे प्रकार पकाना—

क्वथति । चक्वाथ । एदित् होने से अक्वथीत्, (१६२) ॥

[८८१ पथे गतौ—पथति । पपाथ । पेथतुः । अपथीत् । अपथिष्यत् ॥]

८८२ मथे विलोडने—मथति । ममाथ । मेथतुः । मथिता । मथिष्यति । माथिषति; माथिषाति । मथतु । अमथत् । मथेत् । मथ्यात् । अमथीत् । अमथिष्यत् ॥

८८३ टुवम् उद्गिरणे=उगिलना—टु इत् (१५०) से । वमति । ववाम । ववमतुः, (१२८) से एत्वाभ्यास लोप का निषेध । वमिता । वमिष्यति । वामिषति; वामिषाति । वमतु । अवमत् । वमेत् । वम्यात् । अवमीत्, (१६२) । अवमिष्यत् ॥

८८४ भ्रमु चलने—यहां (१८८) से विकल्प करके श्यन् होता है—भ्राम्यति; भ्रमति ।

२२९—वा जॄभ्रमुत्रसाम् ॥ ६ । ४ । १२४ ॥

कित् लिट् और सेट् थल् परे हों तो जॄ भ्रमु और त्रस धातुओं के अभ्यास का लोप और इनको एकारादेश विकल्प करके होवे ।

इन धातुओं में एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं था, इस कारण यहां अप्राप्तविभाषा है। बभ्राम। भ्रेमतुः; बभ्रमतुः। बभ्रमुः। अभ्रमीत् ॥

८८५ क्षर संचलने=अच्छे प्रकार चलना—

क्षरति। चक्षार। चक्षरतुः। क्षरितासि। क्षरिष्यति। क्षारिषति; क्षारिषाति। क्षरतु। अक्षरत्। क्षरेत्। क्षर्यात्। अक्षारीत्, (१९६)। अक्षरिष्यत् ॥

इति स्यमादय उदात्ता उदात्तेतः षड्विंशतिः समाप्ताः ॥

ये स्यम आदि २६ परस्मैपद धातु समाप्त हुए ॥

अथ द्वावनुदात्तेतौ ॥

अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं। उनमें 'सह' धातु सेट् और 'रमु' अनिट् है—

८८६ षह मर्षणे=सहना—

सहते। सहेते। सहन्ते। सेहे। सेहाते। सहिता।

२३०—सहिवहोरोदवर्णस्य ॥ ६। ३। ११२ ॥

सह और वह धातु के अवर्ण को ओकार आदेश होवे, ढकार का लोप हुआ हो तो।

यहां (२१२) सूत्र से इट् के निषेध पक्ष में, लुट् में तास् प्रत्यय के परे सह के हकार को ढ (२०३) से और ढलोप (२०६) से होकर—सह्+तास्+डा=सोढा। सोढारौ। सोढारः। सोढासे। सोढासाथे। सोढाध्वे। सोढाहे। सोढास्वहे। सोढास्महे।

सहिष्यते। साहिषतै; साहिषातै। सहताम्। असहत। सहेत। सहिषीष्ट। असहिष्ट। असहिष्यत ॥

८८७ रमु क्रीडायाम् = खेलना—

यह धातु अनिट् है। रमते। रमेते। रमन्ते। रेमे। रेमाते। रेमिरे। रेमिषे। रन्तासे। रंस्यते रांसतै; रांसातै। रमताम्। अरमत। रमेत। रंसीष्ट। अरंस्त। अरंसाताम्। अरंस्यत॥

अथ षदादयः कसन्ताः सप्त परस्मैपदिनः॥

अब षद् आदि ७ सात परस्मैपदी धातु कहते हैं—

८८८ षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु = मारना गति और क्लेश होना—

२३१—पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः॥ ७। ३। ७८॥

पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशि, ऋ, सृ, शद और सद धातुओं को पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय और सीद आदेश यथासंख्य करके होवें, शित् प्रत्यय परे हों तो।

यहां शप् के परे 'सद' को सीद होकर—सीदति। सीदतः। सीदन्ति। ससाद। सेदतुः। सेदुः। यह धातु अनिट् है। सेदिथ, (१४९); ससत्थ, (२१५)। सेदथुः। सेद। ससाद। सेदिव। सत्ता। सत्तारौ। सत्तारः। सत्तासि। सत्स्यति। सात्सति; सात्साति। सत्सति; सत्साति। सीदति; सीदाति। सीदतु। असीदत्। सीदेत्। सद्यात्।

लृदित् होने से अङ् (२१७) से—असदत्। असदताम्। असदन्। असदः। असदतम्। असदत। असदम्। असदाव। असदाम। असत्स्यत्॥

८८९ शद्लृ शातने = तीक्ष्णता होनी—

२३२–शदेः शितः ॥ १ । ३ । ६० ॥

शित् प्रत्ययविषयक शद धातु से आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्यय हों ।

जिन लकारों में शप् होता है, वहां यह सूत्र परस्मैपद का अपवाद है। शीय (२३१) से आदेश होकर—शीयते। शीयेते। शीयन्ते। शीयसे। शशाद। शेदतुः। शेदुः। शेदिथ; शशत्थ, (१४९; २१५) शत्तासि। शत्स्यति। शात्सति; शात्साति। शत्सति; शत्साति। शीयतै; शीयातै। शीयते; शीयाते। शीयताम्। अशीयत। शीयेत। शद्यात्। लृदित् होने से अङ् (२१७) से—अशदत्। अशदताम्। अशदन्। अशत्स्यत् ॥

८९० क्रुश आह्वाने रोदने च=बुलाना और रोना—

क्रोशति। चुक्रोश। चुक्रुशतुः। चुक्रुशुः। चुक्रोशिथ, (१४८) सूत्र के नियम से इट्। 'क्रुश्+तास्+डा' यहां—

२३३–व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ॥८।२।३६॥

व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज और छकारान्त शकारान्त धातुओं के अन्त्य वर्ण को ष आदेश होवे, झल् परे हो वा पदान्त में।

इस सूत्र में राज और भ्राज धातु का ग्रहण पदान्त में षत्व होने के लिये है, क्योंकि इन दोनों के सेट् होने से झलादि आर्द्धधातुक में इट् के व्यवधान में प्राप्ति नहीं होती।

यहां प्रकृत में शान्त 'क्रुश' धातु के शकार को मूर्द्धन्य और (ष्टुना ष्टुः ॥ ८ । ४ । ४१) सूत्र से तास् के तकार को टकार होकर—क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। 'क्रुश+स्य+ति'=क्रोक्ष्यति, (२०५)। इसी प्रकार लेट् में जानो—'क्रुश्+स+अट्+तिप्'=क्रोक्षति; क्रोक्षाति। क्रोशति; क्रोशाति। क्रोशतु। अक्रोशत्। क्रोशेत्। क्रुश्यात्। 'अट्+क्रुश्+क्स+तिप्'=अक्रुक्षत्, (२०७)। अक्रुक्षताम्। अक्रुक्षन्। अक्रुक्षः। अक्रोक्ष्यत्। ये षद् आदि तीन धातु अनिट् थे ॥

८९१ कुच सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु = छूना, टेढ़ाई, रोक रखना और खोदना—कोचति। चुकोच। चुकुचतुः। कोचिता। कोचिष्यति। कोचिषति; कोचिषाति। कोचतु। अकोचत्। कोचेत्। कुच्यात्। अकोचीत्। अकोचिष्यत्॥

८९२ बुध अवगमने = ज्ञान होना—बोधति। बुबोध। बुबुधतुः। बुबुधुः। बोधिता। बोधिष्यति। बोधिषति; बोधिषाति। बोधतु। अबोधत्। बोधेत्। बुध्यात्। अबोधीत्। अबोधिष्यत्॥

८९३ रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च = बीज की उत्पत्ति और प्रकट होना—रोहति। रुरोह। रुरुहतुः। यह धातु भी अनिट् है। 'रुह् + तास् + डा' = रोढा, (२०३; १४१) और (ष्टुना ष्टुः॥ ८।४।४१) तथा (२०६)। रोढारौ। रोढारः। रोढासि। 'रोह् + स्य + ति' = रोक्ष्यति, (२०३; २०५)। रोक्ष्यतः। रोक्ष्यन्ति। रोक्षति; रोक्षाति। रोहति; रोहाति। रोहतु। अरोहत्। रोहेत्। रुह्यात्। 'अट् + रुह् + क्स + तिप्' = अरुक्षत्, (२०७)। अरुक्षताम्। अरुक्षन्। अरोक्ष्यत्॥

८९४ कस गतौ—कसति। चकास। चकसतुः। कसितासि। कसिष्यति। कासिषति; कासिषाति। कसतु। अकसत्। कसेत्। कस्यात्। अकासीत्; अकसीत्। अकसिष्यत्॥

(वृत्) ज्वलादिगणः समाप्तः। 'ज्वल दीप्तौ' धातु से लेकर यहां तक 'ज्वलादिगण' कहाता है। इसका प्रयोजन कृदन्त में आवेगा।

ये 'षद' आदि परस्मैपद ७ सात धातु समाप्त हुए॥

अथ हिक्कादयो गूहत्यन्ताः स्वरितेतोऽष्टात्रिंशत्॥

अब हिक्क आदि गुहू पर्यंन्त स्वरितेत् (जिनमें क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद, अन्यत्र परस्मैपद होता है वे उभयपदी) ३८. अड़तीस धातु कहते हैं—

८९५ हिक्क अव्यक्ते शब्दे—हिक्कते । हिक्कति ॥

८९६ अञ्चु गतौ याचने च=गति और मांगना—

अञ्चते । अञ्चति । आनञ्चे । आनञ्च । अच्यात् (१३९) ।

अचु इत्येके—अचते । अचति । आचे । आच । अचितासे । अचितासि । अचिष्यते । अचिष्यति । आचिषतै; आचिषातै । आचिषति; आचिषाति । अचताम् । अचतु । आचत । आचत् । अचेत । अचेत् । अचिषीष्ट । अच्यात् । आचिष्ट । आचीत् । आचिष्यत् । आचिष्यत ॥

अचि इत्यपरे—इसमें इतना ही भेद है कि इदित् होने से अञ्च्यात्, (१३९) से नलोप नहीं होता ॥

८९७ टुयाचृ याच्ञायाम्=मांगना—याचते । याचति । ययाचे । ययाच । याचितासे । याचितासि । याचिष्यते । याचिष्यति । याचिषतै; याचिषातै । याचिषति; याचिषाति । याचताम् । याचतु । अयाचत । अयाचत् । याचेत । याचेत् । याचिषीष्ट । याच्यात् । अयाचिष्ट । अयाचीत् । अयाचिष्यत । अयाचिष्यत् ॥

८९८ रेट्ट परिभाषणे=बहुत बोलना—

रेटते । रेटति । रिरेटे । रिरेट ॥

८९९–९०० चते, चदे याचने—चतते । चदते । चतति । चदति । चेते । चेदे । चचात । चेततुः । अचतीत्, (१६२) । अचदीत् ॥

९०१ प्रोथृ पर्य्याप्तौ=सामर्थ्य—प्रोथते । प्रोथाते । पुप्रोथे । पुप्रोथ ॥

९०२–९०३ मिदृ, मेदृ मेधाहिंसनयोः=तीक्ष्ण बुद्धि और मारना—मेदते । मेदति । मिमिदे । मिमेदे । मिमेद । मिमिदतुः । मिमेदतुः ॥

मिथृ, मेथृ, मेधाहिंसनयोरित्येके—मेथते । मेथति ॥

९०४–९०५ मिधृ, मेधृ सङ्गमे च=मेल करना और चकार से पूर्वोक्त दोनों अर्थों का समुच्चय जानो—

मेधते। मेधति। मिमिधे। मिमेधे। मिमेध। मिमिधतुः। मिमेधतुः।।

९०६-९०७ णिदृ, णेदृ कुत्सासन्निकर्षयोः = निन्दा और समीप होना—नेदते। नेदति। नेदतः। निनिदे। निनेदे। निनिदतुः। निनेदतुः।।

९०८-९०९ शृधु, मृधु उन्दने = गीलापन—

शर्धते। मर्धते। शर्धति। मर्धति। शश्रृधे। शश्रृधतुः।।

९१० बुधिर् बोधने = बोध होना—

बोधते। बोधति। अबोधिष्ट, यहां आत्मनेपदविषय में (१९४) सूत्र से जन धातु के साहचर्य से दिवादि के बुध का ग्रहण होता है, इसलिये चिण् न हुआ। अबुधत्, इरित् होने से अङ् (१३८) से; अबोधीत्।।

९११ उबुन्दिर निशामने = सुनाना—इस धातु में उ और इर् भाग की इत् संज्ञा हो जाती है। बुन्दते। बुन्दति। बुबुन्दे। बुबुन्दतुः। अबुन्दिष्ट। अबुदत् (१३८; १४९); अबुन्दीत्।।

९१२ वेणृ गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु = गति, ज्ञान, चिन्ता, दर्शन और बाजों (ढोल आदि) का ग्रहण करना—

वेनृ इत्येके—वेणते। वेनते। वेणति। वेनति। विवेने। विवेणे। विवेणतुः। वेणितासि। वेणितासे। वेणिष्यते। वेणिष्यति। वेणिषतै; वेणिषातै। वेणिषति; वेणिषाति। वेणताम्। वेणतु। अवेणत। अवेणत्। वेणेत। वेणेत्। वेण्यात्। वेणिषीष्ट। अवेणिष्ट। अवेणीत्। अवेणिष्यत। अवेणिष्यत्।।

९१३ खनु अवदारणे = खोदना—खनते। खनति। चखने। चखान। अतुस् में उपधालोप (२१४) से—चख्नतुः। चख्नुः। खनितासे। खनितासि। खनिष्यते। खनिष्यति। खानिषतै; खानिषातै। खानिषति; खानिषाति। खनताम्। खनतु। अखनत। अखनत्। खनेत। खनेत्। खनिषीष्ट। 'खन्+यासुट्+सुट्+तिप्' (१८५) से न को आकार विकल्प

से होकर—खायात्; खन्यात् । अखनीत्; अखानीत् (१४४) । अखनिष्ट । अखनिष्यत । अखनिष्यत् ॥

९१४ चीवृ आदानसंवरणयोः = ग्रहण, आच्छादन—

चीवते । चीवति । चिचीवे । चिचीव ॥

९१५ चायृ पूजानिशामनयोः = सत्कार और सुनाना—

चायते । चायति । चचाये । चचाय । यहां वेद में कुछ विशेष है—

२३४-चायः की ॥ ६ । १ । ३५ ॥

चायृ धातु को वेद में बहुल करके की आदेश होवे ।

यहां द्विर्वचन होने से प्रथम ही अनेकाल् होने से चाय्मात्र के स्थान में की होकर पश्चात् द्विर्वचन होता है—'की+की+एश्' = चिक्ये । चिकाय । चिक्यतुः । चिक्युः । चचाय, बहुलग्रहण से कहीं होता है कहीं नहीं भी होता ॥

९१६ व्यय गतौ—व्ययते । व्ययति । वव्यये । वव्याय । यकारान्त होने से वृद्धि का निषेध (१६२) से—अव्ययीत् । अव्ययिष्ट ॥

९१७ दाशृ दाने = देना – दाशते । दाशति । ददाशे । ददाश । दाशितासे । दाशितासि । दाशिष्यते । दाशिष्यति । दाशिषतै; दाशिषातै । दाशिषति; दाशिषाति । दाशताम् । दाशतु । अदाशत । अदाशत् । दाशेत । दाशेत् । दाशिषीष्ट । दाश्यात् । अदाशिष्ट । अदाशीत् । अदाशिष्यत । अदाशिष्यत् ॥

९१८ भेषृ भये = डर—गतावित्येके—

भेषति । भेषते । बिभेषे । बिभेष ॥

९१९-९२० भ्रेषृ, भ्लेषृ गतौ—भ्रेषते । भ्रेषति । भ्लेषते । भ्लेषति ॥

९२१ अस गतिदीप्त्यादानेषु = गति, प्रकाश और लेना—

असते। असति। आस। आसतुः। आसुः। आसे। आसाते। आसिरे ॥

अष इत्येके—किन्हीं के मत में पूर्वोक्त दन्त्य सकारान्त धातु नहीं, मूर्द्धन्य षकारान्त है—अषति। अषते ॥

९२२ स्पश बाधनस्पर्शनयोः=दुःख देना और स्पर्श करना—

स्पशति। स्पशते। पस्पशे। पस्पाश (१२४)। अस्पशिष्ट। अस्पाशीत्; अस्पशीत् ॥

९२३ लष कान्तौ=इच्छा—लष्यति। लषति। लषते; लष्यते, (१८८) से श्यन्। ललाष। लेषतुः। लेषुः। लेषे। लेषाते। लेषिरे। लषितासे। लषितासि। लषिष्यते। लषिष्यति। लाषिषतै; लाषिषातै। लाषिषति; लाषिषाति। लषताम्। लषतु। अलषत्। लषेत्। लष्यात्। लषिषीष्ट। अलषिष्ट। अलाषीत्; अलषीत्। अलषिष्यत। अलषिष्यत् ॥

९२४ चष भक्षणे=खाना—चषति। चषते। चेषतुः। चेषे ॥

९२५ छष हिंसायाम्—छषति। छषते। चच्छषतुः। चच्छषे ॥

९२६ झष आदानसंवरणयोः=लेना, आच्छादन—

झषति। झषते। जझाष। जझषे ॥

९२७–९२८ भ्रक्ष, भ्लक्ष अदने—

भ्रक्षति। भ्रक्षते। भ्लक्षति। भ्लक्षते। बभ्रक्ष। भभ्रक्षे ॥

भक्ष इत्येके—भक्षति। भक्षते ॥

९२९ दासृ दाने—दासति। दासते। ददास। ददासे ॥

९३० माहृ माने=तोलना—माहति। माहते। ममाह। ममाहे। अमाहिष्ट। अमाहीत् ॥

९३१ गुहू संवरणे=आच्छादन करना—'गुह्+शप्+तिप्' यहां ॥

२३५–ऊदुपधाया गोहः ॥ ६ । ४ । ८९ ॥

गुण का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो, तो गुह धातु की उपधा को ऊकार आदेश होवे।

इस सूत्र में गुण किये 'गुह' का ग्रहण इसलिये किया है कि जहां इसको गुण होता है वहीं ऊकार होवे, अन्यत्र नहीं। ऊकार होने के पश्चात् लघूपध के न होने से गुण नहीं होता—गूहति। गूहतः। गूहन्ति। गूहते। गूहेते। गूहन्ते। जुगूह। जुगुहतुः। जुगुहुः। जुगुहिथ; जुगोढ, (२०३; १४१; २०६)। जुगुहथुः। जुगुह। जुगूह। जुगुहिव; जुगुह्व। जुगुहिम; जुगुह्म। जुगुहे। जुगुहाते। जुगुहिरे। जुगुहिषे; 'जुगुह्+से'=जुघुक्षे, (२०३; २०४; २०५) जुगुहाथे। जुगुहिध्वे; जुगुहिढ्वे; 'जुगुढ्+ढ्वे' यहां प्रथम ढकार का लोप (२०६) से होकर—

२३६–ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥ ६ । ३ । १११ ॥

जहां रेफ और ढकार का लोप हुआ हो, वहां पूर्व अण् को दीर्घ होवे।

यहां घु के उकार को दीर्घ होकर—जुघूढ्वे। जुगूहे। जुगुहिवहे; जुगुह्वहे। जुगुहिमहे; जुगुह्महे। गूहितासि। गूहितासे। अनिट् पक्ष में—'गुह्+तास्+डा'=गोढा, यहां अजादि प्रत्यय के न होने से उपधा को ऊकार (२३५) से नहीं होता। गोढारौ। गोढारः। गोढासि। गोढासे। गूहिष्यति। गूहिष्यते। घोक्ष्यति। घोक्ष्यतः। घोक्ष्यन्ति। घोक्ष्यते। गूहिषति; गूहिषाति। घोक्षति; घोक्षाति। गूहति; गूहाति। गूहिषतै; गूहिषातै। घोक्षतै; घोक्षातै; गूहतै; गूहातै। गूहताम्। गूहतु। अगूहत्। अगूहत।

गूहेत। गूहेत्। गूहिषीष्ट। अनिट् पक्ष में—'गुह्+सीयुट्+सुट्+त' (२०३; २०४; २०५; ५६; १६६; ४५)=घुक्षीष्ट। घुक्षीयास्ताम्। घुक्षीरन्। गूहिषीढ्वम्; गूहिषीध्वम्; घुक्षीध्वम्। गुह्यात्। अगूहिष्ट। अगूहिषाताम्। अगूहिषत। अगूहीत्।

और अनिट्पक्ष में—'अट्+गुह्+क्स+त' इस अवस्था में—

२३७–लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ।।७।३।७३।।

आत्मनेपदविषय में दन्त्य अक्षर परे हो, तो दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं से परे जो क्स प्रत्यय उसका लुक् विकल्प करके होवे।

प्रत्ययमात्र का लुक् और लोप अन्त्य अल् के स्थान में होता है। यहां दन्त्य अक्षर त, ध्वम् और थास् के परे क्स का लुक् होता है—'अट्+गुह्+क्स+त' (२३७; २०३; १४१) ष्टुत्व और (२३६)=अगूढ। अघुक्षत। अघुक्षाताम्, (२०८)। अघुक्षन्त। 'अगुह्+क्स+थास्' (२३७; २०३; १४१)=अगूढाः। अघुक्षथाः। अघुक्षाथाम्। 'अगुह्+क्स+ध्वम्' (२३७; २०३; २०४; २०५; २३६)=अगूढ्वम्; अघुक्षध्वम्। अघुक्षि। अघुक्षावहि। अघुक्षामहि। अगूहिष्य। अगूहिष्यत्। अघोक्ष्यत। अघोक्ष्यत्।।

इति हिक्कादयोऽष्टात्रिंशदुदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः समाप्ताः।।

ये हिक्क आदि ३८ अड़तीस उभयपदी धातु समाप्त हुए।।

अथाजन्ताः श्रियादय उभयपदिनः पञ्च।।

अब श्रि आदि अजन्त उभयपदी ५ पांच धातु कहते हैं—

९३२ श्रिञ् सेवायाम्=सेवा करना—यह धातु सेट् है। ञ् की इत्संज्ञा होने से (१०३) से उभयपद। इसी प्रकार सर्वत्र ञित् धातुओं से उभयपद जानो।

'श्रि=शप्+तिप्' (२१) से गुण=श्रयति। श्रयतः। श्रयन्ति। श्रयसि। श्रयते। श्रयेते। श्रयन्ते। शिश्राय। शिश्रियतुः, (१५९)। शिश्रिये। श्रयितासि। श्रयितासे। श्रयिष्यति। श्रयिष्यते। श्रायिषति; श्रायिषाति। श्रयति; श्रयाति। श्रायिषतै; श्रायिषातै। श्रयतु। श्रयताम्।

अश्रयत् । अश्रयत । श्रयेत् । श्रयेत । श्रीयात्, (१६०) से दीर्घ । श्रयिषीष्ट । अशिश्रियत्, (१७६) से चङ्, (१८०) से द्वित्व, (१५९) से इयङ् । अशिश्रियताम् । अशिश्रियन् । अशिश्रियः । अशिश्रियत । अशिश्रियाम् । अशिश्रियन्त । अश्रयिष्यत् । अश्रयिष्यत ॥

९३३ भृञ् भरणे=धारण और पोषण—

गुण होकर—भरति । भरते । बभार । बभ्रतुः । बभ्रुः, यहां यणादेश होता है । विशेष नियम के होने से सामान्य लिट् में इट् का निषेध (१४८) से, भारद्वाज के मत में थल् में इट् का निषेध (१४९) से, और अन्य ऋषियों के मत में थल् में इट् का निषेध (१५७) से होकर—बभर्थ । बभ्रथुः । बभ्र । बभार । बभर । बभृव । बभृम । बभ्रे । बभ्राते । बभ्रिरे । बभृषे । बभ्राथे । बभृढ्वे । बभृवहे । बभृमहे । भर्त्तासि । भर्त्तासे ।

२३८—ऋद्धनोः स्ये ॥ ७ । २ । ७० ॥

ह्रस्व ऋकारान्त और हन धातु से परे जो स्य वलादि आर्द्धधातुक उसको इट् का आगम होवे ।

भरिष्यति । भरिष्यते । भार्षति; भार्षाति । भरति; भराति । भार्षते; भार्षाते । भरतु । भरताम् । अभरत् । अभरत । भरेत् । भरेत ।

२३९—रिङ् शयग्लिङ्क्षु ॥ ७ । ४ । २८ ॥

श, यक् और यकारादि कित् ङित् आर्द्धधातुक लिङ् लकार परे हो, तो ऋकारान्त अङ्ग को रिङ् आदेश हो ।

ङित् होने से अन्त्य अल् ऋकार के स्थान में होता है । और यह सूत्र रीङ् विधान का अपवाद है । भ्रियात् । भ्रियास्ताम् । भ्रियासुः ।

आत्मनेपदविषय में—

२४०—उश्च ॥ १ । २ । १२ ॥

ऋवर्णान्त धातु से परे आत्मनेपद विषय में जो झलादि लिङ् और सिच्, सो कित्वत् हों।

कित् होने से गुण वृद्धि का निषेध (४५) से होकर—भृषीष्ट। भृषीयास्ताम्। भृषीरन्। भृषीष्ठाः। भृषीयास्थाम्। भृषीढ्वम्। भृषीय। भृषीवहि। भृषीमहि।

अभार्षीत्, (१५८) से वृद्धि। अभार्ष्टाम्। अभार्षुः। अभार्षीः। अभार्ष्टम्। अभार्ष्ट। अभार्षम्। अभार्ष्व। अभार्ष्म। आत्मनेपदविषय में सिच् कित्वत् (२४०) से होकर—'अट्+भृ+सिच्+त' इस अवस्था में—

२४१—ह्रस्वादङ्गात् ॥ ८ । २ । २७ ॥

ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो सिच्, उसका लोप होवे, झल् परे हो तो।

अभृत। अभृषाताम्, यहाँ झलादि प्रत्यय के न होने से सिच् का लोप नहीं होता। अभृषत। अभृथाः। अभृषाथाम्। अभृढ्वम्। अभृषि। अभृष्वहि। अभृष्महि। अभरिष्यत्, (२३८) से इट्। अभरिष्यत ॥

९३४–९३५ हृञ् हरणे=पहुँचाना, ग्रहण, चोरी और नाश करना आदि; धृञ् धारणे=धारण करना—

इन दोनों धातुओं का भृञ् धातु के समान साधुत्व जानो—हरति। हरते। जहार। जह्रतुः। जहर्थ। जहार। जहर। जह्रिव। जह्रिम। जह्रे। जह्राते। जहृषे। जहृढ्वे। जहृवहे। हर्त्तासि। हर्तासे। हरिष्यति, (२३८) से इट्। हरिष्यते। हार्षति; हार्षाति। हार्षते; हार्षातै। हरतु। हरताम्। अहरत्। अहरत। हरेत्। हरेत। ह्रियात्, (२३९) से रिङ्। हृषीष्ट, (२४०) से कितवत्। हृषीढ्वम्। अहार्षीत्, (१५८) से वृद्धि। अहृत, (२४१) से सिच् लोप। अहृषाताम्। अहृषत। अहरिष्यत्। अहरिष्यत।

धरति । दधार । और (१६१) सूत्र में तुजादि धातु सामान्य करके लिये जाते हैं, जिनमें वैदिक प्रयोगों में अभ्यास को दीर्घादेश देख पड़े वे सब तुजादिगणस्थ जानो । इस कारण 'दाधार' ऐसा भी प्रयोग वेद में होता है । दध्रतुः । दध्रथ । दध्रे । दधृषे ।

धर्त्तासि । धर्त्तासे । धरिष्यति । धरिष्यते । धार्षतै; धार्षातै । धार्षते; धार्षाते । धरतु । धरताम् । अधरत् । अधरत । धरेत् । ध्रियात् । धृषीष्ट । धृषीढ्वम् । अधार्षीत् । अधृत । अधृषाताम् । अधृषत । अधृढ्वम् अधरिष्यत् । अधरिष्यत ॥

९३६ णीञ् प्रापणे=ले चलना—नयति । नयते । निनाय । 'नी+नी+अतुस्'=निन्यतुः, (१५६) से यण् । निन्युः । निनयिथ, (१४९), निनेथ, (१५७) । निन्यथुः । निन्य । निनाय । निनय । निन्यिव । निन्यिम । निन्ये । निन्याते । निन्यिरे । नेतासि । नेतासे । नेष्यति । नेष्यते । नैषति; नैषाति । नयति; नयाति । नैषतै; नैषातै । नेषतै; नेषातै । नेषते; नेषाते । नयतै; नयातै । नयतु । नयताम् । अनयत् । अनयत । नयेत् । नयेत । नीयात् । नीयास्ताम् । नेषीष्ट । अनैषीत् । अनेष्ट । अनेषाताम् । अनेष्यत् । अनेष्यत ॥

भरत्यादयश्चत्वारोऽनुदात्ताः ॥

अथाजन्ताः षट्चत्वारिंशत् परस्मैपदिनः ॥

अब धेट् आदि अजन्त ४६ छयालीस परस्मैपदी धातु कहते हैं—

९३७ धेट् पाने=पीना—ट् की इत्संज्ञा और एकार को अय् आदेश होकर—'धे+शप्+तिप्'=धयति । धयतः । धयन्ति ।

२४२–आदेश उपदेशेऽशिति ॥ ६ । १ । ४५ ॥

अशित् अर्थात् आर्द्धधातुक विषय में उपदेश में जो एजन्त धातु, उसको आकार होवे ।

आकारान्त धातु सब अनिट् हैं। 'धा+णल्' इस अवस्था में—

२४३–आत औ णलः ।। ७ । १ । ३४ ।।

आकारान्त धातु से परे जो णल्, उसको औकार आदेश होवे।

'धा+औ' द्वित्व होकर—दधौ। 'धा+अतुस्' यहां—

२४४–आतो लोप इटि च ।। ६ । ४ । ६४ ।।

अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक और इट् परे हों, तो आकारान्त अङ्ग का लोप होवे।

इस लोप के पहिले द्वित्व की प्राप्ति तो है, फिर सब विधियों से लोपविधि के अति बलवान् होने से प्रथम लोप ही होता है। फिर एकाच् के न होने से द्वित्व (३४) से नहीं प्राप्त है। इसलिये—

२४५–द्विर्वचनेऽचि ।। १ । १ । ५९ ।।

द्विर्वचन का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो, तो अच् के स्थान में जो आदेश है सो स्थानीरूप हो जावे।

यहां रूपातिदेश मानने से आकार का पुनरागमन होकर द्विर्वचन होता है। 'धा+धा+अतुस्'=दधतुः; यहां द्विर्वचन होने के पश्चात् दूसरे धा के आकार का लोप हुआ है। दधुः। 'दधा+इट्+थल्'=(२४४) दधिथ, (४९) से भारद्वाज के मत में इट् का विधान; और दधाथ, (१५७) से इट् का निषेध। दधथुः। दध। दधौ। दधिव। दधिम।

धाता। धातारौ। धातारः। धातासि। धास्यति। धास्यतः। धास्यन्ति। धासति; धासाति। धयति; धयाति। धयतु। अधयत्। धयेत्।

२४६–दाधा घ्वदाप् ।। १ । १ । २० ।।

दा रूप और धा रूप जो धातु तथा इनकी जो प्रकृति हैं, उनकी घु संज्ञा होवे, दाप् और दैप् धातु को छोड़ के।

इसका फल—

२४७–एर्लिङि ॥ ६ । ४ । ६७ ॥

घुसंज्ञक धातु, मा, स्था, गा, पा, ओहाक्, सा इन धातुओं के आकार को एकार आदेश होवे, कित् ङित् लिङ् परे हो तो ।

धे को आकार (२४२) से होता है । इसी आकार को ए होकर— धेयात् । धेयास्ताम् । धेयासुः । धेयाः । धेयास्तम् । धेयास्त । धेयासम् । धेयास्व । धेयास्म ।

२४८–विभाषा धेट्श्व्योः ॥ ३ । १ । ४९ ॥

धेट् और श्वि धातु से परे जो च्लि प्रत्यय, उसके स्थान में चङ् आदेश विकल्प करके होवे ।

'अट्+धा+धा+चङ्+तिप' = अदधत्, (१८०) से द्वित्व और (२४४) से आ का लोप । अदधताम् । अदधन् । अदधः । अदधतम् । अदधत । अदधम् । अदधाव । अदधाम ।

अब जिस पक्ष में चङ् न हुआ, वहां उत्सर्ग सिच् होकर—

२४९–विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥ २ । ४ । ७८ ॥

घ्रा, धेट्, शा, छा और सा इन धातुओं से परे जो सिच् उसका विकल्प करके लुक् हो, परस्मैपदविषय में ।

धेट् धातु की घुसंज्ञा होने से (८९) सूत्र से सिच् लुक् नित्य प्राप्त, और अन्य धातुओं से अप्राप्त है, इन दोनों का विकल्प होने से प्राप्ताप्राप्तविभाषा इस सूत्र में समझनी चाहिये । सिच् का लुक् होकर— 'अट्+धा+तिप्' = अधात् । अधाताम् ।

'अधा+झि' यहां जुस् आदेश किसी से प्राप्त नहीं है, इसलिये—

२५०—आतः ॥ ३ । ४ । ११० ॥

जिससे परे सिच् का लुक् हुआ हो, ऐसे आकारान्त धातु से परे जो झि, उसको जुस् आदेश होवे ।

सिच् लुक् होने के पश्चात् प्रत्ययलक्षण कार्य्य मान के जुस् (१३४) से हो जाता है । फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि सिज्लुगन्त से परे प्रत्ययलक्षण मान के आकारान्त धातुओं से परे ही जुस् हो, अन्य से नहीं । अभूवन्, यहां भी सिच्लुक् (८९) से हुआ है; तो भी प्रत्ययलक्षण मान के जुस् नहीं होता । 'अट्+धा+जुस्'=अधुः, (८३) से पररूप एकादेश । अधाः । अधातम् । अधात । अधाम् । अधाव । अधाम ।

सिच्लुक (२४९) से विकल्प से होता है । जिस पक्ष में न हुआ, वहां—

२५१—यमरमनमातां सक् च ॥ ७ । २ । ७३ ॥

यम, रम, नम और आकारान्त धातुओं से परे जो सिच् उसको इट् का आगम और इन धातुओं को सक् का आगम होवे, परस्मैपदविषय में ।

'अट्+धा+सक्+इट्+सिच्+ईट्+तिप्'=अधासीत्, सिच् के सकार का लोप (१३२) से हो जाता है । अधासिष्टाम् । अधासिषुः । अधासीः; अधासिष्टम् । अधासिष्ट । अधासिषम् । अधासिष्व । अधासिष्म । अधास्यत् । अधास्यताम् । अधास्यन् ॥

९३८–९३९ ग्लै, म्लै हर्षक्षये=आनन्द का नाश—

'ग्लै+शप्+तिप्'=ग्लायति । ग्लायतः । ग्लायन्ति ।

लिट् आदि आर्द्धधातुक लकारों में धेट् के समान साधुत्व जानो—जग्लौ । जग्लतुः । मग्लौ । मग्लतुः । जग्लिथ । जग्लाथ । जग्लौ । जग्लिव । जग्लिम । ग्लातासि । ग्लास्यति । ग्लासति; ग्लासाति । ग्लायतु । अग्लायत् । ग्लायेत् ।

आशिषि लिङ् में एकारादेश—

२५२–वाऽन्यस्य संयोगादेः ॥ ६ । ४ । ६८ ॥

(२४७) सूत्र में कहे घुसंज्ञक आदि से अन्य संयोगादि आकारान्त धातुओं के आकार को एकार विकल्प करके हो, कित् ङित् लिङ् परे हो तो।

ग्लेयात्; ग्लायात्। म्लेयात्; म्लायात्। लुङ् में (२५१) से सक् और इट् होकर—अग्लासीत्। अग्लासिष्टाम्। अम्लासीत्। अग्लास्यत्। अम्लास्यत्॥

९४० द्यै न्यक्करणे=नीचों का तिरस्कार करना—

द्यायति। दद्यौ। दद्यिथ। दद्याथ। द्याता। द्यास्यति। द्यासति; द्यासाति। द्यायतु। अद्यायत्। द्यायेत्। द्येयात्। द्यायात्। अद्यासीत्। अद्यासिष्टाम्। अद्यासिषुः। अद्यास्यत्॥

९४१ द्रै स्वप्ने=सोना—

द्रायति। दद्रौ। द्राता। द्रेयात्। द्रायात्। अद्रासीत्॥

९४२ ध्रै तृप्तौ–ध्रायति। दध्रौ। ध्रेयात्। ध्रायात्। अध्रासीत्॥

९४३ ध्यै चिन्तायाम्=विचारना—

ध्यायति। दध्यौ। ध्याता। ध्यास्यति। ध्यासति; ध्यासाति। ध्यायतु। अध्यायत्। ध्यायेत्। ध्येयात्। ध्यायात्। अध्यासीत्। अध्यास्यत्॥

९४४ रै शब्दे—रायति। ररौ। रातासि। रायात्। अरासीत्॥

९४५–९४६ स्त्यै, ष्ट्यै शब्दसङ्घातयोः=शब्द और समुदाय—

इन दोनों में एक धातु षोपदेश है, उसको भी सत्व होने के पश्चात् एक ही प्रकार के रूप होते हैं। षोपदेश का फल णिजन्त और सन्नन्त प्रक्रिया में आवेगा। स्त्यायति। तस्त्यौ। स्त्येयात्। स्त्यायात्। अस्त्यासीत्॥

९४७ खै खदने=खाना—खायति। चखौ। चखतुः। चखुः। चखिथ। चखाथ। खातासि। खास्यति। खासति; खासाति। खायतु। अखायत्। खायेत्। खायात्। अखासीत्। अखास्यत्॥

९४८–९५० क्षै, जै, षै क्षये = नाश—

क्षायति । चक्षौ । क्षेयात् । क्षायात् । अक्षासीत् । जायति । जजौ । जायात् । अजासीत् । यहां भी 'षै' धातु को आकार होकर 'सा' होजाता है, परन्तु (२४७; २४९) सूत्रों में सा धातु के ग्रहण से दिवादिगण का 'षो' लिया जाता है—सायति । ससौ । सायात् । असासीत् ॥

९५१–१५२ कै, गै शब्दे—कायति । चकौ । कायात् । अकासीत् । गायति । जगौ । गायात् । अगासीत् ॥

९५३–९५४ शै, श्रै पाके = पकाना—

शायति । शशौ । शायात् । अशासीत् । श्रायति । शश्रौ । श्रातासि । श्रास्यति । श्रासति; श्रासाति । श्रायति; श्रायाति । श्रायतु । अश्रायत् । श्रायेत् । श्रेयात्, (२५२); श्रायात् । अश्रासीत् । अश्रास्यत् ॥

९५५–९५६ पै, ओवै शोषणे = सोखना—पायति । पपौ । पपतुः । पपुः । पपिथ । पपाथ । पपथुः । पप । पपौ । पपिव । पपिम । पातासि । पास्यति । पासति; पासाति । पायति; पायाति । पायतु । अपायत् । पायेत् ।

और पा धातु से भी उपदेश में आकारान्त पा धातु का ग्रहण (२४७) सूत्र में होता है—पायात् । इस कारण एत्व न हुआ । अपासीत् । अपासिष्टाम् । अपासिषुः । अपास्यत् ॥

'ओवै' धातु में ओकार इत् जाता है, प्रयोजन कृदन्त में आवेगा—

वायति । ववौ । वायात् । अवासीत् ॥

९५७ ष्टै वेष्टने = लपेटना—

स्तायति । तस्तौ । स्तेयात्; स्तायात् । अस्तासीत् ॥

९५८ ष्णै वेष्टने, शोभायां चेत्येके = किन्हीं के मत में 'ष्णै' धातु का शोभा अर्थ भी है—

स्नायति । सस्नौ । स्नेयात्; स्नायात् । अस्नासीत् । अस्नास्यत् ॥

९५९ दैप् शोधने=शोधना—इसमें प् की इत्संज्ञा होती है और घु संज्ञा का निषेध होने से एकार का निषेध (२४७) से और सिच् लुक् (८९) से नहीं होता। दायति। ददौ। दायात्। अदासीत्॥

९६० पा पाने=पीना—यहां पा के स्थान में पिब आदेश (१३१) से—पिबति। पिबतः। पिबन्ति। पपौ। पपतुः। पपुः। पपिथ; पपाथ। पातासि। पास्यति। पासति; पासाति। पिबति; पिबाति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत्। पेयात्। पेयास्ताम्। पेयासुः। 'अट्+पा+तिप्'= अपात्, (८९) से सिच् का लुक्। अपाताम्। अपुः। अपास्यत्॥

९६१ घ्रा गन्धोपादाने=गन्ध का ग्रहण वा गन्ध के द्वारा किसी पदार्थ का ग्रहण करना—घ्रा के स्थान में (२३१) से जिघ्र आदेश—जिघ्रति। जिघ्रतः। जिघ्रन्ति। जघ्रौ। जघ्रतुः। घ्राता। घ्रास्यति। घ्रासति; घ्रासाति। जिघ्रति; जिघ्राति। जिघ्रतु। अजिघ्रत्। जिघ्रेत्। संयोगादि होने से एकार का विकल्प (२५३) से—घ्रेयात्; घ्रायात्।

और सिच् लुक् का विकल्प (२४९) से—अघ्रात्। अघ्राताम्। अघ्रुः। अघ्राः। अघ्रातम्। अघ्रात। अघ्राम्। अघ्राव। अघ्राम। अघ्रासीत्। अघ्रासिष्टाम्। अघ्रासिषुः। अघ्रास्यत्॥

९६२ ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः=शब्द और अग्नि के साथ वायु का संयोग—ध्मा के स्थान में धम (२३१) से आदेश—धमति। धमतः। धमन्ति। दध्मौ। दध्मतुः। दध्मुः। दध्मिथ। दध्माथ। दध्मथुः। दध्म। दध्मौ। दध्मिव। दध्मिम। ध्मातासि। ध्मास्यति। ध्मासति; ध्मासाति। धमति; धमाति। धमतु। अधमत्। धमेत्। ध्मेयात्; ध्मायात्। अध्मासीत्। अध्मास्यत्॥

९६३ ष्ठा गतिनिवृत्तौ—ठहर जाना—(२३१) से तिष्ठ होकर—तिष्ठति। तिष्ठतः। तिष्ठन्ति। तस्थौ। तस्थतुः। स्थातासि। स्थास्यति। स्थासति; स्थासाति। तिष्ठति; तिष्ठाति। तिष्ठतु। अतिष्ठत्। तिष्ठेत्।

स्थेयात्, (२४७) से एकारादेश होता है। अस्थात्, (८९) से सिच् लुक्। अस्थाताम्। अस्थुः। अस्थास्यत्॥

९६४ म्ना अभ्यासे = अभ्यास करना—मन आदेश (२३१) से—मनति। मम्नौ। म्नाता। म्नास्यति। म्नासति; म्नासाति। मनति; मनाति। मनतु। अमनत्। मनेत्। म्नेयात्; म्नायात्। अम्नासीत्। अम्नास्यत्॥

९६५ दाण् दाने = देना—दाण् को यच्छ (२३१) से—यच्छति। यच्छतः। यच्छन्ति। प्रयच्छति। ददौ। दातासि। दास्यति। दासति; दासाति। यच्छति; यच्छाति। यच्छतु। अयच्छत्। यच्छेत्।

इस धातु में णकार अनुबन्ध यच्छ आदेश विधायक सूत्र में विशेष बोध के लिये है। निरनुबन्ध दारूप की घुसंज्ञा (२४६) से होकर एकार (२४७) से होता है—देयात्। देयास्ताम् और घुसंज्ञा से ही सिच् लुक् होकर—अदात्। अदाताम्। अदुः। अदाः। अदास्यत्॥

९६६ ह्वृ कौटिल्ये = कुटिलता—

ह्वरति। ह्वरतः। ह्वरन्ति। 'ह्वृ+णल्' इस अवस्था में—

२५३—ऋतश्च संयोगादेर्गुणः॥ ७। ४। १०॥

लिट् लकार परे हो, तो ऋकारान्त संयोगादि धातु को गुण होवे।

लिट् की कित् संज्ञा (१३७) से होने से गुण (४५) से नहीं प्राप्त है, इसलिये यह सूत्र है और णल् प्रत्यय में जहाँ वृद्धि प्राप्त है, वहाँ इस सूत्र की प्रवृत्ति नही होती, पूर्वविप्रतिषेध मानकर वृद्धि ही हो जाती है—जह्वार। जह्वरतुः। जह्वरुः। थल् में भारद्वाज के मत में इट् निषेध (१४९) से और अन्यों के मत में इट् (१५७) से नहीं होता। जह्वर्थ। जह्वरथुः। जह्वर। जह्वार। जह्वर। जह्वरिव। जह्वरिम।

ह्वर्तासि। लृट् मे गुण व (२३८) से इट् होकर—ह्वरिष्यति। ह्वार्षति; ह्वार्षाति। ह्वर्षति; ह्वर्षाति। ह्वरति; ह्वराति। ह्वरतु। अह्वरत्। ह्वरेत्।

२५४—गुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योः ॥ ७ । ४ । २९ ॥

ऋ धातु और संयोगादि ऋकारान्त धातु को गुण होवे, यक् और कित् आर्द्धधातुक लिङ् परे हों तो।

ह्वर्यात्। ह्वर्यास्ताम्। ह्वर्यासुः।

लुङ् में वृद्धि (१५८) से होकर—अह्वार्षीत्। अह्वार्ष्टाम्। अह्वार्षुः। अह्वार्षीः। अह्वार्ष्टम्। अह्वार्ष्ट। अह्वार्षम्। अह्वार्ष्व। अह्वार्ष्म। अह्वरिष्यत्॥

९६७ स्वृ शब्दोपतापयोः=शब्द और पीड़ा देना—

स्वरति। स्वरतः। स्वरन्ति।

वलादि लिट् लकार में विकल्प से इट् (१४०) से—सस्वार। सस्वरतुः, (२५३) से गुण। सस्वरुः। सस्वरिथ; सस्वर्थ। सस्वरथुः। सस्वर। सस्वार। सस्वर।

२५५—श्र्युकः किति ॥ ७ । २ । ११ ॥

श्रिञ् और एकाच् उगन्त धातु से परे जो कित् आर्द्धधातुक, उसको इट् का आगम न होवे।

(१४०) सूत्र यद्यपि इस सूत्र से पर है तथापि उस विकल्प को बाध के पीछे विधान के प्रथम निषेध प्रकरण के आरम्भ सामर्थ्य से इट् का निषेध इस सूत्र से प्राप्त है। फिर (१४८) सूत्र के नियमानुसार वस् मस् में नित्य इट् होता है—सस्वरिव। सस्वरिम।

स्वरिता; स्वर्त्ता। स्वरिष्यति, यहाँ परत्व से नित्य इट् (२३८) से होता है। स्वार्षति; स्वार्षाति। स्वरतु। अस्वरत्। स्वरेत्। स्वर्यात् (२५४)। अस्वारीत्। अस्वारिष्टाम्। अस्वार्षीत्। अस्वार्ष्टाम्। अस्वरिष्यत्॥

९६८ स्मृ चिन्तायाम्=स्मरण करना—

स्मरति। सस्मार। सस्मरतुः। सस्मरुः। सस्मर्थ। स्मर्त्ता। स्मरिष्यति। स्मार्षति; स्मार्षाति। स्मरतु। अस्मरत्। स्मरेत्। स्मर्यात्। अस्मार्षीत्। अस्मार्ष्टाम्। अस्मरिष्यत्॥

९६९ वृ संवरणे=ढांकना—वरति। वरतः। वरन्ति। ववार। वव्रतुः। वव्रुः। ववर्थ। वर्त्तासि। वरिष्यति। वार्षति; वार्षाति। वरतु। अवरत्। वरेत्। व्रियात्, (२३९) से रिङ्। अवार्षीत्। अवरिष्यत्॥

९७० सृ गतौ—(२३१) से सृ को 'धौ' आदेश शीघ्र चलने में होकर—धावति। धावतः। अन्यत्र—सरति। ससार। सस्रतुः। सस्रुः। ससर्थ, (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध। ससृव। ससृम। सर्त्ता। सरिष्यति। सार्षति; सार्षाति। धावति; धावाति। धावतु। सरतु। अधावत्। असरत्। धावेत्। सरेत्। स्रियात्। स्रियास्ताम्।

२५६—सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥ ३। १। ५६ ॥

सृ, शासु और ऋ धातु से परे जो च्लि प्रत्यय, उसके स्थान में अङ् आदेश होवे, परस्मैपदविषय में।

इससे अङ् होकर—'अट्+सृ+अङ्+तिप्' इस अवस्था में अङ् के ङित् होने से गुण की प्राप्ति नहीं है, इसलिये—

२५७—ऋदृशोऽङि गुणः ॥ ७। ४। १६ ॥

ऋवर्णान्त और दृश धातु को गुण होवे, अङ् परे हो तो।

यहाँ ऋवर्णान्त सृ धातु को अर् गुण होकर—असरत्। असरताम्। असरन्। असरः। असरतम्। असरत। असरम्। असराव। असराम। असरिष्यत्। असरिष्यताम्। असरिष्यन्।

९७१ ऋ गतिप्रापणयोः—

यहाँ प्रापण अर्थ के पृथक् कहने से गमन और प्राप्ति दो ही अर्थ इस धातु के समझे जाते हैं, अर्थात् ज्ञान अर्थ नहीं।

(२३१) से ऋच्छ आदेश होकर—ऋच्छति। ऋच्छतः। ऋच्छन्ति। 'ऋ+णल्' यहाँ परत्व से ऋ को आर् वृद्धि होकर अकार को द्वित्व और सवर्ण दीर्घ होकर—आर।

२५८—ऋच्छत्यॄताम् ।। ७ । ४ । ११ ।।

तुदादिगण का ऋच्छ, ऋ और ॠकारान्त धातुओं को गुण हो, लिट् परे हो तो।

यहाँ भी कित् लिट् में गुण नहीं प्राप्त है, इसलिये यह सूत्र है। 'अर्+अर्+अतुस्' = आरतुः। आरुः। (१४८) सूत्र के नियम से लिट् में सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है। भारद्वाज के मत में थल् में इट् का निषेध (१४९) से प्राप्त और अन्य लोगों के मत में थल् में इट् का निषेध (१५७) से प्राप्त है, इन सबका अपवाद—

२५९—इडत्यर्त्तिव्ययतीनाम् ।। ७ । २ । ६६ ।।

अत्, ऋ और व्येञ् इन धातुओं से परे थल् को नित्य इडागम होवे।

आरिथ। आरथुः। आर। आर। आरिव। आरिम, यहाँ व, म में (१४८) सूत्र के नियम से ही नित्य इट् होता है।

अर्त्ता। अर्त्तारौ। अर्त्तारः। अर्त्तासि। अरिष्यति, (२३८) स इट्। आर्षति; आर्षाति। अर्षति; अर्षाति। अर्षत्; अर्षात्। ऋच्छति; ऋच्छाति। ऋच्छतु। आर्च्छत्। ऋच्छेत्। अर्यात्, (२५४) से गुण।

लुङ् में च्लि के स्थान में अङ् (२५६) से और अङ् के परे गुण (२५७) से होकर—आरत्। आरताम्। आरन्। आरः। आरतम्। आरत। आरम्। आराव। आराम। आरिष्यत् ।।

९७२-९७३ गृ, घृ सेचने = सींचना—

गरति। घरति। जगार। जग्रतुः। जगर्थ। जघर्थ। जग्रिव। जग्रिम। गर्त्तासि। गरिष्यति। गार्षति; गार्षाति। गरतु। अगरत्। गरेत्। ग्रियात्, (२३९) से रिङ्। घ्रियात्। अगार्षीत्, (१५९) से वृद्धि होकर। अगार्ष्टाम्। अगार्षुः। अघार्षीत्। अगरिष्यत्। अघरिष्यत् ।।

९७४ ध्वृ हूर्छने—ध्वरति। ध्वरतः। ध्वरन्ति। दध्वार। दध्वरतुः; (२५३) से गुण। दध्वरुः। ध्वर्त्ता। ध्वरिष्यति। ध्वार्षति; ध्वार्षाति। ध्वरतु। अध्वरत्। ध्वरेत्। ध्वर्यात्, (२५४) से गुण। ध्वर्यास्ताम्। ध्वर्यासुः। अध्वार्षीः। अध्वार्ष्टाम्। अध्वरिष्यत्॥

९७५ स्रु गतौ—स्रवति। स्रवतः। स्रवन्ति। सुस्राव। सुस्रुवतुः; (१५९) से उवङ्। सुस्रुवुः। सुस्रोथ। सुस्रुवथुः। सुस्रुव। सुस्राव। सुस्रव। (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध—सुस्रुव। सुस्रुम।

स्रोतासि। स्रोष्यति। स्रोषति; स्रोषाति। स्रोषति; स्रोषाति। स्रवति; स्रवाति। स्रवतु। अस्रवत्। स्रवेत्। स्रूयात्, (१६०) से दीर्घ। लुङ् में (१७६) सूत्र से च्लि के स्थान में चङ् और द्विर्वचन (१८०) से होकर—'अट्+स्रु+स्रु+चङ् तिप्'=असुस्रुवत्। अस्रोष्यत्॥

९७६ षु प्रसवैश्वर्य्ययोः=उत्पत्ति और सामर्थ्य का होना—

सवति। सुषाव। सुषुवतुः। सुषुवुः। सुषोथ। सुषुविव। सुषुविम। सोता। सोष्यति। सौषति; सौषाति। सवति; सवाति। सवतु। असवत्। सवेत्। सूयात्; (१६०) से दीर्घ। असौषीत्। असौष्टाम्। असौषुः। असोष्यत्॥

९७७ श्रु श्रवणे=सुनना—

शप् विकरण प्राप्त है, उसका बाधक—

२६०—श्रुवः शृ च॥ ३। १। ७४॥

श्रु धातु से श्नु प्रत्यय और श्रु धातु शृ आदेश होवे।

श्नु प्रत्यय में शकार की इत्संज्ञा होकर शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा हो जाती है, फिर ऋकार से णत्व (२०२) से होकर—'शृ+णु+तिप्' (२१) से गुण=शृणोति। शृणुतः। 'झि' प्रत्यय में उवङ् आदेश (१५९) से प्राप्त है, इसलिये—

२६१–हुश्नुवोः सार्वधातुके ।। ६ । ४ । ८७ ।।

संयोग जिसके पूर्व न हो ऐसे हु और श्नु प्रत्ययान्त अनेकाच् धातु के उवर्ण को यण् आदेश होवे; अजादि सार्वधातुक परे हो तो।

शृण्वन्ति। शृणोषि। शृणुथः। शृणुथ। शृणोमि। 'शृ+णु+वस्' (२००) से उकार लोप का विकल्प होकर—शृण्मः; शृणुवः। शृण्मः; शृणुमः।

शुश्राव। शुश्रुवतुः, (१५९) से उवङ्। शुश्रुवुः। शुश्रोथ, (१४८)। शुश्रुवथुः। शुश्रुव। शुश्राव; शुश्रव। शुश्रुव। शुश्रुम। श्रोता। श्रोतारौ। श्रोतासि। श्रोष्यति। श्रोषति; श्रोषाति। शृणवति; शृणवाति। शृणोतु। शृणुतात्। शृणुताम्। शृण्वन्तु। शृणु, (२०१) से हि लुक्। शृणुतात्। शृणुतम्। शृणुत। शृणवानि। शृणवाव। शृणवाम। अशृणोत्। अशृणुताम्। अशृण्वन्। अशृणोः। अशृणुतम्। अशृणुत। अशृणवम्। अशृण्व; अशृणुव। अशृण्म; अशृणुम।

शृणुयात्। शृणुयाताम्। शृणुयुः। शृणुयाः। शृणुयातम्। शृणुयात। शृणुयाम्। शृणुयाव। शृणुयाम। श्रूयात्, (१६०) से दीर्घ। अश्रौषीत्, (१५८) से वृद्धि। अश्रौष्टाम्। अश्रौषुः। अश्रोष्यत्।।

९७८ ध्रु स्थैर्य्ये=स्थिर होना—ध्रुवति। दुध्राव। दुध्रुवतुः। दुध्रोथ; दुध्रुविथ। दुध्रुविव। ध्रोता। ध्रोष्यति। ध्रौषति; ध्रौषाति। ध्रवति; ध्रवाति। ध्रवतु। अध्रवत्। ध्रवेत्। ध्रूयात्। अध्रौषीत्। अध्रोष्यत्।।

९७९–९८० दु, द्रु गतौ—

दवति। द्रवति। दुदाव। दुद्राव। दुदुवतुः। दुद्रुवतुः। दुदोथ; दुदविथ। दुदुविव। दुद्रोथ, यहां (१४८) नियम से नित्य इट् का निषेध होजाता है परन्तु भारद्वाज के मत में ऋकारान्त के निषेध का नियम होने से थल् में इट् प्राप्त है, उसका भी क्रयादि नियामक (१४८) सूत्र अपवाद जानो।

द्रोता। द्रोतासि। द्रोष्यति। द्रोषति; द्रोषाति। द्रवतु। अद्रवत्। द्रवेत्। द्रूयात्। दूयात्। अद्रोषीत्। लुङ् में (१७६) से चङ् और (१८०) से द्विर्वचन होकर—अदुद्रुवत्। अदुद्रुवताम्। अदुद्रुवन्। अद्रोष्यत्॥

९८१-९८२ जि, ज्रि अभिभवे = तिरस्कार—

जयति। जयतः। जयन्ति। लिट् में कुत्व (१९८) से—जिगाय। जिग्यतुः। जिग्युः। जिगेथ; जिगिथ। जिज्राय। जिज्रियतुः। जिज्रेथ; जिज्रयिथ। जेतासि। ज्रेतासि। जेष्यति। ज्रेष्यति। जेषति; जेषाति। जयतु। अजयत्। जयेत्। जीयात्, (१६०) से दीर्घ। अजैषीत्। अजेष्यत्। अज्रैषीत्। अज्रेष्यत्॥

इति धेटादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैपदिनः षट्चत्वारिंशत् समाप्ताः॥

ये धेट् आदि ४६ धातु अनिट् परस्मैपदी समाप्त हुए॥

अथ डीङन्ता ङितस्त्रयोविंशतिरात्मनेभाषाः॥

अब डीङ् पर्यन्त २३ धातु आत्मनेपदी कहते हैं—

९८३ ष्मिङ् ईषद्धसने = थोड़ा हँसना—स्मयते, (२१) से गुण। स्मयेते। स्मयन्ते। सिष्मिये। सिष्मियिढ्वे; सिष्मियिध्वे। स्मेतासे। स्मेष्यते। स्मैषतै; स्मैषातै। स्मयतै; स्मयातै। स्मयाताम्। अस्मयत। स्मयेत। स्मेषीष्ट। स्मेषीढ्वम्। अस्मेष्ट। अस्मेढ्वम्। अस्मेष्यत॥

९८४ गुङ् अव्यक्ते शब्दे—गवते। जुगुवे। जुगुविढ्वे; जुगुविध्वे। गोतासे। गोष्यते। गोषतै; गोषातै। गवतै; गवातै। गवताम्। अगवत। गवेत। गोषीष्ट। गोषीढ्वम्। अगोष्ट। अगोढ्वम्। अगोष्यत॥

९८५ गाङ् गतौ—इस धातु के अनुबन्ध का लोप होने के पश्चात् आकारान्त के रहने से शप् के अकार के साथ सवर्ण दीर्घ एकादेश होता

है—'गा+शप्+त'=गाते। गाते। गाते, (१२३) से अत्। गासे। गाथे। गाध्वे। गै। गावहै। गामहै।

'गा+एश्' यहां आकारलोप (२४४) से और द्विर्वचन की व्यवस्था (२४५) से होकर—जगे। जगाते। जगिरे। जगिषे। जगाथे। जगिध्वे। जगे। जगिवहे। जगिमहे। गाता। गास्यते। गासतै; गासातै। गासते; गासाते। गातै। गातै। गाताम्। गाताम्। गाताम्। अगात। अगाताम्। अगात। गेत। गेयाताम्। गेरन्। गासीष्ट। अगास्त। अगासाताम्। अगासत। अगास्थाः। अगासाथाम्। अगाध्वम्। अगासि। अगास्वहि। अगास्महि। अगास्यत॥

९८६–९९१ उङ्, कुङ्, खुङ्, गुङ्, घुङ्, ङुङ् शब्दे—

अवते। ऊवे। ऊवाते। ऊविरे। ऊविढ्वे; ऊविध्वे। ओतासे। ओष्यते। औषतै, औषातै। अवतै; अवातै। अवताम्। अवेताम्। अवन्ताम्। आवत। अवेत। ओषीष्ट। ओषीढ्वम्। औष्ट। औषाताम्। औषत। औढ्वम्। औष्यत।

कवते। चुकुवे। कोतासे। कोष्यते। कौषतै; कौषातै। कवताम्। अकवत। कवेत। कोषीष्ट। अकोष्ट। अकोष्यत।

खवते। चुखुवे। गवते। जुगुवे। घवते। जुघुवे। ङवते। ञुङुवे। ङोता। ङोष्यते। ङोषतै; ङोषातै। ङवताम्। अङवत। ङवेत। ङोषीष्ट। अङोष्ट। अङोष्यत॥

९९२–९९५ च्युङ्, ज्युङ्, प्रुङ्, प्लुङ् गतौ=क्लुङ् इत्येके—

च्यवते। ज्यवते। प्रवते। प्लवते। क्लवते॥

९९६ रुङ् गतिरेषणयोः=गति और हिंसा—

रवते। रुरुवे। रुरुविढ्वे; रुरुविध्वे और रु धातु सेट् अनिट् व्यवस्था में पढ़ा है, वहां युं, रु आदि अदादि धातुओं के साहचर्य से अदादि का ही रुधातु भी लिया जाता है। रोतासे। रोष्यते। रौषतै; रौषातै। रवताम्। अरवत। रवेत। रोषीष्ट। रोषीढ्वम्। अरोष्ट। अरोढ्वम्। अरोष्यत॥

९९७ धृङ् अवध्वंसने=नाश करना—धरते। दध्रे। धर्त्तासे। धरिष्यते, (२३८) से इट्। धार्षतै। धार्षातै। धरताम्। अध्ररत। धरेत। धृषीष्ट, (२४०) इससे कद्वत् होकर (४५) से गुण का निषेध होता है। अधृत, (२४०; २४१)। अधृषाताम्। अधृषत। अधरिष्यत॥

९९८ मेङ् प्रणिदाने=किसी पदार्थ के बदले में दूसरा वस्तु देना—

मयते। मयेते। मयन्ते। ममे, (२४२; २४४; २४५)। ममाते। ममिरे। मातासे। मास्यते। मासतै; मासातै। मयताम्। अमयत। मयेत। मासीष्ट। अमास्त। अमासाताम्। अमासत। अमास्यत॥

९९९ देङ् रक्षणे—दयते।

२६२—दयतेर्दिगि लिटि॥ ७। ४। ९॥

दयति धातु को दिगि आदेश होवे, लिट् लकार परे हो तो।

इस सूत्र में 'दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु' (४९६) इस धातु का ग्रहण इसलिये नहीं होता कि 'दय' धातु से लिट् में आम् प्रत्यय कह चुके हैं और यह सूत्र द्विर्वचन का अपवाद है—'दिगि+एश्'=दिग्ये, (१५६) से यण्। दिग्याते। दिग्यिरे।

दातासे। दास्यते। दासतै; दासातै। दयताम्। अदयत। दयेत। दासीष्ट। दा धातु की प्रकृति होने से इसकी घु संज्ञा (२४६) से होकर—

२६३—स्थाघ्वोरिच्च॥ १। २। १७॥

स्था धातु और घुसंज्ञक धातुओं को इकारादेश और इनसे परे जो सिच् प्रत्यय सो किद्वत् हो, आत्मनेपद विषय में।

'स्था' धातु प्रथम लिख चुके हैं, परन्तु वहां आत्मनेपद के न होने से इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई, पदव्यवस्थाप्रक्रिया में काम आवेगा। यहां 'दा' धातु के आकार को इकार होकर—'अट्+दि+सिच्+त'=अदित;

(२४१) सूत्र से सिच् के सकार का लोप। अदिषाताम्। अदिषत। अदिथाः। अदिषाथाम्। अदिढ्वम्। अदिषि। अदिष्वहि। अदिष्महि॥

१००० श्यैङ् गतौ—श्यायते। शिश्ये। श्यातासे। श्यास्यते। श्यासतै; श्यासातै। श्यायताम्। अश्यायत। श्यायेत। श्यासीष्ट। अश्यास्त। अश्यास्यत॥

१००१ प्यैङ् वृद्धौ=बढ़ना—

प्यायते। पप्ये। प्यातासे। अप्यास्त। अप्यास्यत॥

१००२ त्रैङ् पालने=रक्षा—त्रायते। तत्रे। त्राता। त्रास्यते। त्रासतै; त्रासातै। त्रायताम्। अत्रायत। त्रायेत। त्रासीष्ट। अत्रास्त। अत्रास्यत॥

ष्मिङ्प्रभृतयोऽनुदात्ता आत्मनेपदिनः॥

'ष्मिङ्' से यहां तक सब धातु अजन्त अनिट् जानो॥

१००३ पूङ् पवने=शुद्धि—पवते। पुपुवे। पुपुविढ्वे; पुपुविध्वे। पवितासे। पविष्यते। पाविषतै; पाविषातै। पविषतै; पविषातै। पवतै; पवातै। पवताम्। अपवत। पवेत। पविषीष्ट। अपविष्ट। अपविष्यत॥

१००४ मूङ् बन्धने=बांधना—मवते॥

१००५ डीङ् विहायसा गतौ=आकाश में उड़ना—

डयते। डिड्ये। डयिता। डयिष्यते। डायिषतै; डायिषातै। डायिषते; डायिषाते। डयताम्। अडयत। डयेत। डयिषीष्ट। अडयिष्ट। अडयिष्यत॥

ये 'पूङ्' आदि तीन धातु सेट् हैं॥

इति ष्मिङादयो ङितस्त्रयोविंशतिरात्मनेभाषाः॥

ये ष्मिङ् आदि २३ तेईस आत्मनेपद ङित् धातु समाप्त हुए॥

अथैकः परस्मैपदी ॥

१००६ तॄ प्लवनसंतरणयोः=कूदना और तरना=उदात्तः परस्मैपदी—यह धातु सेट् परस्मैपदी है—तरति। तरतः। तरन्ति। ततार, यहाँ प्रथम वृद्धि होकर द्वित्व होता है। 'तॄ+अतुस्' यहाँ अप्राप्त गुण (२५८) से और एत्वाभ्यास लोप (२६४) से होकर—तेरतुः। तेरुः। तेरिथ। तेरथुः। तेर। ततार। ततर। तेरिव। तेरिम।

२६४—वॄतो वा ॥ ७। २। ३८॥

वृङ्, वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे जो इट् का आगम, उसको विकल्प करके दीर्घ होवे परन्तु लिट् लकार परे न हो।

तरीतासि; तरितासि। इस सूत्र में 'लिट् का निषेध' इसलिये है। तेरिथ, यहाँ दीर्घ न होवे। तरीष्यति; तरिष्यति। तारीषति; तारीषाति। तारिषति; तारिषाति। तरीषति; तरीषाति। तरिषति; तरिषाति। तरति; तराति। तरतु। अतरत्। तरेत्।

२६५—ॠत इद्धातोः ॥ ७। १। १००॥

ॠकारान्त धातु अङ्ग को इत् आदेश होवे।

इस इत् आदेश के कहने में कुछ विशेष नहीं है परन्तु जहाँ गुण वृद्धि की प्राप्ति है, वहाँ तो परविप्रतिषेध मान के गुण वृद्धि ही होते हैं। और जहाँ गुण की वृद्धि की प्राप्ति नहीं, वहाँ इत्व होता है—'तिर्+या+तिप्'+तीर्यात्, (१९७) से दीर्घ। तीर्यास्ताम्। तीर्यासुः।

२६६—सिचि च परस्मैपदेषु ॥ ७। २। ४०॥

परस्मैपद विषय में सिच् परे हो तो वृङ्, वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ न होवे।

(२६४) सूत्र से सर्वत्र दीर्घ प्राप्त है, उसका विशेष विषय में बाधक है। अतारीत्। अतारिष्टाम्। अतारिषुः। अतरीष्यत्; अतरिष्यत्॥

अथाष्टावनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ।।

अब गुप आदि ८ धातु आत्मनेपदी कहते हैं—

१००७ गुप गोपने—यहां गोपन धातु का स्वार्थ लिया जाता है। सन् के विना इसका प्रयोग स्वतन्त्र कहीं नहीं आता। सन्नन्त का अर्थ निन्दा होता है, वही इसका स्वार्थ है।

२६७–गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ।। ३ । १ । ५ ।।

गुप्, तिज् और कित् इन तीन धातुओं से स्वार्थ में सन् प्रत्यय हो।

गुप् धातु से निन्दा अर्थ में सन् प्रत्यय जानो—'गुप्+सन्'।

२६८–सन्यङोः ।। ६ । १ । ९ ।।

सन् और यङ् प्रत्यय परे हों तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव को और अजादि के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे।

जुगुप्स, (१०७) से अभ्यास को चवर्गादेश होकर इसकी धातु संज्ञा (१६७) से होकर अनुदात्त अनुबन्ध के केवल गुप् आदि में चरितार्थ न होने से सन्नन्त धातुओं से भी आत्मनेपद होता है—'जुगुप्स+शप्+त'= जुगुप्सते। जुगुप्सेते। जुगुप्सन्ते।

जुगुप्साञ्चक्रे, (१६९; १७०)। जुगुप्साम्बभूव। जुगुप्सामास। जुगुप्सितासे। जुगुप्सिष्यते। जुगुप्सिषतै; जुगुप्सिषातै। जुगुप्सताम्। अजुगुप्सत। जुगुप्सेत। जुगुप्सिषीष्ट। अजुगुप्सिष्ट। अजुगुप्सिष्यत।

९००८ तिज निशाने—इस धातु का स्वार्थ सहन अर्थ है—

तिज् से सहने अर्थ में (२६७) से सन् प्रत्यय जानो। 'तिज्+तिज्+सन्' (२६७; २६८), यहाँ द्वितीय चवर्ग जकार को (खरि च ।। ८। ४। ५५) सूत्र से क् होकर सन् के सकार को ष (५६) से होकर 'तितिक्ष+शप्+त' तितिक्षते। तितिक्षाञ्चक्रे। तितिक्षामास। तितिक्षाम्बभूव। तितिक्षितासे इत्यादि ।।

१००९-९० मान पूजायाम्=सत्कार; वध बन्धने=बांधना—

२६९-मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥३।१।६॥

मान, बध, दान और शान धातुओं से सन् प्रत्यय होवे और सन् प्रत्यय के परे इनके अभ्यास को दीर्घ होवे।

'मान' धातु से 'जानने की इच्छा' में और 'बध' धातु से 'चित्तविकार' अर्थ में सन् जानो।

'मान' धातु के अभ्यास को प्रथम ह्रस्व (३९) से होकर अभ्यास के अकार को इकार (१८२) से होता है। उसी इकार को (मानबध०) सूत्र से दीर्घ जानो—मीमांसते। मीमांसेते। मीमांसन्ते। मीमांसाञ्चक्रे। मीमांसाम्बभूव। मीमांसामास।

'वध्+वध्+सन्+शप्+त'=बीभत्सते, (२०४) से भष्भाव (२६९) से अभ्यास को दीर्घ और चर्त्व होता है। बीभत्सेते। बीभत्साञ्चक्रे। बीभत्सितासे। बीभत्सिष्यते। बीभत्सिषतै; बीभत्सिषातै। बीभत्सताम्। अबीभत्सत। बीभत्सेत। बीभत्सिषीष्ट। अबीभत्सिष्ट। अबीभत्सिष्यत॥

गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय को इट् का आगम (४६) से और पूर्व को गुण प्राप्त है सो गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय के न कहने से सन् की आर्द्धधातुक संज्ञा नहीं होती। जो धातु से विहित हैं, उन्हीं प्रत्ययों की आर्द्धधातुक संज्ञा (४९) कही है और आर्द्धधातुक संज्ञा न होने से इट् और गुण दोनों ही नहीं होते॥

गुपादयश्चत्वार उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः॥

ये गुप् आदि ४ चार सेट् आत्मनेपदी धातु समाप्त हुए॥

१०११ रभ राभस्ये=शीघ्र करना—

रभते। रभेते। रेभे। रेभाते। 'रभ+तास्+डा'=रब्धा, (१४१) से धत्व और भकार को जश् बकार होता है। रब्धारौ। रब्धासे। रप्स्यते,

चर् । राप्सतैं; राप्सातैं । रभताम् । अरभत । रभेत । रप्सीष्ट । अरब्ध, (१४२) से सलोप । अरप्साताम् । अरप्सत । अरब्धाः । अरप्साथाम् । अरब्ध्वम् । अरप्सि । अरप्स्वहि । अरप्स्महि । अरप्स्यत ॥

१०१२ डुलभष् प्राप्तौ—डु की इत्संज्ञा (१५०) से और स की इत्संज्ञा का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा । लभते । लभेते । लभन्ते । लभसे । लेभे । लेभाते । लेभिरे । लेभिषे । लब्धासे । लप्स्यते । लाप्सतैं; लाप्सातैं । लभताम् । अलभत । लभेत । लप्सीष्ट । अलब्ध । अलप्साताम् । अलप्स्यत ॥

१०१३ ष्वञ्ज-परिष्वङ्गे=लपेटना

२७०—दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ॥ ६ । ४ । २५ ॥

दंश, सञ्ज और स्वञ्ज धातुओं के उपधा नकार का लोप होवे, शप् प्रत्यय परे हो तो ।

स्वजते । स्वजेते । स्वजन्ते ।

यह धातु संयोगान्त है, इस कारण इससे परे लिट् की कित्संज्ञा (१३७) से नहीं प्राप्त है और कित्संज्ञा के न होने से उपधा नकार का लोप भी नहीं पाता, इसलिये—

२७१—वा०—श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनामिति वक्तव्यम् ॥ १ । २ । ६ ॥

श्रन्थ, ग्रन्थ, दम्भ, स्वञ्ज इन धातुओं से परे जो लिट्, सो किद्वत् हो ।

यहां स्वञ्ज धातु से परे कित्व होकर उपधा नकार का लोप (१३९) से होकर—सस्वजे । सस्वजाते । सस्वजिरे ।

इस धातु के अनिट् होने से 'स्वञ्ज+तास्+डा' स्वङ्क्ता, कुत्व षत्व और परसवर्ण । स्वङ्क्तासे । स्वङ्क्ष्यते । स्वङ्क्षतैं; स्वङ्क्षातैं । स्वजताम् । अस्वजत । स्वजेत । स्वङ्क्षीष्ट । अस्वङ्क्त । अस्वङ्क्ष्यत ॥

१०१४ हद पुरीषोत्सर्गे=हगना—हदते। जहदे। जहदाते। जहदिरे। हत्ता। हत्स्यते। हात्सतै; हात्सातै। हदताम्। अहदत। हदेत। हत्सीष्ट। अहत्त। अहत्साताम्। अहत्सत। अहत्स्यत॥

रभादयश्चत्वारोऽनुदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः॥

ये रभ आदि अनिट् आत्मनेपदी ४ चार धातु समाप्त हुए॥

अथ ष्विदादयः परस्मैपदिनः पञ्चदश॥

अब ष्विद आदि १५ पन्द्रह धातु परस्मैपदी कहते हैं—

१०१५ ञिष्विदा अव्यक्ते शब्दे—उदात्तः परस्मैपदी। यह धातु सेट् है—

स्वेदति। सिस्वेद। सिस्विदतुः। सिस्विदुः। स्वेदिता। स्वेदिष्यति। स्वेदिषति; स्वेदिषाति। स्वेदतु। अस्वेदत्। स्वेदेत्। स्विद्यात्। अस्वेदीत्। अस्वेदिष्यत्॥

१०१६ स्कन्दिर् गतिशोषणयोः=गति और शोखना

स्कन्दति। चस्कन्द। चस्कन्दतुः। चस्कन्दिथ।

२७२—झरो झरि सवर्णे॥ ८। ४। ६५॥

हल् से परे जो झर् उसका लोप हो, सवर्णी झर् परे हो तो।

'स्कन्द+थल्'=स्कन्थ, यहां नकार से परे दकार का लोप होता है। स्कन्तासि। स्कन्त्स्यति। स्कन्त्सति; स्कन्त्साति। स्कन्दतु। अस्कन्दत्। स्कन्देत्। स्कद्यात्, (१३९) से नकार का लोप।

लुङ् में इरित् होने से अङ् (१३८) से विकल्प से—अस्कदत् (१३९) से नलोप। पक्ष में—अस्कान्त्सीत्। अस्कान्ताम्। अस्कान्त्सुः, (१३५) से वृद्धि। अस्कान्त्सीः। अस्कान्तम्। अस्कान्त। अस्कान्त्सम्। अस्कान्त्स्व। अस्कान्त्स्म॥

१०१७ यभ मैथुने=स्त्रीसंग करना—यभति। यभतः। यभन्ति। ययाभ। येभतु। येभुः। येभिथ; (२१५) ययब्ध। यब्धासि। यप्स्यति। याप्सति; याप्साति। यभति; यभाति। यभतु। अयभत्। यभेत्। यभ्यात्। अयाप्सीत्। अयाब्धाम्। अयाप्सुः। अयाप्सीः। अयाब्धम्। अयाब्ध। अयाप्सम्। अयाप्स्व। अयाप्स्म। अयप्स्यत्॥

१०१८ णम प्रह्वत्वे शब्दे=नम के बोलना—

नमति। ननाम। नेमतुः। नेमुः। नेमिथ; ननन्थ। नेमथुः। नेम। ननाम; ननम। नेमिव। नेमिम। नन्तासि। नन्स्यति। नांसति; नांसाति। नमति; नमाति। नमतु। अनमत्। नमेत्। नम्यात्।

यह धातु अनिट् तो है परन्तु लुङ् लकार में इट् और सक् का आगम (२५१) से हो जाता है—अनंसीत्। अनंसिष्टाम्। अनंसिषुः। अनंस्यत्॥

१०१९-२० गम्लृ, सृप्लृ गतौ—

२७३—इषुगमियमां छः॥ ७। ३। ७७॥

इषु, गम और यम धातुओं को छकारादेश होवे, शित् प्रत्यय परे हो तो।

यहां अन्त्य अल् गम के मकार को छकार होकर—गच्छति। गच्छतः। गच्छन्ति। जगाम। जग्मतुः। जग्मुः, (२१४) से उपधा लोप। जगमिथ; जगन्थ (२१५) गन्ता। गन्तारौ। गन्तारः। गन्तासि।

२७४—गमेरिट् परस्मैपदेषु॥ ७। २। ५८॥

परस्मैपदविषय में गम धातु से परे सकारादि आर्द्धधातुक को इट् का आगम होवे।

गमिष्यति। गमिष्यतः। गमिष्यन्ति। गामिषति; गामिषाति। गच्छति; गच्छाति। गच्छत्। गच्छात्। गच्छतु। अगच्छत्। गच्छेत्। गम्यात्। लुङ् लकार में (२१७) सूत्र से अङ् और अङ् के परे उपधालोप का

निषेध (२१४) से होने से उपधालोप नहीं होता—अगमत् । अगमताम् । अगमन् । अगमः । अगमतम् । अगमत । अगमम् । अगमाव । अगमाम । अगमिष्यत् ।

सर्पति । सर्पतः । सर्पन्ति । ससर्प । ससृपतुः । ससर्पिथ । ससृपथुः ।

२७५–अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ॥ ६ । १ । ५९॥

कित्भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो, तो ऋकार जिसकी उपधा में हो ऐसा जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्) धातु, उसको अम् का आगम होवे विकल्प करके ।

मित् आगम अन्त्य अच् से परे होता है । 'सृ+अम्+प्+तासि+डा'=स्रप्ता; सर्प्ता । स्रप्तासि; सर्प्तासि । अम् के अकार को मान के यण् होता और पक्ष में गुण (५१) से हो जाता है ।

स्रप्स्यति; सर्प्स्यति । स्रप्सति; स्रप्साति । सर्प्सति; सर्प्साति । सर्पति; सर्पाति । सर्पतु । असर्पत् । सर्पेत् । सृप्यात् । असृपत्, (२१७) से अङ् । असृपताम् । असृपन् । असृपः । असृपतम् । असृपत । असृपम् । असृपाव । असृपाम । अस्रप्स्यत्; असर्प्स्यत् ॥

१०२१ यम उपरमे=शान्त होना—

(२७३) से छकारादेश होकर—यच्छति । यच्छतः । यच्छन्ति । ययाम । येमतुः । येमिथ; ययन्थ । येमिव । यन्तासि । यन्स्यति । यान्सति यान्साति । यच्छतु । अयच्छत् । यच्छेत् । यम्यात् । लुङ् में (२५१) से इट् और सक्—अयन्सीत् । अयन्सिष्टाम् । अयन्सिषुः । अयन्स्यत् ॥

१०२२ तप सन्तापे=दुःख भोगना—तपति । तताप । तेपतुः । तप्ता । तप्स्यति । ताप्सति; ताप्साति । तपति; तपाति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अताप्सुः । अताप्सीः । अतप्स्यत् ॥

१०२३ त्यज हानौ=हानि होनी—

त्यजति । त्यजतः । त्यजन्ति । तत्याज । तत्यजिथ, तत्यक्थ । तत्यजिव ।

वैदिक प्रयोगविषय में—'त्यज' आदि निम्नलिखित धातुओं के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं। यद्यपि प्रथम 'स्पर्द्ध' धातु पर ही इस सूत्र को लिखना था, तो भी सर्वत्र समझ लेना चाहिये।

२७६–अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताः श्रितमाशीराशीर्त्ताः ॥ ६ । १ । ३६ ॥

'अपस्पृधेथाम्'—इस प्रयोग में लङ् लकार उत्तम पुरुष के द्विवंचन में 'स्पर्द्ध संघर्षे' धातु को द्विवंचन, रेफ को सम्प्रसारण और अभ्यास के अकार का लोप निपातन से किया है—'अट्+स्पर्द्ध+आथाम्'=अपस्पृधेथाम्।

और दूसरा प्रकार यह भी है कि 'अप' उपसर्गपूर्वक 'स्पर्द्ध' धातु के रेफ को सम्प्रसारण और अकार का लोप ही निपातन है। वेद में माङ् का योग न हो तो भी अट् का निषेध है।

'आनृचुः' और 'आनृहुः' यहां 'अर्च पूजायाम्' और 'अर्ह पूजायाम्' इन दोनों धातुओं से लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन 'उस्' में रेफ को सम्प्रसारण, अकार का लोप, तत्पश्चात् द्वित्व निपातन से और (१०६) सूत्र से अभ्यास के अकार को ऋकार होता है।

'चिच्युषे'—यहां 'च्युङ् गतौ' धातु से लिट् लकार मध्यम पुरुष के एकवचन में अभ्यास को सम्प्रसारण और इट् का अभाव निपातन से किया है।

'तित्याज'—यहां इसी 'त्यज' धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण निपातन से किया है।

'श्रातः'—यहां 'श्रीञ् पाके' धातु को कृदन्त क्त प्रत्यय के परे श्राभाव निपातन किया है।

'श्रितम्'—और यहां भी उक्त धातु को क्त के परे श्रिभाव है।

'आशीः'—'आशीर्तः'—यहां भी आङ्पूर्वक उक्त श्रीञ् धातु को क्विप् और क्त प्रत्यय के परे शीर् आदेश हुआ है।

त्यक्तासि । त्यक्ष्यति । त्यक्षति; त्यक्षाति । त्यजतु । अत्यजत् । त्यजेत् । त्यज्यात् । अत्याक्षीत् । अत्याक्ताम् । अत्याक्षुः । अत्याक्षीः । अत्याक्तम् । अत्याक्त । अत्याक्षम् । अत्याक्ष्व । अत्याक्ष्म । अत्यक्ष्यत् ॥

१०२४ षञ्ज सङ्गे = मेल—(२७०) सूत्र से उपधा नकार का लोप होकर—सजति । सजतः । ससञ्ज । ससञ्जतुः । ससञ्जिथ; ससङ्क्थ । सङ्क्तासि । सङ्क्ष्यति । सङ्क्षति; सङ्क्षाति । सजतु । असजत् । सजेत् । सज्यात् । असाङ्क्षीत् । असाङ्क्ताम् । असाङ्क्षुः, (१३५) से वृद्धि । असङ्क्ष्यत् ॥

१०२५ दृशिर् प्रेक्षणे = अच्छे प्रकार देखना—

पश्य आदेश (२३१) सूत्र से होकर—पश्यति । पश्यतः । पश्यन्ति । ददर्श । ददृशतुः । ददृशुः ।

२७७–विभाषा सृजिदृशोः ॥७।२।६५॥

सृज और दृश धातु से परे जो थल् उसको विकल्प करके इडागम होवे । इट् पक्ष में—ददर्शिथ । अनिट् पक्ष में—'ददृश्+थल्' यहां—

२७८–सृजिदृशोर्झल्यमकिति ॥६।१।५८॥

कित्भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो तो सृज और दृश धातुओं को अम् आगम होवे ।

यह सूत्र (२७५) सूत्र का अपवाद है क्योंकि (२७५) सूत्र में सामान्य ऋदुपध धातुओं का अम् आगम विकल्प से कहा है उसका यह विशेष है—'दद्रश् = थल्' = दद्रष्ठ, ऋकार को यण् और (२३३) सूत्र से शकार को षकार होता है । ददृशथुः । ददृश । ददर्श । ददृशिव । ददृशिम ।

द्रष्टासि । द्रक्ष्यति । द्राक्षति; द्राक्षाति । पश्यति; पश्याति । पश्यतु । अपश्यत् । पश्येत् । दृश्यात् । (१३८) सूत्र से अङ् का विकल्प होकर अङ् पक्ष में—अदर्शत्, (२५७) से गुण और जिस पक्ष में अङ् नहीं होता, वहां (२०७) सूत्र से च्लि के स्थान में क्स प्राप्त है, इसलिये—

२७९-न दृशः ॥३।१।४७॥

दृश धातु से परे च्लि के स्थान में क्स आदेश न होवे।

फिर अम् (२७८) से और वृद्धि (१३५) से होकर—अद्राक्षीत्। अद्राष्टाम्। अद्राक्षुः। अद्राक्षीः। अद्राष्टम्। अद्राष्ट। अद्राक्षम्। अद्राक्ष्व। अद्राक्ष्म। अद्रक्ष्यत्॥

१०२६ दंश दशने=काट खाना—

नकारलोप (२७०) से—दशति। दशतः। दशन्ति। ददंश। ददंशतुः। ददंशिथ, ददंष्ठ, (२३३) से श को ष। दंष्टासि। दंक्ष्यति। दङ्क्षति; दङ्क्षाति। दशति; दशाति। दशतु। अदशत्। दशेत्। दश्यात्, (१३९)। अदाङ्क्षीत्। अदांष्टाम्। अदाङ्क्षुः। अदङ्क्ष्यत्॥

१०२७ कृष विलेखने=जोतना, खींचना वा खोदना—

कर्षति। चकर्ष। चकृषतुः। चकर्षिथ। क्रष्टासि; कर्ष्टासि। यहां विकल्प से अम् (२७५) से और पक्ष में गुण होता है। क्रक्ष्यति। कर्क्ष्यति। क्रक्षति; क्रक्षाति। कर्क्षति; कर्क्षाति। कर्षति; कर्षाति। कर्षतु। अकर्षत्। कर्षेत्। कृष्यात्।

लुङ् में च्लि के स्थान में नित्य क्स (२०७) से प्राप्त है, इसलिये—

२८०-वा०-स्पृशमृशकृषतृपदृपांच्लेः सिज् वा ॥
३।१।४४॥

स्पृश, मृश, कृष, तप, और दृप धातुओं से परे च्लि के स्थान में सिच् विकल्प करके हो अर्थात् एक पक्ष में क्स और दूसरे पक्ष में सिच् भी रहे।

जिस पक्ष में सिच् हुआ, वहां अम् और वृद्धि (१३५) से होकर—अक्राक्षीत्। अक्राष्टाम्। अकार्क्षीत्। अकार्ष्टाम्। अकार्क्षुः और जिस पक्ष में क्स होता है, वहां—अकृक्षत्। अकृक्षताम्। अकृक्षन्। अक्रक्ष्यत्; अकर्क्ष्यत्॥

१०२८ दह भस्मीकरणे = भस्म कर देना—

दहति। ददाह। देहतुः। देहिथ; ददग्ध। दग्धासि। धक्ष्यति। धाक्षति; धाक्षाति। दहति; दहाति। दहतु। अदहत्। दहेत्। दह्यात्। अधाक्षीत्। अदाग्धाम्। अधाक्षुः। अधाक्षीः। अदाग्धम्। अदाग्ध। अधाक्षम्। अधाक्ष्व। अधाक्ष्म। अधक्ष्यत्॥

१०२९ मिह सेचने = सींचना—मेहति। मिमेह। मिमेहिथ। मेढा। मेक्ष्यति। मेक्षति; मेक्षाति। मेहति; मेहाति। मेहतु। अमेहत्। मेहेत्। मिह्यात्। अमिक्षत्, (२०७) से क्स। अमिक्षाताम्। अमिक्षन्। अमेक्ष्यत्॥

स्कन्दादयोऽनुदात्ताः स्कन्द आदि सब धातु अनिट् हैं॥

इति स्विदादय उदात्तेतः पंचदश परस्मैभाषाः॥

ये १५ पन्द्रह परस्मैपदी धातु समाप्त हुए॥

अथैकः परस्मैभाषः॥

१०३० कित निवासे रोगापनयने च = निवास और रोगों का हटाना—

'(२६७) सूत्र से सन् और द्वित्व (२६८) से होकर—चिकित्सति। इस धातु का सन्नन्त में केवल 'रोगापनयन' ही अर्थ घटता है।

और विपूर्वक सन्नन्त केवल 'संशय' अर्थ में ही आता है—विचिकित्सति, संदेहं करोतीत्यर्थः। और 'निवास' अर्थ में चुरादिस्थ होने से णिच् होकर—केतयति, प्रयोग बनता है।

चिकित्साञ्चकार। चिकित्साम्बभूव। चिकित्सामास। चिकित्सिता। चिकित्सिषति; चिकित्सिषाति। चिकित्सतु। अचिकित्सत्। चिकित्सेत्। चिकित्स्यात्। अचिकित्सीत्। अचिकित्सिष्यत्।

उदात्तः परस्मैपदी। यह धातु सेट् परस्मैपदी है, परन्तु कोई कोई लोग इसको आत्मनेपदी भी कहते हैं, उनके मत में--चिकित्सते। चिकित्साञ्चक्रे आदि रूप होंगे ॥

इतो वहत्यन्ताः एकादश स्वरितेतः ॥

अब यहां से 'वह' धातु पर्य्यन्त ११ स्वरितेत् (उभयपदी) कहते हैं। क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०३) से, अन्यत्र परस्मैपद होते हैं—

१०३१–३२ दान खण्डने=काटना; शान तेजने=तीक्ष्ण करना—

इन दोनों धातुओं से सन् और अभ्यास को दीर्घ (२६९) से और द्वित्व (२६८) से होकर—दीदांसते। दीदांसति। शीशांसते। शीशांसति। दीदांसाञ्चक्रे। दीदांसाञ्चकार। दीदांसितासे। दीदांसितासि। अदीदांसिष्ट। अदीदांसीत् ॥

ये दोनों धातु सेट् हैं ॥

१०३३ डुपचष् पाके—इस धातु के डु और ष् इत् जाते हैं। पचते। पचति। पचतः। पचन्ति। पपाच। पेचतुः। पेचिथ; पपक्थ। पेचे। पेचाते। पक्तासे। पक्तासि। पक्ष्यते। पक्ष्यति। पाक्षतै; पाक्षातै। पचतै; पचातै। पाक्षति; पाक्षाति। पचति; पचाति। पचताम्। पचतु। अपचत। अपचत्। पचेत। पचेत्। पक्षीष्ट। पच्यात्। अपक्त। अपक्षाताम्। अपाक्षीत्। अपाक्ताम्। अपाक्षुः। अपक्ष्यत। अपक्ष्यत् ॥

१०३४ षच समवाये=सम्बन्ध करना—

यह धातु सेट् है। सचते। सचति। ससाच। सेचतुः। सेचिथ। सेचे। सचितासे। सचितासि। असचिष्ट। असाचीत्; असचीत्।

१०३५ भज सेवायाम्=सेवा करना—

भजते । भजति । बभाज । भेजतुः, (१६४) से एत्वाभ्यासलोप । भेजिथ; बभक्थ । भेजे । भक्तासि । भक्तासे । भक्ष्यते । भक्ष्यति । भक्षीष्ट । भज्यात् । अभक्त । अभाक्षीत् । अभाक्ताम् । अभक्ष्यत ।।

१०३६ रञ्ज रागे = रंगना—

२८१–रञ्जेश्च ।। ६ । ४ । २६ ।।

रञ्ज धातु के अनुनासिक का लोप हो, शप् परे हो तो ।

रजते । रजति । ररञ्ज । ररञ्जे । रङ्क्तासे । रङ्क्ष्यते । अरङ्क्त । अराङ्क्षीत् । अराङ्क्ताम् । अरङ्क्ष्यत् ।।

१०३७ शप आक्रोशे = कोसना—शपते । शपति । शशाप । शेपतुः । शेपिथ; शशप्थ । शप्तासे । शप्तासि । शप्स्यते । शप्स्यति । शप्सतै; शप्सातै । शपतै; शपातै । शाप्सति; शाप्साति । शपति; शपाति । शपताम् । शपतु । अशपत । अशपत् । शपेत् । शप्सीष्ट । शप्यात् । अशप्त । अशप्साताम् । अशप्सत । अशाप्सीत् । अशाप्ताम् । अशाप्सुः । अशप्स्यत । अशप्स्यत् ।।

१०३८ त्विष दीप्तौ = प्रकाश—त्वेषते । त्वेषति । तित्वेष । तित्विषतुः । तित्वेषिथ । तित्विषे । त्वेष्टासे । त्वेष्टासि । त्वेक्ष्यते । त्वेक्षतै; त्वेक्षातै । त्वेक्षते; त्वेक्षाते । त्वेषतै; त्वेषातै । त्वेक्षति; त्वेक्षाति । त्वेषति; त्वेषाति । त्वेषताम् । त्वेषतु । अत्वेषत । अत्वेषत् । त्वेषेत । त्वेषेत् । त्विक्षीष्ट, (१६३) से कित्व होकर (४५) से गुण का निषेध हो जाता है । त्विक्षीयास्ताम् । त्विक्षीरन् । अत्विक्षत, (२०७) से क्स । अत्विक्षाताम्, (२०८) से क्सलोप । अत्विक्षत । अत्विक्षत् । अत्विक्षताम् । अत्विक्षन् । अत्वेक्ष्यत । अत्वेक्ष्यत् ।।

१०३९ यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु = विद्वानों का सत्कार, मेल करना और दान करना—यजते । यजति ।

२८२–लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ।। ६ । १ । १७ ।।

लिट् लकार परे हो, तो (२८३) सूत्र में पढ़े वचि आदि और (२८६) सूत्र में कहे ग्रहि आदि धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण होवे ।

इस सूत्र में अभ्यास को सम्प्रसारण कहने से द्वित्व होने के पश्चात् सम्प्रसारण होता है। यह सूत्र अकित् विषय में सम्प्रसारण होने के लिये है। 'यज् यज्+णल्' = इयाज, यहां अभ्यास के यकार को इ हुआ है।

और कित् विषय में—

२८३–वचिस्वपियजादीनां किति । ६ । १ । १५ ॥

वच, स्वप और यजादि धातुओं को संप्रसारण होवे, कित् परे हो तो।

यज धातु से लेकर भ्वादिगण के अन्तपर्यन्त 'यजादि' समझने चाहियें। यहां द्वित्व होने से प्रथम ही संप्रसारण होता है। 'इ+अज्+अतुस्' (२१९) से पूर्वरूप एकादेश होकर द्वित्व की पुनः प्राप्ति होने से 'इज्' मात्र को द्वित्व होता है—'इज्+इज्+अतुस्' = ईजतुः, सवर्णदीर्घ एकादेश होता है। ईजुः। इयजिथ; इयष्ठ (२३३) से ष आदेश। ईजथुः। ईज। इयाज; इयज। ईजिव। ईजिम। ईजे। ईजाते। ईजिरे।

यष्टासे। यष्टासि। यक्ष्यते। यक्ष्यति। याक्षतै; याक्षातै। यजतै; यजातै। याक्षति; याक्षाति। यजति; यजाति। यजताम्। यजतु। अयजत। अयजत्। यजेत। यजेत्। यक्षीष्ट। इज्यात्, (२८३) से सम्प्रसारण। अयष्ट। अयक्षाताम्। अयक्षत। अयष्ठाः। अयाक्षीत्। अयाष्टाम्। अयाक्षुः। अयक्ष्यत। अयक्ष्यत्॥

१०४० डुवप् बीजसन्ताने = बीज बोना, खेत में वा स्त्री में—छेदने च = यह धातु काटने अर्थ में भी है—

वपते। वपति। पूर्ववत् लिट् में सम्प्रसारण (२८२) से होकर—उवाप। ऊपतुः, (२८३)। ऊपुः। उवपिथ; उवप्थ। ऊपे। ऊपाते। ऊपिरे। वप्तासे। वप्तासि। वप्स्यते। वप्स्यति। वाप्सतै; वाप्सातै। वाप्सति; वाप्साति। वपति; वपाति। वपताम्। वपतु। अवपत। अवपत्। वपेत। वपेत्। वप्सीष्ट। उप्यात् (२८३) से सम्प्रसारण। अवाप्सीत्।

अवाप्ताम् । अवाप्सुः । अवप्त । अवप्साताम् । अवप्सत । अवप्स्यत । अवप्स्यत् ॥

१०४१ वह प्रापणे=पहुंचाना—वहति । वहते । उवाह, (२८२) । ऊहतुः, (२८३) । ऊहुः । उवहिथ; उवोढ, (२३०) से अवर्ण को ओकार । ऊहथुः । ऊह । उवाह; उवह । ऊहिव । ऊहिम । ऊहे । ऊहाते । ऊहिरे ।

वोढासि । वोढासे । वक्ष्यति । वक्ष्यते । वाक्षतै; वाक्षातै । वक्षतै; वक्षातै । वाक्षते; वाक्षाते । वक्षते; वक्षाते । वहतै; वहातै । वाक्षति; वाक्षाति । वक्षति; वक्षाति । वहति; वहाति । वहतु । वहताम् । अवहत । अवहत् । वहेत । वहेत् । उह्यात्, (२८३) से सम्प्रसारण । वक्षीष्ट । अवाक्षीत् । अवोढाम् । अवाक्षुः । अवाक्षीः । अवोढम् । अवोढ । अवाक्षम् । अवाक्ष्व । अवाक्ष्म । अवोढ । अवक्षाताम् । अवक्षत । अवोढाः । अवक्षाथाम् । अवोढ्वम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि । अवक्ष्महि । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत ॥

पचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः सचतिवर्जम् ।

'सच' सेट् धातु को छोड़ के पच आदि अनिट् उभयपदी धातु हैं ॥

अथैकः परस्मैभाषः ॥

१०४२ वस निवासे=वसना—वसति । वसतः । वसन्ति । उवास ।

२८४–शासिवसिघसीनां च ॥ ८ । ३ । ६० ॥

इण् और कवर्ग से परे शास, वस और घस धातु के सकार को षकार आदेश होवे ।

'घस' धातु का 'जक्षतु'; प्रयोग लिख चुके हैं, वहां आदेश का सकार न होने से (५६) सूत्र की प्राप्ति नहीं है, इसलिये इस का सम्बन्ध वहां भी समझना चाहिये । यहां—'ऊषतुः', वस के सकार को षकार होता है । ऊषुः । उवसिथ; उवस्थ ।

वस्तासि। वत्स्यति, (२१६) से स को त होता है। वात्सति; वात्साति। वसति; वसाति। वसतु। अवसत्। वसेत्। उष्यात्। अवात्सीत्। अवात्ताम्। अवात्सुः। अवत्स्यत्॥

अथ वेञादयस्त्रय उभयतोभाषाः॥

१०४३ वेञ् तन्तुसन्ताने=वस्त्र बुनना—

वयते। वयति, एकार को अय् आदेश हो जाता है।

२८५–वेञो वयिः॥ २। ४। ४१॥

वेञ् धातु को वयि आदेश विकल्प करके हो, लिट् लकार परे हो तो।

वयि आदेश में इकार इच्चारणार्थ है, उसकी इत्संज्ञा होकर—'वय्+वय्+णल्'=उवाय, (२८२) से अभ्यास को सम्प्रसारण।

२८६–ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च॥ ६। १। १६॥

ग्रह, ज्या, वयि, व्यध, वश, व्यच, व्रश्चू, प्रच्छ और भ्रस्ज धातुओं को सम्प्रसारण हो, ङित् और चकार से कित्संज्ञक प्रत्यय परे हों तो।

वेञ् धातु को वयि आदेश (२८५) से होता है, उस में व और य दोनों सम्प्रसारण के स्थानी हैं। 'वय्+अतुस्' यहां परत्व से यकार को प्राप्त है, इसलिये—

२८७–लिटि वयो यः॥ ६। १। ३८॥

लिट् लकार परे हो, तो वय धातु के यकार को सम्प्रसारण न होवे। किन्तु—

२८८—वश्चास्याऽन्यतरस्यां किति ॥ ६ । १ । ३९ ॥

कित् लिट् परे हो, तो इस वय धातु के यकार को वकार आदेश विकल्प करके होवे ।

जिस पक्ष में वकार हुआ, वहाँ प्रथम अभ्यास के वकार को सम्प्रसारण होकर—'उव्+उव्+अतुस्'=ऊवतुः । ऊवुः । तास् प्रत्यय के परे वयि आदेश के न होने से (१५७) और (१४९) सूत्रों से थल् में इट् का विकल्प नहीं होता, किन्तु नित्य इट्—उवयिथ । ऊवथुः । ऊव ।

और जिस पक्ष में यकार को वकार (२८८) से नहीं हुआ, वहाँ—ऊयतुः । ऊयुः । ऊयथुः । ऊय । उवाय; उवय । ऊयिव । ऊयिम । वयि आदेश को स्थानिवत् होने से ञित् होकर आत्मनेपद (१०३) से होता है । यकार को वकार पक्ष में—ऊवे । ऊवाते । ऊविरे ।

अब जिस पक्ष में वेञ् को वयि आदेश (२८५) से नहीं होता, वहाँ एकार को आकारादेश (२४२) से होकर अकित् विषय में (२८२) और कित् विषय में (२८३) से सम्प्रसारण प्राप्त है, इसलिये—

२८९—वेञः ॥ ६ । १ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो, तो वेञ् धातु को सम्प्रसारण न होवे ।

फिर धेट् आकारान्त के समान—ववौ । ववतुः । ववुः । वविथ; ववाथ । ववथुः । वव । ववौ । वविव । वविम । ववे । ववाते । वविरे ।

वातासि । वातासे । वासति; वासाति । वयति; वयाति । वासतै; वासातै । वयतु । वयताम् । अवयत् । अवयत । वयेत् । वयेत । ऊयात् । वासीष्ट । अवासीत् । अवासिष्टाम् । अवासिषुः, (२५१) । अवास्त । अवासाताम् । अवासत । अवास्यत् । अवास्यत ॥

१०४४ व्येञ् संवरणे—व्ययति । व्ययते । आर्द्धधातुक विषय में व्येञ् धातु को भी आकारादेश (२४२) से प्राप्त है, इसलिये—

२६०–न व्यो लिटि ॥ ६ । १ । ४६ ॥

व्येञ् धातु को आकार आदेश न होवे, लिट् लकार परे हो तो ।

'व्ये+व्ये+णल्'=विव्याय, यहाँ अभ्यास के यकार को सम्प्रसारण (२८२) से परत्व से प्राप्त, और उसी का लोप (३८) सूत्र से प्राप्त है। यद्यपि लोपविधि सब विधियों से बलीय है, तथापि 'उभयेषाम्' ग्रहण (२८२) में का यही प्रयोजन होने से कि (३८) से प्राप्त लोप को भी बाध के सम्प्रसारण ही होवे। अभ्यास के यकार को सम्प्रसारण होता है ।

कित् विषय में प्रथम सम्प्रसारण होकर—'वि+वि+अतुस्'= विव्यतुः, (१५६) से यण् विव्युः । विव्ययिथ, (१५९) से नित्य इट् । विव्यथुः । विव्य । विव्याय । विव्यय । विव्यिव । विव्यिम । विव्ये । विव्याते । विव्यिरे ।

व्यातासि, (२४२) से आकारादेश । व्यातासे । व्यास्यति । व्यास्यते । व्यासतै; व्यासातै । व्ययतै; व्ययातै । व्यासति; व्यासाति । व्ययति; व्ययाति । व्ययतु । व्ययताम् । अव्ययत् । अव्ययत । व्ययेत् । व्ययेत । वीयात्, (२८३) से सम्प्रसारण होकर दीर्घ (१६०) से । व्यासीष्ट । अव्यासीत् । अव्यासिष्टाम् । अव्यास्त । अव्यास्यत् । अव्यास्यत ॥

१०४५ ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च=ईर्षा और बुलाना—

ह्वयति । ह्वयते ।

२६१–अभ्यस्तस्य च ॥ ६ । १ । ३३ ॥

अभ्यस्त होने वाले ह्वा धातु को द्वित्व होने से प्रथम ही सम्प्रसारण होवे ।

अकित् विषय में अभ्यास ही को सम्प्रसारण प्राप्त है, इसलिये यह सूत्र है। सम्प्रसारण होकर द्वित्व होता है। जुहाव। जुहुवतुः। जुहुवुः, (१५९) से सम्प्रसारण किये उकार को उवङ् होता है। जुहोथ; जुहविथ। जुहुवथुः। जुहुव। जुहाव। जुहव। जुहुविव। जुहुविम। जुहुवे। जुहुवाते।

ह्वातासि। ह्वातासे। ह्वास्यति। ह्वास्यते। ह्वासतै; ह्वासातै। ह्वयतै; ह्वयातै। ह्वासति; ह्वासाति। ह्वयति; ह्वयाति। ह्वयतु। ह्वयताम्। अह्वयत्। अह्वयत। ह्वयेत्। ह्वयेत। हूयात्, (२८३) से सम्प्रसारण और दीर्घ (१६०) से। ह्वासीष्ट।

२९२–लिपिसिचिह्वश्च ॥ ३ । १ । ५३ ॥

लिप, सिच् और ह्वा धातु से परे जो च्लि प्रत्यय, उस के स्थान में अङ् आदेश होवे। अह्वत्, (२४४) से आकारलोप। अह्वताम्। अह्वन्।

२९३–आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ ३ । १ । ५४ ॥

लिप, सिच् और ह्वेञ् धातु से परे च्लि के स्थान में अङ् विकल्प करके हो, आत्मनेपदविषय में।

अह्वत। अह्वेताम्। अह्वन्त। अह्वथाः। अह्वास्त। अह्वासाताम्। अह्वास्यत्। अह्वास्यत ॥

वेञादयस्त्रयोऽनुदात्ता उभयपदिनः।

ये वेञ् आदि तीन धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ द्वौ परस्मैपदिनौ ॥

अब दो धातु सेट् परस्मैपदी कहते हैं—

१०४६ वद व्यक्तायां वाचि—स्पष्ट बोलना—

वदति । वदतः । वदन्ति । उवाद, (२८२) । ऊदतुः । ऊदुः । उवदिथ । वदितासि । वदिष्यति । वादिषति; वादिषाति । वदति; वदाति । वदतु । अवदत् । वदेत् । उद्यात्, (२८३) । अवादीत्, (१३५) से वृद्धि । अवादिष्टाम् । अवादिषुः । अवदिष्यत् ॥

१०४७ टुओश्वि गतिवृद्धयोः गति और बढ़ना—इस में से टु और ओकार की इत्संज्ञा होती है । श्वयति । श्वयतः । श्वयन्ति ।

२९४—विभाषा श्वेः ॥ ६ । १ । ३० ॥

लिट् और यङ् परे हों, तो श्वि धातु को विकल्प करके सम्प्रसारण होवे ।

यङ् के परे सम्प्रसारण किसी से प्राप्त नहीं है, और कित् लिट् में (२८३) से और अकित् विषय में (२८२) से सम्प्रसारण नित्य प्राप्त है, उस का विकल्प करने से 'प्राप्ताप्राप्त विभाषा' इस सूत्र में जानो । सो जिस पक्ष में इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है, वहीं अभ्यास को भी (२८२) से होता है, निषेधपक्ष में अभ्यास को भी नहीं होता—शुशाव । शुशुवतुः । शुशुवुः । शुशुविथ, (१४९) । शुशुवथुः । शुशुव । शुशाव । शुशव । शुशुविव । शुशुविम ।

सम्प्रसारण के निषेधपक्ष में—शिश्वाय । शिश्वियतुः, (१५९) से इयङ् । शिश्वियुः । शिश्वयिथ । श्वयितासि, यहाँ गुण होकर अयादेश होता है । श्वयिष्यति । श्वायिषति; श्वायिषाति । श्वयति; श्वयाति । श्वयतु । अश्वयत् । श्वयेत् । शूयात्, (२८३) से सम्प्रसारण होकर दीर्घ (१६०) से ।

लुङ् में अङ् का विकल्प (१५४) से होकर, अङ्पक्ष में—

२९५—श्वयतेरः ॥ ७ । ४ । १८ ॥

श्वि धातु के इकार को अकार आदेश होवे, अङ् परे हो तो ।

'अट्+श्वि+अङ्+तिप्'+अश्वत्, यहां अङ् अकार के साथ पररूप होता है। अश्वताम्। अश्वन्। अश्व। अश्वतम्। अश्वत। अश्वम्। अश्वाव। अश्वाम।

जिस पक्ष में अङ् (१५४) से न हुआ, वहां चङ् (२४८) से और द्वित्व (१८०) से होकर—अशिश्वियत्, (१५९) से इयङ्। अशिश्वियताम्। अशिश्वियन्।

अब जिस पक्ष में चङ् भी (२४८) से न हुआ, वहां वृद्धि का निषेध (१६२) से होकर—अश्वयीत्। अश्वयिष्टाम्। अश्वयिषुः। अश्वयिष्यत्॥

वृत्। ये यजादि धातु समाप्त हुए॥

इति शब्विकरणभ्वादयः समाप्ताः॥ १॥

ये शप्विकरणवाले भू आदि धातु समाप्त हुए॥

और भ्वादिगण को आकृतिगण मानते हैं, इसी से 'चुलुम्पति' आदि प्रयोग समझने चाहियें।

२९९–ऋतेरीयङ्॥ ३। १। २८॥

'ऋत' धातु से ईयङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में—

इस धातु का स्वार्थ निन्दा वा कृपा है। और यह सौत्रधातु है, अर्थात् किसी गण का नहीं। 'ऋत+ईय' इस की धातुसंज्ञा (१६७) से होकर भ्वादि को आकृतिगण मानने से (१९) से शप् होता है—ऋतीयते। ऋतीयेते। ऋतीयन्ते, यहाँ ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से गुण नहीं होता। और ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से ही 'ऋतीय' धातु से आत्मनेपद होते हैं।

ऋतीयाञ्चक्रे । ऋतीयामास । ऋतीयाम्बभूव । आर्द्धधातुक की विवक्षा में ईयङ् प्रत्यय (१६८) से विकल्प करके होता है। जिस पक्ष में ईयङ् न हुआ वहां—'ऋत्+ऋत्+णल्'=आनर्त, यहाँ शेष होने से परस्मैपद । आनृततुः । आनृतुः, (१४७) से नुट्, (११०) से अभ्यास को दीर्घ, (१०६) से अकार । आनर्तिथ । आनृतथुः ।

ऋतीयितासे । अर्तितासि । ऋतीयिष्यते । अर्तिष्यति । ऋतीयिषतै; ऋतीयिषातै । अर्तिषति; अर्तिषाति । ऋतीयताम् । आर्त्तीयत । ऋतीयेत । ऋतीयिषीष्ट । ऋत्यात् । आर्त्तीयिष्ट । आर्त्तीत् । आर्त्तिष्टाम् । आर्त्तियिष्यत । आर्त्तिष्यत् ॥

---

(२) अथादादिगणः ॥

—*—

अथ द्वौ परस्मैभाषौ ॥

अब दो धातु परस्मैपदी कहते हैं—

१०४८ अद भक्षणे = खाना—

२६७—अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥ २ । ४ । ७२ ॥

अद आदि धातुओं से परे जो शप्, उस का लुक् होवे।

जहाँ जहाँ लुक् कहते हैं, वहाँ वहाँ प्रत्ययमात्र का होता है। 'अद्+शप्+तिप्'=अत्ति। अत्तः। अदन्ति। अत्सि। अत्थः। अत्थ। अद्मि। अद्वः। अद्मः।

२६८—बहुलं छन्दसि ॥ २ । ४ । ७३ ॥

वेदविषय में अद आदि धातुओं से परे शप् का लुक् बहुल करके होवे।

बहुल के कहने से जिन से परे कहा है उन से परे नहीं भी होता—अदति, हनति इत्यादि। और जिन से नहीं कहा वहाँ भी हो जाता है—त्राध्वं नो देवाः, यहाँ त्रैङ् भ्वादिस्थ धातु से शप् का लुक् हुआ है। त्रायध्वम् लोक में होता है।

२६९—लिटयन्यतरस्याम् ॥ २ । ४ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो, तो अद धातु को घस्लृ आदेश विकल्प करके होवे।

जघास। 'घस्+अतुस्,' (२१४) से उपधालोप होकर उस उपधालोप को चर् विधि के प्रति स्थानिवत् का निषेध होने से घकार को चर् क् होता है। उस ककार से परे षत्व (२८४) से होकर—जक्षतुः। जक्षुः। जघसिथ; जघस्थ। जक्षथुः। जक्ष। जघास। जघस। जक्षिव। जक्षिम। आद। आदतुः। आदुः। थल् में नित्य इट् (२५९) से—आदिथ। आदथुः। आद। आद। आदिव। आदिम।

अत्ता। अत्तासि। अत्स्यति। अत्सति; अत्साति। अदति; अदाति। अत्तु; अत्तात्। अत्ताम्। अदन्तु।

३००—हुझल्भ्यो हेर्धिः ॥ ६। ४। १०१ ॥

हु और झलन्त धातुओं से परे जो हि, उस को धि आदेश होवे।

यहाँ झलन्त अद् से परे धि होकर—'अद्+हि'=अद्धि। अत्तात्। अत्तम्। अत्त। अदानि। अदाव। अदाम।

३०१—अदः सर्वेषाम् ॥ ७। ३। १०० ॥

अद धातु से परे जो अपृक्त हलादि सार्वधातुक, उस को अट् का आगम हो, सब आचार्यों के मत में।

यह अपृक्त हलादिसार्वधातुक लङ् लकार के तिप् और सिप् दो ही में मिलता है—'आट्+अद्+अट्+तिप्'=आदत्। आत्ताम्। आदन्। आदः। आत्तम्। आत्त। आदम्। आद्व। आद्म।

अद्यात्। अद्याताम्। 'अद्या+उस्'=अद्युः, (८३) से पररूप एकादेश। अद्याः। अद्यातम्। अद्यात। अद्याम्। अद्याव। अद्याम। अद्यात्। अद्यास्ताम्। अद्यासुः।

३०२—लुङ्सनोर्घस्लृ ॥ २। ४। ३७ ॥

लुङ् लकार और सन् प्रत्यय परे हों, तो अद धातु को घस्लृ आदेश होवे।

लृदित् घस्लृ आदेश के पढ़ने से च्लि के स्थान में अङ् (२१७) से—अघसत् । अघसताम् । अघसन् । आत्स्यत् ।।

१०४९ हन हिंसागत्योः=मारना और गति—

शप् का लुक् (२९७) से—हन्ति ।

३०३—अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ।। ६ । ४ । ३७ ।।

उपदेश में जो अनुदात्त (अनिट्) धातु, वन और तनु से लेकर जो धातु हैं, उन सब के अनुनासिक का लोप होवे, झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो ।

अनुदात्तोपदेश—अनुनासिकान्त यम, रम, नम, गम, हन और दिवादिगण का मन ये छः धातु हैं । और तनोत्यादि—अनुनासिकान्त तनु, षणु, क्षणु, क्षिणु, ऋणु, तृणु, घृणु, वनु और मनु ये नौ धातु हैं । और वनति धातु भ्वादिगण का लिया है । इन सब के अन्त्य अनुनासिक का लोप जहाँ जहाँ झलादि कित् ङित् हों वहाँ वहाँ होता है ।

यहां 'हन' धातु से परे तस् की ङित् संज्ञा (९७) से होने से—"हन्+तस्'=हतः, यहां अनुनासिक लोप हुआ है । 'हन्+झि'—

३०४—हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ।। ७ । ३ । ५४ ।।

हन् धातु के हकार को कवर्ग आदेश होवे, ञित् णित् और नकार परे हों तो ।

यहां झि के झकार को अन्त आदेश होने के पश्चात् उपधा अकार का लोप (२१४) से होकर केवल नकार के परे ह को घ—घ्नन्ति । हंसि । हथः । हथ । हन्मि । हन्वः । हन्मः ।

'हन्+हन्+णल्'=जघान, (३०४) से णित् के परे ह को कुत्व । जघ्नतुः, (२०४) से उपधालोप और न के परे ह को कुत्व (३०४) से जघ्नुः ।

३०५—अभ्यासाच्च ॥ ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यास से परे हन धातु के हंकार को कुत्व होवे ।

जघनिथ; जघन्थ, यहां कुत्व (३०४) से नहीं प्राप्त है । जघ्नथुः ।
जघ्न । जघान; जघन । जघ्निव । जघ्निम ।

हन्ता । हन्तारौ । हन्तारः । हन्तासि । हनिष्यति । हनिष्यतः ।
(२३८) से अप्राप्त इट् । हांसति; हांसाति । हंसति; हंसाति । हनति;
हनाति । हन्तु । हतात् । हताम् । घ्नन्तु ।

३०६—हन्तेर्जः ॥ ६ । ४ । ३६ ॥

हन् धातु को ज आदेश होवे, हि परे हो तो ।

अब हन् धातु के स्थान में ज आदेश होने के पश्चात् हि का लुक्
(७१) से प्राप्त है, उस ज आदेश को असिद्ध (४२) से मानकर नहीं
होता—जहि । हतात् । हतम् । हत । हनानि । हनाव । हनाम ।

अहन्, यहां हल् नकार से परे अपृक्त तिप् के तकार का लोप होता
है । अहताम् । अघ्नन् । अहन् । अहतम् । अहत । अहनम् । अहन्व ।
अहन्म । हन्यात् । हन्याताम् । हन्युः । हन्याः ।

३०७—आर्द्धधातुके ॥ २ । ४ । ३५ ॥

यह अधिकार सूत्र है ।

३०८—हनो वध लिङि ॥ २ । ४ । ४२ ॥

हन् धातु को वध आदेश होवे, आर्द्धधातुकविषय में लिङ् परे हो तो ।

वध अकारान्त होता है—वध्यात्, (१७२) से अकार लोप ।
वध्यास्ताम् । वध्यासुः । वध्याः । वध्यास्तम् ।

३०९—लुङि च ॥ २ । ४ । ४३ ॥

आर्द्धधातुकविषयक लुङ् परे हो, तो भी हन् धातु को वधादेश होवे ।

इस सूत्र का पृथक् निर्देश इससे अगले सूत्र में अनुवृत्ति के लिये है। अवधीत्। वध आदेश के अदन्त होने से सिच् के परे अकारलोप (१७२) से होकर उसके स्थानिवत् होने से वृद्धि (१३५) से नहीं होती। अवधिष्टाम्। अवधिषुः। अवधीः। अहनिष्यत्, (२३८)। अहनिष्यताम्। अहनिष्यन् ॥

अदिहनी अनुदात्तावुदात्तेतौ परस्मैपदिनौ ॥

अद और हन दोनों धातु अनिट् परस्मैपदी हैं ॥

अथ चत्वारः स्वरितेतः ॥

अब ४ चार धातु उभयपदी कहते हैं—

१०५० द्विष अप्रीतौ = वैर करना—

द्वेष्टि। द्विष्टः। द्विषन्ति। द्वेक्षि। द्विष्टः। द्विष्ट। द्वेष्मि। द्विष्वः। द्विष्मः। द्विष्टे। द्विषाते। द्विषते। द्विक्षे। द्विषाथे। द्विड्ढ्वे। द्विषे। द्विष्वहे। द्विष्महे।

दिद्वेष। दिद्विषतुः। दिद्विषे। द्वेष्टासि। द्वेष्टासे। द्वेक्ष्यति। द्वेक्ष्यते। द्वेक्षतै; द्वेक्षातै। द्वेषतै; द्वेषातै। द्वेक्षति; द्वेक्षाति। द्वेषति; द्वेषाति। द्वेष्टु; द्विष्टात्। द्विष्टाम्। द्विषन्तु। द्विड्ढि। द्विष्टात्। द्विष्टम्। द्विष्ट। द्वेषाणि। द्वेषाव। द्वेषाम।

द्विष्टाम्। द्विषाताम्। द्विषताम्। द्विक्ष्व। द्विषाथाम्। द्विड्ढ्वम्। द्वेषै। द्वेषावहै। द्वेषामहै। अद्वेट्। तिप् के तकार का लोप (हल्ङ्या० ॥ ६।१।६९) से होता है। अद्विष्टाम्।

३१०—द्विषश्च ॥ ३। ४। ११२ ॥

शाकटायन आचार्य्य ही के मत में द्विष धातु से परे लङ् लकार के झि को जुस् आदेश होवे।

अद्विषुः; अन्य लोगों के मत में—अद्विषन्। अद्वेट्। अद्विष्टम्। अद्विष्ट। अद्विषम्। अद्विष्व। अद्विष्म।

अद्विष्ट । अद्विषाताम् । अद्विषत । द्विष्यात् । द्विष्याताम् । द्विष्युः । द्विषीत । द्विषीयाताम् । द्विषीरन् । द्विषीथाः । द्विष्यात् । द्विष्यास्ताम् । द्विष्यासुः । द्विक्षीष्ट । द्विक्षीयास्ताम् । द्विक्षीरन्, (१६३) से कित्व । अद्विक्षत् । अद्विक्षताम् । अद्विक्षन्, (२०७) से क्स । अद्विक्षत । अद्विक्षाताम्, (२०८) से क्सलोप । अद्वेक्ष्यत् । अद्वेक्ष्यत ।

१०५१ दुह प्रपूरणे = तृप्त करना—

३११—दादेर्धातोर्घः ॥ ८ । २ । ३२ ॥

दकारादि धातुओं के हकार को घकार आदेश हो, झल् परे हो वा पदान्त में ।

'दुह् + तिप्' = दोग्धि, (१४१) से त को ध और घ को जश्त्व । दुग्धः । दुहन्ति । धोक्षि, (२०४) । दुग्धः । दुग्ध । दोह्मि । दुह्वः । दुह्मः ।

दुग्धे । दुहाते । दुहते । धुक्षे । दुहाथे । धुग्ध्वे । दुहे । दुह्वहे । दुह्महे ।

दुदोह । दुदुहतुः । दुदुहुः । दुदोहिथ । दुदुहे । दोग्धा । धोक्ष्यति । धोक्ष्यते । धोक्षतै; धोक्षातै । दोहतै; दोहातै । धोक्षति; धोक्षाति । दोहति; दोहाति ।

दोग्धु; दुग्धात् । दुग्धाम् । दुहन्तु । दुग्धि । दुग्धात् । दुग्धम् । दुग्ध । दोहानि । दोहाव । दोहाम ।

दुग्धाम् । दुहाताम् । दुहताम् । धुक्ष्व । दुहाथाम् । धुग्ध्वम् । दोहै । दोहावहै । दोहामहै ।

अधोक् । यहां पदान्त में संयोगान्त हल् तकार का लोप होकर कुत्व हो जाता है । अदुग्धाम् । अदुहन् । अधोक् । अदोहम् । अदुग्ध । अदुहाताम् । अधुग्ध्वम् । दुह्यात् । दुह्याताम् । दुह्युः । दुहीत । दुहीयाताम् । दुहीरन् । दुह्यात् । दुह्यास्ताम् । धुक्षीष्ट, (१६३) । धुक्षीयास्ताम् । धुक्षीरन् ।

अधुक्षत्, (२०७) से क्स । अधुक्षताम् । अधुक्षन् । अधुक्षः । अधुक्षत । अधुक्षाताम्, (२०८) । अधुक्षन्त । विकल्प से क्स लुक् (२३७) से—अदुग्ध । अदुग्धाः । अधुक्षथाः । अधुग्ध्वम् । अधुक्षध्वम् । अधोक्ष्यत् । अधोक्ष्यत ॥

१०५२ दिह उपचये=बढ़ना—सब कार्य और प्रयोग 'दुह्' के तुल्य जानो । देग्धि । अधिक्षत् । अदिग्ध । अधिक्षत ॥

१०५३ लिह आस्वादने=स्वाद लेना—'लिह् + तिप्' = लेढि, (२०३; १४१; २०६) । लीढः, (२३६) । लिहन्ति । लेक्षि, (२०५) । लीढः । लीढ । लेह्मि । लिह्वः । लिह्मः । लीढे । लिहाते । लिहते । लिक्षे । लिहाथे । लीढ्वे । लिहे । लिह्वहे । लिह्महे ।

लिलेह । लिलिहतुः । लिलेहिथ । लिलिहे । लिलिहाते । लिलिहिरे । लीढासि । लीढासे । लेक्ष्यति । लेक्ष्यते । लेक्षत; लेक्षातै । लेक्षति; लेक्षाति ।

लेढु; लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि; लीढात् । लीढम् । लीढ । लेहानि । लेहाव । लेहाम ।

अलेट् । अलीढाम् । लिह्यात् । लिक्षीष्ट । अलिक्षत् । अलिक्षत, (२३७) । अलीढ । अलिक्षाताम् । अलिक्षन्त । अलिक्षथाः । अलीढाः । अलेक्ष्यत् । अलेक्ष्यत ॥

द्विषादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः ॥

ये द्विष आदि अनिट् उभयपदी धातु हैं ॥

अथैक आत्मनेभाषः ॥

१०५४ चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि=स्पष्ट बोलना और देखना—इस धातु में जो अनुदात्त इकार है, उसकी इत् संज्ञा हो जाती है । फिर अनुदात्तेत् के होने से आत्मनेपद हो ही जाता, फिर ङकार

पढ़ने से अनुदात्तेत् धातुओं से आत्मनेपदविधान का अनित्यत्व ज्ञापक होता है और इसका इकार अन्त में इत् नहीं गया, इस कारण नुम् नहीं होता।

'चक्ष्+ते'=चष्टे, (२१०) से संयोगादि ककार का लोप। चक्षाते। चक्षते। चक्षे। चक्षाथे। चड्ढ्वे। चक्षे। चक्ष्वहे। चक्ष्महे।

३१२–चक्षिङः ख्याञ्॥ २। ४। ५४॥

सामान्य आर्द्धधातुकविषय में चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश होवे।

३१३–वा लिटि॥ २। ४। ५५॥

लिट् लकार में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् विकल्प करके होवे।

पूर्व सूत्र से सर्वत्र नित्य प्राप्त है, उसका विकल्प करने से प्राप्तविभाषा है। ख्याञ् होकर आकारान्त के समान प्रयोग और ञित् होने से उभयपद (१०३) से—चख्यौ, (२४३)। चख्यतुः, (२४४; २४५)। चख्युः। चख्यिथ, चख्याथ। चख्ये। चख्याते।

३१४–वा०–ख्शादिर्वा॥ २। ४। ५४॥

यह ख्याञ् आदेश जो कहा है, सो ख्शाञ् आदेश कहना चाहिये।

फिर ख्याञ् धातु के प्रयोग किस प्रकार बनने चाहियें—

३१५–वा०–असिद्धे शस्य यवचनं विभाषा॥२।४।५४॥

असिद्ध अर्थात् अष्टमाऽध्याय के अन्त के तीन पादों में ख्शाञ् के शकार को विकल्प करके यकार होवे।

सो जब यकार होगा तब ख्याञ् के प्रयोग और ख्शाञ् रहेगा। वहां ख् को चर्त्व क् होकर—चक्शौ। चक्शतुः। चक्शे। चक्शाते।

ख्शाञ् आदेश विधान करके असिद्धप्रकरण में शकार को यकार कहने से, जो जो कार्य सपादसप्ताऽध्यायी में ख्या धातु को कहे हैं, वे इसको

नहीं होते क्योंकि सपादसप्ताऽध्यायी में वह ख्यान् नहीं किन्तु क्शाञ् है। इस प्रकार के कई प्रयोजन महाभाष्यकार ने (३१२) सूत्र पर गिनाये हैं।

अब जिस पक्ष में क्शाञ् आदेश (३१३) से नहीं हुआ, वहां—चचक्षे। चचक्षाते। चचक्षिरे। ख्यातासि। ख्यातासे। क्शातासि। क्शातासे। ख्यास्यति। ख्यास्यते। क्शास्यति। क्शास्यते। ख्यासति; ख्यासाति। क्शासति; क्शासाति। ख्यासतै; ख्यासातै। क्शासतै; क्शासातै। चक्षतै; चक्षातै। चक्षते; चक्षाते।

चष्टाम्। चक्षाताम्। चक्षताम्। चक्ष्व। चक्षाथाम्। चड्ढ्वम्। चक्षै। चक्षावहै। चक्षामहै।

अचष्ट। अचक्षाताम्। अचक्षत। अचष्ठाः। अचक्षाथाम्। अचड्ढ्वम्। अचक्षि। अचक्ष्वहि। अचक्ष्महि। चक्षीत। चक्षीयाताम्। चक्षीरन्। ख्यायात्; ख्येयात्। क्शायात्; क्शेयात्, (२५२) से एत्व विकल्प। ख्यासीष्ट। क्शासीष्ट।

३१६—अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्॥ ३। १। ५२॥

असु दिवादिगण का, वच और ख्या अदादिगण के धातुओं से परे च्लि के स्थान में अङ् होवे।

सो जिस पक्ष में यकार होता है, वहां अङ् जानो—अख्यत्। अख्यताम्। अख्यन्। अख्यत। अख्येताम्। अख्यन्त। क्शाञ् पक्ष में—अक्शासीत् (२५१)। अक्शास्त। अख्यास्यत्। अख्यास्यत। अक्शास्यत्। अक्शास्यत।

३१७—वा०—वर्जने प्रतिषेधः॥ २। ४। ५४॥

वर्जन अर्थ में चक्षिङ् धातु को क्शाञ् आदेश न होवे।

संचक्षितासे। संचक्षिष्यते। संचक्षिषीष्ट। समचक्षिष्ट। सम् उपसर्ग पूर्वक इस धातु का वर्जन अर्थ होता है॥

अथ पृच्यन्ता अनुदात्तेतस्त्रयोदश ॥

अब पृची धातु पर्यन्त १३ तेरह धातु आत्मनेपदी कहते हैं—

१०५५ ईर गतौ कम्पने च=गति और कांपना—

ईर्त्ते। प्रेर्त्ते। ईराते। ईरते। ईर्षे। ईराथे। ईर्ध्वे। ईरे। ईर्वहे। ईर्महे। ईराञ्चक्रे। ईरितासे। ईरिष्यते। ईरिषतै; ईरिषातै। ईरतै; ईरातै। ईर्ताम्। ईराताम्। ईरताम्। ऐर्त। ईरीत। ईरीयाताम्। ईरीरन्। ईरिषीष्ट। ऐरिष्ट। ऐरिष्यत॥

१०५६-५७ ईड स्तुतौ=स्तुति करना; ईश ऐश्वर्य्ये=मालिक का होना—

ईट्टे, चर्त्व। ईडाते। ईडते। ईष्टे, (२३३) से षत्व। ईशाते। ईशते।

३१८-ईशः से ॥ ७। २। ७७॥

ईश धातु से परे जो से सार्वधातुक उसको इट् का आगम होवे।

३१९-ईड्जनोर्ध्वे च ॥ ७। २। ७८॥

ईश, ईड और जन धातुओं से परे जो से और ध्वे वलादि सार्वधातुक, उनको इट् आगम हो।

पूर्व सूत्र की यहां सब अनुवृत्ति आती है। इन दोनों सूत्रों से बराबर कार्य्य होता है; फिर एक सूत्र पढ़ते, पृथक् पृथक् पढ़ने से आचार्य्य की विचित्र क्रिया दीख पड़ती है—ईडिषे। ईडाथे। ईडिध्वे। ईडे। ईशिषे। ईशाथे। ईशिध्वे। ईशे। ईडाञ्चक्रे। ईशाञ्चक्रे। ईडामास। ईडाम्बभूव। ईशामास। ईशाम्बभूव। ईडितासे। ईशितासे।.

ईट्टाम्। ईडाताम्। ईडताम्। ईडिष्व, (३१९)। ईशिष्व। ईडिध्वम्। ईशिध्वम्। यहां एकदेश एकार को विकृत मान कर इट् हो जाता है और से ध्वे (३१८; ३१९) में एकारान्त पढ़ने से ही लङ् लकार में इट् नहीं होता—ऐट्ट। ऐडाताम्। ऐडत। ऐड्ढ्वम्। ईडीत। ईशीत॥

१०५८ आस उपवेशने = बैठना—आस्ते । आसाते । आसते । आसाञ्चक्रे, (१९०) से आम् । आसाम्बभूव । आसामास । आसितासे । आसिष्यते । आसिषतै; आसिषातै । आस्ताम् । आस्स्व । आध्वम् । आस्त । आसीत । आसिषीष्ट । आसिष्ट । आसिष्यत ॥

१०५९ आङः शासु इच्छायाम्—बहुधा आङ्पूर्वक ही इस धातु के प्रयोग आते हैं. इसलिये आङ् इस के साथ लगा दिया है—आशास्ते । आशासाते । आशासते । आशशासे । आशशासाते । आशासितासे । आशास्ताम् । आशास्स्व । आशाध्वम् । आशासै । आशासावहै । आशासामहै । आशास्त । आशासीत । आशासिषीष्ट । आशासिष्ट ॥

१०६० वस आच्छादने = ढांकना— वस्ते । वसाते । वसते । ववसे । ववसाते, (१२८) से एत्वाभ्यासलोपनिषेध । वसितासे । वसिष्यते । वासिषतै; वासिषातै । वसतै; वसातै । वस्ताम् । वसाताम् । वस्स्व । वध्वम् । अवस्त । वसीत । वसिषीष्ट । अवसिष्ट । अवसिष्यत ॥

१०६१ कसि गतिशासनयोः = गति और शिक्षा—

कंस्ते । कंसाते । कंसते । कन्ध्वे । चकंसे । कंस्ताम् । कंस्स्व । कन्ध्वम् । अकंस्त । कंसीत ।

कस इत्यन्ये—कस्ते । कसाते । चकसे । चकसाते । कस्ताम् । कस्स्व । कध्वम् । अकस्त । कसीत । अकसिष्ट ।

कश इत्येके—कष्टे (२३३) से षत्व । कशाते । चकशे । चकशाते । कशितासे । कशिष्यते । काशिषतै; काशिषातै । कष्टाम् । कशाताम् । कशताम् । कक्ष्व । कड्ढ्वम् । अकष्ट । कशीत । कशिषीष्ट । अकशिष्ट । अकशिष्यत ॥

१०६२ णिसि चुम्बने = चूंबना—निंस्ते । निंसाते । निनिंसे । निंसितासे । निंसिष्यते । निंसिषतै; निंसिषातै । निंस्ताम् । निंस्स्व । निन्ध्वम् । अनिंस्त । निंसीत । निंसिषीष्ट । अनिंस्त । अनिंसिष्यत ॥

१०६३ णिजि शुद्धौ—

निङ्क्ते । निञ्जाते । निङ्क्षे । निनिञ्जे । निञ्जितासे ।।

१०६४ शिजि अव्यक्ते शब्दे—शिङ्क्ते । शिशिञ्जे ।।

१०६५ पिजि वर्णे = श्वेत आदि । सम्पर्चन इत्येके—यह धातु किसी के मत में स्पर्श करने अर्थ में है । उभयत्रेत्यन्ये—कोई कहते हैं कि वर्ण और सम्पर्चन दोनों अर्थ हैं । अवयव इत्यपरे; अव्यक्ते शब्द इतीतरे—किन्हीं के मत में अवयव और कोई के मत में अव्यक्त शब्द अर्थ में 'पिजि' धातु है—पिङ्क्ते ।

पृजि इत्येके—पूर्वोक्त सब अर्थों में पिजि के स्थान में कोई लोग पृजि धातु कहते हैं—पृङ्क्ते ।।

१०६६ वृजी वर्जने = निषेध करना—वृक्ते । वृजाते । वृजते । वृक्षे । वृग्ध्वे । ववृजे । वर्जिता । वर्जिष्यते । वर्जिषतै; वर्जिषातै । वृजतै; वृजातै । वृक्ताम् । वृक्ष्व । वृग्ध्वम् । अवृक्त । वृजीत । वर्जिषीष्ट । अवर्जिष्ट । अवर्जिष्यत ।।

१०६७ पृची सम्पर्चने = सम्बन्ध—पृक्ते । पृचाते ।

इतीरादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषास्त्रयोदश ।।

ये ईर आदि १३ तेरह सेट् आत्मनेपद धातु समाप्त हुए ।।

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।।

१०६८ षूङ् प्राणिगर्भविमोचने = गर्भस्थ प्राणियों का जन्म—

सूते । सुवाते, (१५९) से उवङ् । सुवते । सुषुवे । (१४०) सूत्र में सूति करके इसी 'सू' धातु का ग्रहण है । इस कारण इट् का विकल्प होता है—सुषूविषे; सुषूषे । सुषुविढ्वे; सुषुविध्वे; सुषूढ्वे । सवितासे; सोतासे । सविष्यते; सोष्यते ।

साविषतै; साविषातै। सविषतै; सविषातै। साविषतै; साविषाते। सविषते; सविषाते। सोषतै; सोषातै। सोषतै; सोषातै। सोषते; सोषाते। सोषते; सोषाते। सुवतै; सुवातै। सुवते; सुवाते।

सूताम्। सुवाताम्। सुवताम्। सुवै; (९१) से गुणनिषेध। सुवावहै। सुवामहै। असूत। सुवीत। सविषीष्ट; सोषीष्ट। सविषीढ्वम्; सविषीध्वम्; सोषीढ्वम्। असविष्ट; असोष्ट। असविढ्वम्; असविध्वम्; असोढ्वम्। असविष्यत। असोष्यत॥

१०६९ शीङ् स्वप्ने = सोना—ङित्वत् (९७) से होने से गुण नहीं प्राप्त है, इसलिये—

३२०—शीङः सार्वधातुके गुणः॥ ७। ४। २१॥

शीङ् धातु को गुण होवे, सामान्य सार्वधातुक परे हों तो।

यह सूत्र (४५) के निषेध का अपवाद है—शेते। 'शी + आताम्' = शयाते। गुण होकर अयादेश होता है।

३२१—शीङो रुट्॥ ७। १। ६॥

शीङ् धातु से परे झकार के स्थान में जो अत् आदेश, उसको रुट् का आगम होवे।

टित् आगम उसकी आदि में होकर—शेरते। शेषे। शयाथे। शेध्वे। शये। शेवहे। शेमहे। शिश्ये; (१५६) से यण्। शिश्यिढ्वे; शिश्यिध्वे। शयितासे। शयिष्यते। शायिषतै; शायिषातै। शेताम्। शयाताम्। शेरताम्। शेष्व। शयाथाम्। शेध्वम्। शयै। शयावहै। शयामहै। अशेत। अशयाताम्। अशेरत। शयीत। शयियाताम्। शयीरन्। शयिषीष्ट। शयिषीढ्वम्; शयिषीध्वम्। अशयिष्ट। अशयिढ्वम्; अशयिध्वम्। अशयिष्यत॥

इति द्वात्मनेभाषावुदात्तौ॥

ये सूङ् और शीङ् दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं॥

अथ स्नौत्यन्ताः परस्मैपदिनः षट् ॥

अब स्नु धातु पर्यन्त ६ छः धातु परस्मैपदी कहते हैं—

१०७० यु मिश्रणे अमिश्रणे च=मिलना वा पृथक् करना—

३२२–उतो वृद्धिर्लुकि हलि ॥ ७ । ३ । ८९ ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो लुक् विषय में उकारान्त अङ्ग को वृद्धि होवे परन्तु अभ्यस्तसंज्ञक उकारान्त को पूर्वोक्त लक्षणों में भी वृद्धि न होवे ।

'यु+तिप्'=यौति । युतः । युवन्ति, (१५९) । यौषि । युथः । युथ । यौमि । युवः । युमः । युयाव । युयुवतुः । युयविथ । यवितासि । यविष्यति । याविषति; याविषाति । यविषति; यविषाति । यवति; यवाति । यौतु । युतात् । युहि । यवानि । यवाव । यवाम ।

अयौत् । अयुनाम् । अयुवन् । अयौः । अयुतम् । अयुत । अयुवम् । युयात् । यहां विशेष विधायक जो यासुट् को ङित्व (७८) से है, वह पित् का बाधक होने से वृद्धि (३२२) से नहीं होती । युयाताम् । युयुः । यूयात्, (१६०) से दीर्घ । अयावीत् । अयाविष्टाम् । अयाविषुः, (१५८) । अयविष्यत् ॥

१०७१ णु स्तुतौ—नौति । नौषि । नौमि । नवितासि । नाविषति; नाविषाति । नौतु । अनौत् । नुयात् । नूयात् । अनावीत् । अनविष्यत् ॥

१०७२ रु शब्दे—

३२३–तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ॥ ७ । ३ । ९५ ॥

तु, रु, स्तु, शम और अम धातुओं से परे जो हलादि सार्वधातुक, उसको विकल्प करके ईट् का आगम होवे ।

'अम गत्यादिषु' (४८०) यह धातु भ्वादिगण में लिख चुके हैं । उससे परे वेद में शप् का लुक् (२९०) से होने के पश्चात् हलादि

सार्वधातुक मिलता है। अभ्यमीति; अभ्यमति प्रयोग होंगे और 'शम'। (१२३९) धातु दिवादिगण का है।

'रु+ईट्+तिप्'=रवीति; रौति। रुवीतः, उवङ् (१५९); रुतः। रुवन्ति। यहां हलादि के न होने से ईट् न हुआ और इस सूत्र में सार्वधातुक की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती थी, फिर सार्वधातुकग्रहण का यही प्रयोजन है कि अपित् सार्वधातुक में भी हो जावे। रवीषि; रौषि। रुवीथः; रुथः। रुवीथ; रुथ। रवीमि; रौमि। रुवीवः; रुवः। रुवीमः, रुमः। रवीतु; रौतु। अरवीत्; अरौत्॥

१०७३ टुक्षु शब्दे—

क्षौति। क्षुतः। चुक्षाव। क्षौतु। क्षूयात्। शेष 'यु' के समान॥

१०७४ क्ष्णु तेजने=तीक्ष्ण करना—

क्ष्णौति। क्ष्णुतः। चुक्ष्णाव। क्ष्णूयात्। अक्ष्णावीत्॥

१०७५ ष्णु प्रस्रवणे=झरना—

स्नौति। सुस्नाव। स्नविता। स्नौतु। स्नूयात्॥

उदात्ता परस्मैपदिनः। 'यु' आदि ६ छः धातु सेट् परस्मैपदी हैं॥

अथैक उभयतो भाषः॥

ऊर्णुञ् आच्छादने=ढांकना—

३२४–ऊर्णोतेर्विभाषा॥ ७। ३। ९०॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे।

(३२२) सूत्र से नित्य वृद्धि प्राप्त है, इसलिये यह प्राप्तविभाषा जानो। ऊर्णौति; ऊर्णोति। ऊर्णुतः। ऊर्णुवन्ति। यहां हलादि के न होने से वृद्धि नहीं होती। ऊर्णौषि; ऊर्णोषि। ऊर्णुते। ऊर्णुवाते। ऊर्णुवते।

ऊर्णु धातु के इजादि गुरुमान् होने से लिट् में आम् प्रत्यय (१००) से प्राप्त है, इसलिये—

३२५—का०—वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धः प्रयोजनम् । आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेडुपग्रहात् ।।३।२।२२।।

ऊर्णुञ् धातु को णुवद्भाव कहना चाहिये अर्थात् जैसे एकाच् हलादि 'णु स्तुतौ' धातु को कार्य्य होते हैं, वैसे इसको भी होवें। प्रयोजन यह है कि एक तो यङ् प्रत्यय एकाच् हलादि से होता है, वह इससे भी होवे और इजादि गुरुमान् के न होने से आम् प्रत्यय (१००) से न होवे और (श्र्युकः क्किति ।। ७ । २ । ११) सूत्र में उगन्त एकाच् धातुओं से परे कित् आर्द्धधातुक को इट् का निषेध कहा है, सो इसको भी एकाच् मानकर निषेध हो जावे। ऊर्णुतः; ऊर्णुवान् इत्यादि में।

अब यहां आम् का निषेध होकर—'ऊर्णु+णल्' यहां णु को वृद्धि होकर अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव र्णु मात्र को द्वित्व (३५; ३६) से प्राप्त है, इसलिये—

३२६—न न्द्राः संयोगादयः ।। ६ । १ । ३ ।।

अच् से परे संयोग के आदि जो न् द् और र्, इनको द्वित्व न होवे।

इससे रेफ को द्वित्व का निषेध होकर 'णु' शब्द को द्वित्व होता है—ऊर्णुनाव, रेफ को द्वित्व होजाता तो अभ्यास का आदि हल् वही रेफ है, उससे परे अन्य हल् णकार का लोप (३८) से हो जाता। ऊर्णुनुवतुः। ऊर्णुनुवुः।

३२७—विभाषोर्णोः ।। १ । २ । ३ ।।

ऊर्णु धातु से परे जो इडादि प्रत्यय सो विकल्प करके ङिद्वत् हो।

ऊर्णुनुविथ, ङित् पक्ष में गुण का निषेध (४५) से; ऊर्णुनविथ। ऊर्णुनुवे। ऊर्णुनुवाते। ऊर्णुनुविषे; ऊर्णुनविषे। ऊर्णुवितासि; ऊर्णवितासि।

ऊर्णु वितासे; ऊर्णवितासे। ऊर्णु विष्यति; ऊर्णविष्यते। ऊर्णु विष्यते, ऊर्णविष्यते।

ऊर्णु विषति; ऊर्णु विषाति। ऊर्णु विषत्। ऊर्णु विपात्। ऊर्णाविषति; ऊर्णाविषाति। ऊर्णविषति; ऊर्णविषाति। ऊर्णवति; ऊर्णवाति। ऊर्णु विषतै; ऊर्णु विषातै। ऊर्णु विषते; ऊर्णु विषाते। ऊर्णाविषतै; ऊर्णाविषातै। ऊर्णविषतै; ऊर्णविषातै।

ऊर्णोतु; ऊर्णोतु। ऊर्णुतात्। ऊर्णुताम्। ऊर्णुवन्तु। ऊर्णुहि। ऊर्णुतात्। ऊर्णुतम्। ऊर्णुत। उर्णवानि। ऊर्णवाव। ऊर्णवाम। ऊर्णुताम्। ऊर्णुवाताम्। ऊर्णुवताम्। ऊर्णुष्व। ऊर्णवै। ऊर्णवावहै। ऊर्णवामहै।

३२८–गुणोऽपृक्ते ॥ ७। ३। ६१ ॥

ऊर्णुञ् धातु को गुण हो, अपृक्त हलादि सार्वधातुक परे हो तो।

अपृक्त विषय में भी वृद्धि (३२४) से प्राप्त है, उसका अपवाद यह सूत्र है। और्णोत्। और्णोः। और्णुवम्। और्णुत। और्णुवाताम्। और्णुवत। ऊर्णुयात्। ऊर्णुयाताम्। ऊर्णुयुः। ऊर्णुवीत। ऊर्णुवीयाताम्। ऊर्णूयात्, (१६०) से दीर्घ। ऊर्णुविषीष्ट। ऊर्णविषीष्ट। ऊर्णविषीढ्वम्। ऊर्णविषीध्वम्।

३२९–ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ ७। २। ६ ॥

परस्मैपदविषय में इडादि सिच् परे हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे।

पक्ष में गुण हो जाता है—और्णावीत्। और्णाविष्टाम्। और्णाविषुः। और्णुवीत्। और्णुविष्ट; और्णविष्ट। और्णुविष्यत्; और्णविष्यत्। और्णुविष्यत; और्णविष्यत ॥

अथ चत्वारः परस्मैपदिनः ॥

१०७७ द्यु अभिगमने = सम्मुख चलना—

द्यौति, (३२२) से वृद्धि। द्युतः। दुद्याव। दुद्युवतुः। दुद्यविथ। द्योतासि। द्योष्यति। द्योषति; द्योषाति। द्योषति; द्योषाति। द्यवति; द्यवाति। द्योतु। द्युहि। द्यवानि। अद्यौत्। द्युयात्। द्यूयात्। अद्यौषीत्, (१५८) से वृद्धि। अद्योष्यत् ॥

१०७८ षु प्रसवैश्वर्ययोः = उत्पत्ति और संपत्ति का होना—

सौति। सोता। सौतु।

३३०—स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु* ॥ ७। २। ७२ ॥

स्तु, सु और धूञ् धातु से परे जो सिच्, उसको इट् का आगम होवे परस्मैपद विषय में।

असावीत्। असाविष्टाम्। असाविषुः। असावीः; (१५८) से वृद्धि ॥

१०७९ कु शब्दे—कौति। चुकाव। कोता। कोष्यति। कौषति; कौषाति। कौतु। अकौत्। कुयात्। कूयात्। अकौषीत्। अकोष्यत्।

१०८० तु गतिवृद्धिहिंसासु—तौति; तवीति, (३२३)। तुवीतः; तुतः। तुवन्ति। तुताव। तुतुविथ, तुतोथ। तोतासि। तोष्यति। तौषति; तोषाति। तवीतु; तौतु। तुवीतात्; तुतात्। तुवीताम्; तुताम्। अतवीत्; अतौत्। अतवीः; अतौः। तुयात्; तुवीयात्। तुवीयाताम्। तुवीयुः। तूयात्। तूयास्ताम्। अतौषीत्। अतौष्टाम्। अतोष्यत् ॥

ये द्यु आदि ४ चार धातु अनिट् परस्मैपदी हैं ॥

---

* इस सूत्र को भट्टोजिदीक्षित ने भ्वादिगणीय 'सु' धातु पर लिखा है सो स्तु धातु के साहचर्य से लुग्विकरण अदादि के 'सु' धातु का ग्रहण होना चाहिये, इसलिये यहां लिखना ठीक नहीं है ॥

अथ द्वावुभयतोभाषौ ।।

१०८१ ष्टुञ् स्तुतौ—स्तवीति, (३२३); स्तौति । स्तुवितः; स्तुतः । स्तुवीते; स्तुते । स्तुवाते । स्तुवते । स्तुवीषे; स्तुषे । स्तुवीध्वे; स्तुध्वे । स्तुवे । स्तुवीवहे; स्तुवहे । स्तुवीमहे; स्तुमहे ।

तुष्टाव । तुष्टुवतुः । तुष्टवुः । तुष्टोथ, (१४८) से इट् निषेध । स्तोतासि । स्तोतासे । स्तोष्यति । स्तोष्यते । स्तोषति : स्तोषाति । स्तोषति; स्तोषान्ति । स्तोषतै; स्तोषातै । स्तोपते; स्तोपाते । स्तोतु; स्तवीतु । स्तुवीतात्; स्तुताम् । अस्तवीत्; अस्तौत् । अस्तुवीत; अस्तुत । स्तुवीयात्; स्तुयात् । स्तुवीत । स्तुवीयाताम् । स्तूयात् । स्तुयास्ताम् । स्तोषीष्ट । स्तोषीढ्वम् ।

अस्तावीत्, (३३०) से इट् । अस्ताविष्टाम् । अस्ताविषुः । अस्तावीः । (३३०) सूत्र में परस्मैपद के कहने से आत्मनेपद में इट् नहीं होता—अस्तोष्ट । अस्तोषाताम् । अस्तोषत । अस्तोष्यत् । अस्तोष्यत ।।

१०८२ ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि=स्पष्ट बोलना—

३३१—ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ।।३।४।८४।।

ब्रूञ् धातु से परे लट् लकार के परस्मैपदसंज्ञक आदि के तिप् आदि पांच वचनों को णल् आदि पांच आदेश यथासंख्य करके विकल्प से होवें और उन्हीं आदेशों के सम्बन्ध में ब्रूञ् धातु को आह आदेश होजावे ।

इस सूत्र में दूसरी वार 'ब्रू' धातु इसलिये पढ़ा है कि 'आह' आदेश किसी प्रत्यय के स्थान में न होजावे । 'ब्रू+तिप्'=आह । आहतुः । आहुः । प्राहुः । 'आह+थल्'—

३३२—आहस्थः ।। ८ । २ । ३५ ।।

आह धातु के हकार को थकार आदेश होवे, झल् परे हो तो ।

'आथ+थ'=आत्थ, प्रथम थकार को चर्त्व तकार हो जाता है। आहथुः। (३३१) सूत्र में आदि के पांच वचनों के कहने से—ब्रूध्व, यहां प्रत्यय और धातु को आदेश नहीं होते।

३३३—ब्रुव ईट् ॥ ७। ३। ९३॥

ब्रूञ् धातु से परे जो हलादि पित् सार्वधातुक, उसको ईट् का आगम होवे।

ब्रवीति। आत्थ, यहां ब्रूञ् को स्थानिवत् मानने से ईट् प्राप्त है, परन्तु (३३२) सूत्र से हकार को थकार विधान सामर्थ्य से नहीं होता। ब्रूतः। ब्रुवन्ति। ब्रवीषि। ब्रूथः। ब्रूथ। ब्रवीमि। ब्रूवः। ब्रूमः। ब्रूते। ब्रुवाते। ब्रुवते।

३३४—ब्रुवो वचिः ॥ २। ४। ५३॥

आर्द्धधातुक विषय में ब्रूञ् धातु को वचि आदेश होवे।

इकार व्यञ्जन की सहायता के लिये है। वच्+वच् णल्=उवाच, (२८२) से सम्प्रसारण। ऊचतुः। ऊचुः (२८३)। उवचिथ; उवक्थ। ऊचे। ऊचाते। ऊचिरे। वक्तासि। वक्तासे। वक्ष्यति। वक्ष्यते।

वाक्षति; वाक्षाति। वक्षति; वक्षाति। ब्रवति; ब्रवाति। वाक्षतै; वाक्षातै। वक्षतै; वक्षातै। वक्षते; वक्षाते। ब्रुवतै; ब्रुवातै। ब्रुवते। ब्रुवाते।

ब्रवीतु; ब्रूतात्। ब्रूताम्। ब्रुवन्तु। ब्रूहि; ब्रूतात्। ब्रूतम्। ब्रूत। ब्रवाणि। ब्रवाव। ब्रवाम। ब्रूताम्। ब्रूवाताम्। ब्रुवताम्। ब्रवै। ब्रवावहै। ब्रवामहै। अब्रवीत्। अब्रूताम्। अब्रुवन्। अब्रूत। ब्रूयात्। ब्रूयाताम्। ब्रूयुः। ब्रुवीत। ब्रुवीयाताम्। ब्रुवीरन्। उच्यात्, (३३४) से वचि; (२८३) से सम्प्रसारण। उच्यास्ताम्। वक्षीष्ट।

लुङ् में अङ् (३१६) से होकर—

३३५–वच उम् ॥ ७ । ४ । २० ॥

अङ् परे हो तो वच् धातु को उम् का आगम होवे ।

मित् आगम अन्त्य अच् से परे होकर—'अट्+व+उम्=च+अङ्+तिप्'=अवोचत् । अवोचताम् । अवोचन् । अवोचत । अवोचेताम् । अवोचन्त । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत ॥

आशिषि लिङ् में वच आदि कई धातुओं के प्रयोग वैदिक विषय में कुछ विशेष होते हैं—

३३६–लिङ्याशिष्यङ् ॥ ३ । १ । ८६ ॥

आशीर्वाद अर्थ में लिङ् परे हो तो वेदविषय में सामान्य धातुओं से अङ् प्रत्यय होवे ।

३३७–छन्दस्युभयथा ॥ ३ । १ । ११७ ॥

वेदविषय में जिन प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा कही है, उनकी आर्द्धधातुक और जिन की आर्द्धधातुक संज्ञा कही है, उनकी सार्वधातुक संज्ञा भी होवे ।

प्रकृत में आशीर्वाद अर्थ में लिङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा (८४) से कह चुके हैं, उसकी सार्वधातुक संज्ञा भी होवे ।

भा० स्थागागमिवचिवदिशकिरुहयः प्रयोजनम् ॥

महा० ३ । १ । ८६ ॥

स्था, गा, गम्, वच, वद, शक और रुह इन धातुओं से बहुधा आशिष् लिङ् में अङ् होता है । यह नियम नहीं है कि इन्हीं धातुओं से होवे अन्य से नहीं ।

स्था—'उपस्था+अङ्+यासुट्+मिप्'=उपस्थेयम्, (२४४) से आकारलोप और सार्वधातुक संज्ञा मान के इय् आदेश (८१) से । गा—गै

धातु भ्वादिगण (९५२) में लिख चुके हैं, उसी को यहां जानो। 'उपगा+अङ्+यासुट्+अम्=उपगेयम् पूर्ववत्। गम—'गम्+अङ्+इय्+मस्'=गमेम, यहां लिङ् की सार्वधातुक संज्ञा होने से इय् और अङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा मान के गम् को छकारादेश (२७३) से नहीं होता। वच—'व+उम्'+च+अङ्+यास्+मस्'=वोचेम। विद—'विद्+अङ्+इय्+मिप्'=विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम्। शकि—'शक्+अङ्+इय्+मिप्'=शकेयम्। रुह—'रुह्+अङ्+इय्+मिप्'=रुहेयम्

३३८—वा०—दृशेरग्वक्तव्यः ॥ ३ । १ । ८६ ॥

दृश् धातु से अक् प्रत्यय कहना चाहिये।

'दृश्+अक्+इय्+अम्=दृशेयम्, जो यहां (३३६) सूत्र से अङ् होता तो अकित् होने से अम् (२७८) से हो जाता, इसलिये अक् पढ़ा है॥

अथ शास्त्यन्ता एकत्रिंशत् परस्मैपदिन इङ् त्वात्मनेपदी॥

अब शासु धातु पर्यन्त ३१ इकतीस परस्मैपदी धातु कहते हैं परन्तु 'इङ्' धातु एक आत्मनेपदी है—

१०८३ इण् गतौ—एति। इतः।

३३९—इणो यण् ॥ ६ । ४ । ८१ ॥

इण् धातु को यण् आदेश होवे, अच् परे हो तो।

यह सूत्र इयङ् (१५९) का अपवाद है। यन्ति।

'इ+णल्'=इयाय, यहां इकार को ऐकार वृद्धि और ऐ को द्वित्व तथा (३९) से ह्रस्व होकर इयङ् (१५३) से होता है।

३४०—दीर्घ इणः किति ॥ ७ । ४ । ६९ ॥

इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ आदेश होवे, कित् लिट् परे हो तो।

'इ+अतुस्'—इस अवस्था में यण् होकर, यण् को स्थानिरूप (२४५) से मानकर द्वित्व होता है—ईयतुः। ईयुः। इययिथ; इयेथ। ईयथुः। ईय। इयाय; इयय। ईयिव। ईयिम।

एतासि। एष्यति। ऐषति; ऐषाति। एषति; एषाति। अयति; अयाति। एतु। इतात्। इताम्। यन्तु, (३३९) से यण्। इहि; इतात्। इतम्। इत। अयानि। अयाव। अयाम। ऐत्। ऐताम्। आयन्। ऐः। ऐतम्। ऐत। आयम्। ऐव। ऐम। इयात्। इयाताम्। इयुः। ईयात्, (१६०) से दीर्घ। ईयास्ताम्।

३४१–एतेर्लिङि ॥ ७।४।२४॥

उपसर्ग से परे इण् धातु के अण् को ह्रस्व होवे, यकारादि कित् लिङ् परे हो तो।

उदियात्; समियात्; अन्वियात्। 'सम्+आ+इ+यासुट्+तिप्' =समेयात्; यहां एकार अण् नहीं है, इसलिये ह्रस्व नहीं होता।

३४२–इणो गा लुङि ॥ २।४।४५॥

इण् धातु को गा आदेश होवे, लुङ् लकार परे हो तो।

गा होकर सिच् का लुक्। (८९) सूत्र में गाति करके यही गा आदेश लिया जाता है—अगात्। अगाताम्। अगुः॥

१०८४ इङ् अध्ययने=पढ़ना—इस धातु के प्रयोग नित्य अधि उपसर्गपूर्वक ही आते हैं। 'अधि+इ+त'=अधीते, सवर्णदीर्घ एकादेश होता है। अधीयाते। अधीयते, इयङ् (१५३) से। अधीषे। अधीयाथे। अधीध्वे। अधीये। अधीवहे। अधीमहे।

३४३–गाङ् लिटि ॥ २।४।४९॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश होवे, लिट् लकार की विवक्षा में।

'अधि+गा+एश्'=अधिजगे, यहां प्रथम आकारलोप (२४४) से होकर स्थानिरूप (२४५) से मान के द्वित्व होता है। अधिजगाते। अधिजगिरे। अधिजगिषे।

अध्येतासे, यहां अधि के इकार को यण् हो जाता है। अध्येष्यते। अध्यैषतै; अध्यैषातै। अध्येषतै; अध्येषातै। अध्यैषते; अध्यैषाते। अध्येषते; अध्येषाते। अधीताम्। अधीयाताम्। अधीयताम्। अध्ययै। अध्ययावहै। अध्ययामहै। अध्यैत। अध्यैयाताम्, यहां परत्व से प्रथम इयङ् (१५९) से और पीछे आट् होकर उसके साथ वृद्धि होती है। अध्यैयत। अध्यैथाः। अध्यैयाथाम्। अध्यैध्वम्। अध्यैयि। अध्यैवहि। अध्यैमहि।

अधीयीत। अधीयीयाताम्। अधीयीरन्। अधीयीध्वम्। अधीयीय। अध्येषीष्ट। अध्येषीयास्ताम्। अध्येषीढ्वम्।

३४४–विभाषा लुङ्लृङोः ॥ २। ४। ५०॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश विकल्प करके होवे, लुङ् और लृङ् लकार परे हों तो।

गाङ् आदेश पक्ष में—

३४५–गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्॥ १। २। १॥

गाङ् और कुटादि धातुओं से परे जो ञित् णित् भिन्न प्रत्यय, वे ङित्वत् हों। यहां लुङ् के सिच् और लृङ् में स्य ङित्वत् होकर—

३४६–घुमास्थागापाजहातिसां हलि ॥ ६। ४। ६६॥

घुसंज्ञक (२४६), मा, स्था, गा, पा, ओहाक् और षो धातु के आकार को ईकारादेश होवे, हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक परे हो तो।

अध्यगीष्ट। अध्यगीषाताम्। अध्यगीषत। अध्यगीष्ठाः। अध्यगीढ्वम्। जिस पक्ष में गाङ् (३४४) से न हुआ वहां—अध्यैष्ट। अध्यैषाताम्। अध्यैढ्वम्। अध्यगीष्यत। अध्यगीष्येताम्। अध्यगीष्यन्त। अध्यैष्यत॥

१०८५ इक् स्मरणे=स्मरण करना—यह भी धातु अधि उपसर्गपूर्वक ही है। इसमें कारकविषयक (अधीगर्थदयेशां कर्मणि॥ २।४।५२) सूत्र का प्रमाण है—अध्येति। अधीतः। अधीयन्ति। अध्येषि। अधीयाथ। अधीयतुः। अधीयुः। अध्येतासि। अध्येष्यति। अध्यैयति; अध्यैदाति। अध्येपति; अध्येपाति।

अध्येतु; अधीतात्। अधीताम्। अधीयन्तु। अधीहि। अध्ययानि। अध्ययाव। अध्ययाम। अध्यैत्। अध्यैताम्। अध्यायन्। अध्यैः। अध्यायम्। अधीयात्। अधीयाताम्। अधीयुः। अधीयात्। अधीयास्ताम्।

३४७—वा०—इण्वदिक इति वक्तव्यम्* ॥२।४।४५॥

आर्द्धधातुक अधिकार में इक् धातु को इण् के तुल्य कार्य होवें।

अर्थात् लुङ् लकार में जो इण् धातु को गा आदेश (३४२) से कहा है, सो इक् को भी होवे—अध्यगात्। अध्यगाताम्। अध्यगुः। अध्येष्यत्॥

१०८६ वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु=गति, व्याप्ति, गर्भ होना, इच्छा, फेंकना और खाना—

---

* इस वार्तिक को भट्टोजिदीक्षित ने लट् लकार में लगा के और 'अधियन्ति' प्रयोग इक् धातु को यण् (३३२) से करके बनाया और पीछे यह भी लिखा है कि कोई लोग इसको आर्द्धधातुक विषय में कहते हैं, उनके मत में 'अधीयन्' होगा। सो यह महाभाष्य से विरुद्ध होने के कारण माननीय नहीं। भाष्यकार ने इस वार्तिक को (३४२) सूत्र पर लिखकर लुङ् लकार के उदाहरण दिये हैं और (३४२) सूत्र भी आर्द्धधातुक अधिकार में होने से लट् लकार में इक् धातु को इण्वत् कार्य कदापि नहीं हो सकता। फिर 'अधियन्ति' प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है॥

वेति । वीतः । वियन्ति, (१५९) से इयङ् । वेषि । विवाय । विव्यतुः । विव्युः । विवयिथ; विवेथ । वेता । वेष्यति । वैषति; वैषाति । वेषति; वेषाति । वयति; वयाति । वेतु । वीतात् । वीहि । वयानि । अवेत् । अवीताम् । अवियन् । अवेः । वीयात् । वीयाताम् । वीयुः । वीयास्ताम् । अवैषीत् । अवैष्टाम् । अवैषुः । अवेष्यत् ।

कोई इस 'वी' धातु में मिला उन्हीं अर्थों में 'ई' धातु भी मानते हैं—

एति । ईतः । इयन्ति । इयाय । ईयतुः । एता । एष्यति ऐषति; ऐषाति ॥

१०८७ या प्रापणे=प्राप्त होना—याति । यातः । यान्ति । ययौ । ययतुः । ययुः । ययिथ; ययाथ । यातासि । यास्यति । यासति; यासाति । यातु । अयात् । अयाताम् ।

३४८—लङः शाकटायनस्यैव ॥ ३ । ४ । १११ ॥

आकारान्त धातु से परे जो लङ् लकार का झि, उसको जस् आदेश होवे, शाकटायन आचार्य ही के मत में ।

अयुः, (८३) से पररूप एकादेश । अयाः । अयातम् । अयात । अयाम् । अयाव । अयाम । यायात् । यायाताम् । यायास्ताम् । अयासीत् । अयासिष्टाम् । अयासिषुः । अयास्यत् ॥

१०८८ वा गति गन्धनयोः=गति और सूंघना—

वाति । वातः । वान्ति । वासि । ववौ । वातासि । वास्यति । वासति; वासाति । वातु । वाहि । अवात् । अवासीत् । अवास्यत् ॥

१०८९ भा दीप्तौ=प्रकाश—भाति । बभौ०।

१०९० ष्णा शौचे—स्नाति । सस्नौ । स्नेयात् (२५२); स्नायात् । अस्नासीत् ॥

१०९१ श्रा पाके—श्रेयात्; श्रायात् ॥

१०९२ द्रा कुत्सायां गतौ च = निन्दा और गति—

द्रेयात्; द्रायात् ॥

१०९३ प्सा भक्षणे = खाना—प्साति । पप्सौ । प्सेयात्; प्सायात् ॥

१०९४ पा रक्षणे—पायात् । पायास्ताम्, (२४७) सूत्र में पा धातु से पिबति का ग्रहण होने से इस धातु को एकारादेश (२४७) से नहीं होता । अपासीत्, (८९) सूत्र में भी पिबति का ही ग्रहण होने से सिच्लुक् नहीं होता ॥

१०९५ रा दाने—राति ॥

१०९६ ला आदाने—लाति । लायात् ।

१०९७ दाप् लवने = काटना—दाति ।

दायात । दायास्ताम् । घुसंज्ञा के (२४६) से न होने से एकार आदेश (२४७) से और अदासीत् । सिच्लुक् (८९) से नहीं होता ॥

१०९८ ख्या प्रकथने = अच्छे प्रकार कहना—

इस धातु के प्रयोग सार्वधातुक विषय में ही समझने चाहियें क्योंकि आर्द्धधातुक विषय में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेश (३१२) से कह चुके हैं, उसी के प्रयोग आते हैं—ख्याति । ख्येयात्; ख्यायात् ॥

१०९९ प्रा पूरणे = तृप्त करना—

प्राति । प्रेयात्; प्रायात् । अप्रासीत् ॥

११०० मा माने = समा जाना—माति । ममौ । ममिथ; ममाथ । मातासि । मास्यति । मासति; मासाति । मातु । माहि । अमात् । मेयात्, (२४७) । मेयास्ताम् । अमासीत् । अमास्यत् ॥

११०१ वच परिभाषणे = व्याख्यान करना—

वक्ति । वक्तः । वचन्ति । वक्षि । वक्थः । वच्मि । उवाच, (२८२) से सम्प्रसारण । ऊचतुः, (२८३) । ऊचुः । उवचिथ; उवक्थ । वक्तासि ।

वक्ष्यति। वाक्षति; वाक्षाति। वक्तु। वग्धि। वचानि। अवक्। अवक्ताम्। अवचन्। अवक्। वच्यात्। उच्यात् (२८३)। उच्यास्ताम्। अवोचत्। अङ् और (३३५) से उम् आगम॥

इत्यनुदात्ता उदात्तेतः॥

ये इण् आदि १९ उन्नीस अनिट् परस्मैपदी धातु समाप्त हुए॥

११०२ विद ज्ञाने—

३४९—विदो लटो वा॥ ३। ४। ८३॥

विद धातु से परे लट् लकार सम्बन्धी परस्मैपदसंज्ञक प्रत्ययों के स्थान में णल् आदि ९ आदेश यथासंख्य और विकल्प करके होवें।

वेद। विदतुः। विदुः। वेत्थ। विदथुः। विद। वेद। विद्व। विद्म।

पक्ष में—वेत्ति। वित्तः। विदन्ति।

आम्प्रत्ययविधायक (२१३) सूत्र में विद् धातु अकारान्त निपातन भाष्यकार ने किया है। आम् प्रत्यय के परे विद धातु के अकार का लोप (१७२) से होकर स्थानिवत् होने से आम् प्रत्यय को मानकर गुण नहीं होता—विदाञ्चकार। विदाञ्चक्रतुः। विदाञ्चक्रुः।

पक्ष में—विवेद। विविदतुः। विविदुः। विवेदिथ।

वेदितासि। वेदिष्यति। वेदिषति; वेदिषाति। वेदति; वेदाति। वेत्तु। वित्तात्। वित्ताम्।

३५०—विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्*॥ ३। १। ४१॥

---

* इस सूत्र में जो इति शब्द पढ़ा है, उससे शब्द के स्वरूप का बोध होता है और 'इति शब्द का यही प्रयोजन सर्वत्र आता है। काशिकाकार आदि और भट्टोजिदीक्षित ने लिखा है कि इति शब्द पढ़ने से पुरुष और वचन की विवक्षा नहीं कि लोट् के प्रथम पुरुष बहुवचन का ही प्रयोग

लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में विदाङ्कुर्वन्तु विकल्प से निपातन किया है।

विद् धातु से आम् प्रत्यय कृञ् का अनुप्रयोग और उ प्रत्यय विकरण आदि निपातन से होते हैं—विदाङ्कुर्वन्तु और पक्ष में—विदन्तु भी होता है। विद्धि। वित्तात्। वित्तम्। वित्त। वेदानि। वेदाव। वेदाम।

अवेत्। अवित्ताम्। अविदुः, (१३४) से झि को जुस्।

३५१—दश्च ॥ ८। २। ७५॥

धातु के पदान्त दकार को रु आदेश विकल्प करके होवे, सिप् परे हो तो।

अवेः. रु को विसर्जनीय। पक्ष में—अवेत्। अवित्तम्। अवित्त। अवेदम्। अविद्व। अविद्म। विद्यात्। विद्याताम्। विद्युः। विद्यास्ताम्। अवेदीत्। अवेदिष्टाम्। अवेदिषुः। अवेदिष्यत्॥

११०३ अस् भुवि=यह धातु भू धातु के अर्थ में है—अस्ति।

३५२—श्नसोरल्लोपः ॥ ६। ४। १११॥

श्न प्रत्यय और अस् धातु के अकार का लोप होवे, कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो।

'अस्+तस्'=स्तः। सन्ति। असि, (५४) स्थः। स्थ। अस्मि। स्वः। स्मः।

निपातन किया होवे, किन्तु लोट् लकार के सब प्रयोगों में निपातन किया है—'विदाङ्करोतु' आदि भी प्रयोग होते हैं। सो यह व्याख्यान माननीय नहीं है, क्योंकि मूल और महाभाष्य से विरुद्ध है। इससे अगले—'अभ्युत्सादयां० ॥३।१।४२॥' सूत्र में ऐसे ही आम्प्रत्ययान्त निपातन किये हैं, वहां भी इति शब्द पढ़ा है, उसका व्याख्यान इन लोगों ने भी स्वरूपबोधक ही रक्खा है। इससे इनका व्याख्यान पूर्वापर विरुद्ध भी है॥

३५३–अस्तेर्भूः ॥ २ । ४ । ५२ ॥

अस् धातु को भू आदेश होवे, सामान्य आर्द्धधातुक विषय में।

अर्थात् आर्द्धधातुक लकारों में भू धातु के ही प्रयोग होते हैं, अस् के नहीं—बभूव। बभूवतुः। बभूविथ। भवितासि। भविष्यति। भाविषति; भाविषाति। असति; असाति। असत्; असात्।

अस्तु। स्तात्। स्ताम्। सन्तु, (३५२)। 'अस्+हि' यहां—

३५४–घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ॥ ६ । ४ । ११९ ॥

घुसंज्ञक और अस् धातु को एकारादेश और घुसंज्ञक के अभ्यास का लोप होवे, हि परे हो तो।

अस् धातु के अन्त्य अल् सकार के स्थान में एकादेश होता है। पीछे एकारादेश को असिद्ध (४२) से मानकर हि को धि (३००) से और अकार का लोप (३५२) से होता है—एधि। स्तात्। स्तम्। स्त। असानि। असाव। असाम।

लङ् में ईट्। (१३१) से—आसीत्। यहां भी तस् आदि में लोप के बलीय होने से अकार लोप (३५२) से होकर अजादि के न होने से आट् (११९) से नहीं प्राप्त है, सो अकार लोप को असिद्ध (४२) से मानकर आट् हो जाता है—आस्ताम्। आसन्। आसीः। आस्तम्। आस्त। आसम्। आस्व। आस्म।

स्यात्। स्याताम्। स्युः। स्याः। भूयात्। भूयास्ताम्। अभूत्। अभूताम्। अभूवन्। अभविष्यत्॥

११०४ मृजूष् शुद्धौ=पवित्रता—यह धातु ऊदित् है।

३५५–मृजेर्वृद्धिः ॥ ७ । २ । ११४ ॥

मृज धातु के इक् को वृद्धि होवे, सामान्य प्रत्ययों के परे।

ऋकार को आर् वृद्धि—मार्ष्टि, (२३३) से षत्व। मृष्टः।

३५६—वा०—इहान्ये वैयाकरणा मृजेरजादौ संक्रमे विभाषा वृद्धिमारभन्ते ॥ १। १। ३॥

यह वार्तिक (इको गुणवृद्धि ॥ १। १। ३) सूत्र पर है। इस व्याकरण शास्त्र में बहुतेरे वैयाकरण लोग मृज धातु को अजादि कित् ङित् प्रत्ययों के परे विकल्प करके वृद्धि कहते हैं।

मार्जन्ति; मृजन्ति। मार्क्षि। मृष्टः। मृष्ट। मार्ज्मि। मृज्वः। मृज्मः। ममार्ज। ममार्जतुः; ममृजतुः। ममार्जुः; ममृजुः। ऊदित् होने से इट् का विकल्प (१४०) से—ममार्जिथ; ममार्ष्ठ। ममार्जथुः; ममृजथुः। ममार्ज; ममृज। ममार्ज; ममर्ज। ममार्जिव; ममृजिव; ममृज्व। ममार्जिम; ममृजिम; ममृज्म।

मार्जितासि; मार्ष्टासि। मार्जिष्यति; मार्क्ष्यति। मार्जिषति; मार्जिषाति। मार्क्षति; मार्क्षाति। मार्जति; मार्जाति। मार्ष्ट। मृष्टात्। मृष्टाम्। मार्जन्तु; मृजन्तु। मृड्ढि, यहां षत्व (२३३) से होने के पश्चात् जश्त्व ष्टुत्व होते हैं। मार्जानि। मार्जाव। मार्जाम।

अमार्ट्। अमृष्टाम्। अमार्जन्; अमृजन्। अमार्जम्। मृज्यात्। मृज्याताम्। मृज्यात्। मृज्यास्ताम्। अमार्जीत्। अमार्जिष्टाम्। अमार्क्षीत्। अमार्ष्टाम्। अमार्क्षुः। अमार्जिष्यत्; अमार्क्ष्यत् ॥

११०५ रुदिर् अश्रुविमोचने = रोना—

३५७—रुदादिभ्यः सार्वधातुके ॥ ७। २। ७६॥

रुद्, स्वप्, श्वस्, अन और जक्ष, इन पांच धातुओं से परे वलादि सार्वधातुक को इट् का आगम होवे।

रोदिति। रुदितः। रुदन्ति। रोदिषि। रुदिथः। रुदिथ। रोदिमि। रुदिवः। रुदिमः। रुरोद। रुरुदतुः। रुरुदुः। रुरोदिथ। रोदितासि। रोदिष्यति। रोदिषति; रोदिषाति। रोदति; रोदाति। रोदितु। रुदिहि। रोदानि। रोदाव। रोदाम।

३५८—रुदश्च पञ्चभ्यः ॥ ७। ३। ९८ ॥

रुद आदि उक्त पांच धातुओं से परे हलादि पित् अपृक्त सार्वधातुक को ईट् का आगम होवे।

अरोदीत्। अरोदीः।

३५९—अड् गार्ग्यगालवयोः ॥ ७। ३। ९९ ॥

गार्ग्य और गालव आचार्यों के मत में रुद आदि पांच धातुओं से परे उक्त सार्वधातुक को अट् का आगम होवे।

यह ईट् और अट्, इट् के आगम का निषेधक है। अरोदत्। अरुदताम्। अरुदन्। अरोदः। अरुदितम्। अरुदित। अरोदम्। अरुदिव। अरुदिम।

प्रकृति और प्रत्यय की विशेष अपेक्षा रखने वाले अट् और ईट् आगमों से अन्तरङ्ग होने के कारण यासुट् प्रथम हो जाता है। फिर ईट् और अट् की प्राप्ति नहीं है—रुद्यात्। रुद्याताम्। रुद्यास्ताम्।

इरित् होने से अङ् विकल्प (१३८) से—अरुदत्। अरुदताम्। अरुदन्। अरोदीत्। अरोदिष्टाम्। अरोदिषुः॥

१११०६ ञिष्वप् शये=सोना—स्वपिति, (३५७) से इट्। स्वपितः। स्वपन्ति। सुष्वाप, (२८२) से सम्प्रसारण। सुषुपतुः, (२८३)। सुषुपुः। सुष्वपिथ; सुष्वप्थ। स्वप्तासि। स्वप्स्यति। स्वाप्सति; स्वाप्साति। स्वप्सति; स्वप्साति। स्वपति; स्वपाति। स्वपितु; स्वपितात्। स्वपिहि। अस्वपीत्, (३५८)। अस्वपत्, (३५९)। अस्वपिताम्। अस्वपन्। अस्वपीः। अस्वपः। अस्वपम्।

स्वप्यात् । स्वप्याताम् । सुप्यात्, (२८३) । सुप्यास्ताम् । अस्वाप्सीत् । अस्वाप्ताम् । अस्वाप्सुः । अस्वाप्सीः । अस्वाप्तम् । अस्वाप्त । अस्वाप्सम् । अस्वाप्स्व । अस्वाप्स्म । अस्वप्स्यत् ॥

११०७ श्वस प्राणने = ऊपर का श्वास—

श्वसिति । श्वसितः । श्वसन्ति । शश्वास । शश्वसतुः । शश्वसुः । शश्वसिथ । श्वसितासि । श्वसिष्यति । श्वासिषति; श्वासिषाति । श्वसितु । श्वसिहि । अश्वसीत्; अश्वसत् । अश्वसीः । अश्वसः । श्वस्यात् । अश्वसीत्, (१६२) से वृद्धि का निषेध । अश्वसिष्यत् ॥

११०८ अन च = यह धातु भी प्राणन अर्थ में है—

अनिति । आन । आनतुः । अनितु । आनीत् । आनत् । आनीः । आनः । अन्यात् । आनीत् । आनिष्टाम् । आनिष्यत् ॥

११०९ जक्ष भक्षहसनयोः = खाना और हंसना—

जक्षिति । जक्षितः ।

३६०—जक्षित्यादयः षट् ॥ ६ । १ । ६ ॥

जक्ष धातु से लेकर वेवीङ् पर्यन्त सात धातुओं की अभ्यस्त संज्ञा होवे ।

इस सूत्र में अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है अर्थात् जक्ष धातु जिन के आदि में हो ऐसे अन्य छः धातु और जक्ष सातवां हुआ । अभ्यस्त का फल—

३६१—अदभ्यस्तात् ॥ ७ । १ । ४ ॥

अभ्यस्तसंज्ञक धातुओं से परे जो प्रत्यय का आदि झकार उसको अत् आदेश होवे ।

यह अन्त आदेश का बाधक है—जक्षति । जक्षिषि । जजक्ष । जजक्षिथ । जक्षितासि । जक्षिष्यति । जक्षिषति; जक्षिषाति । जक्षति; जक्षाति । जक्षितु; जक्षतु । जक्षिहि । अजक्षीत् । अजक्षत् । अजक्षिताम् ।

अजक्षुः; (१३४) से अभ्यस्त होने से जुस् । अजक्षीः । अजक्षः । जक्ष्यात् । जक्ष्याताम् । जक्ष्यास्ताम् । अजक्षीत् । अजक्षिष्यत् ॥

ये रुदादि पांच धातु समाप्त हुए ॥

१११० जागृ निद्राक्षये = जागना—इस धातु के अन्त्य ऋकार का लोप नहीं होता क्योंकि वह उपदेश में अनुनासिक नहीं पड़ा है—जागर्त्ति । जागृतः । जाग्रति, अभ्यस्त संज्ञा (३६०) से होने से प्रत्ययादि झकार को अत् । जागर्षि । जागृथः । जागृथ । जागर्मि । जागृवः । जागृमः ।

लिट् में विकल्प से आम् (२१३) से—जागराञ्चकार । जागराम्बभूव । जागरामास । पक्ष में—यह धातु दो स्वरवाला है, इसलिये प्रथम एकाच् अवयव जा मात्र को द्वित्व होता है—जजागार ।

३६२—जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ॥ ७ । ३ । ८५ ॥

जागृ धातु को गुण होवे वृद्धि विषय और निषेध विषय में परन्तु वि, चिण्, णल् और ङित् प्रत्ययों के परे न होवे ।

वि करके उणादि का विन् प्रत्यय लिया है । इस सूत्र से तीन प्रकार का नियम निकलता है । एक तो कित् ङित् प्रत्ययों में गुण नहीं प्राप्त है, वहां कित् में होना ङित् में नहीं । विन् प्रत्यय में गुण प्राप्त है, वहां न होना—जागृविः । चिण् और णल् को छोड़ के अन्यत्र वृद्धि विषय में गुण होना, वृद्धि नहीं । फिर चिण् और णल् में वृद्धि ही होती है ।

जजागरतुः । जजागरुः । जजागरिथ । जागरितासि । जागरिष्यति । जागरिषति; जागरिषाति । जागर्त्तु; जागृतात् । जागृताम् । जाग्रतु । जागृहि । जागराणि । जागराव । जागराम ।

अजागः । अजागृताम् । अभ्यस्त होने से जुस् (१३४) से ।

३६३—जुसि च ॥ ७ । ३ । ८३ ॥

अजादि जुस् परे हो तो इगन्त अङ्ग को गुण होवे ।

यहां ङित् होने से गुण नहीं प्राप्त है, इसलिये यह सूत्र है । अजागरुः । अजागः । अजागरम् । जागृयात् । जागृयाताम् । जागृयुः, अजादि के कहने से यहां जुस् में गुण नहीं होता । जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासुः ।

लुङ् में—'अट्+जागृ+इट्+स्+ईट्+तिप्' इस अवस्था में जागृ धातु के ऋकार को यणादेश प्राप्त है। उसका बाधक गुण (२१) से प्राप्त और गुण का अपवाद वृद्धि (१५८) से प्राप्त है। उसका भी अपवाद गुण (३६२) से होता है। फिर 'अर्' गुण होकर हलन्त होने से वृद्धि (१३५) से प्राप्त है। उसका निषेध (१३६) से होकर विकल्प से वृद्धि (१४४) से प्राप्त है। उसका बाधक नित्य वृद्धि (१९६) से प्राप्त है, उसका भी निषेध (१६२) हो जाता है—अजागरीत् । अजागरिष्टाम् । अजागरिष्यत् ।

११११ दरिद्रा दुर्गतौ=बुरा हाल—दरिद्राति ।

३६४—इद्दरिद्रस्य ॥ ६ । ४ । ११४ ॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो दरिद्रा धातु को इकारादेश हो ।

अन्त्य अल् आकार को होता है—दरिद्रितः ।

३६५—श्नाभ्यस्तयोरातः ॥ ६ । ४ । ११२ ॥

श्ना प्रत्यय और अभ्यस्तसंज्ञक धातुओं के आकार का लोप हो, कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो ।

दरिद्रति । दरिद्रासि । दरिद्रिथः । दरिद्रिथ । दरिद्रामि । दरिद्रिवः । दरिद्रिमः ।

(१६९; १७०) सूत्रों से दरिद्रा धातु को अनेकाच् मानकर आम् प्रत्यय होता है—दरिद्राञ्चकार । दरिद्राम्बभूव । दरिद्रामास । वेद में आम् प्रत्यय नहीं होता, वहां—ददरिद्रौ । ददरिद्रतुः । ददरिद्रुः ।

३६६–वा०–दरिद्रातेरार्द्धधातुके लोपो वक्तव्यः ॥

६ । ४ । ११४ ॥

आर्द्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में दरिद्रा धातु के आकार का लोप होवे ।

प्रयोजन यह है कि इट् और अज़ादि कित् ङित् आर्द्धधातुक में आकार लोप (२४४) से होता है; इस वार्त्तिक से हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक में भी हो जाता है । ददरिद्रिथ ।

दरिद्रितासि । दरिद्रिष्यति । दरिद्रिषाति । दरिद्रातु; दरिद्रितात् । दरिद्रिताम् । दरिद्रतु । दरिद्रिहि । दरिद्राणि । अदरिद्रात् । अदरिद्रिताम् । अदरिद्रुः । दरिद्रियात् । दरिद्रियाताम् । दरिद्रियुः । दरिद्र्यात् । दरिद्र्यास्ताम्, यहां हलादि कित् आर्द्धधातुक में लोप (३६६) से होता है ।

३६७–वा०–अद्यतन्यां वेति वक्तव्यम् ॥६।४।११४॥

लुङ् लकार में दरिद्रा धातु के आकार का लोप विकल्प करके होवे । पूर्व आचार्यों के मत में अद्यतनी संज्ञा लुङ् लकार की है—अदरिद्रीत् । अदरिद्रिष्टाम् । अदरिद्रासीत्, (२५१) । अदरिद्रिष्यत् ।

३६८–का०–न दरिद्रायके लोपो दरिद्राणे च नेष्यते । दिदरिद्रासतीत्येके दिदरिद्रिषतीति वा ॥६।४।११४॥

आर्द्धधातुक में सामान्य करके जो लोप (३६६) से कहा है, सो— 'दरिद्रायकः' यहां कृदन्त ण्वुल् प्रत्यय में, तथा 'दरिद्राणम्' यहां ल्युट् प्रत्यय में आकारलोप न होवे और सन् प्रत्यय के परे विकल्प करके होवे— दिदरिद्रासति; दिदरिद्रिषति ॥

१११२ चकासृ दीप्तौ = प्रकाश—चकास्ति। चकास्तः। चकासति। चकासाञ्चकार, (१७०) से आम्। चकासाम्बभूव। चकासामास। चकासितासि। चकासिष्यति। चकासिषति; चकासिषाति। चकास्तु; चकासतु। 'चकास्+हि' यहां प्रथम हि को धि आदेश (३००) से होकर धकार के परे सलोप (१११) से हो जाता है—चकाधि। चकासानि।

'अचकास्+त्' यहां संयोगान्त तकार का लोप होकर—

३६९—तिप्यनस्तेः ॥ ८ । २ । ७३ ॥

अस् धातु को छोड़ के अन्य धातु के पदान्त सकार को दकार आदेश होवे, तिप् परे हो तो।

अचकात्; अचकाद्। अचकास्ताम्। अचकासुः।

३७०—सिपि धातो रुर्वा ॥ ८ । २ । ७४ ॥

पदान्त धातु के सकार को विकल्प करके रु हो, सिप् परे हो तो।

पक्ष में पूर्व सूत्र से दकार होता है—अचकाः; अचकात्। चकास्यात्। चकास्यास्ताम्। अचकासीत्। अचकासिष्टाम्। अचकासिष्यत्॥

१११३ शासु अनुशिष्टौ = शिक्षा देना—शास्ति।

३७१—शास इदङ्हलोः ॥ ६ । ४ । ३४ ॥

शास् धातु की उपधा को इकार आदेश होवे, अङ् और हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक परे हो तो।

शिष्टः, (२८४) से षत्व। शासति। शास्सि। शिष्ठः। शिष्ठ। शास्मि। शिष्वः। शिष्मः। शशास। शशासतुः। शशासुः। शासितासि। शासिष्यति। शासिषति; शासिषाति।

शास्तु। शिष्टात्। शिष्टाम्। शासतु।

३७२-शा हौ ॥ ६ । ४ । ३५ ॥

शास् धातु को शा आदेश होवे, हि परे हो तो ।

शा आदेश अनेकाल् होने से सम्पूर्ण के स्थान में होता है । शा आदेश को असिद्ध (४२) से मानकर हि को धि आदेश (३००) से हो जाता है—शाधि । शिष्टात् । शिष्टम् । शिष्ट । शासानि ।

अशात्, (३६९) । अशिष्टाम् । अशासुः । अशात्; अशाः, (३७०) । शिष्यात् । शिष्यातास् । शिष्यास्ताम् । लुङ् में (२५६) सूत्र से अङ् होकर इकार (३७१) से—अशिषत् । अशिषताम् । अशिषन् । अशासिष्यत् ॥

इति विदादय उदात्ताः परस्मैपदिनः स्वपिस्त्वनुदात्तः ॥

ये विद् आदि १२ बारह सेट् परस्मैपदी धातु हैं, परन्तु स्वप् धातु अनिट् है ॥

अथ पञ्च छान्दसाः ॥

अब आगे ५ पांच धातु वेदविषयक कहते हैं, इनके प्रयोग लोक में नहीं आते—

१११४-१५ दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः=प्रकाश और क्रीड़ा आदि; वेवीङ् वेतिना तुल्ये='वी गतिव्याप्ति०' इस (१०८६) लिखित धातु के अर्थों में वेवीङ् धातु भी है—

दीधीते । दीध्याते, (१५६) से यण् । दीध्यते । दीधीषे । दीध्याथे । दीधीध्वे । दीध्ये । दीधीवहे । दीधीमहे । वेवीते । वेव्याते ।

दिदीध्ये, वेद में निषेध होने के कारण आम् प्रत्यय (१६९) से लिट् में नहीं होता । दिदीध्याते । दिदीध्यिरे ।

३७३–यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ॥ ७ । ४ । ५३ ॥

दीधी और वेवी धातु के अन्त्य वर्ण का लोप होवे, यकारादि और इवर्ण परे हों तो ।

दिदीधिषे । विवीव्ये । विवीविषे । दिदीधिवहे; विवीविवहे । दीधितासे, (५२) से गुणनिषेध । वीवितासे । दीधिष्यते । दीधिषतै; दीधिषातै । दीध्यतै; दीध्यातै । दीधीताम् । दीध्यै । अदीधीत । दीधीत । दीधिषीष्ट । अदीधिष्ट । अदीधिष्यत ॥

इति द्वावुदात्तावात्मनेपदिनौ ॥

ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ त्रयः परस्मैपदिनः ॥

१११६-१७ षस, सस्ति स्वप्ने=सोना—सस्ति । सस्तः । ससन्ति । सत्सि । ससास । सेसतुः । ससितासि । ससिष्यति । सासिषति; सासिषाति । सस्तु । असत्, (३६९) । असस्ताम्, । अससन् । असः; असत् (३७०) । अससम् । सस्यात् । सस्याताम् । सस्युः । सस्यास्ताम् । असासीत्; अससीत् । अससिष्यत् ।

सस्ति धातु में इदित् होने से नुम् । 'संस्त्+ति' इस अवस्था में संयोगादि सकार का लोप (२१०) से होकर हल् से परे तकारलोप (२७२) से होता है—सन्ति । सन्तः । संस्तन्ति । सन्त्सि । सन्थः । सन्थ । सन्मि । सन्व । सन्म ।

ससंस्त । ससंस्तिथ । संस्तितासि । संस्तिष्यति । संस्तिषति; संस्तिषाति । सन्तु; सन्तात् । सन्ताम् । संस्तन्तु । असन् । असन्ताम् । असंस्तन् । असन् । संस्त्यात् । संस्त्याताम् । संस्त्यास्ताम् । असंस्तीत् । असंस्तिष्टाम् । असंस्तिष्यत् ॥

१११८ वश कान्तौ=इच्छा वा शोभा—वष्टि, (२३३) से षत्व ; उष्टः, (२८६) से सम्प्रसारण। उशन्ति। वक्षि। उष्ठः। उष्ठ। वश्मि। उश्वः। उश्मः। उवाश, (२८२)। ऊशतुः, (२८३)। ऊशुः। उवशिथ। वशिता। वशिष्यति। वाशिषति; वाशिषाति। वष्टु। उष्टात्। उष्टाम्। उशन्तु। उड्ढि। वशानि। अवट्। औष्टाम्। औशन्। अवशम्। उश्यात्। उश्याताम्। उश्यास्ताम्। अवाशीत्; अवशीत्। अवशिष्यत्॥

ये षस आदि ३ तीन धातु परस्मैपदी समाप्त हुए॥

'चर्करीतञ्च' (ग०) इस [गणसूत्र के] निर्देश से यङ्लुगन्त धातुओं से परस्मैपद और शप् का लुक् होता है। सो यङ्लुगन्त प्रक्रिया का विषय है॥

अथैक आत्मनेपदी॥

१११९ ह्नुङ् अपनयने=दूर करना—ह्नुते। ह्नुवाते। ह्नुषे। जुह्नुवे। जुह्नुविषे। जुह्नुविढ्वे; जुह्नुविध्वे। ह्नोतासे। ह्नोष्यते। ह्नोषतै; ह्नोषातै। ह्नुताम्। ह्नवै। अह्नुत। ह्नुवीत। ह्नोषीष्ट। अह्नोष्ट। अह्नोष्यत॥

अनुदात्त आत्मनेपदी॥

यह धातु अनिट् आत्मनेपदी है॥

इतिलुग्विकरणा अदादयः समाप्ताः॥ २॥

यह लुग्विकरणवाला अदादिगण समाप्त हुआ॥ २॥

---

(३) अथ जुहोत्यादिगण: ।।

अथ त्रयः परस्मैपदिनः ।।

११२० हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके=देना, खाना और ग्रहण करना—यहां दान अर्थ से अग्नि में हवन करना भी लिया जाता है और इस धातु को भाष्यकार ने तृप्ति अर्थ में भी माना है।

३७४—जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ।। २ । ४ । ७५ ।।

हु आदि धातुओं से शप् के स्थान में श्लु होवे।

श्लु संज्ञा भी प्रत्यय के अदर्शन को ही होती है, इस कारण शप् का लोप हो जाता है—'हु+तिप्' यहां—

३७५—श्लौ ।। ६ । १ । १० ।।

अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो, श्लु परे हो तो।

जुहोति। जुहुतः। अभ्यस्त संज्ञा होने से प्रत्ययादि झ को अत् (३६१) से और यण् (२६१) से होकर—जुह्वति। जुहोषि। जुहुथः। जुहुथ। जुहोमि। जुहुवः। जुहुमः।

३७६—बहुलं छन्दसि ।। २ । ४ । ७६ ।।

वेद विषय में शप् के स्थान में श्लु आदेश बहुल करके होवे।

प्रयोजन यह है कि हवति; भरति आदि भी प्रयोग हो जावें।

३७७–भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ॥ ३ । १ । ३९ ॥

भी, ह्री, भृ और हु धातुओं से आम् प्रत्यय विकल्प करके होवे लोक विषय में लिट् लकार परे हो तो और आम् के परे श्लुवत् कार्य्य द्विर्वचन भी होवे।

जुहवाञ्चकार। जुहवाञ्चक्रतुः। जुहवाम्बभूव। जुहवामास।

होतासि। होष्यति। हौषति; हौषाति। जुहवति; जुहवाति। हवति; हवाति। जुहोतु। जुहुतात्। जुह्वतु। जुहुधि, (३००) से हि को धि। जुहवानि। अजुहोत्। अजुहुताम्। अजुहवुः; (१३४) से जुस् होकर (३६३) से गुण। जुहुयात्। जुहुयाताम्। जुहुयुः। हूयात्, (१६०) से दीर्घ। अहौषीत्, (१५८) से वृद्धि। अहौष्टाम्। अहौषुः। अहोष्यत् ॥

११२१ ञिभी भये = डरना—ञि की इत्संज्ञा (१५०) से—बिभेति।

३७८–भियोऽन्यतरस्याम् ॥ ६ । ४ । ११५ ॥

भी धातु को इकार आदेश विकल्प करके होवे, हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो।

दीर्घ ईकार को एकपक्ष में ह्रस्व हो जाता है—बिभितः; बिभीतः। बिभ्यति, (३६१)। बिभेषि। बिभिथः; बिभीथः। बिभयाञ्चकार। बिभयामास। बिभयाम्बभूव, (३७७)। पक्ष में—बिभाय। बिभ्यतुः। बिभ्युः। बिभेथ; बिभयिथ।

भेतासि। भेष्यति। भैषति; भैषाति। बिभयति; बिभयाति। भयति; भयाति। बिभेतु। बिभितात्; बिभीतात्। बिभिताम्, बिभीताम्। बिभ्यतु। अबिभेत्। अबिभिताम्; अबिभीताम्। अबिभयुः। बिभियात्। बिभियाताम्; बिभीयाताम्। भीयात्। अभैषीत्। अभेष्यत् ॥

११२२ ह्री लज्जायाम् = लज्जा—जिह्रेति। जिह्रीतः। जिह्रियति। जिह्रयाञ्चकार। जिह्रयाम्बभूव। जिह्रयामास। जिह्राय। जिह्रियतुः।

जिह्लेथ; जिह्लयिथ । ह्लेतासि । ह्लेष्यति । ह्लयति; ह्लयाति । जिह्लेतु । जिह्लीतात् । जिह्लियतु । जिह्लीहि । अजिह्लेत् । जिह्लीयात् । ह्लीयात् । अह्लैषीत् । अह्लेष्यत् ॥

इति जुहोत्यादयोऽनुदात्तास्त्रयः परस्मैपदिनः ॥

हु आदि ३ तीन धातु अनिष्ट् परस्मैपदी हैं ॥

अथैकः परस्मैपदी ॥

११२३ पॄ पालनपूरणयोः = पालन और समाप्ति—

उदात्तः परस्मैभाषः । यह धातु सेट् परस्मैपदी है—

श्लु के परे द्वित्व (३७५) से होकर—

३७९—अर्तिपिपर्त्योश्च ॥ ७ । ४ । ७७ ॥

ऋ और पॄ धातु से अभ्यास को इकार आदेश होवे, श्लु परे हो तो ।

पिपर्ति, यहाँ अभ्यस्त के ॠकार को उकार आदेश (३८०) से प्राप्त है, उसका बाधक गुण (२१) से होता है ।

३८०—उदोष्ठ्यपूर्वस्य ॥ ७ । ४ । १०२ ॥

ओष्ठस्थानी वर्ण जिसके पूर्व हो, ऐसा जो ॠकार, तदन्त अङ्ग को उकार आदेश होवे ।

ॠ के स्थान में रपर उकार होकर—पिपूर्तः, (१९७) से दीर्घ । पिपुरति । पिपर्षि । पिपूर्थः । पिपूर्थ । पिपर्मि । पिपूर्वः । पिपूर्मः ।

पपार । कित् लिट् अतुस् आदि में गुण (२५८) से प्राप्त है, उसका बाधक—

३८१—शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ॥ ७ । ४ । १२ ॥

शॄ, दॄ और पॄ धातुओं को विकल्प करके ह्रस्व होवे, कित् लिट् परे हो तो ।

पक्ष में—गुण (२५८) से होता है। ह्रस्व पक्ष में गुण नहीं—पप्रतुः। पप्रुः, यण्। पफरतुः। पपरुः। पपरिथ। पप्रथुः। पपरथुः। पप्र। पपर। पपार। पपर। पप्रिव। पपरिव। पप्रिम। पपरिम। परीतासि; परितासि, (२६४) से इट् को दीर्घ विकल्प। परीष्यति; परिष्यति। पारीषति; पारीषाति। पारिषति; पारिषाति। परीषति; परीषाति। परिषति; परिषाति। पिपरति; पिपराति।

पिपर्तु। पिपूर्तात्। पिपूर्ताम्। पिपुरतु। पिपूर्धि। पिपराणि। पिपराव। पिपराम। अपिपः। अपिपूर्ताम्। अपिपरुः, यहाँ अभ्यस्त संज्ञा होने से जुस् (१३४) से होकर गुण (३६३) से होता है। अपिपः। अपिपूर्त्तम्। अपिपूर्त। अपिपरम्। अपिपूर्व। अपिपूर्म। पिपूर्यात्। पिपूर्याताम्। पूर्यात्। पूर्यास्ताम्, यहाँ भी (३८०) से उत्व होकर दीर्घ (१९७) से होता है। अपारीत्। अपारिष्टाम्। अपरीष्यत्; अपरिष्यत्।

ह्रस्वान्तोऽयमित्येके—किन्हीं लोगों के मत में यह पृ धातु ह्रस्व ऋकारान्त है—पिपर्ति। पिपृतः, यहाँ दीर्घ ऋकार के न होने से उत्व नहीं होता। पिप्रति। पपार। पप्रतुः। पप्रुः, पपरुः। पर्त्ता, ह्रस्वान्त पक्ष में अनिट् है। परिष्यति, (२३८) से इट्। पिपृयात्। प्रियात्, (२३९)। प्रियास्ताम्। अपार्षीत्। अपार्ष्टाम्। अपरिष्यत्॥

अथैक उभयतोभाषः॥

११२४ डुभृञ् धारणपोषणयोः—डु की इत्संज्ञा (१५०) से।

३८२—भृञामित्॥ ७। ४। ४६॥

भृञ्, माङ् और ओहाङ् इन तीनों धातुओं के अभ्यास को इकार आदेश होवे, श्लु परे हो तो।

बिभर्ति । बिभृतः । बिभ्रति । बिभृते । बिभ्राते । बिभ्रते । बिभृध्वे । बिभराञ्चकार, (३७७) से आम् प्रत्यय और आम् के परे श्लुवत् होने से द्वित्व होता है । पक्ष में—बभार । बभ्रतुः । बभर्थ, (१४८) से इट् का निषेध । बभृव । बभृम ।

भर्तासि । भरिष्यति । भार्षति; भार्षाति । बिभरति; बिभराति । बिभर्तु । बिभृहि । बिभराणि । अबिभः । अबिभृताम् । अबिभरुः । बिभृयात् । बिभृयाताम् । भ्रियात् । भ्रियास्ताम् । भृषीष्ट, (२४०) । अभार्षीत् । अभृत । अभरिष्यत् । अभरिष्यत ॥

अथ द्वावात्मनेपदिनौ ॥

११२५ माङ् माने शब्दे च=तोल और शब्द—

३८३—ई हल्यघोः ॥ ६ । ४ । ११३ ॥

घुसंज्ञक धातुओं को छोड़ कर श्ना और अभ्यस्त संज्ञक धातुओं के आकार को ईकारादेश होवे, हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो ।

मिमीते । मिमाते । मिमते, यहां अजादि सार्वधातुक में आकारलोप हो जाता है और अभ्यास को इकारादेश (३८२) से होता है । मिमीषे । मिमाथे । ममे । ममाते । ममिरे ।

मातासे । मास्यते । मासतै; मासातै । मिमीताम् । मिमाताम् । मिमताम् । मिमै । अमिमीत । मिमीत । मिमीयाताम् । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत ॥

११२६ ओहाङ् गतौ—माङ् के समान इसके भी प्रयोग होते हैं—जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । जहाते । जहिरे । हातासे । हास्यते । हासतै; हासातै । जिहीताम् । अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट अहास्त । अहास्यत ॥

इति द्वावनुदात्तावात्मनेपदिनौ ।।

ये दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं ।।

अथैकः परस्मैपदी ।।

११२७ ओहाक् त्यागे—यह परस्मैपदी है । (३८२) सूत्र यहां नहीं लगता क्योंकि यहाँ से पूर्व ही भृञ् आदि तीन धातु पूरे हो गये—जहाति ।

३८४—जहातेश्च ।। ६ । ४ । ११६ ।।

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो जहाति धातु के आकार को इकार आदेश विकल्प करके होवे ।

और पक्ष में ईकार (३८३) से होता है। यह सूत्र (३८३) सूत्र का अपवाद होने से प्राप्तविभाषा है। जहितः; जहीतः । जहति । जहासि । जहिथः; जहीथः। जहिथ; जहीथ । जहामि । जहिवः; जहीवः । जहिमः; जहीमः ।

जहौ । जहतुः । जहिथ; जहाथ । हातासि । हास्यति । हासति; हासाति । जहाति । जहातु। । जहितात् ; जहीतात् । जहिताम् ; जहीताम् । जहतु ।

३८५—आ च हौ ।। ६ । ४ । ११७ ।।

जहाति धातु को आकारादेश हो, हि परे हो तो और चकार से इत् और ईत् भी होवे ।

जहाहि; जहिहि ; जहीहि । जहानि । अजहात् । अजहिताम्; अजहीताम् । अजहुः ।

३८६—लोपो यि ॥ ६ । ४ । ११८ ॥

यकारादि कित् ङित् सार्वधातु परे हो तो जहाति धातु के आकार का लोप होवे ।

जह्यात् । जह्याताम् । जह्युः । हेयात्; (२४७) । हेयास्ताम् । अहासीत्, (२५१) । अहासिष्टाम् । अहास्यत् ॥

अथ द्वावुभयतोभाषौ ॥

११२८ डुदाञ् दाने=देना—ददाति । दत्तः, यहां (३८३) सूत्र में घुसंज्ञक धातुओं को ईकारादेश का निषेध होने से आकारलोप (३६५) से होता है । ददति । ददासि । दत्थः । दत्थ । ददामि । दद्वः । दद्मः । दत्ते । ददाते । ददते । दद्ध्वे । ददे ।

ददौ । ददतुः । ददे । ददाने । दातासि । दातासे । दास्यति । दास्यते । दासति; दासाति । दासतै; दासातै ।

३८७—घोर्लोपो लेटि वा ॥ ७ । ३ । ७० ॥

घुसंज्ञक धातुओं के आकार का लोप विकल्प करके होवे, लेट् लकार परे हो तो ।

ददत्ति; ददाति । ददत्; ददात्, यहां आट् के आगम पक्ष में लोप होने पर भी 'ददाति' होता है । जो लोप न कहते तो अट् आट् दोनों पक्ष में 'ददाति' प्रयोग बनता और विकल्प कहने से यह प्रयोजन है कि किसी को ऐसी शङ्का न हो कि 'ददाति' प्रयोग नित्य प्राप्त है, उसका लोप कहने से बाधक होगा ।

ददातु; दत्तात् । दत्ताम् । ददतु । देहि, (३५४) से एत्वाभ्यासलोप । ददानि । अददात् । अदत्ताम् । अददुः । दद्यात् । दद्याताम् । दद्युः । देयात्,

(२४७) से घुसंज्ञा होने से एत्व । देयास्ताम् । अदात्, (८९) से सिच्लुक् । अदाताम् । अदुः । दत्ताम् । ददाताम् । ददताम् । दत्स्व । ददै । अदत्त । ददीत । दासीष्ट । अदित, (२६३) से इत्व और कित्व । अदिषाताम् । अदिषत । अदास्यत् । अदास्यत ॥

११२९ डुधाञ् धारणपोषणयोः—

इसके प्रयोग डुदाञ् के तुल्य जानो । दधाति ।

३८८—दधस्तथोश्च ॥ ८ । २ । ३८ ॥

द्वित्व किये झषन्त धा धातु के बश् को भश् आदेश होवे, त, थ, स् और घ्व परे हों तो

वहां अनभ्यास के आकार का लोप (३६५) से किये पश्चात् अभ्यास के दकार को धकार हो जाता है—धत्तः । दधति । दधासि । धत्थः । धत्थ । दधामि । दध्वः । दध्मः । धत्ते । दधाते । दधते । धत्से । धद्ध्वे ।

दधौ । दधतुः । धातासि । धातासे । धास्यति । धास्यते । धासतै; धासातै । धासति; धासाति । दधति, (३८७) । दधाति । दधत्; दधात् । दधातु; धत्तात् । धत्ताम् । दधतु । धेहि, (३५४) । दधानि । धत्ताम् । दधाताम् । धत्स्व । धद्ध्वम् ।

अदधात् । अधत्ताम् । अदधुः । अधत्त । अदधाताम् । अदधत । अधत्थाः । अधद्ध्वम् । दध्यात् । दधीत । धेयात्, (२४७) । अधात् । अधाताम् । अधुः, (८९) । अधित, (२६३) । अधिषाताम् । अधिषत । अधास्यत् । अधास्यत ॥

इति द्वावनुदात्तावुभयतोभाषौ ॥

ये दोनों धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ त्रयः स्वरितेतः ॥

अब ३ तीन धातु स्वरितेत्=उभयपदी कहते हैं—

११३० णिजिर् शौचपोषणयोः=शुद्धि और पुष्टी—

३८९—णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ॥ ७ । ४ । ७५ ॥

निज आदि (निज्, विज्, विष्) तीन धातुओं के अभ्यास को गुण होवे, श्लु परे हो तो।

नेनेक्ति, यहां तिप् के आश्रय से अनभ्यास को भी गुण होता है। नेनिक्तः। नेनिजति। नेनेक्षि। नेनिक्थः। नेनिक्थ। नेनेज्मि। नेनिज्वः। नेनिज्मः। नेनिक्ते। नेनिजाते। नेनिजते।

निनेज। निनिजतुः। निनिजे। निनिजाते। नेक्तासि। नेक्तासे। नेक्ष्यति। नेक्ष्यते। नेक्षति; नेक्षाति। नेक्षतै; नेक्षातै।

३९०—नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ॥ ७ । ३ । ८७ ॥

अभ्यस्तसंज्ञक लघूपध धातु को गुण न होवे, अजादि पित् सार्वधातुक परे हो तो।

यह सूत्र (५१) सूत्र का अपवाद है अर्थात् लघूपध गुण का निषेधक है—नेनिजति; नेनिजाति। नेनिजत्; नेनिजात्। नेनिजतै; नेनिजातै। नेनेक्तु। नेनिग्ध। नेनिजानि। नेनिक्ताम्। नेनिजाताम्। नेनिजै। नेनिजावहै॥

अनेनेक्। अनेनिक्ताम्। अनेनिजुः। अनेनेक्। अनेनिजम्, (३९०)। अनेनिक्त। अनेनिजाताम्। अनेनिजत। नेनिज्यात्। नेनिजीत। निज्यात्। निज्यास्ताम्। निक्षीष्ट, (१६३)। अनिजत्, (१३८)। अनैक्षीत्। अनैक्ताम्। अनिक्त। अनिक्षाताम्। अनेक्ष्यत्। अनेक्ष्यत॥

११३१ विजिर् पृथग्भावे=अलग होना—

णिज् धातु के समान सिद्धि। वेवेक्ति। वेविक्तः। वेविक्ते। वेविजाते। विवेज। विविजतुः। विवेजिथ। विविजे। वेक्तासि। वेक्तासे। वेविजति; वेविजाति। वेविजतै; वेविजातै। वेवेक्तु। वेविग्धि। वेविजानि। वेविक्ताम्। वेविजै। अवेवेक्। अवेविक्ताम्। अवेविजुः। अवेविजम्। वेविज्यात्। वेविजीत। विज्यात्। विक्षीष्ट, (१६३)। अविजत्। अवैक्षीत्। अविक्त। अवेक्ष्यत्। अवेक्ष्यत॥

११३२ विष्लृ व्याप्तौ = व्यापक होना—

पूर्ववत्। वेवेष्टि। वेविष्टः। वेविषति। वेवेक्षि। वेविष्टे। वेविषाते। वेविषते। विवेष। विविषे। वेष्टासि। वेष्टासे। वेक्ष्यति। वेक्ष्यते। वेक्षति; वेक्षाति। वेक्षतै; वेक्षातै। वेविषति; वेविषाति, (३९०) से गुणनिषेध। वेवेष्टु। वेविष्टात्। वेविष्टाम्। वेविषतु। वेविड्ढि। वेविषानि। वेविष्टाम्। वेविषाताम्। वेविषताम्। वेविड्ढ्वम्। अवेवेट्। अवेविष्टाम्। अवेविषुः। अवेविषम्। अवेविष्ट। अवेविषाताम्। अवेविषत। वेविष्यात्। वेविषीत। विष्यात्। विष्यास्ताम्। विक्षीष्ट, (१६३)। विक्षीयास्ताम्। अविषत्. (२१७)। अविक्षत, (२०७)। अविक्षाताम्, (२०८)। अविक्षन्त। अवेक्ष्यत्। अवेक्ष्यत॥

ये णिज् आदि अनिट् उभयपदी ३ तीन धातु समाप्त हुए॥

अथाऽऽगणान्तात् परस्मैपदिनश्छान्दसाश्चैकादश॥

अब इस गण के अन्त तक परस्मैपदी वेदविषयक ११ ग्यारह धातु कहते हैं—

११३३ घृ क्षरणदीप्त्योः = अच्छे प्रकार चलना और प्रकाश—

३९१—बहुलं छन्दसि॥ ७। ४। ७८॥

वेदविषय में श्लु परे हो तो अभ्यास को इकारादेश बहुल करके होवे।

जिघर्त्ति; जघर्त्ति। जिघृत; जघृतः। जिघ्रति। जिघर्म्मि। जघार। जघ्रतुः। घर्त्तासि। घरिष्यति, (२३८)।

यह नियम नहीं है कि केवल वैदिक प्रयोगों में लोक वेद के सामान्य सूत्र न लगें किन्तु केवल एक विषय के सामान्य विषय में नहीं लगते। घार्षति, घार्पाति। जिघ्रति; जिघ्राति। जघ्रति; जघ्राति। जिघर्त्तु; जघर्त्तु। अजिघः; अजघः। अजिघरुः। जिघृयात्। घ्रियात्, (२३९)। अघार्षीत्। अघरिष्यत्॥

११३४ हृ प्रसह्यकरणे = हठ करना—

३९२—वा०—हृग्रहोश्छन्दसि हस्य भत्वम् ॥८।२।३५॥

हृ और ग्रह धातु के हकार को भकारादेश होवे वेद विषय में।

जिभर्त्तिः जभर्त्ति। जभार; जहार। भर्त्ता। भरिष्यति। भार्षति; भार्षाति। जिभर्त्तु। जभर्त्तु। जभ्रतु। जभृहि। अजभः। अजभृताम्। अजभरुः। जभृयात्। भ्रियात्। अभार्षीत्। अभरिष्यत्॥

सर्वत्र वैदिक प्रयोगों में यह बात समझ लेनी चाहिये कि वेद में जिस प्रकार का प्रयोग जिस धातु का आ जाता है; उसके अनुकूल सूत्र वार्त्तिकों से सिद्धि समझ ली जाती है, कुछ सूत्रों वा वार्त्तिकों के अनुकूल सब वैदिक प्रयोग नहीं लिखने चाहियें। इसलिये यहाँ इन धातुओं के प्रयोग सूक्ष्म ही लिखते हैं—

११३५-३६ ऋ, सृ गतौ—

ऋ धातु को द्वित्व होने के पश्चात् अभ्यास के ऋकार को आकार (१०६) से होकर (३९१) सूत्र से अभ्यास को इकार हो जाता, फिर (३७९) सूत्र में अर्त्ति ग्रहण सामर्थ्य से यह धातु लोक में भी समझा जाता है। सो इकारादेश भी नित्य होता है।

फिर 'इ+ऋ+तिप्' = इयर्त्ति, (१५३) से अभ्यास को इयङ् और अनभ्यास को गुण हो जाता है। इयृतः। इयृति। आर। आरतुः। आरिथ,

(२५९)। अर्त्तासि। अरिष्यत्ति। आर्षति; आर्षाति। इयरति; इयराति। इयर्त्तु। इयृतात्। इयृताम्। इयृतु। इयृहि। इयराणि। इयराव। इयराम। ऐयः। ऐयृताम्। ऐयरुः। ऐयः। ऐयृतम्। ऐयृत। ऐयरम्। ऐयृव। ऐयृम। इयृयात्। अर्यात्, (२५४)। आरत्। आरताम्, (२५६; २५७)। आरिष्यत्। सर्सत्ति; सिर्सत्ति इत्यादि॥

घ्रादयश्चत्वारोऽनुदात्ताः॥

ये घृ आदि ४ चार धातु अनिट् हैं॥

११३७ भस भर्त्सनदीप्त्योः = धमकाना और प्रकाश—

बिभस्ति। बभस्ति।

३९३—घसिभसोर्हलि च॥ ६। ४। १००॥

घस और भस धातु के उपधा अकार का लोप होवे, हलादि और अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो, वेद विषय में।

'ब+भ्स्+तस्' = बब्धः (१४२)। बप्सति। बभास। बिभस्तु। बब्धाम्। बभसानि। अबिभः। अबिब्धाम्। अबिभसुः। बप्स्यात्। बप्स्याताम्। भस्यात्। भस्यास्ताम्। अभासीत्; अभसीत्। अभसिष्यत्॥

यह धातु सेट् परस्मैपदी है॥

११३८ कि ज्ञाने—चिकेति। चिकितः। चिकयति। चिकयाति। चिकेतु। चिकिहि। चिकयानि। अचिकेत्। अचिकयुः। चिकियात्। कीयात्। अकैषीत्॥

यह धातु अनिट् परस्मैपदी है॥

११३९ तुर त्वरणे = शीघ्रता—

तुतोर्त्ति। तुतूर्त्तः। तुतुरति; तुतुराति, (३९०)। तुतोर्त्तु। तुतुराणि। अतुतोः। अतुतुरुः। तुतूर्यात्। तूर्यात्। अतोरीत्॥

११४० धिष शब्दे—दिधेष्टि। दिधिष्टः। दिधिषति। अदिधेट्॥

११४१ धन धान्ये—दिधन्ति; दधन्ति । दधनति । दधान । दधनतुः । धनितासि । धनिष्यति । दधनति; दधनाति । धानिषति; धानिषाति । दिधन्तु । दिधनानि । अदिधन् । अदिधनुः । दधन्यात् । धन्यात् । अधानीत्; अधनीत् । अधनिष्यत् ।।

११४२ जन जनने—जजन्ति ।

३६४—जनसनखनां सञ्झलोः ।। ६ । ४ । ४२ ।।

जन, सन और खन धातुओं के अन्त को अकारादेश होवे, झलादि सन् और झलादि कित ङित् परे हों तो ।

जजातः । जज्ञति (२१४) पश्चात् न् को ञ् श्चुत्व होता है । जजंसि । जजाथः । जजन्मि । जजान । जज्ञतुः (२१४) । जानिषति; जानिषाति । जजनति; जजनाति । जजन्तु । जजातात् । जजाहि ।

३६५—वा छन्दसि ।। ३ । ४ । ८८ ।।

वेदविषय में सिप् के स्थान में हि आदेश विकल्प करके पित् होवे ।

जिस पक्ष में पित् होता है, वहां—जजन्हि, आकार नहीं होता । जजनानि । अजजत् । अजजाताम् । अजज्ञुः । अजजनम् । जजायात् । जजन्यात्, (१८५) । अजानीत्; अजनीत् ।।

ये तुर आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं ।।

११४३ गा स्तुतौ = प्रशंसा—जिगाति । जिगीतः । जिगति, (३६५) । जगौ । गातासि । गास्यति । गासति, गासाति । जिगातु । जिगीहि । जिगाहि । अजिगात् । अजिगीताम् । अजिगुः । जिगीयात् । गायात् । अगासीत् । अगास्यत् ।।

यह धातु अनिट् परस्मैपदी है ।।

इति श्लुविकरणो जुहोत्यादिगणः समाप्तः ।। ३ ।।

यह श्लुविकरणवाला जुहोत्यादिगण समाप्त हुआ ।। ३ ।।

१६

(४) अथ दिवादिगणः ॥

अथ दिवादयः षड्विंशतिः परस्मैपदिनः ॥

अब दिवु आदि भृृष् धातु पर्य्यन्त २६ छब्बीस सेट् परस्मैपदी धातु कहते हैं—

११४४ दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु = खेलना, जीतने की इच्छा, लेना-देना, प्रकाश, प्रशंसा, आनन्द, अहङ्कार, निद्रा, शोभा और गति अर्थात् ज्ञान गमन प्राप्ति—

३९६—दिवादिभ्यः श्यन् ॥ ३ । १ । ६९ ॥

दिव आदि धातुओं से शप् (१९) का बाधक श्यन् प्रत्यय होवे, कर्त्ता में सार्वधातुक परे हों तो ।

दीव्यति, (१९७) से दीर्घ । दीव्यतः । दीव्यन्ति । दिदेव । दिदिवतुः । दिदेविथ । देवितासि । देविष्यति । देविषति; देविषाति । दीव्यति; दीव्याति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् ॥

११४५ षिवु तन्तुसन्ताने = सीना—सीव्यति । सिसेव । असेवीत् ॥

११४६ स्रिवु गतिशोषणयोः = गति और सूखना—स्रीव्यति ॥

११४७ ष्ठिवु निरसने = थूकना—

ष्ठीव्यति, (१५२) से सत्व निषेध । तिष्ठेव । टिष्ठेव । टिष्ठिवतुः ।

११४८ ष्णुसु अदने—आदान इत्येके—अदर्शन इत्यपरे—
स्नुष्यति । सुष्णोस ।।

११४९ ष्णसु निरसने—स्नस्यति । सस्नास । सस्नसतुः ।।

११५० क्नसु ह्वरणदीप्त्योः = कुटिलता और प्रकाश—
क्नस्यति । चक्नास ।।

११५१ व्युष दाहे = जलना—व्युष्यति । वुव्योष ।।

११५२ प्लुष च—प्लुष्यति । पुप्लोष ।।

११५३ नृती गात्रविक्षेपे = नाचना—
नृत्यति । ननर्त्त । ननृततुः । ननृतुः । ननर्त्तिथ । नर्त्तितासि ।।

३९७—सेऽसिचि कृतचृतछृदतृदनृतः ।। ७ । २ । ५७ ।।

कृत, चृत, छृद, तृद और नृत धातुओं से परे जो सिच्भिन्न सकारादि आर्द्धधातुक, उसको विकल्प करके इट् का आगम होवे ।

नर्तिष्यति; नर्त्स्यति । नर्तिषति; नर्तिषाति । नर्त्सति; नर्त्साति । नृत्यति; नृत्याति । नृत्यतु । नृत्य । नृत्यानि । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्त्तीत् । अनर्त्तिष्यत्; अनर्त्स्यत् ।।

११५४ त्रसी उद्वेगे = भय होना—(१८८) सूत्र से श्यन् विकल्पपक्ष में शप् । त्रस्यति; त्रसति । तत्रास । विकल्प से एत्वाभ्यास लोप (२२९) से होकर—त्रेसतुः, तत्रसतुः । त्रेसुः; तत्रसुः । त्रसितासि । त्रसिष्यति । त्रासिषति; त्रासिषाति । त्रस्यति; त्रस्याति । त्रसति; त्रसाति । त्रस्यतु; त्रसतु । अत्रस्यत्; अत्रसत् । त्रस्येत् । त्रसेत् । त्रस्यात् । अत्रासीत् । अत्रसीत् । अत्रसिष्यत् ।।

११५५ कुथ पूतीभावे = दुर्गन्ध—कुथ्यति । चुकोथ ।।

११५६ पुथ हिंसायाम्—पुथ्यति । पुपोथ ।।

११५७ गुध परिवेष्टने = लपेटना—गुध्यति। जुगोध। जुगुधतुः गोधितासि। गोधिष्यति। गोधिषति; गोधिषाति। गुध्यतु। अगुध्यत्। गुध्येत्। गुध्यात्। अगोधीत्। अगोधिष्यत्॥

११५८ क्षिप प्रेरणे = फेंकना—यह धातु अनिट् है।

क्षिप्यति। चिक्षेप। चिक्षेपिथ; चिक्षेप्थ। क्षेप्तासि। क्षेप्स्यति। क्षेप्सति; क्षेप्साति। क्षिप्यतु। अक्षिप्यत्। क्षिप्येत्। क्षिप्यात्। अक्षैप्सीत्। अक्षैप्ताम्। अक्षैप्सुः। अक्षेप्स्यत्॥

११५९ पुष्प विकसने = विभाग होना—पुष्प्यति। पुपुष्प॥

११६०–६३ तिम, तीम, ष्टिम, ष्टीम आर्द्रीभावे = गीला होना—

तिम्यति। तीम्यति। स्तिम्यति। स्तीम्यति। तितेम। तितमतुः। तितीम॥ तिस्तेम। तिस्तीम॥

११६४ व्रीड चोदने लज्जायां च = प्रेरणा और लज्जा—

व्रीड्यति। विव्रीड॥

११६५ इष गतौ—इष्यति। इयेष (१५३) इयङ्। ईषतुः। ईषुः। इयेषिथ। एषितासि। एषिष्यति। एषिषति; एषिषाति। इष्यति; इष्याति। इष्यतु। ऐष्यत्। इष्येत्। इष्यात्। ऐषीत्। ऐषिष्यत्॥

११६६–६७ षह, षुह चक्यर्थे = तृप्त होना वा मारना—

सह्यति। सुह्यति। ससाह। सेहतुः। सेहुः। सेहिथ। सुसोह। सहिता; सोढा, (२१२; २३०)। सहिष्यति। साहिषति; साहिषाति। सह्यति; सह्याति। सह्यतु। असह्यत्। सह्येत्। सह्यात्। असहीत्, (१६२) से वृद्धि का निषेध। असहिष्यत्॥

११६८–६९ जॄष्, झॄष् वयोहानौ = अवस्था की हानि—

इन दोनों धातुओं के अन्त्य षकार की इत्संज्ञा होती है। जीर्यति, (२६५; १९७)। जजार। 'जॄ+अतुस्' = जेरतुः; (२२९) से एत्वाभ्यास

लोप का विकल्प और जजरतुः; (२५८) से अप्राप्त गुण। जेरुः; जजरुः। जेरिथ; जजरिथ। जेरथुः; जजरथुः। जरीतासि, जरितासि, (२६४)।

जरीष्यति; जरिष्यति। जारीषति; जारीषाति। जारिषति; जारिषाति। जरीषति; जरीषाति। जरिषति; जरिषाति। जीर्यति; जीर्याति। जीर्यतु। अजीर्यत्। जीर्येत्। जीर्यात्।

लुङ में विकल्प से अङ् (१५४) से और ऋवर्णान्त को अङ् के परे गुण (२५७) से होकर— अजरत्। अजरताम्। अजरन्। अङ् के निषेध पक्ष में—अजारीत्, (२६६)। अजारिष्टाम्। अजरीष्यत्; अजरिष्यत्।

झीर्यति। जझार। जझरतुः। अझारीत्। अझारिष्टाम्॥

इति दिवादय उदात्ता उदात्तेतः क्षिपिवर्जं षड्विंशतिः परस्मैपदिनः॥

ये दिव आदि २६ छब्बीस धातु क्षिप को छोड़ के सेट् परस्मैपदी हैं॥

अथ षूङादयस्त्रयोदशात्मनेपदिनः॥

११७० षूङ् प्राणिप्रसवे=प्राणियों की उत्पत्ति—

सूयते। सूयेते। सूयन्ते। सषुवे। वलादि लिट् में विकल्प से इट् (१४०) से प्राप्त है, उसका बाधक—निषेध—(श्र्युकः क्किति॥ ७। २। ११) है, उसका भी अपवाद नियामक (१४८) होने से नित्य इट् होता है—सुषुविषे। सुषुविवहे। सुषुविमहे।

सोतासे; सवितासे, (१४०)। सविष्यते; सोष्यते। साविषतै; सविषातै। सौषतै; सौषातै। सूयतै; सूयातै। सूयताम्। असूयत। सूयेत। सविषीष्ट; सोषीष्ट। असविष्ट; असोष्ट। असविष्यत; असोष्यत॥

११७१ दूङ् परितापे=दुःख होना—दूयये। दुदुवे। दवितासे॥

आत्मनेभाषावुदात्तौ॥

ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं॥

११७२ दीङ् क्षये=नाश होना वा वसना—दीयते ।

३९८--दीङो युडचि क्ङिति ।। ६ । ४ । ६३ ।।

दीङ् धातु से परे जो अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक, उसको युट् का आगम होवे ।

दिदीये, (४३) वार्त्तिक से युट् के आगम को सिद्ध मान कर यण् (१५६) से नहीं होता । दिदीयिषे । दिदीयिढ्वे; दिदीयिध्वे । दिदीयिवहे ।

३९९--मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ।। ६ । १ । ५० ।।

एच् का निमित्त अशित् वा ल्यप् परे हो तो मीनाति, मिनोति और दीङ् धातुओं को आकारादेश होवे ।

दातासे । दास्यते । दासतै; दासातै । दीयताम् । अदीयत । दीयेत । दासीष्ट । अदास्त । अदास्थाः । इस दीङ् धातु की घुसंज्ञा (२४६) से नहीं होती क्योंकि यह न दा, धा और न उनकी प्रकृति है । अदास्यत ।।

११७३ डीङ् विहायसागतौ=आकाश में उड़ना—

यह धातु सेट् है ।

डीयते । डीयेते । डिड्ये, (१५६) से यण् । डयितासे । डयिष्यते । डायिषतै; डायिषातै । डीयताम् । अडीयत । डीयेत । डयिषीष्ट । अडयिष्ट । अडयिष्यत ।।

११७४ धीङ् आधारे—धीयते । दिध्ये ।।

११७५ मीङ् हिंसायाम्—मीयते ।।

११७६ रीङ् श्रवणे=सुनना—रीयते । रिर्ये । रेतासे । रेष्यते । रैषतै; रैषातै । रीयतै; रीयातै । रीयताम् । अरीयत । रीयेत । रेषीष्ट । अरेष्ट । अरेष्यत ।।

११७७ लीङ् श्लेषणे=मिलना—लीयते ।

४००--विभाषा लीयतेः॥ ६ । १ । ५१ ॥

एच् विषय में शित्भिन्न प्रत्यय और ल्यप् परे हो तो लीयति धातु को आकारादेश विकल्प करके होवे ।

लातासे; लेतासे । लास्यते; लेष्यते । एच् विषय के कहने से— लिल्ये । लिल्याते आदि में आकारादेश नहीं होता । लासतै; लासातै । लैषतै । लैषातै । लीयताम् । अलीयत । लीयेत । लासीष्ट । लेषीष्ट । अलास्त; अलेष्ट । अलास्यत; अलेष्यत ॥

११७८ व्रीङ् वृणोत्यर्थे=स्वीकार—व्रीयते । विव्रिये । यहां संयोगपूर्वक के होने से यण् (१५६) से नहीं होता ॥ वृत् ॥

स्वादय ओदितः (ग०)—षूङ् धातु से लेकर यहां तक ओदित् धातु हैं । ओदित् होने का फल कृदन्त में आवेगा ॥

११७९ पीङ् पाने=पीना—पीयते । पिप्ये । पेतासे । पेष्यते । पैषतै; पैषातै । पीयताम् । अपीयत । पीयेत । पेषीष्ट । अपेष्ट । अपेष्यत ॥

११८० माङ् माने=तोलना—मायते । ममे ॥

११८१ ईङ् गतौ—ईयते । अयाञ्चक्रे । अयाम्बभूव । अयामास । एतासे । एष्यते । ऐषतै; ऐषातैः । ईयताम् । ऐयत । ईयेत । एषीष्ट । ऐष्ट । ऐष्यत ॥

११८२ प्रीङ् प्रीणने=तृप्ति—प्रीयते । पिप्रिये ॥

दीङादय आत्मनेपदिनो डीङ्वर्जमनुदात्ताः ॥

दीङ् आदि ११ धातु आत्मनेपदी डीङ् को छोड़कर अनिट् हैं ॥

अथ परस्मैपदिनश्चत्वारः ॥

अब ४ चार परस्मैपदी धातु कहते हैं—

११८३ शो तनूकरणे = महीन करना—

४०१-ओतः श्यनि ॥ ७ । ३ । ७१ ॥

श्यन् प्रत्यय परे हो तो धातु के अन्त्य ओकार का लोप होवे ।

श्यति । श्यतः । श्यन्ति । शशौ । शशतुः । शशिथ; शशाथ । शातासि । शास्यति । श्यतु । श्य । अश्यत् । श्येत् । शायात् । लुङ् विषय में विकल्प से सिच्लुक् (२४९) से—अशात् । अशाताम् । अशुः । पक्ष में—अशासीत्, (२५१) अशास्यत् ॥

११८४ छो छेदने = छेदना—

ओकारलोप (४०१) से—छ्यति । चच्छौ । छातासि । अन्य पूर्ववत् ॥

११८५ षो अन्तकर्मणि = कर्म की समाप्ति—

स्यति । ससौ । सातासि । सास्यति । सासति; सासाति । स्यतु । अस्यत् । स्येत् । सेयात्, (२४७) । असात् । (२४९) । असासीत्, (२५१) । असास्यत् ॥

११८६ दो अवखण्डने = काटना—द्यति, (४०१) । ददौ । दातासि । दास्यति । दासति; दासाति । द्यतु । अद्यत् । द्येत् । देयात्, घुसंज्ञा के होने से (२४७) से एकार । अदात्, (८९) से सिच्लुक । अदाताम् । अदुः । अदास्यत् ॥

श्यतिप्रभृतयोऽनुदात्ताः ॥

शो आदि ४ चार धातु अनिट् हैं ॥

अथात्मनेपदिनः पञ्चदश ॥

अब १५ पन्द्रह धातु आत्मनेपदी कहते हैं—

११८७ जनी प्रादुर्भावे = उत्पत्ति वा अवस्थान्तर से प्रकट होना—

४०२–ज्ञाजनोर्जा ।। ७ । ३ । ७९ ।।

शित् प्रत्यय परे हो तो ज्ञा और जन धातु को जा आदेश होवे ।

अनेकाल् होने से सब के स्थान में होता है—जायते । 'जन्+एश'=जज्ञे, (२१४) से उपधा अकार का लोप होकर ज्न् के संयोग में तवर्ग नकार को चवर्ग ञकार हो जाता है । जज्ञाते । जज्ञिरे । जनितासे । जनिष्यते । जानिषतै; जानिषातै । जायतै; जायातै । जायते; जायाते । जायताम् । अजायत । जायेत । जनिषीष्ट ।

लुङ् में च्लि के स्थान में चिण् (१९४) से और चिण् से परे प्रत्यय का लुक् (१९५) से होकर—'जन्+चिण्' यहां वृद्धि प्राप्त है, इसलिये—

४०३–जनिवध्योश्च ।। ७ । ३ । ३५ ।।

जन और वध धातु की उपधा को वृद्धि न होवे, ञित् णित् कृत् और चिण् परे हों तो ।

अजनि और जिस पक्ष में चिण् (१९४) से न हुआ वहां—अजनिष्ट । अजनिषाताम् । अजनिषत ।।

११८८ दीपी दीप्तौ—दीप्यते । दिदीपे । दिदीपाते । दीपितासे दीपिष्यते । दीपिषतै, दीपिषातै । दीप्यताम् । अदीप्यत । दीप्येत । दीपिषीष्ट । अदीपि, (१९४; १९५) । अदीपिष्ट । अदीपिष्यत ।।

११८९ पूरी आप्यायने=बढ़ना—

पूर्यते । पुपूरे । अपूरि, (१९४; १९५) । अपूरिष्ट ।।

११९० तूरी गतित्वरणहिंसनयोः=शीघ्र चलना और मारना—

तूर्यते । तुतूरे । अतूरिष्ट ।।

११९१-९२ धूरी, गूरी हिंसागत्योः—

धूर्यते । दुधूरे । गूर्यते । जुगूरे ।।

११९३-९४ घूरी, जूरी हिंसावयोहान्योः = हिंसा और अवस्था की हानि—घूर्यते। जुघूरे। जूर्यते। जुजूरे॥

११९५ शूरी हिंसास्तम्भनयोः = मारना और रोकना—

शूर्यते। शुशूरे॥

११९६ चूरी दाहे—चूर्यते। चुचूरे। चूरितासे। चूरिष्यते। चूरिषतै; चूरिषातै। चूर्यताम्। अचूर्यत। चूर्येत। चूरिषीष्ट। अचूरिष्ट। अचूरिष्यत॥

११९७ तप ऐश्वर्ये = सम्पत् का होना—यह धातु अनिट् है। तप्यते। तेपे। तेपाते। तेपिरे। तेपिषे। तप्तासे। तप्सते। ताप्सतै; ताप्सातै। तप्यताम्। अतप्यत। तप्येत। तप्सीष्ट। अतप्त। अतप्साताम्। अतप्सत। अतप्स्यत॥

११९८ वावृतु वरणे = स्वीकार—यह धातु अनेकाच् है। वावृत्यते। अनेकाच् होने से लिट् में आम् (१७०) से—वावर्ताञ्चक्रे। वावर्ताम्बभूव। वावर्तामास।

वेद में—ववावृते। ववावृताते। वावर्त्तितासे। वावर्त्तिष्यते। अवावर्त्तिष्ट।

११९९ क्लिश उपतापे = दुःख—

क्लिश्यते। चिक्लिशे। क्लेशितासे। अक्लेशिष्ट॥

१२०० काशृ दीप्तौ—

काश्यते। चकाशे। अकाशिष्ट। अकाशिष्यत॥

१२०१ वाशृ शब्दे—वाश्यते। ववाशे। वाशितासे। वाशिष्यते। वाशिषतै; वाशिषातै। वाश्यताम्। अवाश्यत। वाश्येत। वाशिषीष्ट। अवाशिष्ट। अवाशिष्यत॥

जन्यादयोऽनुदात्तेत आत्मनेपदिनस्तपिवर्जमुदात्ताः॥

जनी आदि सब १५ पन्द्रह धातु आत्मनेपदी और तप को छोड़ कर सेट् हैं॥

———

अथ पञ्च स्वरितेतः ॥

अब ५ पांच धातु उभयमदी कहते हैं—

१२०२ मृष तितिक्षायाम्=सहना—मृष्यति । मृष्यते । ममर्ष । ममृषे ।मर्षिता । मर्षिष्यति । मर्षिषतै; मर्षिषातै । मृष्यतु । मृष्यताम् । अमृष्यत् । अमृष्यत । मृष्येत् । मृष्येत । मृष्यात् । मर्षिषीष्ट । अमर्षीत् । अमर्षिष्ट । अमर्षिष्यत् । अमर्षिष्यत ॥

१२०३ ईशुचिर् पूतीभावे=पवित्रता—

इस धातु का ई और इर् भाग इत्संज्ञक होता है । शुच्यति । शुच्यते । शुशोच । शुशुचे । अशुचत्, (१३८) से इरित् होने से अङ् विकल्प से; अशोचीत् अशोचिष्ट ।

उदात्तौ स्वरितेतौ ॥

ये दोनों धातु सेट् उभयपदी हैं ॥

१२०४ णह बन्धने=बांधना—नह्यति । नह्यते । ननाह । नेहतुः । नेहुः । नेहिथ; 'नह+थल्' यहां अनिट् पक्ष में नह धातु के ह को (२०३) से ढकार पाता है । इसलिये—

४०४—नहो धः ॥ ८ । २ । ३४ ॥

नह धातु के हकार को धकार आदेश होवे, झल् परे वा पदान्त में ।

ननद्ध । नेहथुः । नेह । नेहे । नेहाते । नद्धासि । नद्धासे । नत्स्यति । नात्सति; नात्साति । नह्यताम् । अनह्यत । नह्येत । नत्सीष्ट । नह्यात् । अनात्सीत्, (१३५) । अनाद्धाम् । अनात्सुः । अनात्सीः । अनाद्धम् । अनाद्ध । अनात्सम् । अनात्स्व । अनात्स्म । अनद्ध । अनत्साताम् । अनत्सत । अनद्धाः । अनत्स्यत् । अनत्स्यत ॥

१२०५ रञ्ज रागे=रंगना वा अति प्रीति—

उपधा अनुनासिक का लोप (१३९) से होकर—रज्यति । रज्यते । ररञ्ज । ररञ्जे । रङ्क्तासि । रङ्क्तासे । रङ्क्ष्यति । रङ्क्ष्यते । रज्यात् । रङ्क्षीष्ट । अरङ्क्त । अरङ्क्षाताम् । अरङ्क्षत । अराङ्क्षीत् । अराङ्क्ताम् । अराङ्क्षुः ॥

१२०६ शप आक्रोशे = कोसना—

शप्यति । शप्यते । शशाप । शेपतुः । शेपिथ; शशप्थ । शेपे । शेपाते । शप्तासि । शप्स्यति । शाप्सति; शाप्साति । शाप्सतै; शाप्सातै । शप्यतु । शप्यताम् । अशप्यत् । अशप्यत । शप्येत् । शप्येत । शप्यात् । शप्सीष्ट । अशाप्सीत् । अशाप्ताम् । अशाप्सुः । अशप्त । अशप्साताम् । अशप्स्यत् । अशप्स्यत ॥

णहादयस्त्रयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः ॥

णह आदि ३ तीन धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथैकादशानुदात्तेतः ॥

अब ११ ग्यारह धातु आत्मनेपदी कहते हैं—

१२०७ पद गतौ—पद्यते प्रतिपद्यते । प्रपद्यते । पेदे । पेदाते । पेदिरे पत्तासे । पत्स्यते । पात्सतै; पात्सातै । पद्यताम् । अपद्यत । पद्येत । पत्सीष्ट

४०५–चिण् ते पदः ॥ ३ । १ । ६० ॥

पद धातु से परे जो च्लि उसके स्थान में चिण् होवे त शब्द परे हो तो। अपादि, (१९५) । अपत्साताम् । अपत्सत । अपत्स्यत ॥

१२०८ खिद दैन्ये = दीनता—

खिद्यते । चिखिदे । खेत्तासे । खित्सीष्ट, (१६३) । अखित्त ॥

१२०९ विद सत्तायाम्=होना—विद्यते । विविदे । वेत्तासे । वेत्स्यते । वेत्सतै; वेत्सातै । विद्यताम् । अविद्यत । विद्येत । वित्सीष्ट, (१६३) । अवित्त । अवित्साताम् । अवेत्स्यत ॥

१२१० बुध अवगमने=ज्ञान होना—बुध्यते । बुबुधे । बोद्धासे । भोत्स्यते, (२०४) । भोत्सतै; भोत्सातै । बुध्यताम् । अबुध्यत । बुध्येत । भुत्सीष्ट, (१६३) । अबोधि (१९४); अबुद्ध । अभोत्स्यत ॥

१२११ युध सम्प्रहारे=युद्ध करना—युध्यते । युयुधे । योद्धासे । योत्स्यते । युध्येत । युत्सीष्ट । अयुद्ध । अयुत्साताम् ॥

१२१२ अनो रुध कामे=कामना—

इस धातु के प्रयोग बहुधा अनुपूर्वक आते हैं इसलिये इसके पूर्व अनु उपसर्ग पढ़ा है—अनुरुध्यते । अनुरुरुधे । अनुरोद्धासे । अन्वरुध्यत । अनुरुत्सीष्ट । अन्वरुद्ध । अन्वरुत्साताम् ॥

१२१३ अण प्राणने=श्वास का चलना—

यह धातु सेट् है । अण्यते । आणे । आणाते । आणिरे । अणितासे । अणिष्यते । आणिषतै; आणिषातै । अण्यताम् । आण्यत । अण्येत । अणिषीष्ट । आणिष्ट । आणिष्यत ॥

१२१४ मन ज्ञाने—मन्यते । मेने । मन्तासे । मंसीष्ट । अमंस्त ॥

१२१५ युज समाधौ=चित्त की वृत्तियों को रोकना—

युज्यते । युयुजे । योक्तासे । योक्ष्यते । योक्षतै; योक्षातै । युज्यताम् । अयुज्यत । युज्येत । युक्षीष्ट । अयुक्त । अयुक्षाताम् । अयोक्ष्यत ॥

१२१६ सृज विसर्गे=रचना व त्यागना—

सृज्यते । ससृजे । स्रष्टासे (२३२) से ज को षत्व और अम् आगम (२७८) से । स्रक्ष्यते । स्राक्षतै, स्राक्षातै । सृज्यताम् । असृज्यत । सृज्येत । सृक्षीष्ट । असृक्त । असृक्षाताम् । असृक्षत । अस्रक्ष्यत ॥

१२१७ लिश अल्पीभावे = थोड़ा होना—लिश्यते । लिलिशे । लेष्टाशे, (२३३) से षत्व । लेक्ष्यते । लेक्षतै; लेक्षातै । लिश्यताम् । अलिश्यत । लिश्येत । लिक्षीष्ट, (१६३) । अलिष्ट । अलेक्ष्यत ॥

पदादयोऽनुदात्त त आत्मनेभाषा अण्यतिवर्जमनुदात्ताः ॥

पद आदि सब ११ ग्यारह धातु आत्मनेपदी और अण् को छोड़ कर अनिट् हैं ॥

अथागणान्तात्परस्मैपदिनः सप्तषष्ठिः ॥

अब इस दिवादिगण के अन्तपर्यन्त ६७ सड़सठ धातु परस्मैपदी कहते हैं—

१२१८ राधोऽकर्मकाद् वृद्धावेव—अकर्मक राध धातु से वृद्धि अर्थ में ही श्यन् प्रत्यय होता है—राध्यति । रराध । रराधतुः, यहां हिंसा अर्थ के न होने से (४२३) सूत्र नहीं लगता । रराधिथ । राद्धासि । रात्स्यति । रात्सति; रात्साति । राध्यतु । अराध्यत् । राध्येत् । राध्यात् । अरात्सीत् । अराद्धाम् । अरात्सुः । अरात्स्यत् ॥

१२१९ व्यध ताड़ने = पीड़ा देना—विध्यति (२८६) से सम्प्रसारण । विध्यतः । विध्यन्ति । विव्याध, (२८२) विविधतुः । विविधुः । विव्यधिथ; विव्यद्ध । व्यद्धासि । व्यत्स्यति । व्यत्सति; व्यत्साति । विध्यतु । अविध्यत् । विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् । अव्याद्धाम् । अव्यात्सुः । अव्यात्स्यत् ॥

१२२० पुष पुष्टौ = पुष्ट करना—पुष्यति । पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टासि । पोक्ष्यति । पोक्षति; पोक्षाति । पुष्यतु । अपुष्यत् । पुष्येत् । पुष्यात् । अपुषत्, (२१७) से अङ् । इस सूत्र में 'पुषादि' करके इसी पुष से इस गण के अन्तपर्यन्त धातुओं का ग्रहण होता है । अपुषताम् । अपुषन् । अपोक्ष्यत् ॥

१२२१ शुष शोषणे = सोखना—शुष्यति । अशुषत् ॥

१२२२ तुष प्रीतौ = प्रसन्नता—तुष्यति । तुष्यतु । अतुषत् ॥

१२२३ दुष वैकृत्ये = विकार को प्राप्त होना—

दुष्यति ॥ अदुषत् ॥

१२२४ श्लिष आलिङ्गने = मिलना—श्लिष्यति । शिश्लेष । श्लेष्टासि । श्लेक्ष्यति । श्लेक्षति; श्लेक्षाति । श्लिष्यतु । अश्लिष्यत् । श्लिष्येत् । श्लिष्यात् ॥

४०६—श्लिष आलिङ्गने ॥ ३ । १ । ४६ ॥

श्लिष धातु से परे जो अनिट् च्लि, उसके स्थान में क्स आदेश होवे, आलिङ्गन ही अर्थ में, अन्यत्र नहीं।

यह सूत्र (२१७) सूत्र का अपवाद है। और आलिङ्गन अर्थ से यहां स्त्री पुरुष' का संयोग समझना चाहिये, किन्हीं जड़ पदार्थों वा अन्य सम्बन्धियों का मिलना नहीं। अश्लिक्षत्।

और जहां आलिङ्गन अर्थ नहीं है, वहां—आश्लिषत् प्रयोग होगा। अश्लिक्षताम् । अश्लिक्षन् । अश्लेक्ष्यत् ॥

१२२५ शक विभाषितो मर्षणे—सहन अर्थ में शक धातु से विकल्प करके श्यन् प्रत्यय होवे, पक्ष में शप् होता है—शक्यति; शकति । शशाक । शेकतुः । शेकिथ; शशक्थ । शक्तासि । शक्ष्यति । शाक्षति; शाक्षाति । शक्यतु । अशक्यत् । शक्येत् । शक्यात् । अशकत्, (२१७) अशक्ष्यत् ॥

१२२६ ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे = पसीना छूटना—स्विद्यति । सिष्वेद । सिष्वेदिथ । स्वेत्तासि । स्वेत्स्यति । स्वेत्सति । स्वेत्साति । स्विद्यतु । अस्विद्यत् । स्विद्येत् । स्विद्यात् । अस्विदत् । अस्वेत्स्यत् ॥

१२२७ क्रुध क्रोधे—क्रुध्यति । चुक्रोध । क्रोद्धासि । अक्रुधत् ॥

१२२८ क्षुध बुभुक्षायाम् = भोजन की इच्छा—

क्षुध्यति । चुक्षोध । अक्षुधत् ॥

१२२९ शुध शौचे = शुद्धि—शुध्यति । शुशोध । शोद्धा । अशुधत् ॥

१२३० षिधु संराधौ = सिद्धि होना—

सिध्यति । सिषेध । सिषिधतुः । सिषेधिथ । सेद्धासि । सेत्स्यति । सेत्सति; सेत्साति । सिध्यति; सिध्याति । सिध्यतु । असिध्यत् । सिध्येत् । सिध्यात् । असिधत् । असेत्स्यत् ॥

राधादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैपदिनः ॥

राध आदि १३ धातु अनिट् परस्मैपदी हैं ॥

१२३१ रध हिंसासंराध्योः = हिंसा और सिद्धि—

रध्यति । ररन्ध, (१६५) से नुम् । ररन्धतुः । ररन्धिथ ।

४०७—रधादिभ्यश्च ॥ ७ । २ । ४५ ॥

रध आदि (रध, नश, तृप, दृप, द्रुह, मुह, ष्णुह, ष्णिह) धातुओं से परे वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम होवे ।

ररद्ध । ररन्धिव; रेध्व । ररन्धिम; रेध्म ।

४०८—नेट्यलिटि रधेः ॥ ७ । १ । ६२ ॥

लिट् लकार से भिन्न इडादि प्रत्यय परे हो तो रध धातु को नुम् का आगम न होवे ।

इस सूत्र के नियम से इडादि लिट् में तो नुम् होता है । जो कदाचित् ऐसा नियम करते कि इडादि लिट् में ही नुम् होवे तो इससे विपरीत नियम का सम्भव था कि लिट् में जो नुम् हो तो इडादि में ही होवे । इस नियम से 'ररन्धतुः' आदि में भी निषेध हो जाता—

रधितासि; रद्धासि । रधिष्यति; रत्स्यति । राधिषति; राधिषाति । रधिषति; रधिषाति । रात्सति; रात्साति । रध्यति; रध्याति । रध्यतु । अरध्यत् । रध्येत् । रध्यात् । अरधत्, यहां अङ् के परे प्रथम नुम् (१६५) से होकर नलोप (१३९) से होता है । अरधताम् । अरधिष्यत्; अरत्स्यत् ॥

१२३२ णश अदर्शने = नेत्र से न दीखना—

नश्यति। ननाश। नेशतुः। नेशुः। थल् के परे (१४९; २१५) नियम से सेट् पक्ष में—नेशिथ। अनिट् पक्ष में—

४०९—मस्जिनशोर्झलि ।। ७ । १ । ६० ।।

झलादि प्रत्यय परे हो तो मस्ज और नश धातु को नुम् का आगम होवे।

ननंष्ठ, (२३३) से षत्व। नेशथुः। नेश। ननाश; ननश। नेशिव; ननंश्व। नेशिम; ननंश्म। नशितासि; नंष्टासि, (४०७)। नशिष्यति; नङ्क्ष्यति। नङ्क्षति; नङ्क्षाति। नश्यतु। अनश्यत्। नश्येत्। नश्यात्। अनशत्। अनशिष्यत्; अनङ्क्ष्यत् ।।

१२३३ तृप प्रीणने=तृप्ति—यह धातु अनिट् है। तृप्यति। ततर्प। ततृपतुः। थल् में इट् पक्ष में (४०७) से ततर्पिथ; तत्रप्थ (२७५); ततर्प्थ। इसी प्रकार सर्वत्र वलादि आर्द्धधातुक में जानो। तर्पिता; त्रप्ता; तर्प्ता। तर्पिष्यति; त्रप्स्यति; तर्प्स्यति। तर्पिषति; तर्पिषाति। त्रप्सति; त्रप्साति। तर्प्सति; तर्प्साति। तृप्यति; तृप्याति। तृप्यतु। अतृप्यत्। तृप्येत्। तृप्यात्।

लुङ् में प्रथम सिच् पक्ष में (२८०) से, इट् का विकल्प (४०७) से होने से—अतर्पीत्; अत्राप्सीत्, (२७५); अत्रार्प्सीत् और जिस पक्ष में च्लि के स्थान में सिच् (२८०) से न हुआ, वहां अङ् (२१७) से—अतपत्। इस प्रकार चार रूप होते हैं। अतर्पिष्यत्; अत्रप्स्यत्; अतर्प्स्यत् ।।

१२३४ दृपं हर्षमोहनयोः=आनन्द और गर्व—इसके प्रयोग तृप के समान जानो। दृप्यति। अदर्पीत्; अद्राप्सीत्; अदार्प्सीत्। अदृपत् ।।

तृप और दृप दोनों धातु अनिट् हैं परन्तु रधादि में होने से यहां विकल्प से इट् होता है ।।

१२३५ द्रुह जिघांसायाम्=मारने की इच्छा—द्रुह्यति। दुद्रोह। दुद्रोहिथ; (४०७)। अनिट् पक्ष में—

४१०–वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ।। ८ । २ । ३३ ।।

द्रुह, मुह, ष्णुह और ष्णिह धातुओं के हकार को धकारादेश विकल्प करके होवे, झल् परे हो वा पदान्त में।

पक्ष में ढकार हो जाता है। यह सूत्र भी (२०३) सूत्र का अपवाद है—दुद्रोग्ध, घ को जश्त्व; ढकार पक्ष में—दुद्रोढ। द्रोहिता, द्रोग्धा; द्रोढा। द्रोहिष्यति; ध्रोक्ष्यति, यहां घ और ढ दोनों आदेश का एक ही प्रकार का प्रयोग होता है। घकार पक्ष में उसको चर् ककार और ढकार में भी (२०५) से ढ को क हो जाता है।

द्रोहिषति; द्रोहिषाति। ध्रोक्षतिः ध्रोक्षाति। द्रुह्यतु। अद्रुह्यत्। द्रुह्येत्। द्रुह्यात् अद्रुहत्। अद्रोहिष्यत्। अध्रोक्ष्यत् ।।

१२३६ मुह वैचित्ये = विचारशून्य—मुह्यति। मुमोह। मुमोहिथ; मुमोग्ध; मुमोढ। मोहिता; मोग्धा; मोढा। मोहिष्यति; मोक्ष्यति। अमुहत् ।।

१२३७ ष्णुह उद्गिरणे = उगलना—स्नुह्यति। सुष्णोह। सुष्णोहिथ; सुष्णोग्ध; सुष्णोढ। सुष्णुहिव; सुष्णुह्व। स्नोहिता; स्नोग्धाः स्नोढा। स्नोहिष्यति; स्नोक्ष्यति। अस्नुहत् ।।

१२३८ ष्णिह प्रीतौ = प्रीति करना—

स्निह्यति। सिष्णेह। अस्निहत् ।।

वृत्। रधादय समाप्ताः। ये रध आदि (४०७) सूत्र में कहे सेट् धातु समाप्त हुए। पुषादि तो इस गण की समाप्ति पर्यन्त हैं।

उदात्ता उदात्तेतस्तृपिदृपी त्वनुदात्तौ।

रध आदि धातु तृपदृप को छोड़ के सेट् परस्मैपदी हैं ।।

१२३९ शमु उपशमे = शान्ति—

४११–शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ।। ७ । ३ । ७४ ।।

शम आदि आठ धातुओं के अच् को दीर्घ होवे, श्यन् परे हो तो।

शाम्यति । शाम्यतः । शाम्यन्ति । शशाम । शेमतुः । शेमिथ । शमिता । शमिष्यति । शामिषति; शामिषाति । शाम्यतु । अशाम्यत् । शाम्येत् । शम्यात् । अशमत्, (२१७) । अशमिष्यत् ॥

१२४० तमु काङ्क्षायाम् = अभिलाषा—

ताम्यति, (४११) । तताम । तेमतुः । तमितासि । अतमत् ॥

१२४१ दमु उपशमे—दाम्यति । अदमत् ॥

१२४२ श्रमु तपसि खेदे च = तप करना और क्लेश भोगना—श्राम्यति । अश्रमत् ॥

१२४३ भ्रमु अनवस्थाने = स्थिति न होना—भ्राम्यति, (१८८); भ्रमति । बभ्राम । भ्रेमतुः भ्रेमुः, (२२९) से एत्वाभ्यास लोप । विकल्प पक्ष में—बभ्रमतुः । लुङ् में अङ् (२१७) से—अभ्रमत् । अन्य सब प्रयोग भ्वादि के समान जानो ॥

१२४४ क्षमूष् सहने—यह धातु ऊदित् और षित् है । क्षाम्यति । चक्षाम । चक्षमतुः । चक्षमिथ (१४०); चक्षन्थ । चक्षमिव; चक्षण्व । चक्षमिम; चक्षण्म । क्षमिता; क्षन्ता । क्षमिष्यति; क्षंस्यति । क्षांसति; क्षांसाति । क्षाम्यतु । अक्षाम्यत् । अक्षमत् ॥

१२४५ क्लमु ग्लानौ = आनन्द का नाश—

क्लाम्यति (१८८); क्लामति । (१८६) सूत्र से ही शप् और श्यन् दोनों में दीर्घ हो जाता, फिर इसका शमादिकों में यहां पाठ कृदन्त में घिनुण् प्रत्यय होने के लिये है । चक्लाम । चक्लमतुः । क्लमिता । क्लमिष्यति । क्लाम्यतु; क्लामतु । अक्लमत् ॥

१२४६ मदी हर्षे = आनन्द—

माद्यति । ममाद । मेदतुः । मेदिथ । मदिता । मदिष्यति । मादिषति; मादिषाति । माद्यतु । अमाद्यत् । माद्येत् । मद्यात् । अमदत् । अमदिष्यत् ॥

इत्यष्टौ शमादयः ॥

ये (४११) सूत्र में कहे शम आदि आठ धातु समाप्त हुए ॥

१२४७ असु क्षेपणे = फेंकना—

अस्यति । आस । असितासि । अस्यतु ।

४१२–अस्यतेस्थुक् ॥ ७ । ४ । १७ ॥

अङ् परे हो तो अस्यति धातु को थुक् का आगम होवे ।

आस्थत् । आस्थताम् । इस धातु से लुङ् में (२१७) सूत्र से अङ् सिद्ध ही है, फिर (३१६) सूत्र में असु धातु का ग्रहण आत्मनेपद विषय के लिये है ॥

१२४८ यसु प्रयत्ने = पुरुषार्थ—

४१३–यसोऽनुपसर्गात् ॥ ३ । १ । ७१ ॥

उपसर्गरहित यस धातु से परे श्यन् प्रत्यय विकल्प करके होवे, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो ।

पक्ष में शप् होता है—यस्यति; यसति ।

४१४–संयसश्च ॥ ३ । १ । ७२ ॥

संपूर्वक यस धातु से भी श्यन् प्रत्यय विकल्प करके होवे ।

संयस्यति; संयसति । ययास । येसतुः । यसिता । यसिष्यति । यासिषति; यासिषाति । यस्यतु । अयस्यत् । यस्येत् । यस्यात् । अयसत् । अयसिष्यत् ॥

१२४९ जसु मोक्षणे = छूटना—जस्यति । अजसत् ॥

१२५० तसु उपक्षये = नाश—तस्यति । अतसत् ॥

१२५१ दसु च = पूर्व धातु के अर्थ में—दस्यति । अदसत् ॥

१२५२ वसु स्तम्भे = रोकना—

वस्यति । ववास । ववसतुः, (१२८) । अवसत् ।

बादिरित्येके—किन्हीं के मत में यह धातु पवर्गादि है, वहां (१२८) सूत्र न लगने से—बेसतुः । बेसुः प्रयोग बनते हैं ॥

१२५३ व्युष विभागे—व्युष्यति । अव्युषत् ।

ओष्ठ्यादिदन्त्यान्तोऽयमित्येके—

किन्हीं के मत में यह धातु व्युस है—व्युस्यति । अव्युसत् ।

अयकारो वसु इत्यपरे—

कोई के मत में यकाररहित वुस है—वुस्यति । वुवोस । अवुसत् ।

१२५४ प्लुष दाहे—प्लुष्यति । अप्लुषत् ॥

१२५५ बिस प्रेरणे = प्रेरणा—विस्यति । बिबेस । अबिसत् ॥

१२५६ कुस संश्लेषणे—कुस्यति । अकुसत् ॥

१२५७ बुस उत्सर्गे = त्याग—बुस्यति । अबुसत् ॥

१२५८ मुस खण्डने = काटना—मुस्यति । मुमोस । मुमुसतुः । मोसिता । मोसिष्यति । मोसिषति; मोसिषाति । मुस्यतु । अमुस्यत् । मुस्येत् । मुस्यात् । अमुसत् । अमोसिष्यत ॥

१२५९ मसी परिणामे = विकार—

मस्यति । ममास । मेसतुः । अमसत् ॥

१२६० लुठ विलोडने - विलोना—लुठ्यति । अलुठत् ॥

१२६१ उच समवाये = नित्य सम्बन्ध—उच्यति । उवोच । ऊचतुः । ऊचुः । ओचिता । ओचिष्यति । ओचिषति, ओचिषाति । उच्यतु । औच्यत् । उच्येत् । उच्यात् । औचत् । मा भवानुचत् । औचिष्यत् ॥

१२६२-६३ भृशु भ्रंशु अधःपतने = नीचे गिरना—

भृश्यति । बभर्श । अभृशत् । भ्रंश्यति । बभ्रंश । अभ्रशत्, (१३९) ॥

१२६४ वृश वरणे = स्वीकार—वृश्यति । अवृशत् ॥

१२६५ कृश तनूकरणे = सूक्ष्म करना—कृश्यति । अकृशत् ॥

१२६६ ञितृष पिपासायाम् = पीने की इच्छा—

तृष्यति । अतृषत् ॥

१२६७ हृष तुष्टौ = सन्तोष—हृष्यति । अहृषत् ॥

१२६८-६९ रुष, रिष हिंसायाम् = मारना—रुष्यति । रिष्यति । रुरोष । रिरेष । रोषिता; (२१२) रोष्ठा; रेषिता; रेष्टा । अरुषत् । अरिषत् ॥

१२७० क्षिप क्षेपे = फेंकना—क्षिप्यति । अक्षिपत् ॥

१२७१ कुप क्रोधे—कुप्यति । अकुपत् ।

१२७२ गुप व्याकुलत्वे = व्याकुलता—गुप्यति । अगुपत् ॥

१२७३-७५ युप, रुप, लुप विमोहने = मोहित करना—

युप्यति । रुप्यति । लुप्यति । अयुपत् । अरुपत् ।

यहां लुप धातु सेट् ही है और अनिट् धातुओं में जो लुप गिनाया है, वह तुदादिगण का साहचर्य्य से समझा जाता है—अलुपत् ॥

१२७६ लुभ गार्ध्ये = आकांक्षा—लुभ्यति । लुलोभ । लुलुभतुः । लोभिता; (२१२) लोब्धा । अलुभत् ॥

१२७७ क्षुभ सञ्चलने = चलायमान होना—क्षुभ्यति । अक्षुभत् ॥

१२७८-७९ णभ, तुभ हिंसायाम्—

नभ्यति । ननाभ । नेभतुः । अनभत् । तुभ्यति । अतुभत् ॥

१२८० क्लिदू आर्द्रीभावे = गीलापन—

क्लिद्यति । चिक्लेद । चिक्लेदिथ, ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) से; चिक्लेत्थ । चिक्लदिव; चिक्लद्व । क्लेदिता; क्लेत्ता । अक्लिदत् ॥

१२८१ ञिमिदा स्नेहने = प्रीति वा चिकनाई—

४१५—मिदेर्गुणः ॥ ७ । ३ । ८२ ॥

मिद धातु के इक् भाग को गुण होवे, शित् प्रत्यय परे हो तो ।

मेद्यति । मेद्यतः । मेद्यन्ति, यहां श्यन् के ङित् होने से गुण प्राप्त नहीं था । मिमेद । मिमिदतुः । अमिदत् ॥

१२८२ ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः—क्ष्विद्यति । अक्ष्विदत् ॥

१२८३ ऋधु वृद्धौ—ऋध्यति। आनर्ध। आनृधतुः, (१४७; ११०)। अर्धिता। अर्धिष्यति। अर्धिषति; अर्धिषाति। ऋध्यतु। आर्ध्यत्। ऋध्येत्। ऋध्यात्। आर्धत्। आर्धिष्यत्॥

१२८४ गृधु अभिकांक्षायाम् - मिलने की इच्छा—

गृध्यति। जगर्ध। जगृधतुः। अगृधत्॥

जो मिद वा णभ आदि धातु भ्वादिगण में पढ़ चुके हैं, उनका पाठ श्यन् वा अङ् आदि विशेष कार्य्यों के लिये किया है। इसी प्रकार अन्य सब गणों में जानो॥

वृत् पुषादयः। (२१७) सूत्र में कहे पुषादि धातु पूरे हुए॥

इत्युदात्ता उदात्तेतः। ये शम आदि सब धातु सेट् परस्मैपदी हैं॥

दिवादिगण भी भ्वादिगण के समान आकृतिगण है। जिससे—क्षीयते। मृष्यति आदि प्रयोग बनते हैं॥

इति श्यन्विकरणो दिवादिगणः समाप्तः॥ ४॥

यह श्यन् विकरणवाला दिवादिगण समाप्त हुआ॥४॥

---

(५) अथ स्वादिगणः ॥

अथ दशोभयतोभाषाः ॥

१२८५ षुञ् अभिषवे = यन्त्र से रस खींचना वा राज्याधिकार देना—

४१६—स्वादिभ्यः श्नुः । ३ । १ । ७३ ॥

सु आदि धातुओं से शप् का बाधक श्नु प्रत्यय होवे, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो ।

विकरणस्थ उकार को गुण होकर—सुनोति । सुनुतः । सुन्वन्ति, (२६१) । सुनोषि । सुनुथः । सुनुथ । सुनोमि । सुन्वः, (२००); सुनुवः । सुन्मः । सुनुमः । सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुषाव । सुषुवे । सोता । सोष्यति । सोष्यते । सौषति; सौषाति । सौषतै; सौषातै । सुनोतु; सुनुतात् । सुनु, (२०१) । सुनवानि । सुनवाव । सुनवाम । सुनुताम् । असुनोत् । असुनुत । सुनुयात् । सुन्वीत । सूयात् । सोषीष्ट । असावीत् (३३०) । असोष्ट । असोष्यत् । असोष्यत ।

१२८६ षिञ् बन्धने = बांधना—

सिनोति । सिषाय । सिष्ये । सेता । सेष्यति ॥

१२८७ शिञ् निशाने = तीक्ष्ण करना—शिनोति । शिनुते ॥

१२८८ डुमिञ् प्रक्षेपणे = फेंकना—मिनोति । मिनुते । ममौ, (३९९) से आकारादेश होकर आकारान्तों के तुल्य रूप जानो । एच्विषय में अ. ्कारादेश के कहने से—मिम्यतुः । मिम्युः आदि में नहीं होता ।

ममिथ; ममाथ। मिम्ये। मिम्याते। मिम्यिरे। माता। मिनोतु। मीयात् (१६०) से दीर्घ। मासीष्ट। अमासीत्। अमासिष्टाम्। अमास्त। अमास्यत्। अमास्यत॥

१२८९ चिञ् चयने = जोड़ना—चिनोति। चिनुतः। चिनुते।

४१७—विभाषा चेः ॥७।३।५८॥

सन् और लिट् परे हों तो अभ्यास से परे चिञ् धातु को विकल्प करके कुत्व होवे।

चिकाय। चिक्यतुः। चिकयिथ। चिचाय। चिच्यतुः। चिक्ये; चिच्ये। चेता। चेष्यति। चेष्यते। चैषति; चैषाति। चैषतै; चैषातै। चिनोतु। चिनुताम्। अचिनोत्। अचिनुत। चिनुयात्। चिन्वीत। चीयात्। चेषीष्ट अचैषीत्। अचेष्ट। अचेष्यत्। अचेष्यत॥

१२९० स्तृञ् आच्छादने—स्तृणोति। स्तृणुते। तस्तार। तस्तरतुः, (२५३)। तस्तरुः। तस्तरिथ; तस्तर्थ। तस्तरे। तस्तराते। स्तर्ता। स्तर्यात्, (२५४)। स्तर्यास्ताम्।

४१८—ऋतश्च संयोगादेः ॥ ७। २। ४३॥

संयोगादि ऋकारान्त धातु से परे आत्मनेपद विषय में जो लिङ् सिच्, उसको विकल्प करके इट् का आगम होवे।

स्तरिषीष्ट; स्तृषीष्ट, (२४०)। अस्तरिष्ट; अस्तृत। अस्तार्षीत्। अस्तार्ष्टाम्॥

१२९१ कृञ् हिंसायाम्—कृणोति। कृणुते। चकार। चकर्थ, (१४८)। चक्रे। कर्त्ता। करिष्यति। करिष्यते। कार्षति; कार्षाति। कार्षतै; कार्षातै। कृणोतु। कृणुताम्। अकृणोत्। अकृणुत। कृणुयात्। कृण्वीत। क्रियात्, (२३९)। कृषीष्ट, (२४०)। अकार्षीत्। अकृत। अकरिष्यत्। अकरिष्यत॥

१२९२ वृञ् वरणे = स्वीकार—वृणोति । वृणुते । ववार । वव्रतुः ।

४१९—बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे ।। ७ । २ । ६४ ।।

बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ, ववर्थ इन शब्दों में थल् के परे वेद विषय में इट् का अभाव निपातन किया है ।

'भू' धातु का वेद में—बभूथ । लोक में—बभूविथ । आङ् पूर्वक 'तनु' धातु का वेद में—आततन्थ । लोक में—आतेनिथ । 'हृ प्रसह्यकरणे' जुहोत्यादि धातु का लिट् लकार उत्तमपुरुष के बहुवचन में जगृम्भ—वेद में, जगृहिम—लोक में ।

तथा इसी वृञ् धातु का ववर्थ—वेद में और इसी प्रमाण से लोक में इट् होता है—ववरिथ । ववृव । ववृम, (१४८) वव्रे । ववृषे । ववृवहे । ववृमहे । वरिता; वरीता, (२६४) । वरिष्यति; वरीष्यति । वरिष्यते; वरीष्यते । वारीषति; वारीषाति । वारिषति; वारिषाति । वृणोतु । वृणुताम् । अवृणोत् । अवृणुत । वृणुयात् । वृण्वीत । व्रियात् । व्रियास्ताम् ।।

४२०—लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ।। ७ । २ । ४२ ।।

वृङ्, वृञ् और ऋकारान्त धातुओं से परे जो आत्मनेपदविषयक लिङ्, सिच्, उसको विकल्प करके इट् का आगम होवे ।

वृङ् वृञ् ऋकारान्त सब धातु सेट् हैं, इसलिये प्राप्तविभाषा है । अब इट् को दीर्घ (२६४) से प्राप्त है, उसका निषेध—

४२१—न लिङि ।। ७ । २ । ३९ ।।

वृङ् वृञ् और ऋकारान्तों से परे लिङ् के इट् को दीर्घ न होवे ।

वरिषीष्ट । वरिषीयास्ताम् । अनिट् पक्ष में—वृषीष्ट । अवारीत्, (२६६) । अवारिष्टाम् । अवारिषुः । अवरिष्ट; अवरीष्ट । अवरीष्यत्; अवरिष्यत् ।।

१२९३ धुञ् कम्पने = कांपना—धुनोति। धुनुते। दुधाव। दुधविथ। दुधुवे। धोता। अधौषीत्। अधोष्ट। अधोष्यत्।

दीर्घान्तोऽपीत्येके*—यह धुञ् धातु किन्हीं आचार्यों के मत में दीर्घ ऊकारान्त भी है—धूनोति। धूनुते। दुधाव। दुधुवे। दुधविथ; दुधोथ, (१४०) से इट् विकल्प। क्रित् लिट् में ऋचादि नियम (१४८) से नित्य इट् होता है। दुधुविव। दुधुविम। धविता, धोता। धविष्यति, धोष्यति।

धाविषति, धाविषाति। धौषति; धौषाति। धाविषतै; धाविषातै। धौषतै; धौषातै। धूनोतु। धूनुताम्। अधूनोत्। अधूनुत। धूनुयात्। धून्वीत। धूयात्। धविषीष्ट, धोषीष्ट। अधविष्ट; अधोष्ट। अधावीत्। अधाविष्टाम् (३३०) से नित्य इट्। अधविष्यत्, अधोष्यत्॥

इति स्वादय उभयतोभाषा वृञ्वर्जमनुदात्ताः॥

सु आदि १० दश धातु उभयपदी वृञ् को छोड़ कर सब अनिट् हैं॥

अथाष्टौ परस्मैपदिनः॥

अब परस्मैपदी = आठ धातु कहते हैं—

१२९४ टुदु उपतापे = क्लेश भोगना—

टु की इत्संज्ञा (१५०)। दुनोति। दुदाव। दुदविथ। दोतासि। दोष्यति। दौषति, दौषाति। दुनोतु। अदुनोत्। दुनुयात्। दूयात्। अदौषीत्। अदोष्यत्॥

---

* लोक वेद में सर्वत्र दीर्घान्त धूञ् धातु के प्रयोग बहुधा आते हैं और पाणिनीय (स्तुसुधूञ्०) आदि सूत्रों में दीर्घान्त ही आता है, फिर यह ठीक नहीं बनता कि किन्हीं के मत में दीर्घान्त हो किंतु दीर्घान्त सार्वत्रिक और अल्पप्रयुक्त किन्हीं के मत में ह्रस्वान्त होना चाहिये॥

१२९५ हि गतौ वृद्धौ च—हिनोति ।

४२२–हेरचङि ।। ७ । ३ । ५६ ।।

अभ्यासं से परे हि धातु के हकार को कुत्व होवे परन्तु चङ् परे न हो तो ।

हकार का अन्तरतम घकार होकर—जिघाय । जिघ्यतुः । जिघयिथ; जिघेथ । हिनोतु । अहैषीत् ।।

१२९६ पृ प्रीतौ—पृणाति । पर्त्ता । परिष्यति । प्रियात् । अपार्षीत् ।।

१२९७ स्पृ प्रीतिसेवनयोः—प्रीतिचलनयोरित्यन्ये—

स्पृणोति । पस्पार । पस्परतुः, (२५३) । पस्परिथ; पस्पर्थ । स्पर्यात्, (२५४) । अस्पार्षीत् ।

स्मृ इत्येके—

स्मृणोति । सस्मार । सस्मरिथ; सस्मर्थ । स्मर्यात् (२५४) ।।

१२९८ आप्लृ व्याप्तौ = व्यापक होना—आप्नोति । आप्नुतः । आप्नुवन्ति, यहां संयोगपूर्व के होने से श्नु प्रत्यय के उकार को यण् (२६१) से तथा आप्नुवः (२००) से लोप नहीं होता । आप्ता । आप्स्यति । आप्सति; आप्साति । आप्नोतु । आप्नुहि, (२०१) से संयोग पूर्व के होने से हि का लुक् नहीं होता । आप्नोत् । आप्नुयात् । आप्यात् आपत् (२१७) से अङ् । आप्स्यत् ।।

१२९९ शक्लृ शक्तौ—शक्नोति । शशाक । शेकतुः । शेकिथ; शशक्थ । शक्ता । शक्ष्यति । शाक्षति; शाक्षाति । शक्नोतु । अशक्नोत् । शक्नुयात् । शक्यात् । अशकत्, (२१७) । अशक्ष्यत् ।।

१३००–०१ राध, साध संसिद्धौ—राध्नोति । साध्नोति ।

४२३–राधो हिंसायाम् ।। ६ । ४ । १२३ ।।

कित् ङित् लिट् और सेट् थल् परे हों तो हिंसा अर्थ में वर्त्तमान राध धातु को एकार आदेश और अभ्यास का लोप होवे ।

रराध । रेधतुः । अपरेधतुः । अपरेधुः । अपपूर्वक राध धातु का हिंसा अर्थ होता है । रेधिथ । राद्धा । साद्धा । रात्स्यति । सात्स्यति । रात्सति; रात्साति । साध्नोतु । असात्सीत् । असाद्धाम् । असात्स्यत् ॥

दुनोतिप्रभृतयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः ॥

दु आदि ८ आठ धातु अनिट् परस्मैपदी हैं ॥

अथ द्वावनुदात्तेतौ ॥

अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं—

१३०२ अशूङ् व्याप्तौ सङ्घाते च = व्याप्ति और इकट्ठा करना—

अश्नुते । अश्नुवाते ।

४२४—अश्नोतेश्च ॥ ७ । ४ । ७२ ॥

दीर्घ किये अभ्यास के अवर्ण से परे अश धातु को नुट् का आगम होवे ।

आनशे । आनशाते । ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) से—आनशिषे; आनक्षे । आनशिवहे; आनश्वहे । अशितासे; अष्टासे, (२३३) से षत्व । अशिष्यते; अक्ष्यते । आशिषतै; आशिषातै । आक्षतै; आक्षातै । अश्नुताम् । अश्नवै । आश्नुत । अश्नुवीत । अशिषीष्ट; अक्षीष्ट । आशिष्ट; आष्ट । आक्षाताम् । आशिष्यत; आक्ष्यत ॥

१३०३ ष्टिघ आस्कन्दने = सूखना—

स्तिघ्नुते । तिष्टिघे । स्तेघितासे । अस्तेघिष्ट ॥

उदात्तावनुदात्तेतौ ॥

ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथागणान्तात्षोडश परस्मैपदिनः ।।

अब इस गण के अन्त पर्यन्त १६ सोलह परस्मैपदी धातु कहते हैं—

१३०४-०५ तिक, तिग गतौ च—चावास्कन्दने—यहां चकार से आस्कन्दन अर्थ की अनुवृत्ति आती है—

तिक्नोति । तिग्नोति । तितेक । तेकितासि । तेगितासि । तेगिष्यति; तेगिषति; तेगिषाति । तिग्नोतु । अतिग्नोत् । तिग्नुयात् । तिग्यात् । अतेगीत् । अतेगिष्यत् ।।

१३०६ षघ हिंसायाम्—सघ्नोति ।।

१३०७ ञिधृषा प्रागल्भ्ये=अति दृढ़ होना—

धृष्णोति । दधर्ष । धर्षिता ।।

१३०८ दम्भु दम्भने=अहङ्कार—दभ्नोति, (१३९) । ददम्भ । (२७१) से कित्व होकर दम्भ धातु के अनुनासिक का लोप (१३९) से होकर न लोप को (४२) से असिद्ध मानने से (१२५) से एत्वाभ्यास लोप नहीं पाता, इसलिये—

४२५—वा० दम्भेरेत्वं वक्तव्यम् ।। ६ । ४ । १२० ।।

दम्भ धातु को एत्व और अभ्यास का लोप हो, कित् लिट् और सेट् थल् परे हो तो ।

देभतुः । देभुः । देभिथ । दम्भिता । दभ्यात्, (१३९) ।।

१३०९ ऋधु वृद्धौ—ऋध्नोति । आनर्द्ध । अर्द्धिता । अर्द्धिष्यति । अर्द्धिषति । अर्द्धिषाति । ऋध्नोतु । आर्ध्नोत् । ऋध्नुयात् । ऋध्यात् । आर्धीत् । आर्द्धिष्यत् ।।

छन्दसि (ग.) यह गणसूत्र अधिकार है । यहां से आगे इस गण के अन्तपर्यन्त सब धातु वेदविषयक हैं—

१३१० तृप प्रीणन इत्येके=किसी के मत में प्रीणनार्थ तृप धातु वैदिक है—तृप्नोति। 'क्षुभ्नादिगण' में पाठ होने से णत्व नहीं होता है। अतर्पीत्॥

१३११ अह व्याप्तौ—अह्नोति। मा भवानहीत्, (१६२)॥

१३१२ दघ घातने पालने च=मारना और रक्षा—

दघ्नोति। ददाघ। देघतुः। देघिथ। दघिता। दघिष्यति। दाघिषति; दाघिषाति। दघ्नोतु। दघ्नवानि। अदघ्नोत्। दघ्नुयात्। दघ्यात्। अदाघीत्; अदघीत्। अदघिष्यत्॥

१३१३ चमु भक्षणे—चम्नोति॥

१३१४-१९ रि, क्षि, चिरि, जिरि, दाश, दृ हिंसायाम्—

रिणोति। क्षिणोति।

अयं भाषायामपीत्येके—कोई के मत में 'क्षि' धातु लौकिक भी है।

ऋक्षीत्येक एवाजादिरित्यन्ये—

किन्हीं के मत में रि और क्षि दो नहीं किन्तु 'ऋक्षि' अजादि अजन्त एह ही दो अक्षर का धातु है—ऋक्षिणोति। चिरिणोति। जिरिणोति। दाश्नोति। दृणोति। चिचिराय। चिचिरियतुः। इत्यादि वैदिक प्रयोगों में जैसा प्रयोग आ जावे, उसके अनुकूल सूत्रों से सिद्धि समझनी चाहिये।

तिकादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैपदिनः॥

ये तिक आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं (वृत्)॥

इति श्नुविकरणः स्वादिगणः समाप्तः॥ ५॥

यह श्नुविकरणवाला स्वादिगण समाप्त हुआ॥५॥

---

(६) अथ तुदादिगणः ॥

—*—

अथ षडुभयतोभाषाः ॥

१३२० तुद व्यथने = पीड़ा—

४२६–तुदादिभ्यः शः ॥ ३ । १ । ७७ ॥

तुदादि धातुओं से परे शप् का बाधक श प्रत्यय होवे, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो।

अपित् श के ङित् होने से गुणनिषेध सर्वत्र—तुदति । तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । तोत्स्यति । तोत्स्यते । तुदतु । तुदताम् । अतुदत् । अतुदत । तुदेत् । तुदेत । तुद्यात् । तुत्सीष्ट, (१६३) । अतौत्सीत् । अतौत्ताम्, (१३५) । अतुत्त । अतुत्साताम् । अतोत्स्यत् । अतोत्स्यत ॥

१३२१ णुद प्रेरणे = आज्ञा करना—नुदति । नुदते । नुनोद । नुनुदे ॥

१३२२ दिश अतिसर्जने = देना—दिशति । दिशते । देष्टा । देक्ष्यति । देक्ष्यते । देक्षति; देक्षाति । देक्षतै; देक्षातै । दिक्षीष्ट । अदिक्षत् । अदिक्षत, (२०७) ॥

१३२३ भ्रस्ज पाके = पकाना—भृज्जति । भृज्जते, (२८६) से सम्प्रसारण, सकार को श्चुत्व शकार और शकार को जश्त्व हो जाता है।

४२७–भ्रस्जोरोपधयो रमन्यतरस्याम् ॥ ६ । ४ । ४७ ॥

भ्रस्ज धातु के रेफ और उपधा के स्थान में रम् का आगम विकल्प करके होवे, आर्द्धधातुक विषय में।

रम् मित् होने से अन्त्य अच् से परे होता है और स्थानषष्ठी का निर्देश होने से रेफ और उपधा की निवृत्ति हो जाती है। बभर्ज। बभर्जतुः। बभर्जिथ; बभर्ष्ठ, (२३३) से षत्व और जिस पक्ष में रम् का आगम न हुआ, वहां—बभ्रज्ज। बभ्रज्जतुः। बभ्रज्जिथ; बभ्रष्ठ, (२१०) से संयोगादि सलोप और षत्व (२३३) से।

बभर्जे। बभर्जिते। बभर्जिषे। बभ्रज्जे। भर्ष्टा; भ्रष्टा। भर्क्ष्यति; भ्रक्ष्यति। भर्क्षति; भर्क्षाति। भर्क्षतै; भर्क्षातै। भ्रक्षति; भ्रक्षाति। भ्रक्षतै; भ्रक्षातै। भृज्जतु। भृज्जताम्। अभृज्जत्। अभृज्जत। भृज्जेत्। भृज्जेत।

भृज्ज्यात्, कित् ङित् विषय में रमागम (४२७) से, को बाधकर और पूर्वविप्रतिषेध मानकर सम्प्रसारण (२८६) से होता है। भृज्ज्यास्ताम्। भर्क्षीष्ट; भ्रक्षीष्ट। अभार्क्षीत्; अभ्राक्षीत्। अभर्ष्ट। अभर्क्षाताम्। अभ्रष्ट। अभ्रक्षाताम्। अभर्क्ष्यत्; अभ्रक्ष्यत्। अभर्क्ष्यत; अभ्रक्ष्यत॥

१३२४ क्षिप प्रेरणे—

क्षिपति। क्षिपते। क्षेप्ता। क्षिप्सीष्ट। अक्षैप्सीत्। अक्षिप्त॥

१३२५ कृष विलेखने=लिखना वा जोतना—

कृषति। कृषते। क्रष्टा; कर्ष्टा, (२७५)। क्रक्ष्यति; कर्क्ष्यति। कृष्यात्। कृक्षीष्ट। सिच् (२८०) से, पक्ष में अम् (२७५) से—अक्राक्षीत्; अकार्क्षीत्। पक्ष में क्स (२०७) से—अकृक्षत्। अकृक्षताम्। आत्मनेपद में सिच् कित् (१६३) से होने से अम् (२७५) से नहीं होता। सिच् (२८०) पक्ष में—अकृष्ट। अकृक्षाताम्। अकृक्षत। क्स (२०७) पक्ष में—अकृक्षत। अकृक्षाताम्। अकृक्षन्त। अक्रक्ष्यत्। अक्रक्ष्यत। अकर्क्ष्यत्। अकर्क्ष्यत॥

षट् तुदादयोऽनुदात्ता स्वरितेत उभयतोभाषाः॥
ये तुदादि ६ छः धातु अनिट् उभयपदी हैं॥

अथैकः परस्मैभाषः ॥

१३२६ ऋषी गतौ—यह धातु सेट् परस्मैपदी है।

ऋषति। आनर्ष। आनृषतुः। आर्षीत् ॥

अथ चत्वार आत्मनेभाषाः ॥

अब ४ चार आत्मनेपदी धातु कहते हैं—

१३२७ जुषी प्रीतिसेवनयोः—जुषते। जुजुषे। जोषितासे। जोषिष्यते। जोषिषतै; जोषिषातै। जुषताम्। अजुषत। जुषेत। जोषिषीष्ट। अजोषिष्ट। अजोषिष्यत ॥

१३२८ ओविजी भयचलनयोः—बहुधा इस धातु के प्रयोग उद् उपसर्गपूर्वक ही आते हैं—उद्विजते। उद्विविजे। उद्विजाते।

४२८—विज इट् ॥ १। २। २ ॥

विज धातु से परे जो इडादि प्रत्यय सो ङितवत् हो।

उद्विजिता। उद्विजिष्यते, ङित् होने से लघूपध गुण नहीं होता। उद्विजिषीष्ट। उदविजिष्ट ॥

१३२९–३० ओलजी, ओलस्जी व्रीडायाम्=प्रेरणा और लज्जा—लजते। लेजे। लजितासे। लजिष्यते। लाजिषतै; लाजिषातै; लजताम्। अलजत। लजेत। लजिषीष्ट। अलजिष्ट। अलजिष्यत। लज्जते। ललज्जे, भ्रस्ज धातु के समान श्चुत्व और जश्त्व ॥

जुषादय उदात्ताश्चत्वारोऽनुदात्तेत आत्मनेपदिनः ॥

ये जुष आदि चार धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ व्रश्चादयः परस्मैपदिनो दशोत्तरशतम् ॥

अब ११० एकसौ दश धातु परस्मैपदी कहते हैं ॥

१३३१ ओव्रश्चू छेदने = काटना—वृश्चति, (२८६) से सम्प्रसारण । वव्रश्च । वव्रश्चतुः । वव्रश्चुः । वव्रश्चिथ; वव्रष्ठ, यहां अभ्यास के रेफ को ऋ सम्प्रसारण (२८२) से होकर ऋ को अकार (१०६) से होता है, उस ऋकार को स्थानिवत् मानने से सम्प्रसारण के परे पूर्व वकार को सम्प्रसारण नहीं होता । ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) से ।

व्रश्चिता; व्रष्टा । व्रश्चिष्यति; व्रक्ष्यति । व्रश्चिषति; व्रश्चिषाति । व्रक्षति; व्रक्षाति । वृश्चतु । अवृश्चत् । वृश्चेत् । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत्; अव्राक्षीत् ॥

१३३२ व्यच व्याजीकरणे = छल करना—

विचति, (२८६) । विव्याच, (२८२) । विविचतुः, (२८६) । व्यचितासि । व्यचिष्यति । व्याचिषति; व्यचिषाति । विचतु । अविचत् । विचेत् । विच्यात् । अव्याचीत् । अव्यचीत् ॥

१३३३ उछि उञ्छे = ऊंछना—

उञ्छति । उञ्छाञ्चकार । उञ्छाम्बभूव । उञ्छामास । उञ्छिता ॥

१३३४ उछी विवासे = परदेशवास—उच्छति ॥

१३३५ ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्त्तिभावेषु = गति, इन्द्रियों का प्रलय और शरीर का बनना—ऋच्छति । आनर्च्छ । (२५८) से गुण—आनर्च्छतुः । अनर्च्छुः । आनर्च्छिथ । ऋच्छिता ॥

१३३६ मिच्छ उत्क्लेशे = पीड़ा—

मिच्छति । मिमिच्छ । अमिच्छीत् ।

१३३७–३९ जर्ज, चर्च, झर्झ, परिभाषणभर्त्सनयोः = बहुत बोलना व धमकाना—जर्जति, चर्चति, झर्झति ॥

१३४० त्वच संवरणे = ढांकना—त्वचति । तत्वाच ॥

१३४१ ऋच स्तुतौ = गुणकथन—ऋचति । आनर्च । आनृचतुः ॥

१३४२ उब्ज आर्जवे = कोमलता—उब्जति । उब्जाञ्चकार ॥

१३४३ उज्झ उत्सर्गे = त्याग—उज्झति । उज्झाञ्चकार ॥

१३४४ लुभ विमोहने = व्याकुलता—

लुभति । लुलोभ । लोभिता, (२१२); लोब्धा । लोभिष्यति । लोभिषति; लोभिषाति । लुभतु । अलुभत् । लुभेत् । लुभ्यात् । अलोभीत् । अलोभिष्यत् ॥

१३४५ रिफ कथनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु = अपनी प्रशंसा, युद्ध, निन्दा, हिंसा और ग्रहण करना वा देना—रिफति । रिरेफ । रेफिता । रेफिष्यति । रेफिषति; रेफिषाति । रिफतु । अरिफत् । रिफेत् । रिफ्यात् । अरेफीत् । अरेफिष्यत् ।

रिह इत्येके—रिहति । रिरेह ॥

१३४६–४७ तृप, तृम्प तृप्तौ—

तृपति । ततर्प । तर्पिता । तृम्पति । ततृम्प । तृम्पिता । तृप्यात् । तृप्यात्, (१३९) से उपधाऽनुनासिक लोप । अतर्पीत्, यहां (२८०) वार्त्तिक में अङ् का अपवाद होने से दिवादि के अन्तर्गत पुषादि के तृप का ग्रहण होता है, इसलिये नित्य सिच् होता है ।

तृफ, तृम्फ इत्येके—

४२९–वा०–शे तृम्फादीनामुपसंख्यानम् ॥ ७ । १ । ५९ ॥

तृम्फ आदि धातुओं को नुम् हो, श प्रत्यय परे हो तो ।

यह वार्तिक (७ । १ । ५९) सूत्र पर है । तृम्फ आदि धातुओं में जो अनुनासिकसहित हैं, उनके भी अनुनासिक का लोप श के परे (१३९) से हो जाता है और नुम् विधानसामर्थ्य से फिर लोप नहीं होता है । तृम्फति । ततृम्फ । तृम्फिता । तृफ्यात्, (१३९) ॥

१३४८–५१ तुप, तुम्प, तुफ, तुम्फ, हिंसायाम्—तुम्पति । तुम्फति । तुप्यात् । तुफ्यात् ॥

१३५२–५३ दृप, दृम्फ उत्क्लेशे = पीड़ा—

दृपति । दृम्फति । दृप्यात् । दृफ्यात् ॥

१३५४–५५ ऋफ, ऋम्फ हिंसायाम्—

ऋफति । ऋम्फति । आनर्फ । ऋम्फाञ्चकार । ऋफ्यात् ॥

१३५६-५७ गुफ, गुम्फ ग्रन्थे = बन्धन—गुफति । गुम्फति । जुगुम्फ ॥

१३५८-५९ उभ उम्भ पूरणे = पूर्ति—

उभति । उम्भति । उवोभ । उम्भाञ्चकार । उभ्यात् ॥

१३६०-६१ शुभ, शुम्भ शोभार्थे—शुभति । शुम्भति । शुशोभ । शुशुम्भ । शुभ्यात् ॥

ये (४२९) वार्त्तिक में कहे तृम्फादि धातु पूरे हुए ॥

१३६२ दृभी ग्रन्थे—दृभति । ददर्भ । अदर्भीत् । अदर्भिष्यत् ॥

१३६३ चृती हिंसाग्रन्थनयोः—चृतति । चचर्त । चचृततुः । चचर्त्तिथ । चर्त्तिता । चर्त्तिष्यति, (३९७); चर्त्स्यति । चर्त्तिषति; चर्त्तिषाति । चर्त्सति; चर्त्साति । चृततु । अचृतत् । चृतेत् । चृत्यात् । अचर्तीत् । अचर्तिष्यत् ॥

१३६४ विध विधाने—विधति । विवेध । विविधतुः । वेधिता । वेधिष्यति । वेधिषति; वेधिषाति ॥

१३६५ जुड गतौ—जुडति । अजोडीत् ।

जुन इत्येके—जुनति ॥

१३६६ मृड सुखने—मृडति । अमर्डीत् ॥

१३६७ पृड च—पृडति ॥

१३६८ पृण प्रीणने = तृप्ति—पृणति । पपर्ण ॥

१३६९ वृण च—वृणति । अवर्णीत् । अवर्णिष्यत् ॥

१३७० मृण हिंसायाम्—मृणति । मर्णिता ॥

१३७१ तुण कौटिल्ये—तुणति । तोणिष्यति ॥

१३७२ पुण कर्मणि शुभे = शुभ कर्म—पुणति । पोणिषति; पोणिषाति ॥

१३७३ मुण प्रतिज्ञाने = प्रतिज्ञा—मुणति । मुणतु ॥

१३७४ कुण शब्दोपकरणयोः = शब्द और उपकार—

कुणति । अकुणत् ॥

१३७५ शुन गतौ—शुनति । शुनेत् ॥

१३७६ द्रुण हिंसागतिकौटिल्येषु = हिंसा, गति और कुटिलता—द्रुणति । द्रुण्यात् ॥

१३७७-७८ घुण, घूर्ण भ्रमणे = डोलना—घुणति । घूर्णति । जुघोण । जुघूर्ण ॥

१३७९ षुर ऐश्वर्यदीप्त्योः = धन और प्रकाश—सुरति । सुषोर । सोरिता । सोरिष्यति । सोरिषति; सोरिषाति । सुरतु । असुरत् । सुरेत् । सूर्यात्, (१९७) से दीर्घ ।

१३८० कुर शब्दे—कुरति ।

४३०—न भकुर्छुराम् ॥ ८ । २ । ७९ ॥

रेफान्त और वकारान्त भसंज्ञक तथा कुर् और छुर् इनकी उपधा इक् को दीर्घ न होवे । (१९७) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है उसका अपवाद यह सूत्र है । कुर्यात्* ॥

१३८१ खुर छेदने = दो भाग करना—खुरति । चुखोर । खुर्यात् ॥

१३८२ मुर संवेष्टने—मुरति । मूर्यात् ॥

---

* यहां भट्टोजिदीक्षित ने लिखा है कि (४३०) सूत्र यहां नहीं लगता क्योंकि वहां कुर् कहने से कृञ् धातु का ग्रहण होता है । इससे 'कूर्यात्' प्रयोग होता है सो संदिग्ध है क्योंकि जो (लक्षणप्रतिपदोक्तयोः०) इस परिभाषा का आश्रय करें तब तो कृञ् का ग्रहण ही न हो क्योंकि कृञ् का कुर् लाक्षणिक और कुर् धातु प्रतिपदोक्त है इसलिये इस परिभाषा का आश्रय न करें तो भी लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त दोनों का ग्रहण होवे । फिर ऐसी परिभाषा कौन है कि जिससे लाक्षणिक कृञ् का ग्रहण हो जावे और प्रतिपदोक्त कुर् का न हो ॥

१३८३ क्षुर विलेखने क्षौर कर्म—क्षरति । क्षूर्यात् ॥

१३८४ घुर भीमार्थशब्दयोः = भयङ्कर पदार्थ और शब्द—
घुरति । घूर्यात् ॥

१३८५ पुर अग्रगमने - आगे चलना—पुरति । पूर्यात् ॥

१३८६ वृहू उद्यमने = उद्यम—वृहति । ववर्ह । ववृहतुः । ऊदित् होने से इट् विकल्प—ववर्हिथ; ववर्ढ । ववृहिव; ववृह्व । वर्हिता; वर्ढा । वर्हिष्यति; वर्क्ष्यति । वर्हिषति; वर्हिषाति । वर्क्षति; वर्क्षाति । वृहतु । अवृहत् । वृहेत् । वृह्यात् । अवर्हीत्; अवृक्षत्, (२०७) से क्स । अवर्हिष्यत्; अवर्क्ष्यत् ।

बृहू इत्येके—इसमें इतना विशेष है कि भर्क्ष्यति, (२०८) । भर्क्षति; भर्क्षाति । अभृक्षत् । अभर्क्ष्यत् ॥

१३८७–८९ तृहू, स्तृहू, तृंहू हिंसार्थाः—तृहति । स्तृहति । तृंहति । ततर्ह ।; तस्तर्ह । ततृंह । तर्हिता; तर्ढा । स्तर्हिता; स्तर्ढा । तृंहिता; तृण्ढा । तृह्यात् । अतृक्षत् । अस्तृक्षत् ॥

१३९० इषु इच्छायाम्—इच्छति, (२७३) से छ । इयेष । एषिता; एष्टा । एषिषति; एषिषाति । इच्छतु । ऐच्छत् । इच्छेत् । इष्यात् । ऐषीत् । ऐषिष्यत् ॥

१३९१ मिष स्पर्द्धायाम् = ईर्षा—मिषति । मिमेष ॥

१३९२ किल श्वैत्यक्रीडनयोः = श्वेताई और क्रीड़ा—
किलति । केलिता ॥

१३९३ तिल स्नेहने = चिकनाई—तिलति । तेलिष्यति ।

१३९४ चिल वसने वस्त्र—
चिलति । चेलिषति; चेलिषाति । चिलतु ॥

१३९५ चल विलसने शोभा—चलति । अचलत् ॥

१३९६ इल स्वप्नक्षेपणयोः = सोना और फेंकना—

इलति । इयेल । ईलतुः । ऐलत् । इलेत् ॥

१३९७ विल संवरणे = आच्छादन—विलति । विल्यात् ॥

१३९८ बिल भेदने = खोदना—बिलति । अबेलीत् ॥

१३९९ णिल गहने = गाढ़—निलति । अनेलिष्यत् ॥

१४०० हिल भावकरणे = प्रीति करना—हिलति ॥

१४०१–०२ शिल, षिल उच्छे—शिलति । सिलति ॥

१४०३ मिल संश्लेषणे = मिलना—मिलति ॥

१४०४ लिख अक्षरविन्यासे = अक्षर बनाना—

लिखति । लिलेख । लेखिता । लेखिष्यति । लेखिषति; लेखिषाति । लिखतु । अलिखत् । लिखेत् । लिख्यात् । अलेखीत् । अलेखिष्यत् ॥

१४०५ कुट कौटिल्ये कुटिलाई—कुटति । चुकोट । चुकुटतुः । (३४५) से ङित्व होकर—चुकुटिथ । कुटिता । कुटिष्यति । कोटिषति; कोटिषाति । कुटिषति; कुटिषाति, यहां णित्पक्ष में ङित्व (३४५) से न होने से गुण होता है और ङित् होने से सब कुटादिकों में गुण का निषेध जानो । कुटतु । अकुटत् । कुटेत् । कुटयात् । अकुटीत् । अकुटिष्यत् ॥

(३४५) सूत्र में कहे कुटादि धातु इसी 'कुट' से 'कूङ्' धातु पर्यन्त जानो ॥

१४०६ पुट संश्लेषणे—पुटति । पुपोट । पुटिता ॥

१४०७ कुच सङ्कोचने = इकट्ठा होना—कुचति । चुकुचिथ ॥

१४०८ गुज शब्दे—गुजति । गुजिष्यति ॥

१४०९ गुड रक्षायाम्—

गुडति । गोडिषति; गोडिषाति । गुडिषति; गुडिषाति ॥

१४१० डिप क्षेपे = फेंकना—डिपति । डिपतु ।

१४११ छुर छेदने—छुरति । अच्छुरत् । छुर्यात्, (४३०) ॥

१४१२ स्फुट विकसने = खिलना—स्फुटति । पुस्फुटिथ ॥

१४१३ मुट आक्षेपप्रमर्दनयोः = खण्डन और मलना—

मुटति । मुटिता ॥

१४१४ त्रुट छेदने—(१८८) से विकल्प से श्यन्—त्रुटयति; त्रुटति । त्रुटिष्यति । त्रुटयतु; त्रुटतु । अत्रुटयत्; अत्रुटत् । त्रुटयेत्; त्रुटेत् ॥

१४१५ तुट कलहकर्म्मणि - विरोध करना—

तुटति । तोटिषति; तोटिषाति । तुटिषति; तुटिषाति ॥

१४१६-१७ चुट, छुट छेदने—चुटति । छुटति ॥

१४१८ जुड बन्धने = जोड़ना—जुडति । जुडतु ॥

१४१९ कड मदे— अहङ्कार—कडति ॥

१४२० लुट संश्लेषणे = मिलना—लुटति । अलुटत् ॥

लुठ इत्येके—लुठति । लुठेत् ॥

१४२१ कृड घनत्वे = सघन—कृडति । अकृडीत् ॥

१४२२ कुड बाल्ये = बालकपन—कुडति ॥

१४२३ पुड उत्सर्गे = त्याग—पुडति ॥

१४२४ घुट प्रतिघाते = घोटना—घुटति । जुघुटिथ । घुटिता ॥

१४२५ तुड तोडने = तोड़ना—तुडति । तुडिष्यति ॥

१४२६-२७ थुड, स्थुड संवरणे—थुडति । स्थुडति । तुस्थुडिथ ।

स्फुड इत्येके—स्फुडति ।

खुड, छुड इत्यन्ये—खुडति । छुडति ॥

१४२८ कुड संघात इत्येके—कुडति ॥

१४२९ स्फुर स्फुरणे = चेतनता—स्फुरति। पुस्फोर।
स्फर इत्येके—स्फरति ॥
१४३० स्फुल संचलने—चंचलता—स्फुलति ॥
१४३१-३३ स्फुड, चुड, व्रुड संवरणे—
स्फुडति। जुडति। व्रुडति ॥
क्रुड, भृड निमज्जन इत्येके—क्रुडति। भृडति। भृडिता ॥
व्रश्चादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषा दशोत्तरशतम् ॥
व्रश्च आदि ११० एकसौ दश धातु परस्मैपदी हैं ॥

अथैक आत्मनेपदी ॥

१४३४ गुरी उद्यमने—उदात्तोऽनुदात्तेदात्मनेपदी। यह धातु सेट् आत्मनेपदी है।

गुरते। जुगुरे। गुरिता। गुरिष्यते। गोरिषतै; गोरिषातै। गुरिषतै; गुरिषातै। गुरताम्। अगुरत। गुरेत। गुरिषीष्ट। अगुरिष्ट। अगुरिष्यत ॥

इतश्चत्वारः परस्मैपदिनः ॥

यहां से आगे ४ चार धातु परस्मैपदी हैं—
१४३५ णू स्तवने = स्तुति—नुवति। नुनाव। अनुवीत् ॥
१४३६ धू विधूनने - कंपाना—
धुवति। दुधाव। दुधुवतुः। धुविता। अधुवीत् ॥
ये दोनों सेट् हैं ॥

१४३७ गु पुरीषोत्सर्गे = मल त्यागना—गुवति। जुगाव। जुगुविथ; जुगुथ। गुता। गुष्यति। गौषति; गौषाति। गुषति; गुषाति। गुवतु। अगुवत्। गुवेत्। गूयात्; (१६०)। अगुषीत्। अगुताम्, (२४१) से सिच्लोप। अगुषुः ॥

१४३८ ध्रु गतिस्थैर्ययोः = चलना और स्थिति—ध्रुव इत्येके—

ध्रुवति इत्यादि 'गु' के समान रूप जानो । ये दोनों अनिट् हैं और ध्रुव धातु तो सेट् है—दुध्रुविथ । ध्रुविता । ध्रूयात्, (१९७) से दीर्घ । अध्रुवीत् ।।

अथैक आत्मनेपदी ।।

१४३९ कूङ् शब्दे—कुङ् शब्द इत्येके—यह धातु दीर्घान्त पक्ष में सेट् और ह्रस्वान्त पक्ष में अनिट् है । कुवति । चुकुविथ । कुविता । अकुविष्ट । पक्ष में—चुकुविथ; चुकुथ । कुता । अकुत ।।

(वृत्) इत्ति कुटादयः समाप्ताः ।।

ये (३४५) सूत्र में कहे कुटादि धातु समाप्त हुए ।।

अथ द्वावात्मनेपदिनौ ।।

१४४० पृङ् व्यायामे = कसरत—यह धातु बहुधा वि और आङ् उपसर्गपूर्वक ही प्रयुक्त आता है—व्याप्रियते, (२३९, १५९) । व्याप्रियेते । व्याप्रियन्ते । व्यापप्रे । व्यापप्राते । व्यापप्रिषे । पर्त्तासे । परिष्यते । पार्षतै; पार्षातै । प्रियताम् । अप्रियत । प्रियेत । पृषीष्ट, (२४०) । अपृत, (२४१) अपृषाताम् । अपृषत ।।

१४४१ मृङ् प्राणत्यागे = शरीर छूटना—

४३१–म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ।। १ ।। ३ ।। ६१ ।।

मृङ् धातु से परे लुङ् लिङ् और शित् विषय में आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों, अन्यत्र नहीं ।

मृङ् धातु के ङित् होने से सर्वत्र आत्मनेपद सिद्ध ही है, फिर विशेष विषय में कहने से यह नियम हुआ कि लुङ् लिङ् और शित् से भिन्न लकारों में परस्मैपद ही हों—

म्रियते । ममार । मम्रतुः । मम्रुः । ममर्थ । मम्रिव । मम्रिम । मर्त्तासि । मरिष्यति । मार्षति; मार्षाति । म्रियताम् । अम्रियत । म्रियेत । मृषीष्ट । अमृत । अमृषाताम् । अमरिष्यत् ॥

ये दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनः सप्त ॥

अब ७ सात धातु परस्पैपदी कहते हैं—

१४४२-४३ रि, पि गतौ—रियति । पियति । रिराय । पिपाय । रिरियतुः । पिपियतुः । पिपयिथ; पिपेथ । पेता । पेष्यति । पैषति; पैषाति । पियतु । अपियत् । पियेत् । पीयात् । अपैषीत् । अपैष्टाम् । अपेष्यत् ॥

१४४४ धि धारणे—धियति । दिधयिथ; दिधेथ । धेता ॥

१४४५ क्षि निवासगत्योः—क्षियति । क्षीयात् । अक्षैषीत् ॥

रियादयोऽनुदात्ताः । ये रि आदि अनिट् हैं ॥

१४४६ षु प्रेरणे = आज्ञा—सुवति । सुषाव । सुषविथ । सविता । सविष्यति । साविषति; साविषाति । सुवतु । असुवत् । सुवेत् । सूयात् । असावीत् । असाविष्टाम् । असविष्यत् ॥

१४४७ कॄ विक्षेपे = फैलाना—किरति, (२६५) । किरतः । चकार । चकरतुः । चकरुः; (२५८) से गुण । करीता, (२६४); करिता । करीष्यति । करिष्यति । कारीषति; कारीषाति । कारिषति; कारिषाति । किरतु । अकिरत् । किरेत् । कीर्यात्; (२६५; १९७) । अकारीत्, (२६६) अकारिष्टाम् । अकरीष्यत् । अकरिष्यत् ॥

१४४८ गॄ निगरणे = खाना वा उपदेश करना—

४३२–अचि विभाषा ॥ ८ । २ । २१ ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो गॄ धातु के रेफ को विकल्प करके लकारादेश होवे ।

गिरति; गिलति । जगाल; जगार । जगलतुः; जगरतुः । गलीता; गलिता । गरीता; गरिता । गीर्यात् । अगालीत्; अगारीत् । अगालिष्टाम्; अगारिष्टाम् ॥

उदात्ताः परस्मैपदिनः ॥

सू आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं ॥

अथ द्वावात्मनेपदिनौ ॥

अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं—

१४४९ दृङ् आदरे = सत्कार—यह धातु आङ्पूर्वक बहुधा आता है । आद्रियते, (२३९) से रिङ् । आद्रियेते । आदद्रे । आदद्रिषे । आदर्त्तासि । आदरिष्यते । आदार्षतै; आदार्षातै । आद्रियताम् । आद्रियत । आद्रियेत । आदृषीष्ट, (२४०) आदृत । आदृषाताम् । आदरिष्यत ॥

१४५० धृङ् अवस्थाने = स्थिति—ध्रियते । दध्रे । दध्रिषे ॥

अनुदात्तावात्मनेपदिनौ ॥

ये दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनः षोडश ॥

अब १६ सोलह धातु परस्मैपदी कहते हैं—

१४५१ प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् = जानने की इच्छा—पृच्छति । पृच्छतः, (२८६) से संप्रसारण । पप्रच्छ । पप्रच्छतुः । पप्रच्छिथ । अनिट् पक्ष में—

पप्रष्ठ, (२३३) से षत्व । प्रष्टा । प्रक्ष्यति । प्राक्षति; प्राक्षाति । पृच्छतु । अपृच्छत् । पृच्छेत् । पृच्छ्च्यात् । अप्राक्षीत् । अप्राष्टाम् । अप्राक्षुः । अप्रक्ष्यत् ॥

(वृत्) किरादयः समाप्ताः ॥

ये किरति आदि ५ पांच धातु पूरे हुए ।

इनसे सन्नन्त प्रक्रिया में विशेष कार्य होते हैं ॥

१४५२ सृज विसर्गे = रचना वा त्यागना—सृजति । ससर्ज । ससृजतुः । ससर्जिथ, (२७७); सस्रष्ठ (२३३; २७८) । स्रष्टा । स्राक्ष्यति । स्राक्षति; स्राक्षाति । सृजतु । असृजत् । सृजेत् । सृज्यात् । अस्राक्षीत् । अस्राष्टाम् । अस्रक्ष्यत् ॥

१४५३ टुमस्जो शुद्धौ—टु और ओकार की इत्संज्ञा । (स्तोः श्चुना श्चुः ॥ ८ । ४ । ४०) सूत्र से स को श और श को ज होकर—मज्जति । ममज्ज । ममज्जिथ । अनिट् पक्ष में—(४०९) से नुम् प्राप्त है सो मित् होने से अन्त्य अच् से परे होवे तो सकार के मध्यपाती होने से संयोगादि लोप (२१०) से नहीं हो सकता, इसलिये—

४३३–वा०–मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वक्तव्यः ॥१।१।४७॥

मस्ज धातु के अन्त्य वर्ण जकार से पूर्व नुम् कहना चाहिये ।

फिर सकार के संयोगादि होने से लोप (२१०) से होकर—'ममस्+न्+ज्+थल्'=ममङ्क्थ । मङ्क्ता । मङ्क्ष्यति । मङ्क्षति; मङ्क्षाति । मज्जतु । अमज्जत् । मज्जेत् । मज्यात् । अमाङ्क्षीत् । अमाङ्क्ताम् । अमाङ्क्षुः । अमङ्क्ष्यत् ॥

१४५४ रुजो भंगे = टूटना—

रुजति । रोक्ता । रोक्ष्यति । अरौक्षीत् । अरौक्ताम् ।

१४५५ भुजो कौटिल्ये = कुटिलता—भुजति । बुभोज । बुभोजिथ; बुभोक्थ । भोक्ता । अभौक्षीत् । अभौक्ताम् ॥

१४५६ छुप स्पर्शे--छुपति । छोप्ता । अच्छौप्सीत् ॥

१४५७-५८ रुश, रिश हिंसायाम्—

रुशति । रिशति । रोष्टा । रेष्टा । अरुक्षत् । अरिक्षत्, (२०७) ॥

१४५९ लिश गतौ—लिशति । लेक्ष्यति । लिशतु । अलिक्षत् ॥

१४६० स्पृश संस्पर्शे = छूना—स्पृशति । पस्पर्श । पस्पर्शिथ । स्प्रष्टा, (२७५); स्पर्ष्टा । स्प्रक्ष्यति; स्पर्क्ष्यति । स्प्रक्षति, स्प्रक्षाति । स्पर्क्षति; स्पर्क्षाति । स्पृशतु । अस्पृशत् । स्पृशेत् । स्पृश्यात् । अस्प्राक्षीत्, (२८०); अस्पार्क्षीत् । अस्पार्ष्टाम् । अस्पृक्षत् । अस्प्रक्ष्यत्; अस्पर्क्ष्यत् ॥

१४६१ विच्छ गतौ—(१६६) से आय प्रत्यय, (१६७) से धातुसंज्ञा—विच्छायति । विच्छायतः । आम् प्रत्यय (१६९) से—विच्छायाञ्चकार । विच्छायाम्बभूव । विच्छायामास । (१६८), विविच्छ । विविच्छतुः । विच्छायितासि; विच्छितासि । विच्छायिष्यति; विच्छिष्यति । विच्छायिषति; विच्छायिषाति । विच्छिषति; विच्छिषाति । विच्छायतु । अविच्छायत् । विच्छायेत् । विच्छाय्यात् । विच्छ्यात् । अविच्छायीत्; अविच्छीत् । अविच्छायिष्यत्; अविच्छिष्यत् ॥

१४६२ विश प्रवेशने—विशति । वेष्टा । अवैक्षीत् । अवैष्टाम् ॥

१४६३ मृश आमर्शने = विचारना—मृशति । म्रष्टा; मर्ष्टा, (२७५) । अम्राक्षीत्; (२८०); अमार्क्षीत्; अमृक्षत् ॥

१४६४ णुद प्रेरणे—इस धातु को प्रथम इसी गण में (१३२१) में लिख चुके हैं, दूसरी वार यहां कर्त्रभिप्राय क्रियाफल में भी नित्य परस्मैपद होने के लिये पढ़ा है ॥

१४६५ षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु—इस धातु को इसी प्रकार का भ्वादि में (८८८) लिख चुके हैं, वहीं के तुल्य रूप भी जानो, कुछ विशेष नहीं । फिर यहां लिखने का यह प्रयोजन है कि कृदन्त शतृ प्रत्यय में शप् विकरण वाले को नित्य नुम् और श विकरण वाले को विकल्प होता है और शप् और श विकरण का स्वर भी पृथक्-पृथक् होता है ॥

१४६६ शद्लृ शातने—इसको भी भ्वादि में (८८८) में लिख चुके हैं, फिर इसका पाठ केवल स्वर के पृथक् होने के लिये है ॥

प्रच्छादयो विच्छिवर्जमनुदात्ताः परस्मैपदिनः ॥

ये प्रच्छ आदि धातु 'विच्छ' को छोड़ के अनिट् और सब परस्मैपदी हैं ॥

अथ षट् स्वरितेतः ॥

अब ६ छः धातु स्वरितेत्—उभयपदी—कहते हैं—

१४६७ मिल सङ्गमे=समागम—'मिल संश्लेषणे' धातु प्रथम (१४०३) लिख चुके हैं, उसको फिर दूसरी वार कर्त्रभिप्राय अर्थ में आत्मनेपद होने के लिये पढ़ा है। मिलति। मिलते। मिमेल। मिमिले। मेलिता। मेलिष्यते। मेलिषतै; मेलिषातै। मिलताम्। मिलतु। अमिलत्। मिलेत्। मिल्यात्। अमेलीत्। अमेलिष्यत् ॥

यह धातु सेट् है ॥

१४६८ मुच्लृ मोक्षणे=छूटना—

४३४—शे मुचादीनाम् ॥ ७ । १ । ५९ ॥

श प्रत्यय के परे मुचादि धातुओं को नुम् का आगम होवे।

मुञ्चति। मुञ्चते। मुमोच। मुमुचे। मोक्ता। मोक्ष्यते। मोक्ष्यति। मोक्षतै; मोक्षातै। मोक्षति; मोक्षाति। मुञ्चतु। मुञ्चताम्। अमुञ्चत्। अमुञ्चत। मुञ्चेत्। मुञ्चेत। मुच्यात्। मुक्षीष्ट। अमुचत्, (२१७) से अङ्। अमुक्त। अमुक्षाताम्। अमोक्ष्यत्। अमोक्ष्यत ॥

१४६९ लुप्लृ छेदने—

लुम्पति। लुम्पते। लुप्यात्। अलुपत्। अलुप्त ॥

१४७० विद्लृ लाभे=प्राप्ति—

विन्दति। विन्दते। विवेद। विविदे। वेत्ता। परिवेत्ता। वेत्स्यति ॥

१४७१ लिप उपदेहे=लीपना वा वृद्धि—लिम्पति । लिम्पते । लेप्ता । अलिपत्, (२९२) से अङ् । अलिपत । अलिप्त, (२९३) ॥

१४७२ षिच क्षरणे=सींचना—सिञ्चति । सिञ्चते । सिच्यात् ॥ असिचत्, (२९२) । असिचत, (२९३); असिक्त ॥

मुचादयो मिलिवर्जमनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः ॥

ये मुच आदि धातु मिल को छोड़के अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ त्रयः परस्मैपदिनः ॥

अब तीन धातु परस्मैपदी कहते हैं—

१४७३ कृती छेदने—कृन्तति । चकर्त्त । कर्त्तिता । कर्त्तिष्यति, (३९७); कर्त्स्यति । कर्त्तिषति; कर्त्तिषाति । कर्त्सति; कर्त्साति । कृन्ततु । अकृन्तत् । कृन्तेत् । कृत्यात् । अकर्तीत् । अकर्तिष्यत्; अकर्त्स्यत् ॥

१४७४ खिद परिघाते=पीड़ा—यह धातु दीनता अर्थ में (१२०८) दिवादि में और रुधादिकों में (१४८७) पढ़ा है । खिन्दति । चिखेद । खेत्ता । खेत्स्यति ॥

खिद धातु अनिट् है ॥

१४७५ पिश अवयवे—पिंशति । पिपेश । पेशिता । पेशिष्यति । पेशिषति; पेशिषाति । पिंशतु । अपिंशत् । पिंशेत् । पिश्यात् । अपेशीत् । अपेशिष्यत् ॥

(वृत्) मुचादयः । ये (४३४) सूत्र में कहे मुच आदि धातु पूरे हुए ॥

इति शविकरणस्तुदादिगणः समाप्तः ॥ ६ ॥

यह शविकरणवाला तुदादिगण समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

---

(७) अथ रुधादिगणः ॥

अथ नव स्वरितेत इरितश्च ॥

अब ९ नो धातु उभयपदी कहते हैं—

१४७६ रुधिर् आवरणे = आच्छादन—

इर् भाग की इत्संज्ञा होकर—

४३५–रुधादिभ्यः श्नम् ॥ ३ । १ । ७८ ॥

रुध आदि धातुओं से शप् का अपवाद श्नम् प्रत्यय हो, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो।

श्नम् मित् प्रत्यय होने से अन्त्य अच् रु से परे धकार से पूर्व होता है। 'रु + श्नम् + ध् + तिप्' = रुणद्धि, शकार मकार की इत्संज्ञा और णत्व होता है। रुन्धः, (३५२) से अकारलोप णत्व को असिद्ध मानकर नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण करने में अकारलोप को स्थानिवद्भाव प्राप्त है, उसका अनुस्वार और परसवर्णविधि में निषेध हो जाता है। रुन्धन्ति। रुणत्सि। रुन्धे। रुन्धाते। रुन्धते।

रुरोध। रुरुधतुः। रुरोधिथ। रुरुधे। रोद्धा। रोत्स्यति। रोत्स्यते। रोत्सति; रोत्साति। रोत्सतै; रोत्सातै। रुणधति; रुणधाति। रुणधतै; रुणधातै। रुणद्धु; रुन्धात्। रुन्धाम्। रुन्धन्तु। रुन्धि। रुणधानि। रुणधाव। रुन्धाम्। रुन्धाताम्। रुणधै।

अरुणत् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् । अरुणत्; अरुणद् । अरुणः, यहां पदान्त धकार को प्रथम जश्त्व होकर (३५१) सूत्र की दृष्टि में जश्त्व सिद्ध होने से दकार को रु विकल्प से (३५१) से होता है। अरुणधम् । रुन्ध्यात् । रुन्ध्याताम् । रुध्यात् । रुत्सीष्ट । इरित् होने से अङ् विकल्प (१३८) से—अरुधत् । अरुधताम् । अरोत्सीत् । अरुद्ध । अरुत्साताम् । अरोत्स्यत् । अरोत्स्यत ।।

१४७७ भिदिर् विदारणे = भेद—भिनत्ति । भिन्ते । बिभेद । बिभिदे । भेत्ता । भेत्स्यति । भेत्सति; भेत्साति । भिनत्तु । अभिनत् । अभिनः । अभिनदम् । अभिन्त । भिन्द्यात् । भिद्यात् । अभिदत् । अभैत्सीत् । अभैत्ताम् । अभित्त ।।

१४७८ छिदिर् द्वैधीकरणे = दो भाग करना—छिनत्ति । अच्छिनत् । अच्छिनः । अच्छिदत् । अच्छैत्सीत् । अच्छित्त ।।

१४७९ रिचिर् विरेचने = खाली करना—

रिणक्ति । रिङ्क्ते । रिरेच । रिरिचे । रेक्ता । रेक्ष्यते । रेक्षत; रेक्षाते । रिणक्तु । रिङ्क्ताम् । अरिणक् । अरिचत् । अरिक्त ।।

१४८० विचिर् पृथग्भावे = अलग होना—

विनक्ति । विङ्क्ते । अविनक् । अविचत् । अवैक्षीत् । अविक्त ।।

१४८१ क्षुदिर् संपेषणे = पीसना—क्षुणत्ति । क्षुन्ते । क्षोत्ता । अक्षुणत् । अक्षुणः । अक्षुदत् । अक्षौत्सीत् । अक्षुत्त ।

१४८२ युजिर् योगे = समाधि—युनक्ति । युङ्क्ते । अयुनक् । अयुजत् । अयौक्षीत् । अयुक्त । अयोक्ष्यत् ।।

रुधादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः ।।

रुध आदि धातु अनिट् उभयपदी हैं ।।

१४८३ उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः = प्रकाश और क्रीड़ा आदि—

छृणत्ति। छृन्ते। चच्छर्द। चच्छृदतुः। छर्दिता। छर्दिष्यति; छर्त्स्यति, (३९७) छर्दिषति; छर्दिषाति। छर्त्सति; छर्त्साति। छृणत्तु। अच्छृणत्। अच्छृणः। छृन्द्यात्। छृद्यात्। छृत्सीष्ट। अच्छृदत्। अच्छर्दीत्। अच्छर्दिष्ट। अच्छर्दिष्यत्। अच्छर्त्स्यत्।

१४८४ उतृदिर् हिंसाऽनादरयोः = हिंसा और अनादर—

तृणत्ति इत्यादि छृदि के समान जानो॥

उदात्तौ स्वरितेतौ॥

ये दोनों धातु उभयपदी सेट् हैं॥

अथैकः परस्मैपदी॥

१४८५ कृती वेष्टने = लपेटना—कृणत्ति।

यह धातु तुदादिगण (१४७३) में आचुका है, आर्द्धधातुक में वैसे ही प्रयोग जानो॥

अथ त्रय आत्मनेभाषाः॥

१४८६ ञिइन्धी दीप्तौ—उदात्तोऽनुदात्तेदात्मनेपदी।

यह धातु सेट् आत्मनेपदी है। ञि और ईकार की इत्संज्ञा होकर—

२३६—श्नान्नलोपः॥ ६। ४। २३॥

श्नम् प्रत्यय से परे नकार का लोप हो।

अर्थात् इकार से परे होने के कारण धकार से पूर्व जो न उसका लोप होता है—इन्धे, (३५२) से अकारलोप। इन्धाते। इन्धते। इन्त्से।

इन्धाञ्चक्रे। इन्धाम्बभूव। इन्धामास। (१६९) सूत्र से वेद में आम् प्रत्यय का निषेध होने से (४४) सूत्र से लिट् को कित्व होकर—ईधे, (१३९) से नलोप। ईधाते। ईधिरे।

इन्धिता । इन्धिष्यते । इन्धिषतै; इन्धिषातै । इन्धाम् । इन्धाताम् । इन्धै । ऐन्ध । ऐन्धाः । इन्धीत । इन्धिषीष्ट । ऐन्धिष्ट । ऐन्धिष्यत ॥

१४८७ खिद दैन्ये = दीनता—खिन्ते । खेत्ता । खिन्ताम् । अखिन्त । खिन्दीत । खित्सीष्ट । अखित्त ॥

१४८८ विद विचारणे = विचारना—

विन्ते । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यते । वेत्सतै; वेत्सातै । विन्ताम् । अविन्त । विन्दीत । वित्सीष्ट । अवित्त । अवेत्स्यत ॥

खिदिविदी अनुदात्तावात्मनेपदिनौ ॥

खिद और विद दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनो द्वादश ॥

अब १२ बारह धातु परस्मैपदी कहते हैं—

१४८९ शिष्लृ विशेषणे = विशेषण—

शिनष्टि । शिंष्टः । शिंषन्ति । शिशेष । शिशेषिथ । शेष्टा । शेक्ष्यति । शेक्षति; शेक्षाति । शिनष्टु । 'शिष् + हि', यहां प्रथम हि को धि और षकार को जश्त्व ड तथा ष्टुत्व होकर (२७२) सूत्र से विकल्प करके डकार लोप होता है—शिण्ढि; शिण्ड्ढि । शिनषाणि । अशिनट् । शिंष्यात् । शिष्यात् । लृदित् होने से अङ् (२१७) से—अशिषत् । अशेक्ष्यत् ॥

१४९० पिष्लृ सञ्चूर्णने = पीसना—पिनष्टि । पिपेष । पेष्टा । पेक्ष्यति । पेक्षति; पेक्षाति । पिनष्टु । पिण्ढि । अपिनट् । पिंष्यात् । पिष्यात् । अपिषत् ॥

१४९१ भञ्जो आमर्दने = बल से मलना—भनक्ति । बभञ्ज । बभञ्जिथ; बभङ्क्थ । भङ्क्ता । भङ्क्ष्यति । अभाङ्क्षीत् । अभाङ्क्ताम् ॥

१४९२ भुज पालनाभ्यवहारयोः = रक्षा और भोजन—

भुनक्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति । अभुनक् । अभौक्षीत् । अभोक्ष्यत् ॥

अनुदात्ता उदात्तेतश्चत्वारः ॥

ये शिष आदि ४ चार धातु अनिट् परस्मैपदी हैं ॥

१४९३-९४ तृह, हिसि हिंसायाम्—

४३७—तृणह इम् ॥ ७ । ३ । ९२ ॥

श्नम्प्रत्ययान्त तृह धातु को इम् का आगम होवे, हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो ।

तृणेढि । तृण्ढः । ततर्ह । तर्हिता । तर्हिष्यति । तर्हिषति; तर्हिषाति । तृणेढु । अतृणेट् । तृंह्यात् । तृह्यात् । अतर्हीत् । हिनस्ति । हिंस्तः । हिंसन्ति । जिहिंस । हिंसिता ॥

१४९५ उन्दी क्लेदने = गीलापन—उनत्ति । उन्तः । उन्दन्ति । उन्दाञ्चकार । उन्दाम्बभूव । उन्दामास । उन्दिता । उनत्तु । उन्धि । औनत् । औन्ताम् । औन्दन् । औनः; (३५१) । औनत् । औनदम् । उन्द्यात् । उद्यात्, (१३९) । औन्दीत् ॥

१४९६ अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु = मनुष्यादि की स्थूलव्यक्ति, भोजन, शोभा और गति—

अनक्ति । अङ्क्तः । अञ्जन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ; आनङ्क्थ, ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) से । अञ्जिता; अङ्क्ता । अञ्जिषति; अञ्जिषाति । अङ्क्षति; अङ्क्षाति । अनक्तु । अङ्ग्धि । अनजानि । आनक् । आङ्क्ताम् । आञ्जन् । अञ्ज्यात् । अज्यात् ।

४३८—अञ्जेः सिचि ॥ ७ । २ । ७१ ॥

अञ्ज धातु से परे जो सिच्, उसको नित्य इट् का आगम होवे ।

ऊदित् होने से इट् का विकल्प (१४०) से प्राप्त है, उसका यह अपवाद है । आञ्जीत् । आञ्जिष्टाम् ॥

१४९७ तञ्चू संकोचने = दही जमाना—

तनक्ति। ततञ्चिथ; ततङ्क्थ। तञ्चिता। तङ्क्ता। तनक्तु। अतनक्। अतञ्चीत्। अताङ्क्षीत्। अताङ्क्ताम्॥

१४९८ ओविजी भयचलनयोः—

विनक्ति। विङ्क्तः। विवेज। विविजिथ, (४२८)। विजिता॥ विजिष्यति। वेजिषति; वेजिषाति। विनक्तु। अविनक्। अविजीत्॥

१४९९ वृजी मर्जने—वृणक्ति। वर्जिता॥

१५०० पृची संपर्के = स्पर्श करना—पृणक्ति। पपर्च। पपर्चिथ पर्चिष्यति। पर्चिषति; पर्चिषाति। पृणक्तु। अपृणक्। पृञ्च्यात्। पृच्यात्। अपर्चीत्। अपर्चिष्यत्॥

तृहादय उदात्ता उदात्तेतः॥

तृह आदि ८ आठ धातु सेट् परस्मैपदी हैं॥ वृत्॥

इति श्नम्विकरणो रुधादिगणः समाप्तः ॥ ७ ॥

यह श्नम् विकरणवाला रुधादिगण समाप्त हुआ॥ ७॥

---

(८) अथ तनादिगण: ॥

अथ सप्त स्वरितेत: ॥

अब ७ सात धातु उभयपदी कहते हैं—

१५०१ तनु विस्तारे—

४३९—तनादिकृञ्भ्य उ: ॥ ३ । १ । ७९ ॥

तनादि और कृञ् धातु से उ प्रत्यय हो, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो।

यह भी सूत्र शप् का अपवाद है। कृञ् धातु भी तनादिगण में ही पढ़ा है, इस कारण कृञ् से भी उ प्रत्यय हो ही जाता, फिर कृञ् का पृथक् ग्रहण इसलिए है कि तनादिगण के अन्य कार्य कृञ् को न हों, जैसे तनादिकों से परे सिच् का लुक् (४४०) से विकल्प से होता है, सो कृञ् से न होवे।

तनोति। तनुते। तनुवः; तन्वः (२००)। ततान। तेने। तनिता। तनिष्यति। तनिष्यते। तानिषति; तानिषाति। तनोतु। तनु, (२०१)। तनवानि। तनुतात्। अतनोत्। अतनुत। तनुयात्। तन्वीत। तन्यात्। तनिषीष्ट। अतानीत्; अतनीत्।

४४०—तनादिभ्यस्तथासो: ॥ २ । ४ । ७९ ॥

तनादि धातुओं से परे जो सिच्, उसका लुक् होवे विकल्प से, त और थास् परे हों तो।

'थास' आत्मनेपद प्रत्यय के साहचर्य से त भी आत्मनेपद का एकवचन लिया जाता है। इससे 'यूयमतनिष्ट' यहाँ परस्मैपद के मध्यम पुरुष बहुवचन में सिच् लुक् नहीं होता।

अतत, (३०३) से अनुनासिक लोप; अतनिष्ट। अतनिषाताम्। अतनिषत। अतथाः; अतनिष्ठाः। अतनिषि। अतनिष्यत्। अतनिष्यत॥

१५०२ षणु दाने—सनोति। सनुते। सायात्, (१८५); सन्यात्। असात्, (३९४); असनिष्ट। असाथाः; असनिष्ठाः॥

१५०३ क्षणु हिंसायाम्—क्षणोति। क्षणुते। अक्षणीत्, (१६२) से वृद्धि का निषेध। अक्षत; अक्षणिष्ट। अक्षथाः; अक्षणिष्ठाः॥

१५०४ क्षिणु च—क्षेणोति, यहां उ प्रत्यय के आर्द्धधातुक होने से लघूपधगुण (५१) से होता है। क्षेणुते। चिक्षेण। चिक्षिणे। क्षेणितासि। क्षेणितासे। क्षेणिषति; क्षेणिषाति। अक्षेणीत्। अक्षित; अक्षेणिष्ट। अक्षिथाः; अक्षेणिष्ठाः॥

१५०५ ऋणु गतौ—अर्णोति। अर्णुतः अर्णुवन्ति। आनर्ण। आनृणतुः। आनृणे। अर्णितासि। आर्णीत्। आर्त्त; आर्णिष्ट। आर्थाः; आर्णिष्ठाः॥

१५०६ तृणु अदने—तर्णोति। तर्णुते। अतृत; अतर्णिष्ट।

१५०७ घृणु दीप्तौ—घर्णोति। घर्णुते। जघर्ण। जघृणे॥

तनादय उदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः॥

ये तन आदि ७ सात धातु सेट् उभयपदी हैं॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ॥

१५०८ वनु याचने = मांगना—वनुते। ववने, (१२८)। वनितासे। वनिष्यति। वानिषतै; वनिषातै। वनुताम्। वनवै। अवनुत। वन्वीत। वनिषीष्ट। अवत; अवनिष्ट। अवथाः; अवनिष्ठाः। अवनिष्यत॥

१५०९ मनु अवबोधने = निश्चित ज्ञान—

मनुते । मेने । अमत; अतनिष्ट ।।

उदात्तावनुदात्तेतावात्मनेपदिनौ ।।

ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ।।

अथैक उभयतोभाषः ।।

१५१० डुकृञ् करणे = करना—

अनुदात्त उभयतोभाषः । यह धातु अनिट् उभयपदी है । करोति ।

'तस्' के परे भी उ प्रत्ययनिमित्त कृञ् को अर् गुण होकर—

४४१–अत उत्सार्वधातुके ।। ६ । ४ । ११० ।।

कृञ् धातु के अकार को उकारादेश होवे, कित् ङित् सार्वधातु परे हों तो ।

कुरुतः । कुर्वन्ति, यहां भी (१९७) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है, उसका निषेध (४३०) हो जाता है । करोषि । कुरुथः । कुरुथ । करोमि ।

४४२–नित्यं करोतेः ।। ६ । ४ । १०८ ।।

करोति धातु से परे जो प्रत्यय का उकार उसका नित्य ही लोप होवे, व म परे हों तो ।

यह सूत्र (२००) का अपवाद है । कुर्वः । कुर्मः । कुरुते । कुर्वाते ।

चकार । चक्रतुः । चकर्थ, (१४८) । चकृव । चक्रे । चकृषे । कर्त्ता । करिष्यति । करिष्यते, (२३८) । कार्षति; कार्षाति । कार्षतै; कार्षातै । करोतु । कुरुतात् । कुरु, (२०१) । करवाणि । करवाव । कुरुताम् । अकरोत् । अकुरुत ।

४४३–ये च ॥ ६ । ४ । १०९ ॥

कृञ् धातु से परे प्रत्यय के उकार का लोप हो, यकारादि प्रत्यय परे हों तो कुर्यात् । क्रियात्, (२३९)। कृषीष्ट, (२४०)। अकार्षीत्। अकार्ष्टाम् । अकृत । अकृथाः; यहां सिच्लुक् (२४१) से नित्य होता है। अकरिष्यत् । अकरिष्यत ॥

४४४–मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ॥ २ । ४ । ८० ॥

वेदविषय मन्त्रभाग में घस, ह्वर, णस, वृ, दह, आकारान्त, वृच, कृ, गमि और जन धातुओं से परे जो लि, उसका लुक् होवे ॥

लि करके यहां लुङ् का च्लि प्रत्यय समझा जाता है। 'घस्लृ अदने'– 'अक्षन्नमीमदन्त पितरः'—अक्षन् । 'अघसन्'—लोक में होता है। ह्वर से 'ह्वृ कौटिल्ये' समझना चाहिये। 'मा ह्वा'—अह्वाः । लोक में—अह्वार्षीत्। 'णश अदर्शने'—'प्रणङ् मर्त्यस्य'—प्रणक्, यहां अट् का अभाव है। लोक में—अनशत् । वृ करके 'वृङ् और वृञ्' दोनों का ग्रहण होता है। 'सुरुचो वेन आवः'—आवः । आवारीत्' आङ्पूर्वक लोक में—

'दह भस्मीकरणे'—आधक् । लोक में—आधाक्षीत् । 'प्रा पूरणे'– 'आप्रा द्यावापृथिवी'—अप्राः । अप्रासीत् । लोक में—'वृच्'—'परा वर्क्'। लोक में—अवर्चीत् । 'कृ' धातु का—अक्रन्—बहुवचन में और अकः—एकवचन में। 'गम' का—अग्मन् । लोक में—अगमन् । 'जन' का—'अज्ञत वा अस्य दन्ताः' । लोक में—अजनि—अजनिष्ट ॥

४४५–अभ्युत्सादयांप्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्निति छन्दसि ॥ ३ । १ । ४२ ॥

'अभ्युत्सादयाम्' आदि वेदविषय में विकल्प से निपातन किये हैं।

सद, जन और रम इन ण्यन्त धातुओं से लुङ् लकार में आम् प्रत्यय निपातन किया है और चिञ् धातु से भी लुङ् में आम् प्रत्यय द्विर्वचन और कुत्व निपातन किया है। 'अकः' यह कृञ् धातु का पूर्वसूत्र (४४४) से सिद्ध प्रयोग का सद आदि चारों धातुओं के अन्त में अनुप्रयोग किया है।

जैसे—अभ्युत्सादयामकः और लोक में—अभ्युदसीषदत्। प्रजनयामकः, लोक में—प्राजीजनत्। चिकयामकः, लोक में—अचैषीत्। रमयामकः, लोक में—अरीरमत्।

पावयांक्रियात्। यहां ण्यन्त पूङ् धातु से लिङ् में आम् प्रत्यय और कृञ् धातु का अनुप्रयोग निपातन किया है। लोक में—पाव्यात्।

विदामक्रन्, यहां लुङ् लकार के प्रथम पुरुष बहुवचन में विद धातु से आम् प्रत्यय कृञ् का अनुप्रयोग और च्लि का लुक् (४४४) से निपातन किया है। लोक में—अवेदिषुः होता है। (वृत्) ॥

इत्युविकरणस्तनादिगणः समाप्तः ॥ ८ ॥

यह उविकरणवाला तनादिगण समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

---

(९) अथ क्र्यादिगणः ॥

अथोभयपदिनः षोडश ॥

१५११ डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये=द्रव्य का लेना देना—

४४६—क्र्यादिभ्यः श्ना ॥ ३ । १ । ८१ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो क्री आदि धातुओं से श्ना प्रत्यय हो।

क्रीणाति। क्रीणीतः, (३८३)। पर नित्य और अन्तरङ्ग होने से ईकारादेश (३८३) का बाधक झि को अन्त और झ को अत् आदेश होकर—क्रीणन्ति, (३६५)। क्रीणासि। क्रीणीते। क्रीणाते। क्रीणते।

चिक्राय। चिक्रियतुः। चिक्रयिथ; चिक्रेथ। चिक्रियिव। क्रेता। क्रेष्यति। क्रेष्यते। क्रैषति; क्रैषाति। क्रैषतै; क्रैषातै। क्रीणातु। क्रीणीहि। क्रीणानि। क्रीणीताम्। अक्रीणीत्। अक्रीणीत। क्रीणीयात्। क्रीणीत। क्रीयात्। क्रेषीष्ट। अक्रैषीत्। अक्रेष्ट। अक्रेष्यत्। अक्रेष्यत॥

१५१२ प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च=तृप्ति और शोभा—प्रीणाति। प्रीणीते॥

१५१३ श्रीञ् पाके=पकाना—श्रीणाति। श्रीणीते॥

१५१४ मीञ् हिंसायाम्—मीनाति। मीनीतः। मीनीते। एच् विषय में आकारादेश (३९९) से—ममौ। मिम्यतुः। ममिथ; ममाथ। मिम्ये। माता। मास्यति। मास्यते। मासति। मासाति। मीयात्। मासीष्ट। अमासीत्। अमासिष्टाम्। अमास्त। अमासाताम्॥

१५१५ षिञ् बन्धने—सिनाति । सिनीते । सिषाय । सिष्ये । सेता ।।

१५१६ स्कुञ् आप्रवणे = कूदना—

४४७—स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ।। ३ । १ । ८२ ।।

स्तम्भु आदि पांच धातुओं से श्नु और चकार से श्ना प्रत्यय हों, कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो ।

स्कुनोति । स्कुनुते । स्कुनाति । स्कुनीते । चुस्काव । चुस्कविथ; चुस्कोथ । स्कोता । अस्कौषीत् । अस्कोष्ट ।।

'स्तम्भ' आदि चार धातु सौत्र हैं । इनका पाठ किसी गण में नहीं है और सब रोकने अर्थ में परस्मैपदी हैं—स्तभ्नोति । स्तभ्नाति, (१३९) से नलोप । तस्तम्भ । अस्तभत्, (१५४) से अङ् विकल्प; अस्तम्भीत् । स्तुभ्नोति; स्तुभ्नाति । स्कभ्नोति; स्कभ्नाति । स्कुभ्नोति; स्कुभ्नाति । चस्कम्भ । स्कम्भिता । स्कम्भिष्यति ।

४४८—हलः श्नः शानज्झौ ।। ३ । १ । ८३ ।।

हलन्त धातु से परे जो श्ना प्रत्यय, उसको शानच् आदेश होवे, हि परे हो तो ।

स्तभान । स्तुभान । स्कभान । स्कुभान । श्नुपक्ष में— स्तभ्नुहि इत्यादि ।

अस्कभ्नात्; अस्कभ्नोत् । स्कभ्नीयात्; स्कभ्नुयात् । स्कभ्यात् । अस्कम्भीत् । अस्कम्भिष्यत् ।

४४९—छन्दसि शायजपि ।। ३ । १ । ८४ ।।

वेद विषय में हि परे हो तो श्ना प्रत्यय के स्थान में शानच् और शायच् दोनों आदेश हों ।

गृभाय । स्तभाय । स्कभाय । स्तभान वधान देव सवितः ।।

१५१७ युञ् बन्धने—युनाति । युनीते । युवाव । युयुवे ।।

क्र्यादयोऽनुदात्ता उभयतोभाषाः सप्त ।।

क्री आदि ७ सात धातु अनिट् उभयपदी हैं ।।

१५१८ क्नूञ् शब्दे—क्नूनाति । क्नूनीते । क्नविता । क्नविष्यति । अक्नावीत् । अक्नविष्ट ॥

१५१९ द्रूञ्, हिंसायाम्—द्रूणाति । द्रूणीते । दुद्राव । दुद्रुवे ॥

१५२० पूञ् पवने – पवित्रता—

४५०—प्वादीनां ह्रस्वः ॥ ७ । ३ । ८० ॥

शित् प्रत्यय परे हो तो पू आदि धातुओं के अच् को ह्रस्व होवे ।

पुनाति । पुनीते । पुपाव । पुपुवे । पविता । पविष्यति ॥

१५२१ मूञ् बन्धने—मुनाति । मुनीते । माविषति; माविषाति ॥

१५२२ लूञ् छेदने = काटना—

लुनाति । लुनीते । लुनातु । लुनीताम् ।

१५२३ स्तृञ् आच्छादने—स्तृणाति । स्तृणीते । तस्तार । तस्तरतुः । स्तरीता; स्तरिता । अस्तृणात् । अस्तृणीत । स्तृणीयात् । स्तृणीत । स्तीर्यात् । स्तरिषीष्ट, (४२०; ४२१) स्तृषीष्ट । अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । अस्तरिष्ट । (४२०); अस्तरीष्ट; अस्तीर्ष्ट ॥

१५२४ कॄञ् हिंसायाम्—कृणाति । कृणीते । चकार । चकरतुः । चकरे, (२५८) ॥

१५२५ वॄञ् वरणे = स्वीकार—वृणाति । वृणीते । ववार । ववरे । वरिता; वरीता । वूर्यात्, (३८०; १९७) । वरिषीष्ट, (४२०); वूर्षीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवरिष्ट; अवरीष्ट; अवूर्ष्ट ॥

१५२६ धूञ् कम्पने—धुनाति । धुनीते । दुधाव । दुधुवतुः । दुधविथ; दुधोथ, (१४०) से इट् विकल्प । धविता; धोता । धविष्यति; धोष्यति; अधावीत्, (३३०) से नित्य इट् । अधविष्ट; अधोष्ट ॥

उदात्ता उभयतोभाषा नव ॥

क्नूञ् आदि ९ नव धातु सेट् उभयपदी हैं ॥

अथ बध्नात्यन्ता एकविंशतिः परस्मैपदिनः ॥

अत्र बध धातुपर्यन्त २१ इक्कीस धातु परस्मैपदी कहते हैं—

१५२७ शॄ हिंसायाम्—शृणाति । शशार । शश्रतुः । शश्रुः, (३८१) । दीर्घ पक्ष में—शशरतुः, (२५८) से गुण । शशरिथ । शश्रिव; शशरिव । शरीता; शरिता । शरिष्यति; शरीष्यति । शारीषति; शारीषाति । शारिषति; शारिषाति । शृणातु । शृणीहि । अशृणात् । शृणीयात् । शीर्यात् । अशारीत् । अशारिष्टाम् । अशरीष्यत्; अशरिष्यत् ।

१५२८ पॄ पालनपूरणयोः—

पृणाति । पप्रतुः । पपरतुः । पूर्यात्, (३८०) ॥

१५२९ वॄ वरणे=भरण इत्येके—वृणाति । वूर्यात् ॥

१५३० भॄ भर्त्सने—भरण इत्यन्ये—भृणाति ॥

१५३१ मॄ हिंसायाम्—मृणाति । ममार ॥

१५३२ दॄ विदारणे—दृणाति । दद्रतुः । ददरतुः ॥

१५३३ जॄ वयोहानौ=झॄ इत्येके—जृणाति । झृणाति । जीर्यात् । धॄ इत्यन्ये—धृणाति ॥

१५३४ नॄ नये=ले चलना—नृणाति । नन्रतुः; ननरतुः ॥

१५३५ कॄ हिंसायाम्—कृणाति ॥

१५३६ ऋॄ गतौ—ऋणाति । अराञ्चकार । अराम्बभूव । अरामास । अरिता; अरीता । आर्णात् । आर्णीताम् । ईर्यात् । आरीत् । आरिष्टाम् ॥

१५३७ गॄ शब्दे— —गृणाति । जग्रतुः; जगरतुः । गरीता; गरिता । गरिष्यति; गरीष्यति । गारीषति; गारीषाति । गृणातु । गृणीहि । अगृणात् । गृणीयात् । अगारीत् ॥

आदय उदात्ताः ॥

शॄ आदि ११ ग्यारह धातु सेट् हैं ॥

१५३८ ज्या वयोहानौ—(२८६) से य को इ सम्प्रसारण और पूर्वरूप एकादेश होता है।

४५१—हलः ॥ ६ । ४ । २ ॥

अङ्ग का अवयव हल् से परे जो संप्रसारण, उसको दीर्घ होवे।

जिनाति, यहाँ जि को दीर्घ होकर फिर ह्रस्व (४५०) से हो जाता है। जिज्यौ, (२८२)। जिज्यतुः, (२८६)। ज्याता। ज्यास्यति। ज्यासति; ज्यासाति। जिनातु। अजिनात्। जिनीयात्। जीयात्। (२८६)। अज्यासीत्। अज्यास्यत्॥

१५३९ व्री वरणे—

व्रिणाति। विव्राय। विव्रियतुः। व्रेता। व्रीयात्॥

१५४० री गतिरेषणयोः=गति और भेड़िये का शब्द—

रिणाति।।

१५४१ ली श्लेषणे—लिनाति। (४००) से आत्व विकल्प—ललौ; लिलाय। लिल्यतुः। ललिथ; ललाथ; लिलयिथ। लाता; लेता। लास्यति; लेष्यति। लासति; लासाति। लैषति; लैषाति। लिनातु। लिनीहि। अलिनात्। लिनीयात्। लायात्; लेयात्। अलासीत्; अलैषीत्। अलास्यत्; अलेष्यत्॥

१५४२ व्ली वरणे=स्वीकार—व्लिनाति॥

१५४३ प्ली गतौ—प्लिनाति॥

(वृत्) इति प्वादयः॥

ये (४५०) सूत्र में कहे प्वादि धातु पूरे हुए॥

१५४४ क्षीष् हिंसायाम्—

क्षीणाति। षित् का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा॥

१५४५ भ्री भये=डर—भरण इत्येके—भ्रीणाति।

१५४६ ज्ञा अवबोधने—जानाति, (४०२)। जानीतः। जानन्ति। जानासि। जज्ञौ। जज्ञतुः। जज्ञिथ; जज्ञाथ। ज्ञाता। ज्ञास्यति। ज्ञासति; ज्ञासाति। जानातु। जानीहि। जानानि। अजानात्। जानीयात्। ज्ञेयात्; ज्ञायात्। अज्ञासीत्। अज्ञास्यत्॥

१५४७ बन्ध बन्धने=बांधना—बध्नाति। बबन्धिथ; बबन्ध। बन्धा। बन्धारौ। बन्धारः। भन्त्स्यति। भन्त्सति; भन्त्साति। बध्नातु। बधान, (४४८; ४४९); बधाय। अबध्नात्। बध्नीयात्। बध्यात्।

अभान्त्सीत्। अबान्धाम्, यहां भष्भाव विधायक सूत्र (२०४) से सिच्लोप (१४२) पूर्व होने से भष्भाव को असिद्ध मानकर सिच्लोप (१४२) से हो जाता है। पीछे प्रत्ययलक्षण सूत्र की अपेक्षा में त्रिपादी का सिच्लोप असिद्ध होने से सादि प्रत्यय के न रहने से भष्भाव नहीं होता। अभान्त्सुः॥

ज्यादयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः॥

ये ज्यादि १० दश धातु अनिट् परस्मैपदी हैं॥

अथैक आत्मनेपदी॥

१५४८ वृङ् संभक्तौ=अच्छी भक्ति—उदात्त आत्मनेपदी। यह धातु सेट् है।

वृणीते। वव्रे। ववृषे। ववृढ्वे। वरीता; वरिता। वृणीताम्। अवृणीत। वृणीत। वरिषीष्ट, (४२०; ४२१), वृषीष्ट। अवरीष्ट; अवरिष्ट; अवृत। अवरीष्यत; अवरिष्यत॥

इतः परस्मैपदिनः॥

अब यहां से आगे परस्मैपदी धातु कहते हैं—

१५४९ श्रन्थ विमोचनप्रतिहर्षयोः=छूटना और आनन्द—

श्रथ्नाति । (२७१), शश्राथ । श्रेथतुः । श्रेथुः । श्रेथिथ । शश्रथ । शश्राथ । श्रन्थिता । श्रन्थिष्यति । श्रन्थिषति; श्रन्थिषाति । श्रथ्नातु । श्रथान; श्रथाय । अश्रथ्नात् । श्रथ्नीयात् । श्रथ्यात्, (१३९) । अश्रन्थीत् । अश्रन्थिष्टाम् । अश्रन्थिष्यत् ॥

१५५० मन्थ विलोडने—मथ्नाति । मथान; मथाय ॥

१५५१ श्रन्थ, ग्रन्थ सन्दर्भे—ग्रथ्नाति । ग्रथान । ग्रथ्यात् ।

अर्थभिन्न होने से 'श्रन्थ' फिर पढ़ा है ॥

१५५२ कुन्थ संश्लेषणे—कुथ्नाति । कुथान ॥

१५५३ मृदु क्षोदे = पीसना—मृद्नाति । मृदान ॥

१५५४ मृड च—अयं सुखेपि—मृड्नाति । मृडान ॥

१५५५ गुध रोषे = रिसाना—गुध्नाति । गुधान ॥

१५५६ कुष निष्कर्षे = खींचना—

कुष्णाति । चुकोप । चुकुषतुः । कोषिता । कोषिष्यति । कोषिषति; कोषिषाति । कुष्णातु । कुषाण । अकोषीत् ।

४५२–निरः कुषः ॥ ७ । २ । ४६ ॥

निर् उपसर्ग पूर्वक कुष धातु से परे वलादि आर्द्धधातुक को इट् का आगम विकल्प करके होवे ।

निष्कोषिता; निष्कोष्टा । निरकोषीत्; निरकुक्षत्, (२०७) से क्स ॥

१५५७ क्षुभ संचलने = चलायमान होना—

यहाँ षकार से परे णत्व प्राप्त है, इसलिये—

४५३–क्षुभ्नादिषु च ॥ ८ । ४ । ३९ ॥

क्षुभ्ना आदि शब्दों में नकार को णकारादेश न होवे ।

क्षुभ्नाति । क्षुभ्नीतः । क्षोभिता । क्षुभाण; क्षुभाय ॥

१५५८–५९ णभ, तुभ हिंसायाम्—नभ्नाति । तुभ्नाति । नभान; नभाय । ये दोनों धातु भ्वादि (७७४-७५) और दिवादिगण (१२७८-७९) में भी आ चुके हैं ॥

१५६० क्लिशू विबाधने=दुःख होना—क्लिश्नाति । चिक्लेश ।। क्लेशिता; क्लेष्टा (१४०) । अक्लेशीत्; अक्लिक्षत् ।।

१५६१ अश भोजने—अश्नाति । आश । आशतुः । अशान ।।

१५६२ उध्रस उञ्छे—उकार की इत्संज्ञा । ध्रस्नाति । दध्रास ।। ध्रसिता । ध्रसान ।।

१५६३ इष आभीक्ष्ण्ये=वार-वार वा शीघ्र होना—

इष्णाति । इयेष । ईषतुः । एषिता । एषिष्यति । इषाण । ऐष्णात् ।। इष्णीयात् । इष्यात् । ऐषीत् ।।

१५६४ विष विप्रयोगे=विरुद्ध संयोग—

विष्णाति । वेष्टा । यह धातु अनिट् है ।।

१५६५–६६ प्रुष, प्लुष स्नेहनसेवनपूरणेषु—

प्रुष्णाति । प्लुष्णाति ।।

१५६७ पुष पुष्टौ—पुष्णाति । पोषिता । पुषाण ।।

१५६८ मुष स्तेये=चोरी—मुष्णाति । मोषिता । मुषाण ।।

१५६९ खच भूतप्रावुर्भावे=हो चुके का फिर होना—

खच्ञाति । खचान ।

वान्तोऽयमित्येके—कोई के मत में यह 'खव' धातु है वहां—

४५४—च्छ्वोः शूडनुनासिके च ।। ६ । ४ । १९ ।।

तुक् आगम के सहित जो छ और व उनको श और ऊठ् आदेश यथासंख्य करके हों, अनुनासिक, क्विप् और झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों, तो ।

पीछे ऊठ् के साथ वृद्धि एकादेश होकर—खौनाति । खौनीतः । चखाव । चखवतुः । खविता । खौनीहि, यहां परत्व से प्रथम ऊठ् होकर हलन्त के न रहने से हि को धि न हुआ ।।

१५७० हेठ च=चकार से पूर्वोक्त अर्थ लिया जाता है—

ष्टुत्व होकर—हेठ्णाति । हेठान ॥

श्रन्थादयो द्वाविंशतिर्विषिवर्जमुदात्ता उदात्तेतः ॥

श्रन्थ आदि २२ बाइस धातु विष् को छोड़ के सेट् परस्मैपदी हैं ॥

अथैक उभयतोभाषः ॥

१५७१ ग्रह उपादाने=लेना—

उदात्तः स्वरितेत् । यह धातु सेट् उभयपदी है ।

गृह्णाति, (२८६) से सम्प्रसारण । गृह्णीते । जग्राह । जगृहतुः । जगृहुः ॥

४५५—ग्रहोऽलिटि दीर्घः ॥ ७ । २ । ३७ ॥

एकाच् ग्रह धातु से विहित जो इट् उसको दीर्घ होवे परन्तु लिट् परे न हो तो ।

लिट् में निषेध होने से—जग्रहिथ, यहां दीर्घ न हुआ । ग्रहीता । ग्रहीष्यति । ग्रहीष्यते । ग्राहिषति; ग्राहिषाति । गृह्णातु । गृहाण । अगृह्णात् । गृह्णीयात् । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । अग्रहीत्, (१६२) । अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । अग्रहीषत । अग्रहीष्यत् । अग्रहीष्यत ॥ (वृत्) ॥

इति श्नाविकरणः क्र्यादिगणः समाप्तः ॥ ९ ॥

यह श्नाविकरणवाला क्र्यादिगण समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

---

(१०) अथ चुरादिगणः ॥

अथ स्तुप्यन्ताः परस्मैपदिनः ॥

१५७२ चुर स्तेये = चोरी करना—

४५६—सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्ण-चूर्णचुरादिभ्यो णिच् ॥ ३ । १ । २५ ॥

सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण और चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय होवे ।

सत्याप आदि चूर्णपर्यन्त प्रातिपदिकों का वर्णन 'नामधातुप्रक्रिया' में करेंगे और चुरादि धातुओं से स्वार्थ में णिच् होकर—'चुर+णिच्' की धातुसंज्ञा (१६७) से, णिच् को मानकर गुण (५१) से, तिप्, शप् को मान कर गुण और अयादेश होकर—चोरयतिः । चोरयतः । चोरयन्ति ।

४५७—णिचश्च ॥ १ । ३ । ७४ ॥

क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो णिजन्त धातु से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों ।

चोरयते । चोरयाञ्चकार । चोरयाञ्चक्रे । चोरयामास । चोरयाम्बभूव । चोरयिता । चोरयिष्यति । चोरयिष्यते । चोरयिषति; चोरयिषाति । चोरयतु । चोरयताम् । अचोरयत् । चोरयेत् । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । लुङ् में (१७६) से चङ्, (१७९) से उपधा को ह्रस्व, (१८०) से द्वित्व, (१८३) से अभ्यास को दीर्घ होकर—अचूचुरत् । अचूचुरत ॥

१५७३ चिति स्मृत्याम् = स्मरण—चिन्तयति । अचिचिन्तत् ।

इस 'चिति' धातु को इदित् पढ़ने से यह ज्ञापक होता है कि चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय विकल्प से होवे, पक्ष में चुरादिकों से शप् भी होवे क्योंकि जो 'चिन्त' पढ़ते तो 'चिन्त्यात्' आदि प्रयोगों में नकारलोप (१३९) से हो जाता ॥

१५७४ यत्रि संकोचने—यन्त्रयति । अयन्त्रयत् ॥

१५७५ स्फुडि परिहासे = ठट्ठा करना—

स्फुण्डयति । अपुस्फुण्डत् ।

स्फुटि इत्येके—स्फुण्टयति ॥

१५७६ लक्ष दर्शनाङ्कनयोः = देखना और चिह्न—

लक्षयति । अललक्षत् ॥

१५७७ कुद्रि अनृतभाषणे = झूंठ बोलना—

कुन्द्रयति । अचुकुन्द्रत् ॥

१५७८ लड उपसेवायाम् = लाड़—

लाडयति, (१२६) से वृद्धि । अलीलडत् ॥

१५७९ मिदि स्नेहने—मिन्दयति । अमिमिन्दत् । मिन्द्यात् ॥

१५८० ओलडि उत्क्षेपे = ऊपर को फेंकना—लण्डयति ।

किन्हीं के मत में ओकार की इत्संज्ञा नहीं होती, वहां—ओलण्डयति ।

उकारादिरयमित्यन्ये—कोई इस धातु को उकारादि कहते हैं। उलण्डयति ॥

१५८१ जल अपवारणे = जाल—जालयति । अजीजलत् ।

लज इत्येके—लाजयति । अलीलजत् ॥

१५८२ पीड अवगाहने = पीड़ा—पीडयति ।

४५८–भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम् ॥ ७ । ४ । ३ ॥

भ्राज आदि धातुओं की उपधा को विकल्प करके ह्रस्व हो, चङ्परक णि परे हो तो ।

अपीपिडत्; अपिपीडत्, यहां जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होता है वहां लघुपरक अभ्यास के न होने से अभ्यास को दीर्घ (१८३) से नहीं होता ॥

१५८३ नट अवस्पन्दने = नाचना—नाटयति । अनीनटत् ।

१५८४ श्रथ प्रयत्ने—प्रस्थान इत्येके = कोई के मत में श्रथ धातु प्रस्थान अर्थ में है—श्राथयति ॥

१५८५ बध संयमने = बन्धन—बाधयति । अबीबधत् ॥

१५८६ पॄ पूरणे—

पारयति । पारयते । पारयाञ्चकार । पारयिता । अपीपरत् ।

इस धातु को दीर्घ ॠकारान्त पढ़ा है, सो ह्रस्व कहते तो भी णिच् में वृद्धि हो ही जाती, फिर यह ज्ञापक होता है कि इससे शप् भी होवे—परति । परतः । पपार । पपरतुः ॥

१५८७ ऊर्ज बलप्राणनयोः = बल और जीवन—ऊर्जयति ॥

१५८८ पक्ष परिग्रहे = लेना—पक्षयति । अपपक्षत् ॥

१५८९-९० वर्ण, चूर्ण प्रेरणे—वर्ण वर्णन इत्येके = व्याख्यान—

वर्णयति । चूर्णयति ॥

१५९१ प्रथ प्रख्याने = प्रकट करना—प्राथयति ।

४५९–अत् स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् ॥ ७ । ४ । ९५ ॥

स्मृ आदि धातुओं के अभ्यास को अकारान्त आदेश हो, चङ्परक णि परे हो तो ।

यह सूत्र सन्वद्भाव (१८१) से प्राप्त इत्व (१८२) का अपवाद है। अपप्रथत् ॥

१५९२ पृथ प्रक्षेपे—पर्थयति । पर्थयते । पर्थयाञ्चकार ॥

४६०—उर्ऋत् ॥ ७ । ४ । ७ ॥

धातु की उपधा ऋकार के स्थान में ऋत् आदेश विकल्प से होवे, चङ्परक णि परे हो तो।

यह सूत्र गुण वृद्धि आदि का बाधक है। अपीपृथत्; अपपर्थत्। अपीपृथत; अपपर्थत ।

पथ इत्येके—पाथयति ॥

१५९३ षम्ब सम्बन्धने = मेल—सम्बयति । असतम्बत् ॥

१५९४ शम्ब च—अशशम्बत् ।

साम्ब इत्येके—असताम्बत् ॥

१५९५ भक्ष अदने—भक्षयति ॥

१५९६ कुट्ट छेदनभर्त्सनयोः—पूरण इत्येके—
कुट्टयति । अचुकुट्टत् ॥

१५९७-९८ पुट्ट, चुट्ट अल्पीभावे = थोड़ा होना—
पुट्टयति । चुट्टयति ॥

१५९९-१६०० अट्ट, षुट्ट अनादरे—अट्टयति ।

इस धातु को दकारोपध मानने से उस दकार को ट के संयोग में टकार ही होकर, उसके असिद्ध होने से संयोगादि दकार को द्वित्व नहीं होता—आट्टटत् ॥

१६०१ लुण्ठ स्तेये—लुण्ठयति ॥

१६०२-०३ शठ, श्वठ असंस्कारगत्योः—शाठयति । श्वाठयति ॥

श्वठि इत्येके—श्वण्ठयति ॥

१६०४–०९ तुज, तुजि, पिज, पिजि, लजि, लुजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु = हिंसा, बल, आदान और स्थान—

तोजयति । अतूतुजत् । तुञ्जयति । अतुतुञ्जत् । पेजयति । अपीपिजत् ॥

१६१० पिस गतौ—पेसयति ।

१६११ षान्त्व सामप्रयोगे = शान्ति करना—सान्त्वयति ॥

१६१२–१३ श्वल्क, वल्क परिभाषणे—श्वल्कयति । वल्कयति ॥

१६१४ ष्णिह स्नेहने = प्रीति—स्नेहयति । असिस्निहत् ।

ष्फिट इत्येके—स्फेटयति ॥

१६१५ ष्मिट अनादरे—असिस्मिटत् ।

स्मिङ अनादर इत्येके—इसमें णिच् को छोड़कर केवल स्मिङ् धातु से ङित्करण निष्प्रयोजन होने से णिजन्त से आत्मनेपद ही होते हैं ॥

१६१६ श्लिष श्लेषणे—श्लेषयति । अशिश्लिषत् ।

१६१७ पथि गतौ—पन्थयति ॥

१६१८ पिच्छ कुट्टने = कूटना—पिच्छयति ॥

१६१९ छदि सम्वरणे—छन्दयति ॥

१६२० श्रण दाने—श्राणयति ॥

१६२१ तड आघाते = ताड़ना—ताडयति । अतीतडत् ॥

१६२२–२४ खड, खडि, कडि भेदने—

खाडयति । खण्डयति । कण्डयति ॥

१६२५ कुडि रक्षणे—कुण्डयति ॥

१६२६ गुडि वेष्टने—रक्षण इत्येके—गुण्डयति ।

कुठि, गुठि चेत्यन्ये—कुण्ठयति । गुण्ठयति । अचुकुण्ठत् ॥

१६२७ खुडि खण्डने = काटना—खुण्डयति ॥

१६२८ वठि विभाजने = बांटना—वण्ठयति ।

वडि इत्येके—वण्डयति ॥

१६२९ मडि भूषायाम् = शोभा—

मण्डयति । मण्डयते । मण्डयाञ्चकार । मण्डयिता । मण्डयिष्यति । मण्डयिषति; मण्डयिषाति । मण्डयतु । मण्डयताम् । अमण्डयत् । मण्डयेत । मण्ड्यात् । अममण्डत् । अमण्डयिष्यत् ॥

१६३० भडि कल्याणे—भण्डयते ॥

१६३१ छर्द वमने—छर्दयाञ्चक्रे ॥

१६३२–३३ पुस्त, बुस्त, आदरानादरयोः—पुस्तयितासे ॥

१६३४ चुद संचोदने—चोदयिष्यते ॥

१६३५–३६ नक्क, धक्क नाशने—नक्कयिषतै; नक्कयिषातै ॥

१६३७–३८ चक्क, चुक्क व्यथने—चक्कयताम् ॥

१६३९ क्षल शौचकर्मणि = शुद्धि करना—क्षालयति ।

१६४० तल प्रतिष्ठायाम्—अतालयत ॥

१६४१ तुल उन्माने = तोलना—तोलयति । अतूतुलत् ॥

१६४२ दुल उत्क्षेपे = फेंकना—दोलयति ॥

१६४३ पुल महत्वे—पोलयेत ॥

१६४४ चुल समुच्छ्राये—चोलयिषीष्ट । अचूचुलत ॥

१६४५ मूल रोहणे—मूलयति ॥

१६४६ बुल निमज्जने = डूबना—अबूबुलत् ॥

१६४७–४८ कल, विल क्षेपे = निन्दा—कालयति । वेलयति ॥

[१६४९ बिल भेदने—वेलयति ॥

१६५० तिल स्नेहने—तेलयति ॥

१६५१ चल भृतौ—चालयति ॥

१६५२ पाल रक्षणे—पालयति ॥

१६५३ लूष हिंसायाम्—लूषयति ॥

१६५४ शुल्व माने—शुल्वयति ॥

१६५५ शूर्प च—शूर्पयति ॥

१६७६ चुट छेदने—चोटयति ॥

१६५७ मुट संचूर्णने—मोटयति ॥

१६५८–५९ पडि, पसि नाशने—पण्डयति । पंसयति ॥

१६६० व्रज मार्गसंस्कारगत्योः—व्राजयति ॥]

१६६१ शुल्क अतिस्पर्शने—शुल्कयति ॥

१६६२ चपि गत्याम्—चम्पयति । अचचम्पत् ॥

१६६३ क्षपि क्षान्त्याम् = सहना—क्षम्पयति । अचक्षम्पत् ॥

१६६४ क्षजि कृच्छ्रजीवने = कठिनता से जीना—क्षञ्जयति ॥

१६६५ श्वर्त गत्याम्—श्वर्तयति ॥

१६६६ श्वभ्र च—श्वभ्रयति ॥

१६६७ ज्ञप मिच्च—ज्ञप धातु से णिच् प्रत्यय और उसकी मित् संज्ञा हो ।

४६१–मितां ह्रस्वः ॥ ६ । ४ । ९२ ॥

मित्संज्ञक धातुओं की उपधा को ह्रस्व हो णिच् परे हो तो। ज्ञपयति ॥

१६६८ यम च परिवेषणे—परोसने अर्थ में यम धातु से णिच् प्रत्यय और उसकी मित्संज्ञा होती है । यमयति, (४६१) से ह्रस्व ॥

१६६९ चह परिकल्कने = मूर्खता—चहयति । अचीचहत् ।

चप इत्येके—चपयति । अचीचपत् ॥

१६७० रह त्यागे—रहयति । अरीरहत् ॥

१६७१ बल प्राणने = जीवन—बलयति ॥

१६७२ चिञ् चयने = इकट्ठा करना—

४६२–चिस्फुरोर्णौ ॥ ६ । १ । ५४ ॥

चि और स्फुर धातु के एच् को आकारादेश विकल्प से हो, णिच् परे हो तो।

आकारादेश होने के पश्चात्—

४६३–अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग् णौ ॥
७ । ३ । ३६ ॥

ऋ, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आकारान्त धातुओं को पुक् का आगम हो णि परे हो तो।

चापयति। अचीचपत्। जिस पक्ष में आकार न हुआ, वहां—चययति।

इस धातु में ञित् करने से णिच् प्रत्यय का विकल्प होता है क्योंकि ञित् करने का प्रयोजन आत्मनेपद होना णिजन्त से भी उसी अर्थ में होजाता, फिर णिच् से अलग भी आत्मनेपद होने के लिये ञित् पढ़ा है—चयते। चयति॥

नान्ये मितोऽहेतौ (ग०)—स्वार्थ णिच् में ज्ञप आदि धातुओं से अन्य धातु मित्संज्ञक न हों।

इस नियम के करने से प्रयोजन यह है कि जिन शम आदि अमन्त धातुओं की भ्वादिगण में मित्संज्ञा कर चुके हैं, उनमें से जिस किसी धातु से इस चुरादिगण में स्वार्थ में णिच् करें तो भी मित्संज्ञा न हो केवल ज्ञप आदि धातुओं की ही हो॥

१६७३–७५ घट्ट चलने; मुस्त संघाते; खट्ट संवरणे—
घट्टयति। मुस्तयति। खट्टयति॥

१६७६–७८ षट्ट, स्फिट्ट, चुबि हिंसायाम्—चुम्बयति॥

१६७९ पूल संघाते—पूर्ण इत्येके—पुण इत्येके—पूलयति॥

१६८० पुंस अभिवर्द्धने=बढ़ना—पुंसयति। अपुपुंसत्॥

१६८१ टकि बन्धने—टङ्कयति॥

१६८२ धूस कान्तिकरणे = इच्छा करना—धूसयति । अदुधूसत् ॥
धूष इत्येके—धूश इत्यपरे—धूषयति । धूशयति ॥
१६८३ कीट वरणे—कीटयति । अचिकीटत् ॥
१६८४ चूर्ण संकोचने—चूर्णयति ॥
१६६५ पूज पूजायाम्—अपुपूजत् ॥
१६८६ अर्क स्तवने = स्तुति—तपन इत्येके—
अर्कयति । आर्चिकत् ॥
१६८७ शुठ आलस्ये—अशूशुठत् ॥
१६८८ शुठि शोषणे—शुण्ठयति ॥
१६८९–९१ जुड प्रेरणे; गज, मार्ज शब्दार्थे—
गाजयति । मार्जयति । अममार्जत् ॥
१६९२ मर्च च—मर्चयति ॥
१६९३ घृ प्रस्रवणे—घारयति । अजीघरत् ॥
१६९४ पचि विस्तारवचने = विस्तार से कहना—पञ्चयति ॥
१६९५ तिज निशाने = तीक्ष्णता—तेजयति ॥
१६९६ कॄत संशब्दने = कीर्ति—

४६४—उपधायाश्च ॥ ७ । १ । १०१ ॥

धातु की उपधा का जो ॠकार, उसको इकारादेश हो ।

रपर इर् होकर (१३०) सूत्र से दीर्घ होता है—कीर्त्तयति । कीर्तयांचकार । अचीकृतत्; अचिकीर्तत्, (४६०) ॥

१६९७ वर्द्ध छेदनपूरणयोः—वर्द्धयति ॥
१६९८ कुवि आच्छादने—कुम्वयति ।
कुभि इत्येके—कुम्भयति ॥
१६९९–१७०० लुबि, तुबि अदर्शने—अर्दन इत्येके—
लुम्बयति । तुम्बयति ॥
१७०१ ह्लप व्यक्तायां वाचि—ह्लापयति ।

क्लप इत्येके—क्लापयति ॥

१७०२ चुटि छेदने—चुण्टयति । अचुचुण्टत् ॥

१७०३ इल प्रेरणे—एलयति । ऐलिलत् ॥

४६५–नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ॥ ३ । १ । ५१ ॥

ऊन, ध्वन, इल और अर्द इन णिजन्त धातुओं से परे च्लि के स्थान में चङ् आदेश न हो, वेदविषय में ।

यहां (१७६) से चङ् प्राप्त था, उसका निषेध है—ऐलयीत् ॥

१७०४ म्रच्छ म्लेच्छने – अशुद्ध बोलना—म्रच्छयति । अमम्रच्छत् ॥

१७०५–०७ म्लेच्छ अव्यक्तायां वाचि; ब्रूस, बर्ह हिंसायाम्—

ब्रूसयति । वर्हयति ॥

१७०८–०९ गर्ज, गर्द शब्दे—गर्जयति । गर्दयति ॥

१७१० गर्ध अभिकाङ्क्षायाम्—गर्धयति ॥

१७११–१२ गुर्द, पुर्व निकेतने = स्थान—गुर्दयति । पुर्वयति । अजुगूर्दत् । अपुपूर्वत् ॥

१७१३ जसि रक्षणे—मोक्षण इत्येके—जंसयति । अजजंसत् ॥

१७१४ ईड स्तुतौ—ईडयति । ऐडिडत् ॥

१७१५ जसु हिंसायाम्—जासयति । अजीजसत् ॥

१७१६ पिडि संघाते—पिण्डयति । अपिपिण्डत् ॥

१७१७ रुष रोषे—रुट इत्येके—रोषयति । रोटयति ॥

१७१८ डिप क्षेपे—अडीडिपत् ॥

१७१९ ष्टुप समुच्छ्राये—स्तोपयति । अतुष्टुपत् ॥

सेट् परस्मैपदिन एकशतमष्टचत्वारिंशच्च ।

ये चुर आदि १४८ धातु सेट् परस्मैपदी हैं ।

यद्यपि कर्तृगामी क्रियाफल में इनसे आत्मनेपद होते हैं तो भी अगले धातुओं की अपेक्षा से (जो नित्य आत्मनेपदी हैं,) परस्मैपदी हैं ॥

अथ आकुस्मादात्मनेपदिनः ॥

अब यहां से 'कुस्म' धातु पर्यन्त आत्मनेपदी कहते हैं अर्थात् कर्तृगामी क्रियाफल से अन्यत्र भी आत्मनेपद ही हों—

१७२० चित संचेतने—चेतयते । अचीचितत ॥

१७२१ दशि दंशनदर्शनयोः=काटना और देखना—दंशयते । अददंशत ॥

दस, दसि इत्येके—दासयते । दंसयते । अदीदसत । अददंसत ॥

१७२२-२३ डप, डिप संघाते—डापयते । डेपयते । अडीडपत ॥

१७२४ तत्रि कुटुम्बधारणे—तन्त्रयते । अततन्त्रत ॥

१७२५ मत्रि गुप्तभाषणे—मन्त्रयते । अममन्त्रत ॥

१७२६ स्पश ग्रहणसंश्लेषणयोः—स्पाशयते । अपस्पशत ॥

१७२७-२८ तर्ज, भर्त्स तर्जने=डरना—तर्जयते । अततर्जत ॥ भर्त्सयते । अबभर्त्सत ॥

१७२९-३० बस्त, गन्ध अर्दने=मांगना—बस्तयते । गन्धयते ॥

१७३१ विष्क हिंसायाम्—हिष्क इत्येके—विष्कयते । हिष्कयते ॥

१७३२ निष्क परिमाणे=तोल—निष्कयते ॥

१७३३ लल ईप्सायाम्=लेने की इच्छा—
लालयते । लालयाञ्चक्रे । लालयांबभूव । लालयामास ॥

१७३४ कूण संकोचने—कूणयते । अचुकूणत ॥

१७३-३६५ तूण पूरणे; भ्रूण आशाविशङ्कयोः=इच्छा और संदेह—भ्रूणयते ।

१७३७ शठ श्लाघायाम्=अपनी प्रशंसा—
शाठयते । शाठयाञ्चक्रे । शाठयांबभूव । शाठयामास ॥

१७३८ यक्ष पूजायाम्—यक्षयते ॥

१७३९ स्यम वितर्के—स्यामयते ॥

१७४० गुर उद्यमने—गोरयते। अजूगुरत ॥

१७४१-४२ शम, लक्ष आलोचने = देखना—
शामयते। लक्षयते ॥

१७४३ कुत्स अवक्षेपणे—कुत्सयते। अचुकुत्सत ॥

१७४४ त्रुट छेदने—त्रोटयते। अतुत्रुटत ॥
कुट इत्येके—कोटयते ॥

१७४५ गल स्रवणे = झरना—
गालयते। अजीगलत। अगालयिष्यत।

१७४६ भल भण्डने = बहुत बोलना—भालयते ॥

१७४७ कूट आप्रदाने—आसादन इत्येके—कूटयते। अचुकूटत ॥

१७४८ कुट्ट प्रतापने = तपाना—कुट्टयते। अचुकुट्टत ॥

१७४९ वञ्चु प्रलम्भने = ठगना—वञ्चयते। अववञ्चत ॥

१७५० वृष शक्तिबन्धने = सन्तानोत्पत्ति का सामर्थ्य—
वर्षयते। अवीवृषत; अववर्षत, (४६०) ॥

१७५१ मद तृप्तियोगे—मादयते। अमीमदत ॥

१७५२ दिवु परिकूजने = शब्द—देवयते। अदीदिवत ॥

१७५३ गॄ विज्ञाने—गारयते। अजीगरत ॥

१७५४ विद चेतनाख्याननिवासेषु—वेदयते। अवीविदत ॥

१७५५ मान स्तम्भे = रोकना—मानयते। अमीमनत ॥

१७५६ यु जुगुप्सायाम् = निन्दा—यावयते। अयीयवत ॥

१७५७ कुस्म नाम्नो वा (ग०) = यह कुस्म प्रातिपादिक अथवा धातु है और इसका अर्थ बुरा हंसना है—कुस्मयते। अचुकुस्मत ॥

चेतादयोऽष्टात्रिंशदुदात्ताः ॥

ये चित आदि ३८ सेट् आत्मनेपदी धातु पूरे हुए ॥

२१

अथोभयतोभाषाः ॥

१७५८ चर्च अध्ययने = पढ़ना—चर्चयति । अचचर्चत् ॥

१७५९ वुक्क भषणे—बुक्कयते ॥

१७६० शब्द उपसर्गादाविष्कारे च—चाद्भाषणे = उपसर्गपूर्वक शब्द धातु से परे प्रकट करने और बोलने अर्थ में णिच् होता है—परिशब्दयति ॥

१७६१ कण निमीलने = मींचना—काणयति । काणयते ।

४६६—वा०—काण्यादीनां वा ॥ ७ । ४ । ३ ॥

चङ्परक णिच् परे हो तो काणि आदि धातुओं की उपधा को ह्रस्व विकल्प करके हो ।

अचिकणत्; अचकाणत् ॥

१७६२ जभि नाशने—जम्भयति । अजजम्भत् ॥

१७६३ षूद क्षरणे = झरना—सूदयति ॥

१७६४ जसु ताडने—जासयति ॥

१७६५ पश बन्धने—पाशयति ॥

१७६६ अम रोगे—आमयति । आमिमत् ॥

१७६७–६८ चट, स्फुट भेदने—चाटयति । चाटयते । स्फोटयति । स्फोटयते । अचीचटत् । अचीचटत । अपुस्फुटत् । अपुस्फुटत ॥

१७६९ घट संघाते = समूह—घाटयति । घाटयते । अजीघटत् ॥

हन्त्यर्थाश्च (ग०)—चुरादि से पहिले नव गणों में जो हिंसार्थक धातु कहे हैं, उन सबसे स्वार्थ में णिच् होता है । हिंसयति । त्रिंहयति इत्यादि ॥

१७७० दिवु मर्दने—देवयति । अदीदिवत् ॥

१७७१ अर्ज प्रतियत्ने = सञ्चय—अर्जयति ।

१७७२ घुषिर विशब्दने—घोषयति । अजूघुषत् ॥

इस धातु में इरित् करने का यह प्रयोजन है । कि णिच् प्रत्यय विकल्प से होवे । जहाँ णिच् नहीं होता, वहां अङ् (१३८) से हो जाता है—अघुषत्; अघोषीत् ॥

१७७३ आङः क्रन्द सातत्ये=आङ्पूर्वक 'क्रन्द' धातु से निरन्तर अर्थ में णिच् होता है—आक्रन्दयति । आचक्रन्दत् । आचक्रन्दत ॥

१७७४ लस शिल्पयोगे=कारीगरी में युक्त—
लासयति । लासयते । अलीलसत् । अलासयिष्यत् । अलासयिष्यत ॥
१७७५-७६ तसि, भूष अलंकारे—तंसयति । भूषयति ॥
१७७७ अर्ह पूजायाम्—अर्हयति ।
१७७८ ज्ञा नियोगे=नियुक्त करना—
आज्ञापयति । आज्ञापयते, (८६३) ॥
१७७९ भज विश्राणने=बहुत सुनाना—भाजयति ॥
१७८० शृधु प्रसहने—शर्धयति । अशीशृधत्, अशशर्धत् ॥
१७८१ यत निकारोपस्कारयोः=स्थान और जोड़ना—यातयति ॥
१७८२-८३ कल, गल आस्वादने—कालयति । गालयति ।
रघ इत्येके-रग-इत्यन्ये—राघयति । रागयति ॥
१७८४ अञ्चु विशेषणे—अञ्चयति ॥
१७८५ लिगि चित्रीकरणे=चिह्न करना—
लिङ्गयति । अलिलिङ्गत् । अलिलिङ्गत ॥

१७८६ मुद संसर्गे=मिलाना—मोदयति । मोदयते । अमूमुदत् । अमूमुदत । अमोदयिष्यत् । अमोदयिष्यत ॥

१७८७ त्रस धारणग्रहणवारणेषु—त्रासयति । अतत्रसत् ॥
१७८८ उध्रस उञ्छे—उध्रासयति ।
इस धातु मे किन्हीं के मत में उकार की इत्संज्ञा हो जाती है—ध्रासयति ॥

१७८९ मुच प्रमोचनमोदनयोः—मोचयति । मोचयते ॥

१७९० वस स्नेहच्छेदापहरणेषु = प्रीति, काटना और छीन लेना—वासयति । वासयते ॥

१७९१ चर संशये—चारयति । अचीचरत् । अचीचरत ॥

१७९२ च्यु हसने—सहन इत्येके—च्यावयति । च्यावयते ।

च्युस इत्येके—च्योसयति । च्योसयते ।

१७९३ भुवो अवकल्कने = मिलाना वा विचारना—भावयति ॥

१७९४ कृपेश्च—कृपू धातु से भी सामर्थ्य अर्थ में णिच् प्रत्यय हो । कल्पयति ॥

आस्वदः सकर्म्मकात् (ग०)—यहां से लेकर 'स्वद' धातु पर्यन्त सकर्म्मक धातुओं से ही णिच् प्रत्यय कहेंगे ।

१७९५ ग्रस ग्रहणे—ग्रासयति । ग्रासयते ॥

१७९६ पुष धारणे—पोषयति । अपूपुषत् ॥

१७९७ दल विदारणे = खण्ड करना—दालयति ।

१७९८–१८२७ पट, पुट, लुट, तुजि मिजि, पिजि, भजि, लघि, त्रसि, पिसि, कुसि, दसि, कुशि, घट, घटि, बृहि, वर्ह, वल्ह, गुप, धूप, विच्छ, चीव, पुथ, लोकृ, लोचृ, णद, कुप, तर्क, वृतु, वृधु भाषार्थाः = बोलना—

पाटयति । पोटयति । लोटयति । तुञ्जयति । लोकयति । लोचयति ।

४६७–नाग्लोपिशास्वृदिताम् ॥ ७ । ४ । २ ॥

णिच् प्रत्यय के परे जिनके अक् का लोप हुआ हो उन शासु और ऋकार जिनका इत् गया हो, उन धातुओं की उपधा को ह्रस्व न हो, चङ्परक णिच् परे हो तो ।

अलुलोकत् । अलुलोचत् ॥

१८२८–४५ रुट, लजि, अजि, दसि, भृशि, रुशि, शीक, नट, पुटि, जिवि, रघि, लघि, अहि, रहि, नहि च; लडि, तड, नल च—

रोटयति । लञ्जयति । अञ्जयति । नाटयति । जिन्वयति ॥

१८४६ पूरी आप्यायने = बढ़ना—पूरयति ॥

१८४७ रुज हिंसायाम्—रोजयति । अरूरुजत् ॥

१८४८ ष्वद आस्वादने—स्वादयति । असिस्वदत् ॥

स्वाद इत्येके—इसमें विशेष यह है कि सोपदेश के न होने से अभ्यास से परे षत्व नहीं होता—असिस्विदत् ॥

इत्यास्वदीयाः । 'स्वद' पर्यन्त जो सकर्मक धातु कह चुके हैं, सो पूरे हुए ॥

आधृषाद्वा (ग०)—अब यहां से आगे 'धृष' धातु पर्यन्त सब धातुओं से णिच् प्रत्यय विकल्प करके होगा । पक्ष में सब धातुओं से भ्वादिगण के प्रयोग होंगे ।

१८४९–५० युज, पृच संयमने—

योजयति । योजति । अयूयुजत् । अयौक्षीत् । पर्चयति । अपीपृचत्; अपपर्चत् । पर्चति । पर्चिता । पर्चिष्यति । अपर्चीत् ॥

१८५१ अर्च पूजायाम्—अर्चयति । अर्चति । आर्चिचत् । आर्चीत् ॥

१८५२ षह मर्षणे = सहना—

साहयति । असीसहत् । सहति । असहीत्, (१६२) ॥

१८५३ ईर क्षेपे—ईरयति । ऐरिरत् ॥

१८५४ ली द्रवीकरणे = गीला करना—लाययति । लयति ॥

१८५५ वृजी वर्जने—

वर्जयति । वर्जति । अवीवृजत्; अववर्जत् । अवर्जीत् ॥

१८५६ वृञ् आवरणे = ढांकना—वारयति । वरति । वरते ॥

१८५७ जॄ वयोहानौ—जारयति । जरति । जरिता; जरीता ॥

१८५८ ज्रि च—ज्राययति । ज्रयति । ज्रेता ॥

१८५९ रिच वियोजनसम्पर्चनयोः—पृथक् होना और सम्बन्ध—
रेचयति । रेचति । रेक्ता । अरीरिचत् ॥

१८६० शिष असर्वोपयोगे=बाकी होना—
शेपयति । शेपति । शेष्टा । अशीशिपत् ॥

१८६१ तप दाहे—
तापयति । तपति । तप्ता । अतीतपत् । अताप्सीत् ॥

१८६२ तृप तृप्तौ—तर्पयति । तर्प्ता; त्रप्ता ॥

१८६३ छदी सन्दीपने=प्रकाश होना—छर्दयति । छर्दति । अचीछृदत् । अचच्छर्दत् । छर्दिष्यति, यहां इट् का विकल्प (३९७) से कृत आदि रुधादि के साहचर्य्य से नहीं होता ॥

१८६४—६६ चृप, छृप, दृप सन्दीपन इत्येके—
चर्पयति । छर्पयति । दर्पयति । दर्पति । अदीदृपत्; अददर्पत् ॥

१८६७ दृभी भये—दर्भयति । दर्भति । दर्भिता ॥

१८६८ दृभ सन्दर्भे=गांठना—दर्भयति ॥

१८६९ छद संवरणे—छादयति । छदति ॥

१८७० श्रथ विमोक्षणे—हिंसायामित्येके—श्राथयति ॥

१८७१ मी गतौ—माययति । मयति । मेता ॥

१८७२ ग्रन्थ बन्धने—ग्रन्थयति । ग्रन्थति ॥

१८७३ क्रथ हिंसायाम्—स्वरितेदित्येके । यह धातु भ्वादिगण में स्वरितेत् है । क्राथयति । क्रथति । क्रथते ॥

१८७४ शीक आमर्षणे=सहना—शीकयति ॥

१८७५ चीक च—चीकयति । चीकति । अचिचीकत् ॥

१८७६ अर्द हिंसायाम्—
स्वरितेत् । अर्दयति । आर्दिदत् । अर्दति । अर्दते ॥

१८७७ हिसि हिंसायाम्—हिंसयति । हिंसति ॥

१८७८ अर्ह पूजायाम्—अर्हयति ॥

१८७९ आङः षद पद्यर्थे = गति—आसादयति । आसीदति, (२३१) से सीद आदेश । आसत्ता । असात्सीत् ॥

१८८० शुन्ध शौचकर्मणि—शुन्धयति ॥

१८८१ छद अपवारणे = बुरे प्रकार हटाना—
स्वरितेत् । छादयति ॥

१८८२ जुष परितर्कणे = इकट्ठा होना वा मारना—परितर्पण इत्यन्ये—जोषयति । जोषति ॥

१८८३ धूञ् कम्पने—

४६८—वा०—धूञ्प्रीञोर्नुग्वक्तव्यः ॥ ७ । ३ । ३७ ॥

णिच् परे हो तो धूञ् और प्रीञ् धातु को नुक् का आगम हो ।
धूनयति । धवति । धवते ।

इस वार्तिक को कोई आचार्य्य (धूञ्प्रीणोः) ऐसा पढ़के क्र्यादिस्थ प्रीञ् धातु के साहचर्य्य से क्र्यादि का जो धूञ् धातु है, उसी को हेतुमान् णिच् के परे नुक् कहते हैं । धावयति ॥

१८८४ प्रीञ् तर्पणे—प्रीणयति । प्रयति । प्रयते ॥

१८८५-८६ श्रन्थ, ग्रन्थ सन्दर्भे = गांठना—
श्रन्थयति । ग्रन्थयति ॥

१८८७ आप्लृ लम्भने = प्राप्ति करना—आपयति । आपति । आप्ता । आपत्, (२१७) । स्वरितेदयमित्येके—आपते ॥

१८८८ तनु श्रद्धोपकरणयोः = श्रद्धा और उपकार करना; उपसर्गाच्च दैर्घ्ये—विस्तार अर्थ में उपसर्ग से परे णिच् होता है—
तानयति । वितानयति । तनति । वितनति ॥

१८८९ चन श्रद्धोपहननयोरित्येके—चानयति । चनति ॥

१८९० वद संदेशवचने = संदेश कहना—
स्वरितेत् । वादयति । वदति । वदते ॥

१८९१ वच परिभाषणे = अधिक बोलना—

वाचयति । वचति । वक्ता । अवीवचत् । अवाक्षीत् ॥

१८९२ मान पूजायाम्—मानयति । मानति । मानिता ॥

१८९३ भू प्राप्तावात्मनेपदी—भावयते । भवति ।

इस धातु से णिच् के संयोग में ही आत्मनेपद होता है, अन्यत्र नहीं ।

१८९४ गर्ह विनिन्दने = निन्दा—गर्हयति ॥

१८९५ मार्ग अन्वेषणे = खोजना—मार्गयति ॥

१८९६ कठि शोके—कण्ठयति ॥

१८९७ मृजू शौचालंकारयोः—

मार्जयति । मार्जति । मार्जिता; मार्ष्टा ॥

१८९८ मृष तितिक्षायाम्—स्वरितेत् । मर्षयति । मर्षति । मर्षते ॥

१८९९ धृष प्रसहने—धर्षयति । धर्षति ॥

इत्याधृषीयाः ॥

'धृष' पर्यन्त धातुओं से णिच् का विकल्प कह चुके हैं, सो पूरे हुए ॥

अथादन्ताः—अब अदन्त धातु कहते हैं अर्थात् उनके अकार का लोप (१७२) से णिच् के परे होगा, इसी से ये अग्लोपी कहाते हैं ।

१९०० कथ वाक्यप्रबन्धने = प्रबन्ध से कहना—

कथयति । अचकथत्, यहां अग्लोप के होने से वृद्धि नहीं होती ।

१९०१ वर ईप्सायाम् = मिलने की इच्छा—वरयति । अववरत् ।

१९०२ गण संख्याने = गणना—गणयति ।

४६९ ई च गणः ॥ ७ । ४ । ९७ ॥

गण धातु के अभ्यास को ईकारादेश और चकार से अकारादेश भी हो, चङ्परक णिच् परे हो तो ।

अजीगणत्; अजगणत् ॥

१९०३–०४ शठ, श्वठ सम्यगवभाषणे = अच्छे प्रकार कहना—
शाठयति । श्वाठयति । अशशठत् । अशश्वठत् ॥

१९०५–०६ पट, वट ग्रन्थे—पटयति । वटयति ॥

१९०७ रह त्यागे—अररहत् ॥

१९०८–०९ स्तन गदी देवशब्दे—स्तनयति । गदयति ॥

१९१० पत गतौ वा—यह धातु विकल्प करके णिजन्त है ।

वाऽदन्त इत्येके—कोई लोग विकल्प करके अदन्त कहते हैं । पतयति । पतति । पतयाञ्चकार । अपतीत् । पातयति । अपीपतत् ॥

१९११ पष अनुपसर्गात्—यहां पूर्व से गति अर्थ की अनुवृत्ति आती है । पषयति ॥

१९१२ स्वर आक्षेपे = निन्दा—स्वरयति ॥

१९१३ रच प्रतियत्ने—रचयति ॥

१९१४ कल गतौ संख्याने च—कलयति ॥

१९१५ चह परिकल्कने = अभिमान और मूर्खता—
चहयति । अचचहत् ॥

१९१६ मह पूजायाम्—महयति ॥

१९१७—१९ सार, कृप, श्रथ दौर्बल्ये = निर्बलता—
मारयति । कृपयति । श्रथयति ॥

१९२० स्पृह ईप्सायाम्—स्पृहयति ॥

१९२१ भाम क्रोधे—भामयति । अबभामत्, अग्लोपी होने से उपधा ह्रस्व का निषेध (४६७) से ॥

१९२२ सूच पैशुन्ये = चुगली करना—सूचयति । असुसूचत् ॥

१९२३ खेट भक्षणे—खेटयति । अचिखेटत् ।

तृतीयान्त इत्येके—कोई के मत में डकारान्त 'खेड' धातु है—खेडयति । अचिखेडत् ।

खोट इत्यन्ये—खोटयति ॥

१९२४ क्षोट क्षेपे = निन्दा—क्षोटयति । अचुक्षोटत् ॥

१९२५ गोम उपलेपने = लीपना—गोमयति । अजुगोमत् ॥

१९२६ कुमार क्रीडायाम्—कुमारयति । अचुकुमारत् ॥

१९२७ शील उपधारणे = अच्छे गुणों का अभ्यास करना—
शीलयति । अशिशीलत् ॥

१९२८ साम सान्त्वप्रयोगे—सामयति । अससामत् ॥

१९२९ वेल कालोपदेशे = नियत समय का उपदेश—वेलयति ।
काल इति पृथक् धातुरित्येके—कालयति । अचकालत् ॥

१९३० पल्पूल लवनपवनयोः = खेत काटना और पवित्र करना—
पल्पूलयति । अपपल्पूलत् ॥

१९३१ वात सुखसेवनयोः—गतिसुखसेवनेष्वित्येके—
वातयति । अववातत् ॥

१९३२ गवेष मार्गणे = खोजना—गवेषयति । अजगवेषत् ॥

१९३३ वास उपसेवायाम्—वासयति ॥

१९३४ निवास आच्छादने—निवासयति । अनिनिवासत् ॥

१९३५ भाज पृथक्कर्मणि = अलग करना—भाजयति । अबभाजत् ॥

१९३६ सभाज प्रीतिदर्शनयोः—प्रीतिसेवनयोरित्येके—
सभाजयति । अससभाजत् ॥

१९३७ ऊन परिहाणे—ऊनयति । औननत् । वेद में—औनयीत्,
(८९५) से चङ् नहीं होता ॥

१९३८ ध्वन शब्दे—अदध्वनत् । अध्वनयीत् ॥

१९३९ कूट परितापे—परिदाह इत्यन्ये—कूटयति । अचुकूटत् ॥

१९४०—४३ सङ्केत, ग्राम, कुण, गुण चामन्त्रणे—

चकार से 'कूट' धातु की अनुवृत्ति है—सङ्केतयति । ग्रामयति । कुणयति । गुणयति ॥

१९४४ कूण संकोचने—अचुकूणत् ॥

१९४५ स्तेन चौर्ये = चोरी—अतिस्तेनत् ॥

आगर्वादात्मनेपदिनः ॥

यहां से आगे 'गर्व' धातुपर्यन्त आत्मनेपदी हैं—

१९४६ पद गतौ—पदयते । अपपदत ॥

१९४७ गृह ग्रहणे—अजगृहत ॥

१९४८ मृग अन्वेषणे—मृगयते ॥

१९४९ कुह विस्मापने = सन्देह कराना—कुहयते ॥

१९५०–५१ शूर, वीर विक्रान्तौ = पराक्रम दिखाना—शूरयते । अशुशूरत । वीरयते ॥

१९५२ स्थूल परिबृंहणे = मोटापन—स्थूलयते ॥

१९५३ अर्थ उपयाच्ञायाम् = चाहना—अर्थयते । आर्तथत ॥

१९५४ सत्र सन्तानक्रियायाम् = विस्तार—सत्रयते । अससत्रत ॥

१९५५ गर्व माने—गर्वयते । अजगर्वत ॥ —इत्यागर्वीयाः ॥

१९५६ सूत्र वेष्टने लपेटना—विमोचन इत्यन्ये = छोड़ना—सूत्रयति ॥

१९५७ मूत्र प्रस्रवणे—मूत्रयति । अमुमूत्रत् ॥

१९५८ रूक्ष पारुष्ये = कठोरपन—रूक्षयति । अरुरूक्षत् ॥

१९५९–६० पार, तीर कर्मसमाप्तौ—पारयति । तीरयति । अपपारत् । अतितीरत् ॥

१९६१ पुट संसर्गे = मिलाना—पुटयति ॥

१९६२ धेक दर्शन इत्येके—अदिधेकत् ॥

१९६३ कत्र शैथिल्ये—कत्रयति । अचकत्रत् ॥

कर्त्त इत्यप्येके—कर्त्तयति ॥

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च (ग०)—प्रातिपदिक से सामान्य धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय हो और जैसे इष्ठन् तद्धित प्रत्यय के परे कार्य होते हैं वे णिच् प्रत्यय के परे हों ।

जैसे—पटुमाचष्टे पटयति, यहां इष्ठन् प्रत्यय के समान टिलोप होता है । अपपटत् ॥

तत्करोति तदाचष्टे (ग०)—जिस प्रातिपदिक से णिच् होता है, वह करने वा कहने का कर्म्म समझना चाहिये ।

मृदुं करोत्याचष्टे वा म्रदयति ।

यह दूसरा सूत्र पूर्व सूत्र में कहे धात्वर्थ से सम्बन्ध रखता है ॥

तेनाऽतिक्रामति (ग०)—तृतीयान्त प्रातिपदिक से अतिक्रमण—उल्लङ्घन—अर्थ में णिच् प्रत्यय हो ।

अश्वेनातिक्रामति अश्वयति । हस्तिना अदिक्रामति हस्तयति इत्यादि ॥

धातुरूपं च (ग०)—जिस प्रातिपादिक से णिच् प्रत्यय करें, वह जिस धातु से वना हो उसी का रूप णिच् प्रत्यय में हो जावे और चकार से अन्य कार्य भी णिच् प्रत्यय के अनुकूल हो जावें ।

कंसवधमाचष्टे कंसं घातयति, यहां वध शब्द हन धातु से बना है, वह णिच् प्रत्यय के परे धातुरूप होकर हन धातु का प्रयोग होता है । इस विषय की विशेष व्याख्या आगे नाम धातु प्रक्रिया में लिखेंगे ।

कर्त्तृकरणाद्धात्वर्थे (ग०)—कर्त्ता के व्यापार के लिये जो साधन हैं, उससे धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय हो ।

असिना हन्ति असयति । परशुना वृश्चति परशयति ॥

१९६४ वल्क दर्शने—वल्कयति ॥

१९६५ चित्र चित्रीकरणे—कदाचिद्दर्शने—किसी समय देखने अर्थ में भी 'चित्र' धातु से णिच् होता है। चित्रयति । अचिचित्रत् ॥

१९६६ अंस समाघाते—अंसयति ॥

१९६७-६८ वट विभाजने; लज प्रकाशने—वटयति । लजयति ।
वटि, लजि इत्येके—वण्टयति । लञ्जयति ॥

१९६९ मिश्र सम्पर्के=संयोग करना—मिश्रयति ॥

१९७० संग्राम युद्धे—अनुदात्तेत् । संग्रामयते । अससंग्रामत ।

१९७१ स्तोम श्लाघायाम्—स्तोमयति ॥

१९७२ छिद्र कर्णभेदने=कान का छेदना—करणभेदन इत्यन्ये=साधनों का भेद—छिद्रयति ॥

कर्ण इति धात्वन्तरमित्यन्ये—कर्णयति ॥

१९७३ अन्ध दृष्ट्युपघाते=नेत्र फूटना—उपसंहार इत्यन्ये=समाप्ति—अन्धयति ॥

१९७४ दण्ड दण्डनिपातने=दण्ड देना—दण्डयति । अददण्डत् ॥

१९७५ अङ्क पदे लक्षणे च=पग और चिह्न—
अङ्कयति । आञ्चकत् ॥

१९७६ अङ्ग च—आञ्जगत् ॥

१९७७-७८ सुख, दुःख तत्क्रियायाम्=सुख और दुःख करना—सुखयति । दुःखयति ॥

१९७९ रस आस्वादस्नेहनयोः—रसयति ॥

१९८० व्यय वित्तसमुत्सर्गे=खर्च करना—व्यययति अवव्ययत् ॥

१९८१ रूप रूपक्रियायाम्=रूप को देखना वा करना—
रूपयति । अरुरूपत् ॥

१९८२ छेद द्वैधीकरणे=दो भाग करना—अचिच्छेदत् ॥

१९८३ छद अपवारण इत्येके—छदयति ॥

१९८४ लाभ प्रेरणे = आज्ञा करना—लाभयति । अललाभत् ॥

१९८५ व्रण गात्रविचूर्णने = घाव—व्रणयति । अवव्रणत् ॥

१९८६ वर्ण वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु = रंगना, फैलाव, स्तुति करना—वर्णयति । अववर्णत् ॥

बहुलमेतन्निदर्शम् (ग०) कथ आदि अदन्त धातुओं का पाठ बहुल से जानो अर्थात् बहुल कहने से अन्य धातुओं से भी यहां णिच् होता है जैसे—

पर्ण हरितभावे = हरा होना—पर्णयति । अपपर्णत् ॥

विष्क दर्शने = देखना—विष्कयति । अविविष्कत् ॥

क्षप प्रेरणे—क्षपयति ॥

वस निवासे—वसयति ॥

तुत्थ आवरणे—

तुत्थयति तथा गण्डयति । आन्दोलयति । प्रेङ्खोलयति । विडम्बयति । अवधीरयति इत्यादि प्रयोग भी बहुल ग्रहण से होते हैं ।

तथा कोई ऐसा कहते हैं कि दशों गण के धातुओं के लिये बहुल ग्रहण है । इससे सौत्र लौकिक और वैदिक धातु अपठित (जो दश गणों में नहीं पढ़े) उनसे भी उन गणों के प्रयोग होते हैं ।

और कोई के मत में नव गणों में पढ़े धातुओं के लिये बहुल है । इससे चुरादिगण में अपठित धातुओं से भी स्वार्थ में णिच् हो जाता है । जैसे—अचीकरत् ।

और कोई के मत में चुरादि धातुओं से ही णिच् बहुल करके होता है ॥

णिङ्ङ्गान्निरसने (ग०)—अङ्गवाची प्रातिपदिक से फेंकने अर्थ में णिङ् प्रत्यय हो ।

ङित् करने से आत्मनेपद होता है । हस्तौ निरस्यति हस्तयते । पादौ निरस्यति पादयते, इत्यादि ॥

श्वेताऽश्वाश्वतरगालोडिताह्वरकाणामश्वतरेतकलोपश्च (ग०)—

श्वेताश्व, अश्वतर, गालोडित, आह्वरक इन प्रातिपदिकों से अतिक्रमण अर्थ में णिङ् प्रत्यय और इनके अश्व, तर, इत और ककार का लोप हो जावे ।

श्वेताश्वमाचष्टे अतिक्रामति वा श्वेतयते । अश्वतरमाचष्टे अश्वयते । गालोडितं वाग्विमर्षमाचष्टे तत्करोत्यतिक्रामति वा गालोडयते । आह्वरकं करोत्यतिक्रामति वा आह्वरयते ।

पुच्छादिषु धात्वर्थं इत्येव सिद्धम् (ग०)—पुच्छ आदि प्रातिपदिकों से (पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ॥ ३ । १ । २० ॥ इस सूत्र में णिङ् प्रत्यय कहा है, वहां भी धात्वर्थ में प्रातिपदिकमात्र के कहने से णिच् होकर बहुलवचन सामर्थ्य से आत्मनेपद भी हो जावेगा, फिर पुच्छ आदि से णिङ् कहने का कुछ प्रयोजन नहीं ।

और यहां सिद्ध शब्द के मंगलार्थ होने से इस चुरादिगण की समाप्ति जानो ॥

इन दश गणों में भ्वादिगण सब का उत्सर्ग है और नौ गण सब शप् के ही बाधक हैं । जब नव गणों में पढ़े भ्वादि के धातु को अवकाश मिलता है तब शप् ही होता है । जितने धातु इन दश गणों में लिखे हैं वे ही औपदेशिक हैं और इन्हीं से सब प्रकार के शब्द बनते हैं और आगे १२ प्रक्रियां लिखेंगे, उन प्रत्येक में इन सब धातुओं का काम पड़ा करेगा ॥

इति चुरादिगणः समाप्तः ॥ १० ॥

यह चुरादिगण समाप्त हुआ ॥ १० ॥

---

(११) अथ णिजन्तप्रक्रिया ॥

४७०–तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ १ । ४ । ५५ ॥

स्वतन्त्र कर्त्ता को प्रेरणा करनेहारे की हेतु और कर्त्ता दोनों संज्ञा हों।

४७१–हेतुमति च ॥ ३ । १ । २६ ।

प्रयोजक कर्त्ता के भेजने आदि व्यवहार अर्थ में, धातु से णिच् प्रत्यय हो।

सो दश गणों में जितने धातु लिख चुके हैं, उन सब से णिच् आदि प्रक्रिया के प्रत्यय होंगे। उन सब धातुओं के प्रयोग सर्वत्र नहीं लिखेंगे किन्तु जिनमें कुछ विशेष कार्य सूत्रों से होते हैं, वे लिखे जावेंगे।

भवतीति भवन्, भवन्तं प्रेरयति=भावयति। भावयते, यहां क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होने में आत्मनेपद (४५७) से होता है और शप् आदि की उत्पत्ति होती है।

भावयाञ्चकार। भावयाम्बभूव। भावयामास। भावयिता। भावयिष्यति। भावयिषति; भावयिषाति। भावयतु। अभावयत्। भावयेत्। भाव्यात्, (१७७) से णिलोप।

४७२–ओः पुयण्ज्यपरे ॥ ७ । ४ । ८० ॥

अवर्णपरक पवर्ग, यण् और जकार परे हों, तो सन् प्रत्यय के परे जो अङ्ग, उसके अवयव अभ्यास के उवर्ण को इकरादेश हो।

अबीभवत्। अपीपवत्। अमीमवत्। अयीयवत्। अरीरवत्। अलीलवत्। अजीजवत्, यहां सर्वत्र यद्यपि सन् प्रत्यय परे नहीं है, तो भी (१८१) से सन्वद्भाव मानकर कार्य होता है॥

४७३–स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा ॥ ७ । ४ । ८१ ॥

स्रवति आदि धातुओं के अभ्यासस्थ उकार को विकल्प करके इकारादेश हो, सन् प्रत्यय के परे अवर्णपरक धातु का अक्षर परे हो तो।

असिस्रवत्; असुस्रवत्। अशिश्रवत्; अशुश्रवत्। अदिद्रवत्; अदुद्रवत्। अपिप्रवत्; अपुप्रवत्। अपिप्लवत्; अपुप्लवत्। अचिच्यवत्; अचुच्यवत्।

अडुढौकत्। अचीचकासत्, यहां (४६७) से सर्वत्र उपधा को ह्रस्व नहीं होता।

और चुरादिगण में स्वार्थं णिच् से भी हेतुमान् णिच् प्रत्यय होता है—चोरयन्तं प्रेरयति = चोरयति। अचूचुरत्।

४७४–णौ च संश्चङोः ॥ ६ । १ । ३१ ॥

सन् और चङ् जिससे परे हों, ऐसा णि परे हो, तो श्वि धातु को सम्प्रसारण विकल्प करके हो।

सम्प्रसारण और उसके आश्रय जो कार्य हैं, उनके बलवान् होने से सम्प्रसारण और पूर्वरूप होकर—अशूशवत्। पक्ष में—अशिश्वयत्॥

आटिटत्, यहां उपधा को ह्रस्व बहिरङ्ग भी है परन्तु ओण धातु में ऋदित्करणसामर्थ्य मानकर द्वित्व से पहिले ही ह्रस्व हो जाता है॥

औन्दिदत्। आड्डिडत्। आर्चिचत्, यहां संयोग के आदि न, द और र को द्वित्व (३२६) से नहीं होता॥

'उब्ज आर्जवे' धातु उपदेश में दकारोपध है और (भुजन्युब्जौ ॥ ७ । ३ । ६१) सूत्र में निपातन करने से दकार को बकार हो जाता है। वह अन्तरङ्ग भी है परन्तु द्वित्वविषय में औपदेशिक का ग्रहण होने से दकारस्थानी बकार को द्वित्व नहीं होता—औब्जिजत्॥

४७५–रभेरशब्लिटोः ॥ ७ । १ । ६३ ॥

रभ धातु को नुम् का आगम हो, शप् और लिट् भिन्न अजादि प्रत्यय परे हो तो।

रम्भयति । अररम्भत् ॥

४७६–लभेश्च ॥ ७ । १ । ६४ ॥

पूर्वसूत्रोक्त कार्य लभ धातु को भी हों।

लम्भयति । अललम्भत् ॥

अजीहयत्, यहां (४२२) से चङ् के परे अभ्यास को कुत्व का निषेध हो जाता है ॥

स्मारयति । असस्मरत् । दारयति । अददरत् । अतत्वरत् । अमम्रदत् । अतस्तरत्, यहां सर्वत्र स्मृ आदि धातुओं के अभ्यास को अकारादेश (४५९) से हो जाता है ॥

४७७–विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः ॥ ७ । ४ । ९६ ॥

चङ्परक णिच् परे हो तो वेष्ट और चेष्ट धातु के अभ्यास को अकारादेश विकल्प करके होवे।

अववेष्टत्; अविवेष्टत् । अचचेष्टत्; अचिचेष्टत् ॥

भ्राज आदि धातुओं की उपधा को विकल्प करके ह्रस्व (४५८) सूत्र से होकर—अबिभ्रजत्; अबभ्राजत् । अबभसत्; अबभासत् । अबिभषत्; अबभाषत् । अदीदिपत्; अदिदीपत् । अजीजिवत्; अजिजीवत् । अपीपिडत्; अपिपीडत् ॥

'कण' आदि णिजन्त धातुओं की उपधा को चङ्परक णिच् में विकल्प करके ह्रस्व (४६६) से हो जाता है। कण, रण, भण, श्रण, लुप, हेठ ये छः धातु महाभाष्य में काण्यादि गिनाये गये हैं—अचीकणत्; अचकाणत् इत्यादि ॥

४७८–स्वापेश्चङि ।। ६ । १ । १८ ।।

णिजन्त स्वापि धातु को संप्रसारण हो, चङ् परे हो तो ।

स्वापयति । असूषुपत् ।।

४७९–शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ।। ७ । ३ । ३७ ।।

शा आदि धातुओं को युक् का आगम हो, णिच् परे हो तो ।

(४६३) सूत्र से पुक् प्राप्त है, उसका यह अपवाद है । शाययति । छाययति । साययति । ह्वाययति । संव्याययति । वाययति । पाययति । अशीशयत् ।

ह्वा धातु में यह विशेष है—

४८०–ह्वः सम्प्रसारणम् ।। ६ । १ । ३२ ।।

सन् और चङ् जिससे परे हों ऐसा णिच् परे हो, तो ह्वा धातु को संप्रसारण हो ।

अजूहवत्; अजुहावत्, यहां (४६६) वार्त्तिक से उपधाह्रस्व विकल्प से होता है ।

पा धातु में यह विशेष है—

४८१–लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ।। ७ । ४ । ४ ।।

चङ्परक णिच् परे हो, तो पिबति अङ्ग की उपधा का लोप और अभ्यास को ईकारादेश हो ।

अपीप्यत् ।।

अर्पयति । ह्रेपयति । ब्लेपयति । रेपयति । क्नोपयति । क्ष्मापयति । स्थापयति । दापयति । धापयति । घ्रापयति, यहां सर्वत्र (४६३) सूत्र से णिच् के परे पुक् होता है ।

स्था धातु में यह विशेष है—

४८२–तिष्ठतेरित् ।। ७ । ४ । ५ ।।

चङ्परक णिच् परे हो तो स्था अङ्ग का उपधा को इकारादेश हो ।
अतिष्ठिपत् । अतिष्ठिपताम् ।

घ्रा धातु में यह विशेष है—

४८३–जिघ्रतेर्वा ।। ७ । ४ । ६ ।।

चङ्परक णिच् परे हो तो घ्रा धातु की उपधा को इकारादेश विकल्प करके हो ।

अजिघ्रिपत्; अजिघ्रपत् ।।

कर्त्तयति इत्यादि ऋवर्णोपध धातुओं में (४६०) सूत्र से विकल्प करके ऋत् हो जाता है—अचीकृतत्; अचकर्त्तत् । कीर्त्तयति । अचीकृतत्; अचिकीर्त्तत् । वर्त्तयति । अवीवृतत्;अववर्त्तत् । अमीमृजत्; अममार्जत् ।।

'पाति' धातु में यह विशेष है—

४८४–वा०–पातेर्लुग्वचनम् ।। ७ । ३ । ३७ ।।

णिच् परे हो तो पाति धातु को लुक् आगम हो ।
पालयति ।।

४८५–वो विधूनने जुक् ।। ७ । ३ । ३८ ।।

णिच् परे हो तो कंपाने अर्थ में वर्त्तमान वा धातु को जुक् आगम हो ।
वाजयति और जहां कंपाना अर्थ नहीं है, वहां—केशान् वापयति ।।

४८६–लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने ।। ७ । ३ । ३९ ।।

णिच् परे हो तो चिकनाई गिराने अर्थ में ली और ला धातु को नुक् और लुक् का आगम यथासंख्य और विकल्प करके हो ।

घृतं विलीनयति । घृतं विलालयति ।

जहां स्नेहविपातन नहीं है, वहां—विलाययति । विलापयति ।

इस सूत्र में ईकारान्त ली धातु* का ग्रहण इसलिये है कि जिस पक्ष में (४००) सूत्र से आकारादेश होता है, वहां नुक् का आगम न हो।

४८७–लियः सम्माननशालीनीकरणयोश्च ॥ १ । ३ । ७० ॥

सत्कार, तिरस्कार और ठगने अर्थ में णिजन्त ली धातु से आत्मनेपद हो।

जटाभिरालापयते—अर्थात् जटाओं से सत्कार को प्राप्त होता है। श्येनो वर्तिकामुल्लापयते—बाज़ पखेरू बतक का तिरस्कार करता है। कस्त्वामुल्लापयते—कौन तुझको ठगता है॥

४८८–बिभेतेर्हेतुभये ॥ ६ । १ । ५६ ॥

णिच् प्रत्यय परे हो तो हेतु से भय अर्थ में भी धातु के एच् को विकल्प से आकार आदेश हो।

४८९–भीस्म्योर्हेतुभये ॥ १ । ३ । ६८ ॥

हेतुभय अर्थ में, णिजन्त 'भी' और 'स्मि' धातु से आत्मनेपद हो।

आकारादेश पक्ष में—मुण्डो भापयते।

और जहां आकारादेश न हुआ, वहां यह विशेष है—

४९०–भियो हेतुभये षुक् ॥ ७ । ३ । ४० ॥

णिच् परे हो तो हेतुभय अर्थ में 'भी' धातु को षुक् का आगम हो।

जटिलो भीषयते—जटाधारी डरपाता है, यहां 'भी' धातु में महाभाष्यकार ने ईकार का प्रश्लेष माना है, इससे आकारान्त 'भी' धातु को षुक् नहीं होता है।

'स्मि' धातु में यह विशेष है—

---

*ईकारान्त कहने से प्रयोजन यह है कि (ली+ई) ऐसा भाष्यकार ने प्रश्लेष करके व्याख्यान दिखाया है॥

४६१–नित्यं स्मयतेः ॥ ६ । १ । ५७ ॥

णिच् परे हो तो हेतुभय अर्थ में स्मि धातु को नित्य ही आकारादेश हो।

जटिलो विस्मापयते, और जहां हेतुभय अर्थ नहीं है, वहां—कुञ्चिकयैनं विस्मापयति, यहां कूञ्ची से भय है किन्तु हेतु प्रयोजककर्त्ता से नहीं है ॥

४६२–स्फायो वः ॥ ७ । ३ । ४१ ॥

णिच् परे हो तो स्फायि अङ्ग को वकारादेश हो।

स्फावयति ॥

४६३–शदेरगतौ तः ॥ ७ । ३ । ४२ ॥

णिच् परे हो तो गतिभिन्न अर्थ में वर्तमान शद अङ्ग को तकारादेश हो।

पुष्पाणि शातयति, और गति अर्थ में तो—गोपालो गाः शादयति, यहां चलाना अर्थ है ॥

४६४–रुहः पोऽन्यतरस्याम् ॥ ७ । ३ । ४३ ॥

णिच् परे हो तो रुह अङ्ग को पकारादेश विकल्प करके होवे।

रोपयति; रोहयति ॥

४६५–क्रीङ्जीनां णौ ॥ ६ । १ । ४८ ॥

णिच् प्रत्यय परे हो तो क्री, इङ् और जि धातुओं के एच् को आकारादेश हो।

आकारादेश होकर पुक् (४६३) से—क्रापयति। अध्यापयति। जापयति।

इङ् धातु में कुछ विशेष है—

४६६–णौ च सँश्चङोः ॥ २ । ४ । ५१ ॥

सन् और चङ् जिससे परे हों, ऐसा णिच् परे हो तो इङ् धातु को गाङ् आदेश विकल्प करके होवे।

अध्यजीगपत्; अध्यापिपत् ॥

४९७–सिध्यतेरपारलौकिके ॥ ६ । १ । ४९ ॥

णिच् परे हो तो सांसारिक पदार्थों की सिद्धि करने अर्थ में वर्तमान जो सिध्यति धातु है, उसके एच् को आकारादेश हो।

अन्नं साधयति। 'अलौकिक' ग्रहण इसलिये है कि तपस्तापसं सेधयति॥

चापयति। स्फारयति, यहां (४६२) इस सूत्र से आकारादेश होता है॥

४९८–प्रजने वीयतेः ॥ ६ । १ । ५५ ॥

णिच् परे हो तो गर्भधारण कराने अर्थ में वर्त्तमान वी धातु के एच् को आकारादेश विकल्प करके हो।

पुरोवातो गाः प्रवापयति; प्रवाययति वा॥

गूहयति, यहां (२३५), सूत्र से उपधा को ऊकार होता है॥

४९९–दोषो णौ ॥ ६ । ४ । ९० ॥

णिच् परे हो तो दुप् धातु के उपधा ओकार को ऊकारादेश हो।

दूपयति।

५००–वा चित्तविरागे ॥ ६ । ४ । ९१ ॥

णिच् परे हो तो चित्त बिगाड़ने अर्थ में दुष् धातु के ओकार को विकल्प करके ऊकारादेश हो।

चित्तं दूपयति; दोपयति वा कामः॥

जितने मित्संज्ञक धातु भ्वादि और चुरादिगण में लिख चुके हैं, उन सबकी उपधा को ह्रस्व (४६१) से होता है। जैसे—घटमानं प्रयोजयति= घटयति। जनयति। जरयति।

रञ्ज धातु में यह विशेष है—

५०१–वा०–रञ्जेर्णौ मृगरमणे ॥ ६ । ४ । २४ ॥

णिच् परे हो तो मृगरमण अर्थ में रञ्ज धातु के उपधा नकार का लोप हो।

मृगान् रजयति । अन्यत्र—रञ्जयति वस्त्राणि ।।

गच्छन्तं प्रयोजयति = गमयति । अजीगमत् । ज्वलयति; ज्वालयति ।।

५०२–णौ गमिरबोधने ।। २ । ४ । ४६ ।।

णिच् परे हो तो अबोधन अर्थ में वर्त्तमान इण् धातु को गमि आदेश हो ।

यन्तं प्रयोजयति = गमयति । बोधन अर्थ में तो—प्रत्याययति ।।

इक् धातु को भी इण्वत् कार्य (३४७) वार्त्तिक से होता है—अधिगमयति ।।

५०३–हनस्तोऽचिण्णलोः ।। ७ । ३ । ३२ ।।

चिण् और णल्भिन्न ञित् णित् प्रत्यय परे हों तो हन् धातु को तकारादेश हो ।

घातयति, यहां (३०४) से कुत्व हो जाता है ।।

ईर्ष्ययति—

५०४–वा०–ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।। ६ । १ । २ ।।

ईर्ष्य धातु के द्वित्वप्रसंग में तृतीय व्यञ्जन वा तृतीय एकाच् अवयव को द्वित्व आदेश हो ।

ऐर्ष्यियत् । ऐर्षिष्यत्, यहां तृतीय के कहने से षकार को द्वित्व नहीं होता है ।।

नाथयति । अननाथत् ।।

इति णिजन्तप्रक्रिया समाप्ता ।। ११ ।।

---

(१२) अथ सन्नन्तप्रक्रिया ॥

५०५–धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ॥ ३ । १ । ७ ॥

जिसका इच्छा कर्म्म और इच्छा के साथ कर्त्ता हो, उस धातु से इच्छा अर्थ में विकल्प करके सन् प्रत्यय हो।

पठितुमिच्छति = पिपठिषति । 'कर्म्म' ग्रहण इसलिये है कि— गमनेनेच्छति, यहां कारण से न हो। 'समानकर्त्ता' इसलिये कहा है कि— देवदत्तस्य भोजनमिच्छति यज्ञदत्तः । 'विकल्प' ग्रहण से एक पक्ष में वाक्य भी होता है।

पिपठिषाञ्चकार । पिपठिषिता । पिपठिषिष्यति । पिपठिषिषति; पिपठिषिषाति । पिपठिषति; पिपठिषाति । पिपठिषतु । अपिपठिषत् । पिपठिषेत् । पिपठिष्यात् । अपिपठीषीत् । अपिपठिषिष्यत् ॥

अद् धातु को घस्लृ आदेश (२०२) से होता है—अत्तुमिच्छति = जिघत्सति ॥

ईर्ष्य धातु के तृतीय एकाच् को (५०४) से द्वित्व होता है— ईर्ष्यियिषति ॥

५०६–रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥ १ । २ । ८ ॥

रुदादि धातुओं से परे जो सन् और क्त्वा सो कित्वत् हों।

रुरुदिषति । विविदिषति । मुमुषिषति. इनमें कित् मानकर गुणादेश नहीं होता ॥

५०७–सनि ग्रहगुहोश्च ॥ ७ । २ । १२ ॥

ग्रह, गुह और उगन्त धातुओं से परे जो सन्, उसको इट् का आगम न हो।

जिघृक्षति, यहां (२८६) से संप्रसारण होता है ।।

सुषुप्सति, यहां (२८३) से संप्रसारण होता है ।।

५०८–किरश्च पञ्चभ्यः ।। ७ । २ । ७५ ।।

कॄ गॄ दृङ् धृङ् और प्रच्छ इन पांच धातुओं से परे, वलादि सन् आर्द्धधातुक को इट् का आगम हो ।

पिपृच्छिषति । चिकरिषति । जिगरिषति; जिगलिषति । दिदरिषते । दिधरिषते ।।

५०९–इको झल् ।। १ । २ । ९ ।।

इगन्त से परे जो झलादि सन्, वह कित् हो ।

भवितुमिच्छति = बुभूषति । पुपूषति । पुपूषते । लुलूषति । लुलूषते ।।

५१०–हलन्ताच्च ।। १ । २ । १० ।।

इक्समीपवर्त्ती हल् से परे झलादि सन् कित् हो ।

तितिप्सते । जुघुक्षति । बिभित्सति । 'इक्' ग्रहण इसलिये है कि—यियक्षते, यहां कित् के न होने से संप्रसारण न हुआ । 'झल्' इसलिये है कि—विवर्द्धिषते । हल् ग्रहण यहां जातिपरक है, इससे—तितृक्षति । तितृंहिषति ।।

५११–अज्झनगमां सनि ।। ६ । ४ । १६ ।।

अजन्त, हन् और अजादेश गम धातु को दीर्घ हो, झलादि सन् परे हो तो ।

जेतुमिच्छति = जिगीषति । चिकीषति; चिचीषति, यहां (४१७) से कुत्वविकल्प । हन्तुमिच्छति = जिघांसति ।।

५१२–मनि च ।। २ । ४ । ४७ ।।

सन् परे हो तो इण् धातु को गमि आदेश अबोधन अर्थ में हो ।

जिगमिषति । बोधन अर्थ में—प्रतीषिषति ।।

५१३–इङश्च ॥ २ । ४ । ४८ ॥

सन् परे हो तो इङ् धातु को गमि आदेश हो ।

अधिजिगांसते, यहां (५११) से दीर्घ हो गया । अजादेश ग्रहण से गम् धातु को दीर्घ नहीं होता है. इससे—संजिगंसते, यहां उपधादीर्घ न हुआ ॥

५१४–रलो व्युपधाद्धलादेः सँश्च ॥ १ । २ । २६ ॥

इकार और उकार जिसकी उपधा और हल् आदि तथा रल् अन्त में हो, उससे परे सेट् क्त्वा और सन् विकल्प से कित्संज्ञक हों ।

दिद्युतिषते, दिद्योतिषते, (२१८) । रुरुचिषते; रुरोचिषते । लिलिखिषति; लिलेखिषति ।

'रल्' ग्रहण इसलिये है कि—दिदेविषति । इ, उ उपधा में इसलिये कहा कि—विवर्त्तिषते । 'हलादि' इसलिये है कि—एषिषिषति, यहां नित्य द्वित्व को भी बाधकर पूर्व गुणादेश होता है ॥

५१५–सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् ॥ ७ । २ । ४९ ॥

इवन्त, ऋधु, भ्रस्ज, दम्भु, श्रि, स्वृ, यु, ऊर्णु, भर, ज्ञपि और सन् इन अङ्गों से परे वलादि सन् आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम हो ।

दिदेविषति; दुद्यूषति । सिसेविषति, सुस्यूषति । अर्दिधिषति । अनिट् पक्ष में—

५१६–आप्ज्ञप्यृधामीत् ॥ ७ । ४ । ५५ ॥

सकारादि सन् प्रत्यय परे हो तो आप्, ज्ञपि और ऋध अङ्गों के अच को ईकारादेश होवे ।

५१७–अत्र लोपोऽभ्यासस्य ।। ७ । ४ । ५८ ।।

इस (अ० ७ । ४ । ५४) सूत्र से लेकर (अ० ७ । ४ । ५७) इस सूत्र पर्य्यन्त जिन धातुओं से सन् होता है, उनके अभ्यास का लोप होवे ।

आप्तुमिच्छति = ईप्सति । अर्धितुमिच्छति = ईर्त्सति, यहां धकार को चर्त्व और ईकार को रपरभाव होता है । विभ्रज्जिषति; विभर्जिषति, (४२७) से रेफ और उपधा को रम् आगम का विकल्प । अनिट् पक्ष में—विभ्रक्षति; बिभर्क्षति ।

५१८–दम्भ इच्च ।। ७ । ४ । ५६ ।।

सकारादि सन् परे हो तो दम्भ धातु के अच् को इकार और ईकार होवे ।

पूर्व सूत्र से अभ्यासलोप और (५१०) सूत्र में हल् करके हल्जाति का ग्रहण होने ने सन् को कित्व होकर नकारलोप (१३९) से होता है—धिप्सति; धीप्सति । सेट् पक्ष में—दिदम्भिषति ।

शिश्रीषति; शिश्रयिषति । सुस्वूर्षति, (३८०) से ऋ को उर् आदेश; सिस्वरिषति । यियविषति, (४७२) से अभ्यास को इत्; युयूषति; कित्व (५०९) से होकर दीर्घ (५११) से हो जाता है । ऊर्णुनविषति, (३२७) से ङित्व का विकल्प; ऊर्णुनुविषति; ऊर्णुनूषति ।

(५१५) सूत्र में 'भर' कहने से भ्वादिगण के भृञ् धातु का ग्रहण है—बिभरिषति; बुभूर्षति, (३८०) । जिज्ञपयिषति, ज्ञीप्सति, (५१६) से ईकार और अभ्यास का लोप (५१७) से सिसनिषति; । सिषासति, (३९४) से आकारादेश ।।

५१९–वा०–तनिपतिदरिद्राणामुपसंख्यानम् ।।

७ । २ । ४१ ।।

तन, पत और दरिद्रा धातुओं से परे, जो वलादि सन् आर्द्धधातुक, उसको विकल्प से इट् का आगम होवे ।

५२०—तनोतेर्विभाषा ।। ६ । ४ । १७ ।।

झलादि सन् परे हो तो तन अङ्ग की उपधा को विकल्प करके दीर्घ होवे ।

तितनिषति; तितांसति; तितंसति ।

५२१—वा०—आशङ्कायामुपसंख्यानम् ।। ३ । १ । ७ ।।

संदेह करने अर्थ, में धातु से सन् प्रत्यय हो ।

पतितुमिच्छति कूलम् = पिपतिषति । श्वा मुमूर्षति ।

५२२—सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् ।। ७ । ४ । ५४ ।।

सकारदि सन् परे हो तो मी, मा, घु, रभ, लभ, शक, पत और पद इन धातुओं के अच् को इस् आदेश होवे ।

'पिस्त्+सन्+तिप्' = पित्सति, (२१०) से सलोप, और (५१७) से अभ्यास का लोप हो जाता है । दिदरिद्रिषति; दिदरिद्रासति ।

'मी' से डुमिञ् और मीङ् दोनों का ग्रहण है—मित्सति, (२१६) से इस् के स् को तकार । 'मा माने'—मित्सति । 'माङ्, मेङ्'—मित्सते । 'दो, दाण्'—दित्सति । 'देङ्'—दित्सते । 'दाञ्'—दित्सति । दित्सते । 'धेट्'—धित्सति । 'धाञ्'—धित्सति । धित्सते । 'रभ'—रिप्सते । 'लभ'—लिप्सते । 'शक्लृ'—शिक्षति । 'शक्'—शिक्षति । शिक्षते । 'पद'—पित्सते ।।

५२३—वा०—इस्त्वं सनि राधो हिंसायाम् ।।७।४।५४।।

सन् परे हो तो हिंसा अर्थ में वर्त्तमान राध धातु के अच् को इस् आदेश और अभ्यास का लोप होवे ।

प्रतिरित्सति । हिंसा अर्थ से अन्यत्र—आरिरात्सति ।।

५२४—मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा ।। ७ । ४ । ५७ ।।

सकारादि सन् परे हो तो अकर्मक मुच् धातु को विकल्प से गुण और अभ्यास का लोप होवे ।

प्रयोजन यह है कि जो (५१०) सूत्र से कित्व नित्य प्राप्त है, उसका विकल्प हो जावे—मोक्षते मुमुक्षते वा वत्सः स्वयमेव ।

'अकर्मक' ग्रहण इसलिये है कि—मुमुक्षति वत्सं देवदत्तः, यहां गुण न होवे ।

वृतु आदि चार धातुओं से परे सादि आर्द्धधातुक को इट् का निषेध (२२२) से—विवृत्सति, (२२१) से परस्मैपदविधि । निर्नर्त्तिषति; निनृत्सति, (३९७) से इट् का विकल्प । चिकर्त्तिषति, चिकृत्सति । चिचर्त्तिषति; चिचृत्सति । चिछर्दिषति; चिछृत्सति ।।

५२५—इट् सनि वा ।। ७ । २ । ४१ ।।

वृङ्, वृञ् और ऋकारान्त धातुओं से सन् को इडागम विकल्प करके हो ।

तितरिषति; तितरीषति, (२६४) से इट् को दीर्घ विकल्प । अनिट् पक्ष में—तितीर्षति । विवरिषति; विवरीषति; वुवूर्षति । विवरिषते; विवरीषते; वुवूर्षते । वृङ—विवरिषते; विवरीषते, वुवूर्षते इत्यादि ।।

५२६—स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि ।। ७ । २ । ७४ ।।

सन् परे हो तो स्मिङ्, पूङ्, ऋ, अञ्जू, अशू इन धातुओं को इट् का आगम होवे ।

स्मेतुमिच्छति = सिस्मयिषते । पिपविषते, (ओः पुयण्ज्यपरे ।। ७ । ४ । ८०) सूत्र से अभ्यास को इकारादेश होता है । पिपावयिषति । अरिरिषति । अञ्जिजिषति । अशिशिषते ।।

'पूञ्'—पुपूषति । 'उच्छ'—उचिच्छिषति ।।

चुरादिगण तथा अन्य सब धातु हेतुमान् णिजन्तों से भी इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है । जैसे—पाठयितुमिच्छति = पिपाठयिषति । अध्यापयितुमिच्छति = अधिजिगापयिषति, (४९६) से इङ् को गाङ् आदेश विकल्प से अध्यापिपयिषति । शिश्वापयिषति । शुशावयिषति, (४७४)

से ण्वि को संप्रसारण । जुहावयिषति, संप्रसारण । पुस्फारयिषति । चुश्रावयिषति । यियावयिषति । बिभावयिषति । रिरावयिषति । लिलावयिषति । जिजावयिषति, (४७२) ।

'पु यण् जि' ग्रहण इसलिये है कि—नुनावयिषति । 'अकार परे' इसलिये कहा है कि—बुभूषति ॥

(४७३) सूत्र से स्रव आदि के अभ्यास को इत्व का विकल्प होकर—सिस्रावयिषति; सुस्रावयिषति इत्यादि । तुष्टूषति । सुष्वापयिषति । सिषाधयिषति । तिष्ठासति । सुपुप्सति । प्रतीषिषति । अधीषिषति । एधितुमिच्छति = एदिधिषति ॥

इस प्रक्रिया में भी सामान्य और विशेष सूत्रों में सब धातुओं का सम्बन्ध करके प्रयोगव्यवस्था जानो ॥

इति सन्नन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥ १२ ॥

---

(१३) अथ यङन्तप्रक्रिया ॥

५२७–धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ॥
३ । १ । २२ ॥

क्रिया के वार-वार शीघ्र वा निरन्तर अर्थ में, हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होवे ।

(१६७) से धातुसंज्ञा और (२६८) से द्वित्व होकर—

५२८–गुणो यङ्लुकोः ॥ ७ । ४ । ८२ ॥

यङ् और यङलुक् परे हो तो इगन्त अङ्ग के अभ्यास को गुणादेश हो ।

पुनः पुनरतिशयेन भृशं वा भवतीति=बोभूयते । बोभूयांचक्रे । बोभूयांबभूव । बोभूयामास । बोभूयिता । बोभूयिष्यते । बोभूयिषतै; बोभूयिषातै । बोभूयताम् । अबोभूयत । बोभूयेत । बोभूयिषीष्ट । अबोभूयिष्ट । अबोभूयिष्यत ।

'धातु' ग्रहण आर्द्धधातुक संज्ञा होने के लिये है । 'एकाच्' ग्रहण इसलिये है कि—पुनः पुनर्जागर्ति, यहां यङ् न हो । 'हलादि' ग्रहण इसलिये है कि—भृशमीक्षते ॥

जिस धातु के यङन्त प्रयोग से शीघ्र आदि अर्थ विदित नहीं होते हैं, उससे यङ् प्रत्यय नहीं होता* । जैसे—भृशं शोभते । भृशं रोचते ॥

---

* तच्चावश्यमनभिधानमाश्रयितव्यं क्रियमाणेऽपि ह्येकाज्झलादि-ग्रहणे यत्र वैकाचो हलादेश्चोत्पद्यमानेन यङार्थस्याभिधानं न भवति । न भवति तत्रोत्पत्तिः । तद्यथा—भृशं शोभते । भृशं रोचते ॥

महाभाष्य अ० ३ । पा० १ । सूत्र २२ ॥

५२९—वा०—सूचिसूत्रिमूत्र्यटचर्त्यशूर्णोतीनां ग्रहणं यङ्-विधावनेकाज्झलाद्यर्थम् ॥ ३ । १ । २२ ॥

यङ् विधान में अनेकाच् और हलादि धातुओं के अर्थ सूचि, सूत्रि, मूत्रि, अटि, अर्ति, अशू, ऊर्णु इन धातुओं का ग्रहण कर्त्तव्य है ।

अर्थात् (५२७) सूत्र में एकाच् और हलादिग्रहण से सूचि आदि धातुओं से यङ् नहीं प्राप्त है, वह हो । सोसूच्यते । सोसूत्र्यते । मोमूत्र्यते ।

५३०—यस्य हलः ॥ ६ । ४ । ४९ ॥

आर्द्धधातुक विषय में, हल् से परे यकार का लोप हो ।

'सोसूच्य+आम्+कृ+एश्'=सोसूचाञ्चक्रे । सोसूचिता । सोसूत्रिता । मोमूत्रिता ।

५३१—दीर्घोऽकितः ॥ ७ । ४ । ८३ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो अङ्ग के अकित् अभ्यास को दीर्घ हो ।

अट आदि अजादि धातुओं में यङन्त द्वितीय एकाच् अवयव ट्य मात्र को द्वित्व होता है—अटाट्यते । अटाटाञ्चक्रे । अटाटिष्यते ।

५३२—यङि च ॥ ७ । ४ । ३० ॥

यङ् परे हो तो ऋ और संयोगादि ऋकारान्त धातु को गुणादेश होवे ।

अरार्यते । अराराञ्चक्रे । अरारिता । अशाश्यते । अशाशिता । ऊर्णोनूयते ॥

बेभिद्यते । बेभिदिता, यहां अकारलोप को स्थानिवत् मानने से उपधा को गुण नहीं होता ।

५३३—नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥ ३ । १ । २३ ॥

कुटिलता अर्थ में गत्यर्थक धातुओं से नित्य ही यङ् प्रत्यय हो ।

अर्थात् क्रियासमभिहार अर्थ में जो यङ् (५२७) से कहा है, वहां उसी अर्थ में लकारार्थ प्रक्रिया में पाक्षिक लोट् भी होगा परन्तु गत्यर्थ धातुओं से कुटिलगति में यङ् ही होगा, लोट् नहीं। कुटिलं व्रजति= वाव्रज्यते। वावज्यते ॥

५३४—लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम् ॥ ३ । १ । २४ ॥

धात्वर्थ की निन्दा में लुप् आदि धातुओं से यङ् प्रत्यय हो।

लुप् आदि से क्रियासमभिहार में यङ् नहीं होता किन्तु निन्दा में ही होता है। गर्हितं लुम्पति=लोलुप्यते। निन्दितं सीदति=सासद्यते।

५३५—चरफलोश्च ॥ ७ । ४ । ८७ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो चर और फल धातु के अभ्यास को नुक् आगम होवे।

५३६—वा०-अनुस्वारागमः पदान्तवच्च ॥ ७ । ४ । ८५ ॥

नुक् के स्थान में अनुस्वार आगम कहो और उसको पदान्त के समान कार्य हों।

५३७—उत्परस्यातः ॥ ७ । ४ । ८८ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो चर और फल धातु के अभ्यास से परे अकार को उकारादेश हो।

चञ्चूर्यते; चंचूर्यते, (१९७) से दीर्घ। पम्फुल्यते; पंफुल्यते।

५३८—जपजभदहदशभञ्जपशां च ॥ ७ । ४ । ८६ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो जप, जभ, दह, दश, भञ्ज और पश धातुओं के अभ्यास को नुक् का आगम होवे।

कुत्सितं जपति = जञ्जप्यते, जंजप्यते । जंजभ्यते । दंदह्यते । दंदश्यते । [बंभज्यते] 'पश' धातु सौत्र है, किसी गण का नहीं—पंपश्यते ।

५३९—ग्रो यङि ॥ ८ । २ । २० ॥

यङ् परे हो तो गॄ धातु के रेफ को लकारादेश हो ।

गर्हितं गिरति = जेगिल्यते ॥

अतिशयेन पुनः पुनर्वा ददाति = देदीयते । देधीयते । मेमीयते । तेष्ठीयते । जेगीयते । पेपीयते । जेहीयते । अवसेषीयते । यहां सर्वत्र (३४६) से द्वित्व से पूर्व ईकारादेश होता है ॥

शोशूयते; शेश्वीयते, यहां (२९४) से संप्रसारण विकल्प से होता है । अतिशयेन प्यायते = पेपीयते, यहां (१९३) सूत्र से प्यायी धातु को पी आदेश होता है, सास्मर्यते । सास्वर्यते, (२५४) से ऋकार को गुण होता है ॥

५४०—रीङ् ऋतः ॥ ७ । ४ । २७ ॥

कृत् और सार्वधातुकभिन्न यकारादि और च्वि प्रत्यय परे हों तो ऋकारान्त अङ्ग को रीङ् आदेश हो ।

चेक्रीयते । जेह्रीयते । देध्रीयते । वेव्रीयते ॥

५४१—न कवतेर्यङि ॥ ७ । ४ । ६३ ॥

यङ् परे हो तो कुङ् धातु के अभ्यास को चुत्व न हो ।

अतिशयेन कवते = कोकूयते । अतिशयेन कौति कुवति वा = चोकूयते ।

५४२—कृपेश्छन्दसि ॥ ७ । ४ । ६४ ॥

यङ् परे हो तो वेदविषय में कृप् धातु के अभ्यास को चुत्व न हो ।

करीकृष्यते यज्ञकुणपः । अन्यत्र लोक में—चरीकृष्यते । कृपीवलः ॥

५४३—नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् ॥ ७ । ४ । ८४ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हों तो वञ्चु, स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, कस, पत, पद और स्कंद के अभ्यास को नीक आगम हो ।

वनीवच्यते, (५३१) इस सूत्र में अकित् कहने से दीर्घ नहीं होता । सनीस्रस्यते । दनीध्वस्यते । बनीभ्रस्यते, यहां (१३९) से नलोप होता है । चनीकस्यते । पनीपत्यते । पनीपद्यते । चनीस्कद्यते ॥

५४४—नुगतोऽनुनासिकान्तस्य ॥ ७ । ४ । ८५ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हों तो अनुनासिकान्त अङ्ग के अकारान्त अभ्यास को नुक् आगम हो ।

तंतन्यते । जंगम्यते । यंयम्यते । यय्यँम्यते । तपरग्रहण से पूर्व दीर्घ अभ्यास को नुक् नहीं होता । तथा—बाभाम्यते । जाजायते; जञ्जन्यते, यहां (१८५) सूत्र से आकारादेश विकल्प से होता है ॥

५४५—हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वक्तव्यः ॥७।४।३०॥

यङ् प्रत्यय परे हो तो हिंसा अर्थ में हन् धातु को घ्नी आदेश हो ।

अतिशयेन हन्ति=जेघ्नीयते । हिंसा से अन्यत्र—जंघन्यते ॥

५४६—रीगृदुपधस्य च ॥ ७ । ४ । ९० ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हों तो ऋदुपध धातु के अभ्यास को रीक् का आगम हो ।

अतिशयेन वर्त्तते=वरीवृत्यते । वरीवृध्यते । वरीनृत्यते, यहां (४५३) इस सूत्र से णत्व का निषेध होता है । चलीक्लृप्यते, (२२३) से लत्व होता है ॥

५४७—रीगृत्वत इति वक्तव्यम् ॥ ७ । ४ । ९० ॥

(रीगृदु० ॥ ७ । ४ । ९०) यहां ऋकारवान् धातु के अभ्यास को रीक् कहना चाहिये ।

पुनः पुनर्वृश्चति = वरीवृश्च्यते । परीपृच्छ्यते ॥

५४८–स्वपिस्यमिव्येञां यङि ॥ ६ । १ । १९ ॥

यङ् परे हो तो स्वपि, स्यमि और व्येञ् धातु को सम्प्रसारण हो ।
सोषुप्यते । सेसिम्यते । वेवीयते ॥

५४९–न वशः ॥ ६ । १ । २० ॥

यङ् परे हो तो वश धातु को संप्रसारण न हो ।
वावश्यते ॥

५५०–चायः की ॥ ६ । १ । २१ ॥

यङ् परे हो तो चाय धातु को की आदेश हो ।
अतिशयेन चायते = चेकीयते ॥

५५१–ई घ्राध्मोः ॥ ७ । ४ । ३१ ॥

यङ् परे हो तो घ्रा, ध्मा धातुओं को ईकारादेश हो ।
अतिशयेन पुनः पुनर्वा जिघ्रति = जेघ्रीयते । देध्मीयते ॥

५५२–अयङ् यि क्ङिति ॥ ७ । ४ । २२ ॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो शीङ् धातु को अयङ् आदेश हो ।

भृशं शेते = शाशय्यते । डोढौक्यते । तोत्रौक्यते, यहां अभ्यास को ह्रस्व होकर गुण हो जाता है । अतिशयेन प्रीणाति = पेप्रीयते ॥

इति यङन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥ १३ ॥

---

(१४) अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया ॥

५५३—यङोऽचि च ॥ २ । ४ । ७४ ॥

अच् प्रत्यय परे हो तो यङ् का लुक् हो तथा वेद में बहुल करके लुक् हो ।

५५४—न धातुलोप आर्द्धधातुके ॥ १ । १ । ४ ॥

आर्द्धधातुक निमित्त मानकर जहां धात्ववयव का लोप हुआ हो, वहां इक् के स्थान में गुण वृद्धि न हो ।

अतिशयेन यो लोलूयते = स लोलुवः । पोपुवः । सनीस्रंसः । दनीध्वंसः ।

(दाधर्त्ति० ॥ ७ । ४ । ६५) इस अगले (५५६) सूत्र में 'तेतिक्ते' इस प्रयोग में यद्यपि प्रत्ययलक्षण मानकर आत्मनेपद सिद्ध है, तथापि आत्मनेपद निपातन से यह ज्ञापन है कि अन्यत्र यङ्लुगन्त धातुओं से परस्मैपद होता है ॥

५५५—यङो वा ॥ ७ । ३ । ९४ ॥

यङ् से परे हलादि पित् सार्वधातुक को ईट् का आगम विकल्प करके हो ।

शाकुनिको लालपीति । दुन्दुभिर्वावदीति । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति, यहां अन्तरङ्गत्व मानकर द्वित्व से पूर्व यङ्लुक् होता है । प्रत्ययलक्षण से द्वित्व, लट् आदि लकारों की उत्पत्ति, परस्मैपद और विकरणों का उत्सर्ग शप् विकरण होता है ।

५५६—दाधर्त्तिदर्धर्त्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्-संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतःसरीसृपतंवरीवृजन्मर्मृज्यागनीगन्तीति च ॥७।४।६५॥

दार्धर्ति, दर्धर्त्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य और आगनीगन्ति ये अष्टादश वेद में निपातन हैं।

दार्धर्त्ति—यहां धारि वा धृञ् धातु से श्लु वा यङ्लुक् में अभ्यास को दीर्घ और णिच्लोप निपातन है। दर्धर्त्ति—में श्लु प्रत्यय के परे अभ्यास को रुक् आगम। तथा—'दर्धर्षि' में भी।

बोभूतु—में यङ्लुगन्त भू धातु से लोट् प्रथमैकवचन में गुण का निषेध निपातन है। यद्यपि (९१) सूत्र से गुण का निषेध हो जाता, फिर वहां गुण के अभाव निपातन से 'बोभवीति' आदि में (९१) सूत्र से गुण का निषेध नहीं होता।

तेतिक्ते—में यङ्लुगन्त तिज धातु से आत्मनेपद क्रिया है। अलर्षि—यहां जुहोत्यादि ऋ धातु से लट् मध्यमैकवचन में अभ्यास के हलादि शेष रेफ को लत्व निपातन है। यहां सिप् निर्देश उपलक्षणमात्र है, इससे 'अलर्त्ति दक्षः' इत्यादि में उक्त कार्य्य होता है।

आपनीफणत्—में आङ्पूर्वक यङ्लुगन्त फण धातु के अभ्यास को नीक् आगम शतृ प्रत्यय में निपातन है। संसनिष्यदत्—में सम्पूर्वक यङ्लुगन्त स्यन्द् धातु को शतृ परे हो तो अभ्यास को निक् आगम निपातन है। यहां सम्पूर्व होना अतन्त्र है, इससे 'आसनिष्यदत्' यहां भी उक्त कार्य्य होता है।

करिक्रत्—यहां यङ्लुगन्त कृञ् धातु के अभ्यास को चुत्व न होना तथा उसके ककार को रिक् आगम निपातन है। कनिक्रदत्—में लुङ् में क्रन्द से परे च्लि को अङ् आदेश, धातुद्विर्वचन, अभ्यास को चुत्व न होना और निक् आगम निपातन है।

भरिभ्रत्—में यङ्लुगन्त भृञ् धातु के अभ्यास को जश्त्व और इत्व का होना और रिक् आगम निपातन है। दविध्वतः—में यङ्लुगन्त ध्वृ धातु के अभ्यास को विक् आगम और ऋलोप शतृपूर्वक जस् विभक्ति के परे निपातन है—'दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य'।

दविद्युतत्—में यङ्लुगन्त द्युत् धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण निषेध अकारादेश और विक् आगम निपातन है। तरित्रतः—में तॄ धातु को श्लु विकरण से शतृ प्रत्यय के परे षष्ठी के एकवचन में अभ्यास को रिक् आगम निपातन है।

सरीसृपतम्—में सृप् धातु को श्लु विकरण में शतृ प्रत्यय के परे द्वितीया के एकवचन में अभ्यास को रीक् आगम निपातन है। वरीवृजत्—में वृजी धातु को श्लु विकरण से शतृ प्रत्यय के परे अभ्यास को रीक् आगम निपातन है। मर्मृज्य—में मृज धातु से लिट् णल् परे हो तो अभ्यास को रुक्, धातु को युक् निपातन है। यहां 'मृज' को लघूपध के अभाव से वृद्धि नहीं होती।

आगनीगन्ति—में आङ्पूर्व गम धातु को श्लु विकरण से लट् में अभ्यास को चुत्व निषेध और नीक् आगम निपातन किया है—'वक्ष्यन्ति वेदागनीगन्ति कर्णम्'। (दाधर्ति०) इस सूत्र में 'इति' शब्द पढ़ने से इस प्रकार के अन्य प्रयोगों का भी संग्रह होता है॥

(२६१) इस सूत्र में हु, श्नु ग्रहण का मुख्य प्रयोजन यही है कि यङ्लुगन्त में अजादि सार्वधातुक के परे इनको यणादेश न हो। इससे हु, श्नु ग्रहण ज्ञापक है कि लोक में भी सब लकारों के विषय में यङ्लुक् होता है। यथा—

अतिशयेन पुनः पुनर्वा भिनत्ति=वेभिदीति. यहां (३९०) से गुण निपातन है; वेभेत्ति। वेभित्तः। वेभिदति। वेभिदीषि; वेभेत्सि। वेभित्थः। वेभित्थ। वेभिदीमि; वेभेद्मि। वेभिद्वः। वेभिद्मः। वेभेदाञ्चकार। वेभेदामास। वेभेदाम्बभूव। वेभेदिता। वेभेदिष्यति। वेभेदिषति; वेभेदिषाति। वेभिदति;

बेभिदाति । बेभिदीतु; बेभेत्तु । अबेभिदीत्; अबेभेत् । अबेभेः; यहां (३५१) से रुत्वविकल्प होता है; अबेभिदीः । बेभिद्यात् । बेभिद्यास्ताम् । अबेभेदीत् । अबेभेदिष्टाम् । अबेभेदिष्यत् ॥

चेच्छिदीति; चेछेत्ति इत्यादि । बोभवीति; बोभोति । बोभूतः । बोभुवति । बोभवांचकार । बोभविता । अबोभवीत् । अबोभूताम् । अबोभवुः, यहां (३६३) से गुणादेश होता है । बोभूयात् । बोभूयाताम् । बोभूयास्ताम् । अबोभूवीत्, (८९) से सिच्लुक् तथा (३३) से नियत्व मानकर वुक् । अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभवुः । अबोभविष्यत् ॥

अतिशयेन स्पर्द्धते = पास्पर्द्धीति; पास्पर्द्धि । पास्पर्द्धः । पास्पर्द्धति । पास्पर्त्सि । पास्पर्द्धि, यहां (३००) से हि को धि हुआ है । अपास्पर्त् । अपास्पाः, यहां सिप् के परे (३५१) से रुत्वविकल्प हुआ । अपास्पर्त्; अपास्पर्द् ॥

अतिशयेन गाधते = जागाद्धि; जागाधीति । जाघात्सि । अजाघात्; अजाघा; यहां (२०४) से भष् । पुनः पुनर्नाथते = नानात्ति; नानाथीति । नानात्तः । चोस्कुन्दीति; चोस्कुन्ति । अचोस्कुन् । अचोस्कुन्ताम् । अचोस्कुन्दुः ॥

अतिशयेन मोदते = मोमुदीति । मोमोदांचकार । मोमोदिता । अमोमुदीत् । अमोमोत् । अमोमुत्ताम् । अमोमुदुः । अमोमुदीः । अमोमोः । अमोमोत् । अमोमोदीत् ॥

पुनः पुनः कूर्द्दते = चोकूर्द्दीति; चोकूर्त्ति । चोकूर्त्तः । चोकूर्द्दति । अचोकूर्त् । अचोकूर्द्दीत् । अचोकूः । अचोखूः । अजोगूः । अतिशयेन वञ्चति = वनीवङ्क्ति; वनीवञ्चीति । वनीवक्तः । वनीवचति । अवनीवञ्चीत् । अवनीवन् ॥

अतिशयेन गच्छति = जंगमीति; जंगन्ति । जंगतः; यहां (२०३) से अनुनासिकलोप । जंगमति । जंगन्मि । जंगन्वः, यहां (१७३) से म को न आदेश । जंगमिता, यहां एकाच् से निषेध होने से इट् निषेध नहीं होता।

जंगहि, यहां (मो नो धातोः ॥ ८ । २ । ६४) इस सूत्र से ककार को नकार होता है । अजंगमीत् । अजंगमिष्टाम्, यहां लृदित् कार्य 'च्लि' को अङ् आदेश नहीं होता ॥

भृशं हन्ति = जंघनीति; जंघन्ति । जंघतः । जंघ्नति । जंघनिता । जंघहि । अजंघनीत् । अजंघम् । वध्यात्; यहां द्वित्व आदेश होकर वध आदेश होता है । फिर आदेश को स्थानिवत् मानकर अनभ्यास निषेध से वधादेश को द्वित्व नहीं होता है । आङ् पूर्व से (आङो यमहनः ॥ १ । ३ । २८) से आत्मनेपद होगा—आजंघते इत्यादि ॥

अतिशयेन चरति = चंचुरीति; चञ्चूर्ति । चञ्चूर्त्तः । चञ्चुरति । अचञ्चुरीत् । अचञ्चूः । चङ्खनीति; चङ्खन्ति । चङ्खातः, यहां (३९४) सूत्र से आकारादेश । चङ्खाहि । अचङ्खनीत् । अचङ्खन् । अचङ्खाताम् । अचंख्नुः । चंखन्यात्; चङ्खायात्, यहां (१८५) से आकारादेश विकल्प । अचंखनीत् ॥

अतिशयेन यौति = योयोति, योयवीति, यहां (उतो वृद्धि० ॥ ७ । ३ । ८९) इस सूत्र में (नाभ्यस्ता० ॥ ७ । ३ । ८७) इस सूत्र की अनुवृत्ति होने से वृद्धि न हुई । अयोयवीत्; अयोयोत् । योयुयात् । आशीर्लिङ् में (१६०) से दीर्घ—योयूयात् । अयोयावीत् । नोनवीति; नोनोति ।

अतिशयेन जहाति = जाहेति; जाहाति । जाहीतः, यहां (३८३) से ईकारादेश । जाहति । जाहेषि; जाहासि । जाहीथः, यहां (जहातेश्च ॥ ६ । ४ । ११६; आ च हौ ॥ ६ । ४ । ११७; लोपो यि ॥ ६ । ४ । ११८; घुमास्था० ॥ ६ । ४ । ६६; एर्लिङि ॥ ६ । ४ । ६७) ये पाँच सूत्र शुद्धगण के निर्देश से प्रवृत्त नहीं होते हैं । जाहीहि । अजाहेत् । अजाहात् । अजाहीताम् । अजाहुः । जाहीयात्; जाहायात् । अजाहासीत् । अजाहासिष्टाम् । अजाहिष्यत् ॥

अतिशयेन स्वपिति=सास्वपीति; सास्वप्ति, यहां यङ् का लुक् होने से (न लुमताङ्गस्य ॥ १ । १ । ६३) इस निषेध से (स्वपिस्यमि० ॥ ६ । १ । १९) से संप्रसारण और शुद्धगण के उच्चारण से (रुदादिभ्यः० ॥ ७ । २ । ७६) यह इट् नहीं होता । सास्वप्तः । सास्वपति । असास्वपीत् । असास्वप् । सास्वप्यात् । अशीर्लिङ् में—सासुप्यात्, यहां (वचिस्वपि० ॥ ६ । १ । १५) इससे सम्प्रसारण होता है। असास्वापीत्; असास्वपीत्, (१४४) ॥

५५७--रुग्रिकौ च लुकि ॥ ७ । ४ । ९१ ॥

यङ्लुक् परे हो तो ऋकारोपध धातु के अभ्यास को रुक्, रिक् और रीक् आगम हों ।

अतिशयेन वर्त्तते=वर्वृतीति; वरिवृतीति; । वरीवृतीति । वर्वृत्ति; वरिवर्ति; वरीवर्त्ति । वर्वृत्तः । वर्वृतति । वर्वर्तामास । वर्वर्त्तिता । वर्वर्त्तिष्यति । वर्वृतति; वरिवृतति; वरीवृतति । वर्वृताति; वरिवृताति; वरीवृताति । वर्वर्त्तिषति; वरिवर्त्तिषति; वरीवर्त्तिषति । वर्वर्त्तिषाति; वरिवर्तिषाति; वरीवर्तिषाति । अवर्वृतीत्; अवर्वर्त्; अवर्वाः; अवर्वर्तीत् ॥

अतिशयेन गर्हते=जर्गृहीति; जर्गर्ढि । जर्गृढः । जर्गृहति । अजर्घट्; अजर्घड् । अतिशयेन गृह्णाति=जागृहीति; जाग्राढि । तस् आदि में ङित् मानकर सम्प्रसारण होता है, वह बहिरङ्ग है, इससे यहां अभ्यास को रुक् आदि नहीं होते—जागृढः । जागृहति । जाग्रहीषि; जाघृक्षि । जाग्रहिता, यहां (ग्रहो लिटि दीर्घः ॥ ७ । २ । ३७) यह नहीं होता क्योंकि वहां एकाच् की अनुवृत्ति है ॥

[अतिशयेन गृध्यति]=जर्गृधीति; जर्गर्द्धि । जर्गृद्धः । जर्गृधति । जर्गृधीषि; जर्घर्त्सि । अजर्गृधीत्; अजर्घर्त्, यहां इट् के अभावपक्ष में गुण, हल्ङ्यादिलोप, भष् भाव, जश्त्व और चर्त्व होता है । अजर्गृद्धाम् । अजर्घाः । अजर्गर्धीत् । अजर्गर्धिष्टाम् । अजर्गर्धिषुः ॥

५५८—ऋतश्च ॥ ७ । ४ । ९२ ॥

यङ्लुक् परे हो तो ऋकारान्त धातु के अभ्यास को रुक्, रिक् और रीक् का आगम हो।

अतिशयेन करोति=चर्कर्ति; चरिकर्त्ति; चरीकर्त्ति। चर्करीति; चरिकरीति; चरीकरीति। चर्कृतः। चर्क्रति। चर्कराञ्चकार। चर्करिता। चर्करिषति। चर्करति। अशर्करीत्; अचर्कः। चर्कृयात्; चक्रियात्, यहां (२३९) से ऋ को रिङ् हो गया। अचर्कारीत्॥

ऋ धातु को यङ्लुक् में द्वित्व हुए पीछे (उरत् ॥ ७ । ४ । ६६) इससे अभ्यास को अत्व, रपरत्व, हलादिशेष, रुक् और रिक् तथा रीक् के स्थान में (१५३) से इयङ् होता है—अतिशयेन ऋच्छति=अररीति; अरियरीति; अरर्त्ति; अरियर्ति। अरृतः। अरियृतः। झि में यण् और रुक् के रेफ का (रो रि ॥ ८ । ३ । १४) करके लोप होता है। (रो रि ॥ ८ । ३ । १४) से लोप करने में अजादेश स्थानिवत् नहीं होता क्योंकि इस का पूर्वत्रासिद्धीय* कार्य में निषेध है—आरति; अरियति। अररांचकार। आरिता। आरियात्; अरिरियात्, अरीरियात्॥

(ऋतश्च ॥ ७ । ४ । ९२) यहां तपकरण से कॄ, तॄ आदि दीर्घ ॠकारान्तों में रुक् रिक् रीक् नहीं होते—अतिशयेन किरति=चाकर्त्ति; चाकरीति। पुनः पुनस्तरति=तातरीति; तातर्ति। तातीर्तः। तातिरति; तातरिता; तातरीता। तातीर्हि। अतातरीत्। अतातः। अतातीर्ताम्। अतातरुः। अतातारीत्। अतातारिष्टाम् इत्यादि॥

पुनः पुनः पृच्छति=पाप्रच्छीति; पाप्रष्टि। पाप्रष्टः। पाप्रच्छति। पाप्रश्मि। पाप्रश्मः, यहां (छ्वोः शूडनुनासिके च ॥ ६ । ४ । १९) इस सूत्र से छ् को श् हो गया है। अतिशयेन ह्वयते=जाह्वयीति; जाह्वति।

---

* वा०—पूर्वत्रासिद्धे च ॥ [१ । १ । ५८ ॥] सन्धि० ६७ ॥ इस वार्त्तिक से स्थानिवत् का निषेध है॥

जाहतः, (लोपो व्यो० ॥ ६ । १ । ६६) इससे य का लोप जाहयति। जाहर्षीषि; जाहसि। जाहामि यहां (२८) से दीर्घ। पुनः पुनर्हयंति= जाहर्यीति; जाहर्ति। जाहर्तः। जाह्यंति। जाहर्हि। अजाहः। अजाहर्युः॥

५५९–ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च ॥६।४।२०॥

क्विप् झलादि कित् ङित् और अनुनासिकादि प्रत्यय परे हों तो ज्वरादि धातुओं की उपधा और वकार को ऊठ् आदेश हो।

अतिशयेन ज्वरति=जाज्वरीति; जाजूर्ति। जाजूर्तः। तात्वरीति; तातूर्ति। अतिशयेन स्रीव्यति=सेस्रिवीति; सेस्रूति। सेस्रूतः। आवीति; औति। औतः। मामवीति; मामोति। मामूतः। मामवति। मामोषि। मामोमि। मामावः। मामूमः। मामोतु। मामूतात्। मामूहि। मामवानि। अमामोत्। अमामोः। अमामवम्। अमामाव। अमामूम।

अतिशयेन तूर्वति=तोतूर्वीति—

५६०–राल्लोपः ॥ ६ । ४ । २१ ॥

रेफ से परे छकार और वकार का लोप हो, क्विप् झलादि कित् ङित् और अनुनासिकादि प्रत्यय परे हों तो।

तोतोर्ति। तोतूर्त्तः। तोतूर्वति। तोथोर्त्ति। दोदोर्त्ति। दोधोर्त्ति। अतिशयेन मूर्च्छति=मोमोर्ति। मोमूर्त्तः॥

अतिशयेन वेत्ति=वेविदीति। वेवित्तः। वेविदति। अवेविदीत्। अवेवेत्। अवेवेः॥

इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया समाप्ता॥ १४॥

---

(१५) अथ नामधातुप्रक्रिया ॥

५६१–सुप आत्मनः क्यच् ॥ ३ । १ । ८ ॥

इच्छा करनेवाले के सम्बन्धी, इच्छा के कर्मरूप सुबन्त से, इच्छा अर्थ में, विकल्प करके क्यच् प्रत्यय हो ।

५६२–क्यचि च ॥ ७ । ४ । ३३ ॥

क्यच् परे हो तो अवर्णान्त अङ्ग को ईकारादेश हो ।

यह सूत्र (१६०) सूत्र का अपवाद है । आत्मनः पुत्रमिच्छति = पुत्रीयति, यहां (सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ॥ २ । ४ । ७१) सूत्र से पुत्र शब्द की द्वितीया विभक्ति का लुक् हो जाता है ।

आत्मनो गामिच्छति = गव्यति (सन्धि० १५७) सूत्र [वान्तो यि प्रत्यये ॥ ६ । १ । ७९] से वान्तादेश । आत्मनो नावमिच्छति = नाव्यति, यहां पदान्त (५६२) के न होने से अवर्णपूर्वक वकार का लोप (सन्धि० १७०) सूत्र [लोपः शाकल्यस्य ॥ ८ । ३ । १९] से नहीं होता ।

गव्याञ्चकार । गव्यिता । नाव्याञ्चकार । नाव्यिता, यहां सन्निपात परिभाषा के आश्रय से क्यच् के यकार का लोप नहीं होता ॥

५६३–नः क्ये ॥ १ । ४ । १५ ॥

क्यच् क्यङ् और क्यष् परे हो तो नकारान्त की ही पदसंज्ञा हो, अन्य की नहीं ।

आत्मनो राजानमिच्छति = राजीयति, यहां पदसंज्ञा होने से राजन् शब्द के नकार का लोप होता है । राजीयाञ्चकार । राजीयिता । राजीयिष्यति । राजीयिषति; राजीयिषाति । राजीयतु । अराजीयत् । राजीयेत् । राजीय्यात् । अराजीयीत् । अराजीयिष्यत् ॥

५६४–प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ॥ ७ । २ । ९८ ॥

प्रत्यय और उत्तरपद परे हो तो एकवचन से वर्त्तमान मपर्य्यन्त युष्मद् अस्मद् शब्द को त्व, म आदेश हों।

आत्मनस्त्वामिच्छति = त्वद्यति। मद्यति। एकवचन के कहने से युष्मद्यति; अस्मद्यति, यहां त्व, म आदेश नहीं होते ॥

आत्मनो गिरमिच्छति = गीर्यति, (१९७) से दीर्घादेश। पूर्यति। दिवमिच्छति = दीव्यति, धातु को दीर्घ कहा है, इससे दिव् शब्द के इकार को नहीं होता। अध इच्छति = अधस्यति। आत्मनः कर्त्तारमिच्छति = कर्त्रीयति, (२३९) से ऋ को रिङ् आदेश होता है ॥

५६५–क्यच्व्योश्च ॥ ६ । ४ । १५२ ॥

क्य और च्वि प्रत्यय परे हो तो हल् से परे अपत्यसम्बन्धी यकार का लोप हो।

आत्मनो गार्ग्यमिच्छति = गार्गीयति। वात्सीयति। आत्मनः कविमिच्छति = कवीयति, (१६०) से दीर्घ ॥

आत्मनो वाचमिच्छति = वाच्यति। समिधमिच्छति = समिध्यति।

५६६–क्यस्य विभाषा ॥ ६ । ४ । ५० ॥

हल् से परे जो क्य प्रत्यय का यकार, उसका विकल्प करके लोप हो आर्द्धधातुक विषय में।

समिधाञ्चकार, यहां प्रथम अकारलोप (१७२) से होकर उसको स्थानिवत् मानकर लघूपध गुण नहीं होता; समिध्याञ्चकार। समिधिता; समिध्यिता इत्यादि ॥

(५६१) सूत्र में 'सुप्' ग्रहण इसलिये है कि वाक्य में क्यच् न हो। जैसे—महान्तं पुत्रमिच्छति और 'आत्म' ग्रहण इसलिये है कि राज्ञः पुत्रमिच्छति, यहां क्यच् न हो ॥

५६७–वा०–क्यचि मान्ताऽव्ययप्रतिषेधः ॥ ३ । १ । ८ ॥

मकारान्त और अव्यय शब्दों से क्यच् प्रत्यय न हो ॥

इदमिच्छति । किमिच्छति । उच्चैरिच्छति । नीचैरिच्छति । स्वरिच्छति इत्यादि ॥

५६८–अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्द्धेषु ॥ ७ । ४ । ३४ ॥

बुभुक्षा, पिपासा, अभिलाषा इन अर्थों में अशनाय, उदन्य और धनाय, ये यथासंख्य करके तीनों निपातन हैं ।

अशनाय—यहां 'अशन' शब्द को आत्व क्यच् प्रत्यय के परे निपातन है । आत्मनोऽशनमिच्छति = अशनायति । बुभुक्षा से अन्यत्र—आत्मनोऽशनं संघातमिच्छति = अशनीयति ।

उदन्य—यहां 'उदक' शब्द को उदन् आदेश निपातन है । उदकमिच्छति = उदन्यति । पीने की इच्छा से अन्यत्र—उदयकीयति । धनाय—यहां 'धन' शब्द को आकारादेश निपातन है । धनमिच्छति = धनायति । अभिलाषा से अन्यत्र—धनीयति ॥

५६९–न छन्दस्यपुत्रस्य ॥ ७ । ४ । ३५ ॥

वेदविषय में, क्यच् परे हो तो पुत्रभिन्न अवर्णान्त अङ्ग को ईत्व न हो ।

मित्रयति । 'पुत्र' शब्द के ग्रहण से यहां न हुआ—'पुत्रीयन्तः सुदानवः' ।

अत्यल्पमिदमुच्यते अपुत्रस्येति, अपुत्रादीनामिति वक्तव्यम्, इहापि यथा स्यात्—'जनीयन्तोऽन्वग्रवः' ॥ [महा० ७ । ४ । ३५]

५७०–क्याच्छन्दसि ॥ ३ । २ । १७० ॥

वेद में, क्य प्रत्ययान्त धातुओं से तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारि, इन अर्थों में उ प्रत्यय हो ।

मित्रयुः । संस्वेदयुः । 'देवाञ्जिगाति सुम्नयुः' ॥

५७१–दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यतिरिषण्यति ।।७।४।३६।।

वेद में, क्यच् प्रत्ययान्त दुरस्यु, द्रविणस्यु, वृषण्यति, रिषण्यति ये शब्द निपातन किये हैं।

दुरस्यु—यहां दुष्ट शब्द को दुरस् आदेश निपातन है। 'अवियोना दुरस्युः'। 'दुष्टीयति' यह लोक में होता है। द्रविण शब्द को द्रविणस् भाव निपातन है—'द्रविणस्युर्विपन्यया'। 'द्रविणीयति' यह लोक में होता है। वृष शब्द को वृषण निपातन है—वृषण्यति। लोक में—वृषीयति। रिष्ट शब्द को रिषणभाव निपातन है—रिषण्यति। लोक में—रिष्टीयति ।।

५७२–अश्वाघस्यात् ।। ७ । ४ । ३७ ।।

वेदविषय में, क्यच् परे हो तो अश्व और अघ अङ्ग को आकारादेश हो।

'अश्वायन्तो मघवन्'। 'मा त्वा वृका अघायवो विदन्' लोक में—अश्वीयति। अघीयति। यह अश्व और अघ अङ्ग का आत्वविधान ज्ञापक है कि इस प्रकरण में (१६०) इस से दीर्घ नहीं होता ।।

५७३–देवसुम्नयोर्यजुषि काठके ।। ७ । ४ । ३८ ।।

यजुर्वेद की काठक शाखा में, देव और सुम्न अङ्ग को आकारादेश हो, क्यच् परे हो तो।

'देवायन्तो यजमानाय'। 'सुम्नायन्तो हवामहे'। यजुर्ग्रहण से—'देवान् जिगाय सुम्नयुः' यहां नहीं होता। काठकग्रहण से—सुम्नयुरिदमासीत् ।।

५७४–कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः ।। ७ । ४ । ३९ ।।

वेदविषय में, क्यच् परे हो तो कवि, अध्वर और पृतना अङ्ग का लोप हो।

'कव्यन्तः सुमनसः'। 'अध्वर्यन्तः'। 'पृतन्यन्तस्तिष्ठन्ति' ।।

५७५—अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि ॥ ७ । १ । ५१ ॥

क्यच् परे हो तो अश्व, क्षीर, वृष, लवण इन अङ्गों को आत्मप्रीति अर्थ में असुक् आगम हो ।

अश्वस्यति बडवा । क्षीरस्यति माणवक: । आत्मनो वृषमिच्छति=वृषस्यति गौ: । लवणमिच्छति=लवणस्यत्युष्ट्र: । आत्मप्रीति अर्थ से अन्यत्र—अश्वीयति । क्षीरीयति । वृषीयति । लवणीयति इत्यादि में नहीं होता ॥

५७६—वा०—अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् ॥ ७ । १ । ५१ ॥

(अश्वक्षीर०) सूत्र में जो असुक् कहा है, वह अश्व और वृष शब्दों से मैथुन की इच्छा में हो ।

उदाहरण पूर्वोक्त जानो ॥

५७७—वा०—क्षीरलवणयोर्लालसायाम् ॥ ७ । १ । ५१ ॥

क्षीर और लवण शब्द से लालसा—अत्यन्त भोजन की इच्छा में असुक् होता है ॥

यहां भी उदाहरण पूर्वोक्त जानो ॥

५७८—वा०—अपर आह—सर्वप्रातिपदिकेभ्यो लालसायामिति वक्तव्यम् ॥ ७ । १ । ५१ ॥

किन्हीं लोगों के मत में, क्यच् परे हो तो सब प्रातिपदिकों को लालसा में असुक् हो ।

आत्मनो दधीच्छति=दध्यस्यति । मध्वस्यति इत्यादि ।

५७९—वा०—अपर आह—सुग्वक्तव्य: ॥ ७ । १ । ५१ ॥

कोई आचार्य कहते हैं कि क्यच् के परे सब प्रातिपदिकों को लालसा में सुक् का आगम हो ।

दधिस्यति । मधुस्यति ॥

५८०—काम्यच्च ॥ ३ । १ । ९ ॥

सुबन्त कर्म्म से, आत्मा की इच्छा में, काम्यच् प्रत्यय होवे।

आत्मनः पुत्रमिच्छति=पुत्रकाम्यति। वस्त्रकाम्यति।

यह सूत्र (५८१) सूत्र से पृथक् इसलिये किया है कि इससे अगले सूत्रों में क्यच् की अनुवृत्ति जावे, काम्यच् की नहीं। यशस्काम्यति। सर्पिष्काम्यति।

और काम्यच् प्रत्यय मान्त तथा अव्ययों से भी होता है—इदङ्काम्यति। किङ्काम्यति। स्वःकाम्यति। उच्चैःकाम्यति॥

५८१—उपमानादाचारे ॥ ३ । १ । १० ॥

आचार अर्थ में, उपमानवाची सुबन्त कर्म से, विकल्प करके क्यच् प्रत्यय हो।

आचाररूप क्रिया प्रत्यय का अर्थ होने से उसी की अपेक्षा से उपमान को कर्मत्व बनता है। पुत्रमिवाचरति=पुत्रीयति शिष्यम्। मित्रमिवाचरति=मित्रीयति शत्रुम् इत्यादि॥

५८२—वा०—अधिकरणाच्च ॥ ३ । १ । १० ॥

अधिकरणवाची प्रातिपदिक से भी, आचार अर्थ में, क्यच् प्रत्यय होवे।

कुटयामिवाचरति=कुटीयति प्रासादे। प्रासादीयति कुटयाम्। पर्यङ्कीयति मञ्चके॥

५८३—कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥ ३ । १ । ११ ॥

आचार अर्थ में, उपमानवाची कर्त्ता सुबन्त से, विकल्प करके क्यङ् प्रत्यय और सकार का लोप हो।

जो सकारान्त शब्द हैं, उनके लिये सकार का लोप कहा है।

५८४—वा०—सलोपो वा ॥ ३ । १ । ११ ॥

सकारान्त शब्दों के सकार का लोप विकल्प करके होवे।

५८५–वा०–ओजोऽप्सरसोर्नित्यम् ॥ ३ । १ । ११ ॥

ओजस् और अप्सरस् शब्द के सकार का लोप नित्य हो ।

श्येन इवाचरति = श्येनायते काकः । यहां सर्वत्र क्यङ् के ङित्व से आत्मनेपद होता है । पण्डित इवाचरति = पण्डितायते मूढः । राजेवाचरति = राजायते । पय इवाचरति = पयायते पयस्यते वा तक्रम्, (५८४) से सलोप ।

यशायते; यशस्यते । विद्वायते; विद्वस्यते । त्वद्यते । मद्यते । ओज इवाचरति = ओजायते । अप्सरायते (५८५) । हंसायते । सारसायते इत्यादि में अन्त्य सकार के न होने से सलोप नहीं होता ॥

५८६–वा०–आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब् वा ॥ ३ । १ । १ ॥

अवगल्भ, क्लीब और होड शब्दों से आचार अर्थ में विकल्प करके क्विप् प्रत्यय होवे, पक्ष में क्यङ् होता है ।

क्विप् का सब लोप होकर—अवगल्भते; अवगल्भायते । विक्लीबते; विक्लीबायते । विहोडते; विहोडायते । अवगल्भाञ्चक्रे । अवगल्भिष्यते इत्यादि ।

इन शब्दों में क्विबन्तों से आत्मनेपद प्राप्त नहीं, इसलिये अवगल्भादि शब्दों को भाष्यकार ने अनुदात्तेत् माना है ॥

५८७–वा०–अपर आह—सर्वप्रातिपदिकेभ्य आचारे क्विब् वा वक्तव्यः ॥ ३ । १ । १३ ॥

किन्हीं के मत में, सब प्रातिपदिकों से आचार अर्थ में क्विप् होता है ।

अश्व इवाचरति = अश्वति । गर्दभति । अश्वायते । गर्दभायते । अ इवाचरति = अति । अतः । अन्ति । लिट् में—औ । अतुः । उः । मालेवाचरति = मालाति । मालाञ्चकार । अमालात् । अमालासीत् । कविरिवाचरति = कवयति । कवीयात् । अकवयीत ।

विरिवाचरति = वयति । विवाय । विव्यतुः । अवयीत् । श्रीरिवाचरति = श्रयति । शिश्राय । शिश्रियतुः । शिश्रियुः । श्रीयात् । पितेवाचरति = पितरति । पित्रियात्, (२३९) से रिङ् आदेश । भूरिवाचरति = भवति । बुभाव । अभावीत् । द्रुरिवाचरति = द्रवति । अद्रावीत् ॥

५८८–अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ॥६।४।१५॥

क्विप् और झलादि कित् ङित् परे हों तो अनुनासिकान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो ।

इदमिवाचरति = इदामति । राजेवाचरति = राजानति । पन्था इवाचरति = पथीनति । ऋभुक्षीणति । द्यौरिवाचरति = द्यवति, यहां वकार को ऊठ्, यणादेश और शबाश्रय गुण होता है ॥

५८९–क्यङ्मानिनोश्च ॥ ६ । ३ । ३६ ॥

क्यङ् प्रत्यय और मानिन् शब्द परे हो तो ऊङ् रहित भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्द को पुंवद्भाव होवे ।

एनी इवाचरति = एतायते । श्येनी इवाचरति = श्येतायते, यहां स्त्रीप्रत्यय के निमित्त से हुए तकार को नकार आदि कार्य भी निवृत्त हो जाते हैं । कुमारीवाचरति = कुमारायते । हरिणीवाचरति = हरिणायते । गुर्वीवाचरति = गुरूयते । पट्वीमृद्व्याविवाचरति = पट्वीमृद्वयते ॥

५९०–न कोपधायाः ॥ ६ । ३ । ३७ ॥

ककारोपध स्त्री को पुंवद्भाव न हो, क्यङ् और मानिन् शब्द परे हों तो ।

पाचिका इवाचरति = पाचिकायते । मद्रिकायते इत्यादि ॥

५९१–भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ॥३ । १ । १२ ॥

भू धातु के अर्थ में, अभूततद्भावविषयक भृशादि शब्दों से क्यङ् प्रत्यय होवे और भृशादिकों में जो हलन्त हैं उनके अन्त्य हल् का लोप हो ।

अभृशो भृशो भवति=भृशायते । इस सूत्र में च्विप्रत्ययान्त के निषेध से अभूततद्भाव समझा जाता है । अभूततद्भाव ग्रहण से—क्व दिवा भृशा भवन्ति, यहां क्यङ् नहीं होता ।

सुमनस्—सुमनायते, सकारलोप । सुमनायाञ्चक्रे । सुमनायिता । सुमनायिष्यते । सुमनायिषतै; सुमनायिषातै । सुमनायताम् । स्वमनायत, यहां मनस् शब्दमात्र से क्यङ् प्रत्यय है, इससे मनस् के पूर्व अट् होता है क्योंकि चुरादिगणपठित **'संग्राम युद्धे'** * यह नियमार्थ है कि सोपसर्ग प्रातिपदिक से जो क्यजादि प्रत्यय हों तो संग्राम ही से हों, औरों से न हों ॥

५९२–लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ ३ । १ । १३ ॥

भू धातु के अर्थ में अभूततद्भावविषयक लोहितादि और डाच्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से क्यष् प्रत्यय हो ॥

५९३–वा क्यषः ॥ १ । ३ । ९० ॥

क्यष्प्रत्ययान्त धातु से परस्मैपद विकल्प करके हो ।

अलोहितो लोहितो भवति=लोहितायते; लोहितायति । अपटपटा पटपटा भवति=पटपटायति; पटपटायते ॥

५९४–वा० -लोहितडाज्भ्यः क्यष्वचनं भृशादिष्वितराणि ॥ ३ । १ । १३ ॥

(५९२) सूत्र से जो क्यष् प्रत्यय कहा है, वह लोहित और डाच् प्रत्ययान्तों से ही कहना चाहिये, किन्तु लोहितादिगण के नील आदि शब्द भृशादिकों में पढ़ने चाहियें ।

---

* "अवश्यं संग्रामयतेः सोपसर्गादुत्पत्तिर्वक्तव्या । असंग्रामयत शूर इत्येवमर्थम् । तन्नियमार्थं भविष्यति, संग्रामयतेरेव सोपसर्गान्नान्यस्मात् सोपसर्गादिति" ॥ महाभाष्ये ३ । १ । २२ ॥

अनीलो नीलो भवति = नीलायते पटः, यहां क्यषन्त से जो उभयपद होता है, वह न हुआ। अलोहिनी लोहिनी भवति = लोहिनीयति; लोहिनीयते, यहां 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' इस परिभाषा से लोहिनी शब्द का भी ग्रहण होता है।

५९५–कष्टाय क्रमणे ।। ३ । १ । १४ ।।

चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्रमण अर्थात् उत्साह अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो।

कषाय क्रमते = कष्टायते ।।

५९६--वा०–सत्रकष्टकक्षकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायाम् ।। ३ । १ । १४ ।।

कण्वचिकीर्षा अर्थात् पाप करने की इच्छा में सत्र, कष्ट, कक्ष, कृच्छ्र और गहन शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो।

कण्वं चिकीर्षति—सत्रायते। कष्टायते। कक्षायते। कृच्छ्रायते। गहनायते। इनमें स्वपदविग्रह नहीं होता है। कण्वचिकीर्षा से अन्यत्र—कष्टं क्रामति ।।

५९७--कर्म्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः ।। ३ । १ । १५ ।।

वर्त्ति और चर धातु के अर्थ में यथाक्रम से जो रोमन्थ और तप कर्म्म, उनसे क्यङ् प्रत्यय हो। रोंछाना रोमन्थ (जुगाली करना) कहाता है।

५९८--वा० हनुचलन इति वक्तव्यम् ।। ३ । १ । १५ ।।

ठोड़ी चलाने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय कहना चाहिये।

रोमन्थं वर्त्तयति = रोमन्थायते।

५९९--वा०--तपसः परस्मैपदं च ।। ३ । १ । १५ ।।

क्यङन्त तपःशब्द से परस्मैपद भी हो जावे।

तपश्चरति = तपस्यति ।।

६००--वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ।। ३ । १ । १६ ।।

उगलने अर्थ में वाष्प और ऊष्म कर्म्मवाची शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो।

वाष्पमुद्वमति = वाष्पायते । ऊष्मायते ।।

६०१--वा०--फेनाच्च ।। ३ । १ । १६ ।।

फेन शब्द से भी उगलने अर्थ में क्यङ् हो ।

फेनमुद्वमति = फेनायते ।।

६०२--शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ।। ३ । १ । १७ ।।

करने अर्थ में शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ प्रातिपदिक से क्यङ् प्रत्यय हो ।

शब्दं करोति शब्दायते । वैरायते । कलहायते । अभ्रायते । कण्वायते । सेघायमे ।।

६०३--वा०--सुदिनदुर्दिनाभ्यां च ।। ३ । १ । १७ ।।

सुदिन और दुर्दिन शब्द से करने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो ।

सुदिनं करोति = सुदिनायते । दुर्दिनं करीति = दुर्दिनायते ।।

६०४--वा०--नीहाराच्च ।। ३ । १ । १७ ।।

नीहार शब्द से भी करने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो ।

नीहारं करोति = नीहारायते ।।

६०५--वा०--अटाट्टाशीकाकोटापोटासोटाकष्टाप्रुष्टाप्लुष्टाग्रहणम् ।। ३ । १ । १७ ।।

करने अर्थ में अटा, अट्टा, शीका, कोटा, पोटा, सोटा, कष्टा, प्रुष्टा और प्लुष्टा शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो ।

अटा करोति = अटायते । अट्टायते । शीकायते । कोटायते । पोटायते । सोटायते । कष्टायते । प्रुष्टायते । प्लुष्टायते ।।

६०६–सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ॥ ३ । १ । १८ ॥

वेदना अर्थ में ज्ञाता के सम्बन्धी सुख आदि कर्मवाची प्रातिपदिकों से, क्यङ् प्रत्यय हो।

सुखं वेदयते = सुखायते। दुःखायते। करुणायते। कृपणायते इत्यादि।

इस सूत्र में 'कर्तृ' ग्रहण इसलिये है कि—सुखं वेदयति प्रसाधको देवदत्तस्य, यहां सुख शब्द से क्यङ् न हो॥

६०७–नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ॥ ३ । १ । १९ ॥

नमस्, वरिवस् और चित्रङ् प्रातिपदिकों से, सत्कार करने आदि अर्थों में क्यच् प्रत्यय हो।

'नमस' : पूजायाम्, वरिवसः परिचर्यायाम्, चित्रङ आश्चर्ये—नमः करोति = नमस्यति गुरुम्। वरिवः करोति = वरिवस्यति पितरम्। चित्रं करोति = चित्रीयते, चित्रङ् शब्द में ङित् अनुबन्ध आत्मनेपद होने के लिये है।

६०८–पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ॥ ३ । १ । २० ॥

करणविशेष में पुच्छ, भाण्ड और चीवर प्रातिपदिक से णिङ् प्रत्यय हो।

'पुच्छादुदसने व्यवसने पर्य्यसने च'—पुच्छमुदस्यति उत्क्षिपति = उत्पुच्छयते। पुच्छं व्यस्यति विविधं विरुद्धं वा क्षिपति = विपुच्छयते। पुच्छं पर्य्यस्यति परितः क्षिपति = परिपुच्छयते।

'भाण्डात् समाचयने'—भाण्डानि समाचिनोति = संभाण्डयते, राशीकरोतीत्यर्थः।

'चीवरादर्जने परिधाने च'—चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वा = संचीवरयते भिक्षुः॥

६०९–मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ॥ ३ । १ । २१ ॥

करण अर्थ में मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत और तूस्त से णिच् प्रत्यय हो।

मुण्डं करोति = मुण्डयति । मिश्रं करोति = मिश्रयति । श्लक्ष्णयति । लवणयति । व्रतयति । वस्त्रयति । **'हलिकल्योरदन्तनिपातनं सन्वद्भावप्रतिषेधार्थम्' (म०भा०)**—हलिं करोति = हलयति । कलयति । अजहलत् । अचकलत्; कृतयति । वितूस्तयति ※ केशान्, विशदीकरोति ॥

(सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वच्वर्मवर्णचूर्ण० ॥३।१।२५) यह सूत्र पीछे (४५६) संख्या में लिख चुके हैं, इसका शेष विवरण लिखने के लिये यहां लिखा है—

६१०--वा०--णिविधावर्थवेदसत्यानामापुक् च ॥ ३।१।२५॥

णिच् विधि में अर्थ, वेद और सत्य शब्द को आपुक् आगम हो ।
अर्थमाचष्टे = अर्थापयति । वेदापयति । सत्यं करोति आचष्टे वा = सत्यापयति ।

पाशं विमुञ्चति = विपाशयति । रूपं पश्यति = रूपयति । वीणयोपगायति = उपवीणयति । तूलेनानुकुष्णाति = अनुतूलयति । श्लोकैरुपस्तौति = उपश्लोकयति । सेनया अभियाति = अभिषेणयति, (+उपसर्गात्सुनोति० ॥ ८ । ३ । ६५) इस सूत्र से षत्व होता है । अभ्यषेणयत् (+प्राक्सिता० ॥ ८।३।६३) इस सूत्र से षत्व । अभिषेणयितुमिच्छति = अभिषिषेणयिषति, (+स्थादिष्वभ्या० ॥ ८ । ३ । ६४) इस सूत्र से षत्व ।

लोमान्यनुमार्ष्टि = अनुलोमयति । त्वचं गृह्णाति = त्वचयति । वर्म्मणा संनह्यति = संवर्म्मयति । वर्णं गृह्णाति = वर्णयति । चूर्णैरवध्वंसयति = अनुचूर्णयति ॥

※ तूस्ताः जटीभूताः केशाः, तूस्तं पापं वा ॥

+ इन सूत्रों को षत्वप्रकरण में लिखेंगे ॥

६११--वा०--प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच।। ३।१।२६।

प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिच् प्रत्यय हो और वह बहुल करके इष्ठन् प्रत्यय के तुल्य हो।

पृथुमाचष्टे = प्रथयति, (स्त्रैणताद्धित—८९६) से ऋ को र आदेश। म्रदयति। भ्रशयति। क्रशयति। ऊढ़िमाख्यत् = औजिढत्, यहां ढत्वादिकों के असिद्ध होने से हुति शब्द को द्वित्व होकर अभ्यास के हकार को चुत्व होता है।

अथवा (**पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने**) इस वचन से ढत्वादि सिद्ध मानकर ढि शब्द को द्वित्व होता है—औडिढत्। ऊढमाख्यत् = औजढत्; औड्ढत्। (ओः पुयण्०—४७२) यह यहां नहीं प्रवृत होता है क्योंकि इस सूत्र में पवर्ग और प्रत्याहार के वर्णों का ग्रहण है।

स्वमाचष्टे = स्वापयति, यहां (स्त्रैणताद्धित—८९९) से प्रकृतिभाव, (६०) से वृद्धि और (४६३) से पुक् होजाता है। त्वामाऽऽचष्टे = त्वापयति, मामाचष्टे = मापयति, यहां पररूप से पूर्व ही नित्यत्व मानकर (स्त्रैणताद्धित—८८९) से टिलोप होता है। युवामावां वाचष्टे = युष्मयति, अस्मयति।

उदञ्चमाचष्टे = उदीचयति। उदैचिचत्। प्रत्यञ्चमाचष्टे = प्रतीचयति। प्रत्यचिचत्; (इकोऽसवर्णे शा० ॥ ६। १। १२७) इससे प्रकृतिभावपक्ष में प्रतिअचिचंत्। सम्यञ्चमाचष्टे = समीचयति। सम्यचिचत्। समिअचिचत् भुवमाचष्टे = भावयति। अबीभवत्। श्रुवमाचष्टे = श्रावयति। अशुश्रवत्। श्रियमाचष्टे = श्राययति। अशिश्रियत्। गामाख्यत् = अजूगवत्। रायमाख्यत् = अरीरयत्। स्वश्राचष्टे = स्वयति। असस्वत्; असिस्वत्। बहून् भावयति = बहयति। श्रीमतीं श्रीमन्तं वा स्तौति = श्राययति। अशिश्रयत्।

पयस्विनीमाचष्टे = पयसयति, यहां टिलोप नहीं होता क्योंकि टिलोपापवाद (विन्मतोर्लुक् ॥ स्त्रैणताद्धित—७८८) इससे विन् प्रत्यय का लुक् होजाता है। स्थूलमाचष्टे = स्थवयति। दूरं गच्छति = दवयति, इत्यादि प्रयोगों

में जो जो कार्य्य (स्त्रैणताद्धित—८९१) सूत्र में जिन जिन शब्दों को कहे हैं वे वे उन उन शब्दों को होते हैं।

युवानं—युवयति; कनयति वा, (स्त्रैणताद्धित—७८७) से कन् आदेश विकल्प से होता है। अन्तिकं प्राप्नोति = नेदयति। बाढं—साधयति प्रशस्यं—प्रशस्ययति, यहां श्र, ज्य ये आदेश न होंगे क्योंकि नामधातुओं में उपसर्ग पृथक् माने हैं और पृथक् होने से शस्य शब्द प्रकृति रह जायगा, शस्य को आदेश विधान नहीं है।

वृद्धं सेवयते = ज्यापयति। प्रियमाचष्टे = प्रापयति। स्थिर—स्थापयति। स्फिर—स्फापयति। उरु—वरयति। बहुलं—बंहयति गुरुं—गरयति। वृद्धं—वर्षयति। तृप्रं—त्रपयति। दीर्घं द्राघयति। वृन्दारकं—वृन्दयति॥

६१२--वा०--तत्करोतीत्युपसंख्यानं सूत्रयत्याद्यर्थम्॥

३। १। २६॥

सूत्रयति इत्यादि प्रयोगों के लिये द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से करने अर्थ में णिच् प्रत्यय कहना चाहिये।

सूत्रं करोति = सूत्रयति। व्याकरणस्य सूत्रं करोति = व्याकरणं सूत्रयति, यहां वाक्य में जो षष्ठी है उसके स्थान में प्रत्ययोत्पत्ति में द्वितीया हो जाती है क्योंकि जो वह सूत्र और व्याकरण शब्द का सम्बन्ध है उसकी प्रत्ययोत्पत्ति में निवृत्ति हो जाती है॥

६१३--वा०--आख्यानात् कृतस्तदाचष्टे कृल्लुक् प्रकृति-प्रत्ययापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकम्॥ ३। १। २६॥

द्वितीयासमर्थ आख्यान कृदन्त से कहने अर्थ में णिच् प्रत्यय हो, कृत् का लुक् प्रकृति का पूर्वरूप और प्रकृति के तुल्य कारक हो।

कंसवधमाचष्टे = कंसं घातयति, यहां अप् जो कृत् प्रत्यय है उसका लुक् वध का पूर्वरूप और कंस कारक प्रकृति के तुल्य होता है। बलिबन्धमाचष्टे = बलिं बन्धयति। राजागमनमाचष्टे = राजानमागमयति॥

६१४–वा०–दृश्यर्थायां च प्रवृत्तौ ॥ ३ । १ । २६ ॥

जिसमें देखना प्रयोजन है ऐसी जहां प्रवृत्ति हो, वहां आख्यान कृदन्त से णिच् और पूर्वोक्त समस्त कार्य्य हों।

मृगरमणमाचष्टे = मृगान् रमयति । दृश्यर्था प्रवृत्ति क्यों कही—ग्रामे मृगरमणमाचष्टे, यहां न हो ॥

६१५–वा०–आङ्लोपश्च कालात्यन्तसंयोगे मर्य्यादायाम् ॥ ३ । १ । २६ ॥

समय के अत्यन्तसंयोग अर्थ में मर्य्यादा प्राप्त हो तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से णिच्, पूर्वोक्त कार्य्य और आङ् का लोप हो।

आरात्रिविवासमाचष्टे = रात्रिं विवासयति । जबतक रात्रि व्यतीत होती है, तबतक किसी प्रसङ्ग को कहता है ॥

६१६–वा०–चित्रीकरणे प्राप्तौ ॥ ३ । १ ।२६ ॥

आश्चर्य्य करने अर्थ में प्राप्ति अर्थ हो, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से णिच् और पूर्वोक्त कार्य्य हों।

उज्जयिन्याः प्रस्थितो माहिष्मत्यां सूर्योद्गमनं संभावयते = सूर्यमुद्गमयति, कोई पुरुष उज्जयिनी नगरी से चला हुआ और माहिष्मती नगरी में सूर्य के उदय को प्राप्त होता है। यहां अति दूर देश पहुंचने से आश्चर्य का निश्चय होता है ॥

६१७–वा०–नक्षत्रयोगे ज्ञि ॥ ३ । १ । २६ ॥

नक्षत्र के योग में जानना अर्थ हो तो द्वितीयान्त प्रातिपदिक से णिच् प्रत्यय तथा पूर्वोक्त कार्य अर्थात् कृत्प्रत्यय का लुक्, प्रकृति का पूर्वरूप और प्रकृति के तुल्य कारक हो।

पुष्ययोगं जानाति = पुष्येण योजयति । मघाभिर्योजयति ॥

इति नामधातुप्रक्रिया समाप्ता ॥१५॥

---

(१६) अथ कण्ड्वादिप्रक्रिया ॥

६१८–कण्ड्वादिभ्यो यक् ॥ ३ । १ । २७ ॥

कण्ड्वादि धातुओं से यक् प्रत्यय नित्य हो ।

६१९--का०--धातुप्रकरणाद्धातुः कस्य चासंजनादपि ।
आह चायमिमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः ॥
महा० ३ । १ । २७ ॥

धातु के अधिकार होने और यक् प्रत्यय में ककार अनुबंध करने से मैं इन कण्ड्वादिकों को धातु मानता हूं तथा ये आचार्य्य इस कण्डू शब्द को दीर्घ पढ़ते, अर्थात् दीर्घ पढ़ने का मुख्य प्रयोजन यही है कि एक पक्ष में यह कण्डू शब्द धातु और दूसरे पक्ष में प्रातिपदिक हो, इससे इनको विकल्प करके धातु मानता हूं ।

प्रयोजन यह है कि "कण्डूञ्" आदि धातु और प्रातिपदिक दोनों हैं । जिस पक्ष में धातु माने जाते हैं, वहां (६१८) सूत्र से यक् होता है, अन्यत्र नहीं ।

१९८७ कण्डूञ् गात्रविघर्षणे = शरीर खुजाना—

ञकार अनुबन्ध से उभयपद होते हैं । कण्डूयति । कण्डूयते । कण्डूयाञ्चक्रे । कण्डूयाम्बभूव । कण्डूयामास । कण्डूयिता । कण्डूयिष्यति । कण्डूयिषति; कण्डूयिषाति । कण्डूयतु । अकण्डूयत् । कण्डूयेत् । कण्डूयात् । अकण्डूयीत् । अकण्डूयिष्यत् ॥

१९८८ मन्तु अपराधे—रोष इत्येके—मन्तूयति ॥

१९८९ वल्गु पूजामाधुर्य्ययोः = सत्कार और मीठापन—
वल्गूयति ।।

१९९० असु उपतापे = दुःख होना—असूयति ।
अस् असूञ् इत्येके—अस्यति । असूयति । असूयते ।।

१९९१-९२ लेट्, लोट् धौर्त्ये पूर्वभावे स्वप्ने च—दीप्तावित्येके = धूर्त्तपन, पिछलापन और सोना तथा प्रकाश—
लेट्यति । लोट्यति । लेटिता । लोटिता ।।

१९९३ लेला दीप्तौ—लेलायति ।।

१९९४—९६ इरस्, इरज्, इरञ् ईर्ष्यायाम्—
इरस्यति । इरज्यति । ईर्यति । ईर्यते, (१९७) से दीर्घ ।।

१९९७ उषस् प्रभातीभावे = प्रातःकाल का होना—उषस्यति ।।

१९९८ वेद धौर्त्ये स्वप्ने च—वेद्यति ।।

१९९९ मेधा आशुग्रहणे = तुरन्त लेना—मेधायति ।।

२००० कुशुभ क्षेपे = निन्दा—कुशुभ्यति ।।

२००१ मगध परिवेष्टने—नीचदास्य इत्यन्ये = लपेटना तथा नीच की सेवा करना—मगध्यति ।।

२००२-०३ तंतस्, पंपस् दुःखे—तन्तस्यति । पम्पस्यति ।।

२००४-०५ सुख, दुःख तत्क्रियायाम्—
सुख्यति । दुःख्यति, सुखं दुःखं चानुभवति ।।

२००६ सपर पूजायाम्—सपर्यति ।।

२००७ अरर आराकर्म्मणि = चाम काटना आदि—अरर्यति ।।

२००८ भिषज् चिकित्सायाम्—भिषज्यति ।।

२००९ भिषणज् उपसेवायाम्—भिषणज्यति ।।

२०१० इषुध शरधारणे = वाण धारण—इषुध्यति ।।

२०११-१२ चरण, वरण गतौ—चरण्यति । वरण्यति ।।

२०१३ चुरण चौर्ये—चुरण्यति ।।

२०१४ तुरण त्वरायाम् = शीघ्रता—तुरण्यति ॥
२०१५ भुरण धारणपोषणयोः—भुरण्यति ॥
२०१६ गद्गद वाक्स्खलने = गिड़गिड़ाकर बोलना—गद्गद्यति ।
२०१७—१९ ऐला, केला, खेला विलासे—एलायति । केलायति । खेलायति ॥
इला इत्यन्ये—इलायति ॥
२०२० लेखा स्खलने च—अदन्तोऽप्ययमित्यन्ये—लेख्यति ।
२०२१ लिट् अल्पकुत्सनयोः—लिटचति ॥
२०२२ लाट् जीवने—लाटचति ॥
२०२३ हृणीङ् रोषणे लज्जायां च—हृणीयते ॥
२०२४ महीङ् पूजायाम्—महीयते ॥
२०२५ रेखा श्लाघासादनयोः = आत्मप्रशंसा, स्थिति—रेखायति ॥
२०२६ दुवस् परितापपरिचरणयोः = कष्ट और सेवा—दुवस्यति ॥
२०२७ तिरस् अन्तर्द्धौ—तिरस्यति ॥
२०२८ अगद नीरोगत्वे—अगद्यति ॥
२०२९ उरस् बलार्थे—उरस्यति ॥
२०३० तरण गतौ—तरण्यति ॥
२०३१ पयस् प्रसृतौ—पयस्यति ॥
२०३२ संभूयस् प्रभूतभावे = समर्थ होना—संभूयस्यति ॥
२०३३–३४ अम्बर, संवर संभरणे—अम्बर्यति । संवर्यति ॥

आकृतिगणोऽयम्—यह कण्ड्वादि आकृतिगण अर्थात् इस गण में अर्थानुसार अन्य शब्द भी धातु माने जाते हैं ॥

इति कण्ड्वादिप्रक्रिया समाप्ता ॥१६॥

---

(१७) अथ प्रत्ययमालाप्रक्रिया ॥

६२०—का०—शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः ।
सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥
महा० ३ । १ । ७ ॥

शेषाधिकार के प्रत्यय से समानरूपवाला शेषाधिकारी प्रत्यय और मतुप् प्रत्यय के अर्थवाले से समान रूपवाला मतुवर्थ प्रत्यय इष्ट नहीं तथा इच्छा अर्थवाला सन् प्रत्यय जिसके अन्त में हो, उससे फिर इच्छार्थ सन् प्रत्यय इष्ट नहीं है ।

शैषिकात्—शालायां भवः = शालीयो घटः, शालीये घटे भवमुदकम्, यहां छ प्रत्यय फिर न हुआ और विरूप होजाता है, जैसे—अहिच्छत्रे भव = आहिच्छत्रः, आहिच्छत्रे भव = आहिच्छत्रीयो माणवकः ।

मतुवर्थीयात्—दण्डोऽस्यास्तीति = दण्डिकः, दण्डिकोऽस्यास्तीति, यहां फिर मतुवर्थ ठन् प्रत्यय नहीं होता और विरूप तो होता है, जैसे—दण्डिमती सेना ।

सन्नन्तात्—चिकीर्षितुमिच्छति; जिहीर्षितुमिच्छति, यहां फिर सन् नहीं होता । स्वार्थ सन्नन्त से तो इच्छार्थ सन् होता है । जैसे—जुगुप्सितुमिच्छति = जुगुप्सिषते । मीमांसिषते ॥

६२१—वा०—कण्ड्वादीनां च ॥ ६ । १ । ३ ॥

कण्ड्वादि शब्दों के तृतीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो ।

कण्डूयितुमिच्छति = कण्डूयियिषति । असूयियिषति ॥

६२२—वा०—वा नामधातूनां तृतीयस्य द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ ६ । १ । ३ ॥

नामधातुओं के तृतीय एकाच् अवयव को विकल्प करके द्वित्व हो ।

क्यजन्तात् सन्—आत्मनोऽश्वमिच्छति = अश्वीयति, अश्वीयितुमिच्छति = अश्वीयियिषति; अशिश्वीयिषति ॥

६२३--वा०--अपर आह—यथेष्टं वा नामधातूनाम् ॥

६ । १ । ३ ॥

पुत्रीयितुमिच्छति = पुपुत्रीयिषति; पुतित्रीयिषति; पुत्रीयियिषति ।

अजादि के आदि को छोड़कर औरों को यथेष्ट द्वित्व होता है। अध्यापनीयितुमिच्छति = अदिध्यापनीयिषति; अध्यापिपनीयिषति; अध्यापनिनीयिषति; अध्यापनीयियिषति ।

न, द, र, ये संयुक्त हों, तो इनमें जो अच् से परे हो उसको द्वित्व का निषेध है—आत्मन इन्द्रमिच्छति = इन्द्रीयति, इन्द्रीयितुमिच्छति = इन्द्रीद्रीयिषति; इन्द्रीयियिषति । प्रियमाचष्टे = प्रापयति, प्रापयितुमिच्छति = पिप्रापयिषति; प्रापिपयिषति; प्रापयियिषति ।

उरुमाचष्टे = वारयति, वारयितुमिच्छति = विवारयिषति; वारिरयिषति; वारयियिषति । बाढमाचष्टे = साधयति, साधयितुमिच्छति = सिसाधयिषति; सादिधयिषति; साधयियिषति । अतिशयेन पुनःपुनर्वा भवति = बोभूयते, बोभूयितुमिच्छति = बोभूयिषते, बोभूयिषमाचष्टे = बोभूयिषयति, बोभूयिषयितुमिच्छति = बोभूयिषयिषति ।

अन्तिकमाचष्टे = नेदयति, आत्मनो नेदयितुमिच्छति = नेदयीयति, नेदयीयितुमिच्छति = निनेदयीयिषति, निनेदयीयिषमाचष्टे = निनेदयीयिषयति । गोमन्तमाचष्टे = गवयति, आत्मनो गवयमिच्छति = गवयीयति, गवयीयितुमिच्छति = गविवयीयिषति । पाचकीयितुमिच्छति = पिपाचकीयिषति । आख्यातमाचष्टे = आख्यातयति, आख्यातयितुमिच्छति = आचिख्यातयिषति इत्यादि असंख्य प्रयोग प्रत्ययमाला में बन सकते हैं सो व्याकरण में पूर्ण प्रवेश होने के अधीन हैं ॥

इति प्रत्ययमालाप्रक्रिया समाप्ता ॥ १७ ॥

---

(१८) अथात्मनेपदप्रक्रिया ॥

—※—

अनुदात्त और ङित् धातुओं से आत्मनेपद (९५) सूत्र में कह चुके हैं—आस्ते । शेते । प्रवते । प्लवते इत्यादि ॥

६२४–भावकर्मणोः ॥ १ । ३ । १३ ॥

भाव और कर्म में विहित जो लकार, उसके स्थान में आत्मनेपद हो ।

भाव में—आस्यते भवता । शय्यते भवता । कर्म में—क्रियते कटः । ह्रियते भारः ॥

६२५–कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे ॥ १ । ३ । १४ ॥

परस्पर एक दूसरे का काम करे, इस अर्थ में वर्त्तमान धातु से कर्त्ता में आत्मनेपद हो ।

व्यतिलुनते । व्यतिपुनते । व्यतिस्ते, (३५२) । व्यतिषाते । व्यतिषते । व्यतिषे, (५४) इससे सलोप । व्यतिध्वे, यहां (१११) सूत्र से सलोप । व्यतिहे (११२) सूत्र से अस् के स को ह ।

कर्मव्यतिहार कहने से यहां न हुआ—स्वं स्वं क्षेत्रं लुनन्ति । कर्त्ता का ग्रहण अगले सूत्रों के लिये है ॥

६२६–न गतिहिंसार्थेभ्यः ॥ १ । ३ । १५ ॥

गत्यर्थक और हिंसार्थक धातुओं से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद न हो ।

गत्यर्थ—व्यतिगच्छन्ति । व्यतिसर्पन्ति । हिंसार्थ—व्यतिहिंसन्ति । व्यतिघ्नन्ति ।

६२७–वा०–प्रतिषेधे हसादीनामुपसंख्यानम् ।। १।३।१५।।

यहां आत्मनेपद के प्रतिषेध में हसादिकों का भी ग्रहण करना चाहिये ।

हस के सदृश शब्दक्रिया वाले धातु 'हसादि' कहाते हैं—व्यतिहसन्ति । व्यतिजल्पन्ति । व्यतिपठन्ति ।।

६२८–वा०–हरिवह्योरप्रतिषेधः ।। १ । ३ । १५ ।।

हृ और वह धातु से कर्म्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद होने का प्रतिषेध न हो ।

संप्रहरन्ते राजानः । संविवहन्ते गर्गाः ।

६२९–इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ।। १ । ३ । १६ ।।

इतरेतर और अन्योन्य उपपद हों तो कर्मव्यतिहार अर्थ में धातु से आत्मनेपद न हो ।

इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति । अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्ति ।

६३०–वा०–परस्परोपपदाच्च ।। ३ । १ । १६ ।।

परस्पर उपपद हो तो कर्मव्यतिहार अर्थ में धातु से आत्मनेपद न हो ।

परस्परस्य व्यतिलुनन्ति । परस्परस्य व्यतिपुनन्ति ।।

६३१–नेर्विशः ।। १ । ३ । १७ ।।

निपूर्वक विश धातु से आत्मनेपद हो ।

निविशते । 'नि' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रविशति ।

"अर्थवद् ह्यागमस्तद्गुणीभूतोऽर्थवद्ग्रहणेन गृह्यते" इससे अट् के व्यवधान में भी होता है—न्यविशत । **"अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य"** इससे यहां न हुआ—मधुनि विशन्ति भ्रमराः ।।

६३२–परिव्यवेभ्यः क्रियः ।। १ । ३ । १८ ।।

परि, वि और अव उपसर्गों से परे डुक्रीञ् धातु से आत्मनेपद हो ।

परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते। यहां न हुआ—बहुविक्रीणाति वनम्॥

६३३–विपराभ्यां जेः॥ १। ३। १९॥

वि और परा उपसर्ग से परे जि धातु से आत्मनेपद हो।

विजयते। पराजयते। 'उपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—बहुविजयति वनम्। पराजयति सेना॥

६३४–आङो दोऽनास्यविहरणे॥ १। ३। २०॥

मुख के फैलाने अर्थ से अन्यत्र अर्थ में, आङ् पूर्वक डुदाञ् धातु से आत्मनेपद हो।

विद्यामादत्ते। अनास्यविहरण कहने से यहां न हुआ—आस्यं व्याददाति। आस्यविहरण के समान जो और क्रियाएँ हैं उनमें भी प्रतिषेध होता है, जैसे—विपादिकां व्याददाति। कूलं व्याददाति।

६३५–वा० स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्॥ १। ३। २०॥

'अनास्यविहरण' यहां स्वाङ्गकर्म वाले दा धातु से आत्मनेपद प्रतिषेध कहना चाहिये।

इससे यहां प्रतिषेध न हुआ—व्याददते पिपीलिका पतङ्गस्य मुखम्॥

६३६–क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च॥ १। ३। २१॥

अनु, सम्, परि और आङ् उपसर्गों से परे जो क्रीड धातु, उससे आत्मनेपद हो।

अनुक्रीडते। संक्रीडते। परिक्रीडते। आक्रीडते। उपसर्ग नियम से यहां नहीं होता—अनुक्रीडति माणवकम्। माणवकेन सह क्रीडतीत्यर्थः, यहां (तृतीयार्थे॥ १। ४। ८५) इससे अनु की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा है किन्तु उपसर्गसंज्ञा नहीं।

'समोऽकूजने'—सम् से परे क्रीड से अकूजन अर्थ में आत्मनेपद होना चाहिये अर्थात् यहां न हो—संक्रीडन्ति शकटानि.।।

६३७–वा०–आगमेः क्षमायाम् ॥ १ । ३ । २१ ॥

सहन अर्थ में, आङ् पूर्वक णिजन्त गम धातु से आत्मनेपद हो ।

माणवकमागमयस्व तावत् । सहनं कुरु [इत्यर्थः] ।।

६३८–वा०–शिक्षेर्जिज्ञासायाम् ॥ १ । ३ । २१ ॥

जानने की इच्छा में, शिक्ष धातु से आत्मनेपद हो ।

विद्यासु शिक्षते । धनुषि शिक्षते । विद्या वा धनुर्विषय के ज्ञान में समर्थ होने की इच्छा करता है ॥

६३९–वा०–किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेषु ॥ १ । ३ । २१ ॥

हर्ष = आनन्द, जीविका, कुलायकरण = गड्ढा करना, इन अर्थों में किरति धातु से आत्मनेपद हो ।

अपस्किरते वृषो हृष्टः । अपस्किरते कुक्कुटो भक्षार्थी । अपस्किरते श्वा आश्रयार्थी ।।

६४०–वा०–हरतेर्गतताच्छील्ये ॥ १ । ३ । २१ ॥

किसी प्रकार के स्वभाव होने अर्थ में, हृधातु से आत्मनेपद हो ।

पैतृकमश्वा अनुहरन्ते । मातृकं गावोऽनुहरन्ते । घोड़े पिता से पाये हुए प्रकार का अनुहार करते हैं तथा गौ मातृस्वभाव का अनुहार करती हैं ।।

६४१–वा०–आशिषि नाथः ॥ १ । ३ । २१ ॥.

आशीर्वाद अर्थ में ही नाथृ से आत्मनेंपद हो ।

सर्पिषो नाथते मधुनो वा ।।

६४२–वा०–आङि नुपृच्छ्योः ॥ १ । ३ । २१ ॥

आङ्पूर्वक नु और पृच्छ धातु से आत्मनेपद हो।

आनुते शृगालः। उत्कण्ठापूर्वकं शब्दं करोतीत्यर्थः। आपृच्छते गुरुम् ॥

६४३–वा०–शप उपलम्भने ॥ १ । ३ । २१ ॥

उलाहना देने में शप धातु से आत्मनेपद हो।

गुरवे शपते ॥

६४४–समवप्रविभ्यः स्थः ॥ १ । ३ । २२ ॥

सम्, अव, प्र और वि उपसर्गों से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो।

संतिष्ठते। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते ॥

६४५–वा०–आङः स्थः प्रतिज्ञाने ॥ १ । ३ । २२ ॥

प्रतिज्ञा अर्थ में आङ् से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो।

अस्ति सकारमातिष्ठते। आगमो गुणवृद्धी आतिष्ठते। विकारो गुणवृद्धी आतिष्ठते ॥

६४६–प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ॥ १ । ३ । २३ ॥

अपने अभिप्राय के प्रकाश और विवाद के निर्णय करनेवाले की आख्या में स्था धातु से आत्मनेपद हो।

भार्या तिष्ठते पत्ये। विदुषे तिष्ठते जिज्ञासुः। संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः ॥

६४७–उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ॥ १ । ३ । २४ ॥

अनूर्ध्व कर्म में वर्त्तमान उद् उपसर्ग से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो।
'उद ईहायाम्'—यहां उद् उपसर्ग से चेष्टा अर्थ में कहना चाहिये।

गेहे उत्तिष्ठते । घर की उन्नति के लिये यत्न करता है । अनूर्ध्वकर्म्म कहने से यहां न हुआ—आसनादुत्तिष्ठति । ईहाग्रहण से यहां न हुआ—उत्तिष्ठति सेना । उत्पद्यते जायत इत्यर्थः ॥

६४८–उपान्मन्त्रकरणे ॥ १ । ३ । २५ ॥

मन्त्रकरण में उप से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो ।

ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते । आग्नेय्याऽग्नीध्रमुपतिष्ठते । 'मन्त्रकरण' अर्थ के ग्रहण से यहां न हुआ—पतिमुपतिष्ठति यौवनेन ।

६४९–वा०–उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति-वक्तव्यम् ॥ १ । ३ । २५ ॥

देवपूजा, सङ्गतिकरण, मित्रकरण और मार्ग अर्थ में उप से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो ।

देवपूजायाम्—आदित्यमुपतिष्ठते; चन्द्रमसमुपतिष्ठते । सङ्गतिकरणे—रथिकानुपतिष्ठते; अश्वारोहानुपतिष्ठते । [मित्रकरणे—महामात्रानुपतिष्ठते।] सङ्गतिकरण समीप जाकर मित्रपन से वर्त्तमान और मित्रकरण तो समीप वा असमीप में केवल मित्रपन समझना चाहिये । पथिषु—अयं पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते; अयं पन्थाः साकेतमुपतिष्ठते ।

६५०–वा०–लिप्सायाम् ॥ १ । ३ । २५ ॥

लाभ की इच्छा अर्थ में स्था धातु से विकल्प से आत्मनेपद हो ।

भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठते [उपतिष्ठति वा] ।

६५१–अकर्मकाच्च ॥ १ । ३ । २६ ॥

उप पूर्वक अकर्म्मक अर्थात् अकर्म्मकक्रियावचन स्था धातु से आत्मनेपद हो ।

यावद्भुक्तमुपतिष्ठते । यावदोदनमुपतिष्ठते । भोजन भोजन में सन्निहित होता है । 'अकर्मक' ग्रहण से यहां न हुआ—राजानमुपतिष्ठति ॥

६५२–उद्विभ्यां तपः ।। १ । ३ । २७ ।।

उद् और वि उपसर्ग से परे अकर्मकक्रियावचन तप धातु से आत्मनेपद हो ।

उत्तपते । वितपते । प्रकाशित होता है । 'अकर्मक' ग्रहण से यहां न हुआ—उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः । वितपति पृष्ठं सविता ।।

६५३–वा०–स्वाङ्गकर्मकाच्च ।। १ । ३ । २७ ।।

उद् और वि से परे स्वाङ्गकर्मक तप धातु से आत्मनेपद हो ।

उत्तपते पाणिम् । वितपते पाणिम् । उत्तपते पृष्ठम् । वितपते पृष्ठम्

'स्वाङ्ग' यहां अपने ही अङ्ग का ग्रहण है अर्थात् 'स्वमङ्गं स्वाङ्गम्' किन्तु **'अद्रवं मूर्त्तिमत्०'** इस परिभाषा से जो उक्त है, वह नहीं लिया जाता है । इससे यहां नहीं हुआ—देवदत्तो यज्ञदत्तस्य पाणिमुत्तपति । उद्, वि ग्रहण से यहां न हुआ—निष्टपति ।।

६५४–आङो यमहनः ।। १ । ३ । २८ ।।

आङ् से परे अकर्मकक्रियावचन यम और हन् धातु से आत्मनेपद हो ।

आयच्छते । आयच्छेते । आयच्छन्ते । आहते, (२०२) से अनुनासिक लोप । आघ्नाते । आघ्नते । 'अकर्मक' ग्रहण से यहां न हुआ—आयच्छति रज्जुं कूपात् । आहन्ति वृषलं पादेन ।।

६५५–वा०–स्वाङ्गकर्मकाच्च ।। १ । ३ । २८ ।।

आङ् से परे स्वाङ्गकर्मक यम और हन् धातु से आत्मनेपद हो ।

आयच्छते पाणि । आहते उदरम् ।।

६५६–आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ।। २ । ४ । ४४ ।।

आत्मनेपद प्रत्यय परे हों तो लुङ् लकार में हन् धातु को वध आदेश विकल्प करके हो ।

आवधिष्ट । आवधिषाताम् । आवधिषत । जिस पक्ष में वध आदेश न हुआ, वहां—

६५७—हनः सिच् ॥ १ । २ । १४ ॥

हन् धातु से परे आत्मनेपद में झलादि सिच् कित्वत् हो ।

आहत । आहसाताम् । आहसत ।

६५८—यमो गन्धने ॥ १ । २ । १५ ॥

दूसरे के दोष को प्रकाश करने में यम धातु से परे जो झलादि सिच्, सो कित्वत् हो, आत्मनेपद में ।

शत्रुमुदायत । उदायसाताम् । उदायसत । 'गन्धन' ग्रहण से यहां न हुआ—उदायस्त पादम्, यहां (समुदाङ्भ्यः० ॥ १ । ३ । ७५) इस आगामी सूत्र से आत्मनेपद हुआ ॥

६५९—समो गम्यृच्छिभ्याम् ॥ १ । ३ । २९ ॥

सम् उपसर्ग से परे अकर्मक क्रियावचन गम और ऋच्छ धातु से आत्मनेपद हो ।

संगच्छते शास्त्रम् । समृच्छते वस्त्रम् । 'अकर्मक' ग्रहण से यहां न हुआ—संगच्छति ग्रामम् ।

६६०—वा गमः ॥ १ । २ । १३ ॥

गम धातु से परे आत्मनेपदविषयक झलादि लिङ्, सिच् कित्वत् हों ।

संगमीष्ट । संगंसीष्ट । समगत । समगंस्त ।

६६१—वा०—समो गमादिषु विदिपृच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम् ॥ १ । ३ । २९ ॥

सम् से परे गमादिकों में विद्, प्रच्छ, स्वृ इन धातुओं से आत्मनेपद कहना चाहिये ।

संवित्ते । संविदाते । संपृच्छते । संस्वरते ।

यहां अकर्मक की अनुवृत्ति (६५१) सूत्र से नहीं आती है ।

६६२—वेत्तेर्विभाषा ॥ ७ । १ । ७ ॥

'विद ज्ञाने' धातु से परे प्रत्ययादि झकार के स्थान में (१२३) से अत् और उसको रुट् आगम विकल्प करके हो, आत्मनेपद विषय में।

इस सूत्र में वेत्ति को रुडागम कहा है, इसी कारण पूर्व वार्त्तिक में विद् करके वेत्ति का ही ग्रहण है, अन्य विद् का नहीं। 'सम्+विद्+रुट्+अत्+अ'=संविद्रते। संविदते ॥

६६३—वा०—अर्त्तिश्रुदृशिभ्यश्च ॥ १ । ३ । २९ ॥

सम् से परे ऋ, श्रु और दृश धातु से आत्मनेपद हो।

मासमृत। मासमृषाताम्। मासमृषत *। संशृणुते। संपश्यते ॥

६६४—वा०—उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वा वचनम् ॥ १ । ३ । २९ ॥

उपसर्ग से परे जो अस् और ऊह धातु, उनसे विकल्प करके आत्मनेपद हो।

निरस्यति। निरस्यते। समूहति। समूहते ॥

६६५—उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः ॥ ७ । ४ । ३२ ॥

उपसर्ग से परे ऊह धातु को ह्रस्व हो, यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो। समुह्यादग्निम् ॥

---

*यहां कौमुदीकार वा काशिकाकार आदि ने ऋ धातु से आत्मनेपद-विषयक लुङ् लकार में च्लि के स्थान में अङ् (सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥ ३ । १ । ५६) सूत्र से करके—मासमरत, मासमरेताम्, मासमरन्त इत्यादि प्रयोग बनाये हैं। सो महाभाष्य से विरुद्ध हैं क्योंकि महाभाष्यकार के (शास इदङ् हलोः ॥ ६ । ४ । ३४) इस सूत्र के व्याख्यान से निश्चित होता है कि "सर्त्तिशास्त्य०" सूत्र में परस्मैपद की अनुवृत्ति है ॥

६६६–निसमुपविभ्यो ह्वः ॥ १ । ३ । ३० ॥

नि सम् उप और वि इनसे परे जो ह्व धातु, उससे आत्मनेपद हो। निह्वयते। संह्वयते। उपह्वयते। विह्वयते॥

६६७–स्पर्द्धायामाङः ॥ १ । ३ । ३१ ॥

स्पर्द्धा अर्थात् दूसरे के तिरस्कार करने की इच्छा में वर्त्तमान, आङ् उपसर्ग से परे जो ह्वा धातु, उससे आत्मनेपद हो।

मल्लो मल्लमाह्वयते। छात्रश्छात्रमाह्वयते। स्पर्द्धा से अन्यत्र— गामाह्वयति गोपालः॥

६६८–गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ॥ १ । ३ । ३२ ॥

गन्धन = चुगली, अवक्षेपण = धमकाना, सेवन = सेवा, साहसिक्य = हठ, प्रतियत्न = गुणाधान, प्रकथन, उपयोग = धर्मार्थ नियम इन अर्थों में वर्त्तमान कृञ् धातु से आत्मनेपद हो।

गन्धन—शत्रुमुत्कुरुते। अवक्षेपण—श्येनो वर्त्तिकामुदाकुरुते। सेवन— आचार्यमुपकुरुते शिष्यः; परदारान् प्रकुरुते। प्रतियत्न—एधोदकस्योपस्कुरुते; गुडस्योपस्कुरुते। प्रकथन—जनापवादान् प्रकुरुते। उपयोग—शतं प्रकुरुते; सहस्रं प्रकुरुते। धर्मार्थं विनियुङ्क्त इत्यर्थः। इन अर्थों से अन्यत्र— कटं करोति॥

६६९–अधेः प्रसहने ॥ १ । ३ । ३३ ॥

सहन वा तिरस्कार करने अर्थ में, अधि से परे कृञ् धातु से आत्मनेपद हो।

सहन—शीतमधि कुरुते। तिरस्कार—शत्रुमधिकुरुते। अन्यत्र— अर्थमधिकरोति॥

६७०—वेः शब्दकर्म्मणः ॥ १ । ३ । ३४॥

वि उपसर्ग से परे, शब्दकर्म्मवाले कृञ् धातु से आत्मनेपद हो।

यहां कर्म कारक का ग्रहण है— कोष्टा विकुरुते स्वरान्। ध्वाङ्क्षो विकुरुते स्वरान्। अन्यत्र—विकरोति पयः।

६७१—अकर्म्मकाच्च ॥ १ । ३ । ३५ ॥

वि उपसर्ग से परे, अकर्म्मक कृञ् धातु से आत्मनेपद हो।

विकुर्वते सैन्धवाः। शोभनं वल्गन्तीत्यर्थः॥

६७२—सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ॥ १ । ३ । ३६ ॥

सम्मानन = अच्छे प्रकार मान, उत्सञ्जन = उछालना, आचार्यकरण = आचार्यक्रिया, ज्ञान, भृति = वेतन, विगणन = ऋणादि का चुकाना, व्यय = धर्म्मादि कामों में खर्च करना, इन अर्थों में वर्त्तमान नी धातु से आत्मनेपद हो।

सम्मानन—मातरं सन्नयत्र। उत्सञ्जन—दण्डमुन्नयते। आचार्यकरण—माणवकमुपनयते। ज्ञान—तत्वं नयते। भृति—कर्मकरानुपनयते। भृतिदानेन समीपं नयत इत्यर्थः। विगणन—मद्राः करं विनयन्ते। राजा को उगाही आदि धन देते हैं। व्यय—शतं विनयते। धर्मार्थं शत मुद्रा खर्च करता है।

६७३—कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि ॥ १ । ३ । ३७ ॥

कर्त्ता में स्थित शरीरभिन्न कर्म उपपद हो तो नी धातु से आत्मनेपद होवे।

शरीर का एकदेश भी शरीर कहाता है। क्रोधं विनयते। मन्युं विनयते।

'कर्तृस्थ' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तो यज्ञदत्तस्य क्रोधं विनयति। 'अशरीर' ग्रहण इसलिये है कि—हस्तं विनयति। 'कर्म' ग्रहण इसलिये है कि—बुद्धया विनयति॥

६७४—वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः॥ १। ३। ३८॥

वृत्ति=अनिरोध, सर्ग=उत्साह, तायन=विस्तार, इन अर्थों में वर्त्तमान क्रम धातु से आत्मनेपद हो।

वृत्ति—मंत्रेष्वस्य क्रमते बुद्धिः। सर्ग—व्याकरणाध्ययनाय क्रमते। तायन—क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि। वृत्ति आदि से अन्यत्र—अपक्रामति बालः।

६७५—उपपराभ्याम्॥ १। ३। ३९॥

वृत्ति, सर्ग, तायन अर्थों में उप और परा उपसर्गपूर्वक क्रम धातु से परे ही आत्मनेपद हो, अन्य उपसर्गों से नहीं।

उपक्रमते। पराक्रमते। उप, परा के नियम से—संक्रामति, यहां आत्मनेपद नहीं होता। वत्ति आदि अर्थों से अन्यत्र—उपक्रामति। पराक्रामति।

६७६—आङ उद्गमने॥ १। ३। ४०॥

वा०—ज्योतिषामुद्गमने—आङ् से परे सूर्य आदि के ऊपर को उठने अर्थ में वर्त्तमान क्रम धातु से परे आत्मनेपद हो।

आक्रमते सूर्यः। आक्रमते चन्द्रमाः।

उद्गमन से अन्यत्र—आक्रमति माणवकः कुतुपम्। ज्योतियों के ग्रहण से अन्यत्र—आक्रमति धूमो हर्म्यतलात्, यहां आत्मनेपद न हो।

६७७—वेः पादविहरणे॥ १। ३। ४१॥

पादविहरण अर्थ में वर्त्तमान वि उपसर्गपूर्वक क्रम धातु से आत्मनेपद हो।

साधु विक्रमते वाजी। पादविहरण से अन्यत्र—विक्रामति सन्धिः।

६७८–प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ॥ १ । ३ । ४२ ॥

तुल्यार्थ प्र और उप से परे जो क्रम धातु है, उससे आत्मनेपद हो।

प्रक्रमते भोक्तुम्। उपक्रमते भोक्तुम्। प्र और उप दोनों शब्द आरम्भ अर्थ में तुल्यार्थ हैं।

'समर्थ' ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वेद्युः प्रक्रामति; अपरेद्युरुपक्रामति, यहां आत्मनेपद न हो।

६७९–अनुपसर्गाद्वा ॥ १ । ३ । ४३ ॥

उपसर्गरहित क्रम धातु से आत्मनेपद विकल्प करके हो।

क्रमते, क्रामति। अनुपसर्ग कहने से—'संक्रामति' में न हुआ॥

६८०–अपह्नवे ज्ञः ॥ १ । ३ । ४४ ॥

मिथ्या अर्थ में वर्त्तमान ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो।

शतमपजानीते। अपह्नव अर्थ से अन्यत्र—न त्वं किञ्चिदपि जानासि।

६८१–अकर्मकाच्च ॥ १ । ३ । ४५ ॥

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो।

सर्पिषो जानीते, यहां करण में षष्ठी है। अकर्मक से अन्यत्र—स्वरेण पुत्रं जानाति, यहां आत्मनेपद नहीं होता।

६८२–संप्रतिभ्यामनाध्याने ॥ १ । ३ । ४६ ॥

उत्कण्ठापूर्वक स्मरण से अन्य अर्थ में, सम् और प्रति उपसर्गपूर्वक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो।

शतं संजानीते। शतं प्रतिजानीते। 'स्मरण का निषेध' इसलिये है कि—मातुः संजानाति बालः।

६८३–भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमंत्रणेषु वदः ॥ १ । ३ । ४७ ॥

भासन = दीप्ति, उपसंभाषा = समीप से समझाना, ज्ञान = सम्यग्बोध, यत्न = उत्साह, विमति = नाना प्रकार की बुद्धि, उपमंत्रण = एकान्त में कहना, इन अर्थों में वद धातु से आत्मनेपद हो ।

भासन—शास्त्रे वदते । शास्त्र में विद्याप्रकाश को प्राप्त हुआ कह रहा है । उपसंभाषा –कर्मकरानुपवदते । ज्ञान—व्याकरणे वदते । यत्न—क्षेत्रे वदते । गेहे वदते । विमति—सदसि विवदन्ते विद्वांसः । उपमंत्रण—राजानमुपवदते मंत्री । भासन आदि अर्थों से अन्यत्र—यत् किंचिद्वदति ।

६८४–व्यक्तवाचां समुच्चारणे ॥ १ । ३ । ४८ ॥

स्पष्टवर्ण बोलनेवालों के एकसाथ उच्चारण करने अर्थ में वर्त्तमान वद धातु से आत्मनेपद हो ।

संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः । 'व्यक्तवाणीवालों का' ग्रहण इसलिए है कि—संप्रवदन्ति कुक्कुटाः । साथ उच्चारण करने से अन्यत्र—ब्राह्मणो वदति, यहां आत्मनेपद न हो ।

६८५–अनोरकर्मकात् ॥ १ । ३ । ४९ ॥

स्पष्टवर्ण बोलनेवालों के एकसाथ उच्चारण करने अर्थ में वर्त्तमान अनु उपसर्ग से परे वद धातु से आत्मनेपद हो ।

अनुवदते कठः कलापस्य—जैसे कलाप पढ़ता हुआ कहता है वैसे कठ भी । 'अकर्मक' ग्रहण से यहां न हुआ—उक्तमनुवदति । 'व्यक्तवाग्' ग्रहण से यहां न हुआ—अनुवदति वीणा, यहां सदृश अर्थमात्र है ।

६८६–विभाषा विप्रलापे ॥ १ । ३ । ५० ॥

विरुद्धकथन में व्यक्तवर्ण बोलनेवालों के एक साथ उच्चारण अर्थ में वद धातु से परे आत्मनेपद विकल्प करके हो ।

विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैयाकरणाः—एक दूसरे के पक्ष का खण्डन करने से विरुद्ध बोलते हैं। विप्रलाप से अन्यत्र—संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः। व्यक्तवाणी से अन्यत्र—विप्रवदन्ति शकुनयः। समुच्चारण से अन्यत्र—क्रमेण तार्किकस्तार्किकेण सह विप्रवदति॥

६८७—अवाद्ग्रः॥ १। ३। ५१॥

अव उपसर्ग से परे जो गॄ धातु उससे आत्मनेपद हो।

अवगिरते। अवगिरेते। अव से अन्यत्र—गिरति।

६८८—समः प्रतिज्ञाने॥ १। ३। ५२॥

प्रतिज्ञा अर्थ में वर्त्तमान सम्पूर्वक गॄ धातु से आत्मनेपद हो।

शतं संगिरते। नित्यं शब्दं संगिरते। प्रतिज्ञा अर्थ से अन्यत्र—संगिरति ग्रासम्, यहां आत्मनेपद नहीं॥

६८९—उदश्चरः सकर्मकात्॥ १। ३। ५३॥

उद्पूर्वक सकर्मक चर धातु से आत्मनेपद हो।

धर्ममुच्चरते। गुरुवचनमुच्चरते—धर्म और गुरु के वचन का उल्लङ्घन करता है। सकर्मक से अन्यत्र—वाष्पमुच्चरति कूपात्।

६९०—समस्तृतीयायुक्तात्॥ १। ३। ५४॥

तृतीया विभक्ति से युक्त सम्पूर्वक चर धातु से आत्मनेपद हो।

रथेन संचरते। अश्वेन संचरते। तृतीया से अन्यत्र—उभौ लोकौ संचरति, यहां न हो॥

६९१—दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे॥ १। ३। ५५॥

अशिष्टव्यवहार अर्थ में—तृतीया विभक्ति से युक्त सम्पूर्वक दाण् धातु से आत्मनेपद हो परन्तु वह तृतीया विभक्ति चतुर्थी के अर्थ में हो तो।

दास्या संप्रयच्छते। वृषल्या संप्रयच्छते—कामी पुरुष दासी और वेश्या को कुछ देता है। चतुर्थ्यर्थ से अन्यत्र—पाणिना संप्रयच्छति ॥

६६२—उपाद्यमः स्वकरणे ॥ १ । ३ । ५६ ॥

हाथ पकड़ कर जो स्वीकार करना है, उस अर्थ में वर्त्तमान यम धातु से आत्मनेपद हो।

भार्य्यामुपयच्छते। 'स्वकरण' ग्रहण करने से यहां न हुआ—पटमुपयच्छति। देवदत्तो यज्ञदत्तस्य भार्य्यामुपयच्छति ॥

६६३—ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ॥ १ । ३ । ५७ ॥

ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् इन धातुओं के सन् प्रत्यय से परे आत्मनेपद हो।

धर्मं जिज्ञासते। गुरुं शुश्रूषते। विस्मृतं सुस्मूर्षते। नृपं दिदृक्षते। 'सन्' ग्रहण से यहां न हुआ—जानाति। शृणोति। स्मरति। पश्यति।

६६४—नानोर्ज्ञः ॥ १ । ३ । ५८ ॥

अनु उपसर्ग से परे, ज्ञा धातु के सन् से आत्मनेपद न हो।

पुत्रमनुजिज्ञासति। 'अनु' ग्रहण से यहां न हुआ—धर्मं जिज्ञासते।

६६५—प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ॥ १ । ३ । ५९ ॥

प्रति और आङ् उपसर्ग से परे, सन्नन्त श्रु धातु से आत्मनेपद न हो।

प्रतिशुश्रूषति। आशुश्रूषति। उपसर्ग मानने से यहां न हुआ—देवदत्तं प्रति शुश्रूषते ॥

६६६—पूर्ववत्सनः ॥ १ । ३ । ६२ ॥

सन्नन्त से पूर्ववत् आत्मनेपद हो अर्थात् जिस निमित्त से प्रथम आत्मनेपद होता हो, उसी निमित्त से सन्नन्त में भी आत्मनेपद हो।

जैसे—अनुदात्त ङित् से आत्मनेपद होता है—आस्ते, शेते। वैसे ही उन्हीं निमित्तों से सन्नन्त में भी आत्मनेपद हो—आसिसिषते। शिशयिषते। निविशते। निविविक्षते। आक्रमते। आचिक्रंसते।

सन्नन्त 'शद' और 'मृङ्' धातु से आत्मनेपद न होगा। क्योंकि उनसे आत्मनेपद विधान में सन्नन्त से निषेध है※ ॥

६९७–प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु । १ । ३ । ६४ ॥

अयज्ञपात्र प्रयोग में प्र और उप से परे युज धातु से आत्मनेपद हो।

प्रयुङ्क्ते। उपयुङ्क्ते। 'अयज्ञपात्र' ग्रहण से यहां न हुआ—द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति।

६९८–वा०–स्वराद्यन्तोपसृष्टादिति वक्तव्यम् ॥ १।३।६४॥

स्वर जिसके आदि तथा अन्त में हो, उस उपसर्ग से युक्त युज धातु से आत्मनेपद हो।

अर्थात् सम्, निस्, दुर् इन तीन उपसर्गों को छोड़ कर अन्य सब उपसर्गों से परे युज से आत्मनेपद हो—उद्युङ्क्ते। अनुयुङ्क्ते। नियुङ्क्ते। यहां नहीं होता—संयुनक्ति ॥

६९९–समः क्ष्णुवः ॥ १ । ३ । ६५ ॥

सम्पूर्वक क्ष्णु धातु से आत्मनेपद हो।

संक्ष्णुते शस्त्रम्। क्ष्णुधातु को (६५९) सूत्र में पढ़ देते तो यह पृथक् सूत्र बनाना न पड़ता। फिर यहां सकर्मक ही क्ष्णु का ग्रहण होने के लिये पृथक् पढ़ा है और वहां (६५९) सूत्र में अकर्मक की अनुवृत्ति है ॥

७००–भुजोऽनवने ॥ १ । ३ । । ६६ ॥

अपालन अर्थ में वर्त्तमान भुज धातु से आत्मनेपद हो।

※ जो (२३२, ४३१) सूत्रों में आत्मनेपद विधान का नियम है सो सन्नन्त में आत्मनेपद नहीं होता क्योंकि (२३२, ४३१) सूत्रों में (६९४, ६९५) सूत्रों से सन्नन्त से निषेध की अनुवृत्ति आती है—शिशत्सति। मुमूर्षति ॥

भुङ्क्ते । भुञ्जाते । भुञ्जते । पालन के निषेध से अन्यत्र—पृथिवीं भुनक्ति राजा । यहाँ रक्षार्थ के निषेध से जाना जाता है कि इस सूत्र में रुधादि के भुज का ग्रहण किया, तुदादि का नहीं ॥

७०१–णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्त्ताऽनाध्याने ॥ १ । ३ । ६७ ॥

अण्यन्त अवस्था में जो कर्म वही ण्यन्त अवस्था में कर्म तथा कर्त्ता भी हो तो अनाध्यान अर्थात् अत्यन्त उत्साह से जो स्मरण करना है, उससे भिन्न अर्थ में णिजन्त धातु से आत्मनेपद हो ।
आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, आरोहयते हस्ती स्वयमेव । उपसिञ्चन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, उपसेचयते हस्ती स्वयमेव । पश्यन्ति भृत्या राजानं, दर्शयते राजा स्वयमेव । 'णि' ग्रहण से यहाँ न हुआ—आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपका, आरोहयमाणो हस्ती साध्वारोहति । 'अणि' ग्रहण से यहाँ न हुआ—गणयति गणं गोपालकः, गणयति गणः स्वयमेव । 'कर्म' ग्रहण में यहाँ न हो—लुनाति दात्रेण, लावयति दात्रं स्वयमेव ।

'णौ चेत्' ग्रहण समान क्रिया के लिये है—आरोहयमाणो हस्ती भीतान् सेचयति मूत्रेण । 'यत्' ग्रहण अनन्यकर्म के लिये है—आरोहयमाणो हस्ती स्थलमारोहयति मनुष्यान् । 'कर्ता' ग्रहण इसलिये है कि—आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकास्तानारोहयति महामात्रः । 'अनाध्यान' ग्रहण से यहाँ न हुआ—स्मरयत्येनं वनगुल्मः स्वयमेव ।

आगे कर्मकर्तृप्रक्रिया लिखेंगे, उसी के सदृश उदाहरण इस सूत्र में दिये हैं, सो कर्मकर्त्ता से आत्मनेपद हो जाता, फिर विशेष यह है कि उस प्रक्रिया में जो आत्मनेपद होता है सो कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं से होता है और यह सूत्र कर्तृस्थभावक और कर्तृस्थक्रिय धातुओं के लिये है । वैसे ही कर्तृस्थक्रिय रुह और कर्तृस्थभावक दृश धातुओं के उदाहरण दिये हैं ॥

७०२—गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ॥ १ । ३ । ६९ ॥

प्रलम्भन अर्थात् झूठ-सांच बकने अर्थ में वर्त्तमान णिजन्त गृधु और वञ्चु धातुओं से आत्मनेपद हो ।

माणवकं गर्धयते । माणवकं वञ्चयते । 'प्रलम्भन' ग्रहण से यहाँ न हुआ—श्वानं गर्धयति—रोटी आदि से कुत्ते की इच्छा को उत्पादन कराता है । अहिं वञ्चयति—सर्प को हर लेता है ॥

७०३—मिथ्योपपदात्कृञोऽभ्यासे ॥ १ । ३ । ७१ ॥

वार-वार काम करने में मिथ्या शब्द जिसके उपपद हो, उस णिजन्त कृञ् धातु से परे आत्मनेपद हो ।

पदं मिथ्या कारयते—पद का वार-वार मिथ्या उच्चारण कराता है । 'मिथ्या' शब्द के ग्रहण से यहाँ न हुआ—पदं सुष्ठु कारयति । कृञ्' ग्रहण से यहाँ न हुआ—पदं मिथ्या वाचयति । 'अभ्यास' ग्रहण से यहाँ न हुआ—पदं मिथ्या कारयति—एक वार उच्चारण करता है ॥

७०४—अपाद्वदः ॥ १ । ३ । ७३ ॥

क्रिया का फल जहाँ कर्त्ता के लिये हो, वहाँ अप उपसर्ग से परे वद धातु से आत्मनेपद हो ।

धनकामो न्यायमपवदते—धन का लोभी न्याय को छोड़े हुए कहता है । जहाँ कर्तृगामी क्रियाफल नहीं है, वहाँ—अपवदति होगा ।

७०५—समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ॥ १ । ३ । ७५ ॥

अग्रन्थ अर्थ में सम्, उद और आङ् से परे यम धातु से आत्मनेपद हो, जो क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो ।

व्रीहीन् संयच्छते । भारमुद्यच्छते । वस्त्रमायच्छते । 'अग्रन्थ' ग्रहण से यहाँ न हुआ—वेदमुद्यच्छति—वेद आने के लिये उद्यम करता है, उद्यच्छति चिकित्सायां वैद्यः । 'कर्तृगामी' ग्रहण से यहाँ न हुआ—संयच्छति शिष्यम् ॥

७०६—अनुपसर्गाज्ज्ञः ॥ १ । ३ । ७६ ॥

क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो उपसर्गरहित ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो।

गां जानीते। अश्वं जानीते। 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहाँ न हुआ—स्वर्गं लोकं न प्रजानाति मूढः। कर्तृगामी फल न हो तो—देवदत्तस्य गां जानाति।

७०७—विभाषोपपदेन प्रतीयमाने ॥ १ । ३ । ७७ ॥

समीपवर्ती पद के उच्चारण से कर्तृगामी क्रियाफल प्रतीत हो तो (स्वरितञि०; अपाद्वदः; णिच०; समुदाङ्भ्यो य०; अनुपस० ॥ १ । ३ । ७२–७६) इन सूत्रों से जो आत्मनेपद कहा है, वह विकल्प करके हो।

स्वं यज्ञं यजति; स्वं यज्ञं यजते। स्वं पुत्रमपवदते; स्वं पुत्रमपवदति। स्वं यज्ञं कारयति कारयते वा। स्वान् व्रीहीन् संयच्छति, संयच्छते वा। स्वां गां जानाति जानीते वा ॥

इत्यात्मनेपदप्रक्रिया समाप्ता ॥ १८ ॥

---

(१९) अथ परस्मैपदप्रक्रिया ॥

—*—

७०८—अनुपराभ्यां कृञः ॥ १ । ३ । ७९ ॥

अनु और परा उपसर्गों से परे, कृञ् धातु से परस्मैपद हो।

अनुकरोति। पराकरोति। कर्तृगामी क्रियाफल और गन्धनादि अर्थों में भी अनु और परापूर्वक कृञ् से परस्मैपद ही होता है।

७०९—अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ॥ १ । ३ । ८० ॥

अभि, प्रति और अति उपसर्गों से परे, क्षिप धातु से परस्मैपद हो।

अभिक्षिपति। प्रतिक्षिपति। अतिक्षिपति। इनसे अन्यत्र—आक्षिपते ॥

७१०—प्राद्वहः ॥ १ । ३ । ८१ ॥

प्र पूर्वक वह धातु से परस्मैपद हो।

प्रवहति। अन्यत्र—आवहते ॥

७११—परेर्मृषः ॥ १ । ३ । ८२ ॥

परि पूर्वक मृष धातु से परस्मैपद हो।

परिमृष्यति। अन्यत्र—आमृष्यते ॥

७१२—व्याङ्परिभ्यो रमः ॥ १ । ३ । ८३ ॥

वि, आङ् और परि उपसर्ग से परे, रम धातु से परस्मैपद हो।

विरमति। आरमति। परिरमति। अन्यत्र—अभिरमते।

७१३—उपाच्च ॥ १ । ३ । ८४ ॥

उप पूर्वक रम धातु से परे परस्मैपद हो।

उपरमति। यह सूत्र अलग जो किया है, इससे जानना चाहिये कि अगले सूत्र में उप उपसर्ग से ही अकर्मक रम धातु से परस्मैपद होगा।

७१४–विभाषाऽकर्मकात् ।। १ । ३ । ८५ ।।

उपपूर्वक अकर्मक रम आतु से परे, विकल्प करके परस्मैपद हो।

उपरमति। उपरमते—निवृत्ति को प्राप्त होता है।।

७१५–बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः ।। १ । ३ । ८६ ।।

बुध, युध, नश, जन, इङ्, प्रु, द्रु और स्रु इन णिजन्त धातुओं से परे, लकार के स्थान में परस्मैपद हो।

बोधयति। योधयति। नाशयति। जनयति। अध्यापयति। प्रावयति। द्रावयति। स्रावयति।

बुध आदि धातुओं में जो अकर्मक हैं, उनका ग्रहण अचित्तवत्कर्तृकों के लिये है क्योंकि चित्तवत्कर्तृकों से (अणावकर्म० ।। १ । ३ । ८८) इस सूत्र से परस्मैपद सिद्ध है और चलनार्थक धातुओं में (निगरण-चलनार्थेभ्यश्च ।। १ । ३ । ८७) इस सूत्र से परस्मैपद सिद्ध है, फिर [उनका ग्रहण] चलनार्थ से अन्यत्र भी परस्मैपद होने के लिये है।।

७१६–निगरणचलनार्थेभ्यश्च ।। १ । ३ । ८७ ।।

भोजन और कम्पन अर्थवाले णिजन्त धातुओं से परे परस्मैपद हो।

निगारयति निगालयति वा—भोजन कराता है। चलयति। चोपयति। कम्पयति।

यह भी सूत्र सकर्म्मक और अचित्तवत्कर्तृकों के लिये है। अत्ति ब्रह्मदत्तः। आदयते देवदत्तेन, यहाँ इससे परस्मैपद प्राप्त है, उसका निषेध (कारकीय वा०—३३) इससे है।।

७१७–अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् ।। १ । ३ । ८८ ।।

अण्यन्त अवस्था में जो अकर्म्मक और चित्तवान् कर्त्तावाला धातु हो, उस ण्यन्त से परस्मैपद हो।

आस्ते बालः, आसीनं बालं माता प्रयोजयति=इति माता बालमासयति। स्वापयति। शाययति।

'अण्यन्त अवस्था' ग्रहण से यहाँ न हुआ—आरोहयमाणं प्रयोजति=आरोहयति। 'अकर्मक' ग्रहण से यहाँ न हुआ—कटं कुर्वाणं प्रयोजयति=कारयते। चित्तवत्कर्त्ता से अन्यत्र—शुष्यन्ति व्रीहयः, शोषयति व्रीहीनातपः ॥

७१८–न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः ॥
॥ १ । ३ । ८९ ॥

पा, दमि, आङ्यम, आङ्यस, परिमुह, रुचि, नृति, वद और वस, इन ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद न हो।

(अणाव०; निगरण०) पूर्वोक्त (७१७; ७१६) इन दो सूत्रों से जो परस्मैपद प्राप्त है, उसका निषेध किया है—पाययते। दमयते। आयामयते। आयासयते। परिमोहयते। रोचयते। नर्त्तयते। वादयते। वासयते।

यहाँ ऐसा जानना चाहिये कि पा आदि धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल में यह निषेध है और परगामी क्रियाफल में तो (शेषात्कर्त्तरि० ॥ १ । ३ । ७८) इससे परस्मैपद होता ही है—वत्सान् पयः पाययति।

७१९–वा०–पादिषु धेट उपसंख्यानम् ॥ १ । ३ । ८९ ॥

इन पा आदि धातुओं में, धेट् धातु को भी पढ़ना चाहिये।

धापयेते शिशुमेकं समीची ॥

इति परस्मैपदप्रक्रिया समाप्ता ॥ १९ ॥

---

(२०) अथ भावकर्मप्रक्रिया ॥

—*—

भाव, भावना क्रिया को कहते हैं। यह सब धातुओं से अपने अपने धात्वर्थ को लेकर कहा जाता है। उसका अनुवाद भाववाची लकार से होता है। युष्मद् और अस्मद् से समानाधिकरण का अभाव है, इससे यहाँ प्रथम पुरुष होता है तथा तिङ्प्रत्ययवाच्य भाव अद्रव्य है, इससे भाव में द्विवचन और बहुवचन की प्रतीति नहीं होती, इसलिये भाव में द्विवचन और बहुवचन नहीं होते हैं किन्तु एकवचन होता है क्योंकि वह द्विवचनादिकों का उत्सर्गमात्र है।

अब प्रथम पुरुप के परस्मैपद वा आत्मनेपद में कौन होना चाहिये, इस विषय में (६२४) सूत्र से आत्मनेपद विधान कर चुके हैं सो यहाँ भाव में प्रथम पुरुष का आत्मनेपद एकवचन होगा। जैसे—'भू+त' इस अवस्था में—

७२०—सार्वधातुके यक् ॥ ३ । १ । ६७ ॥

भावकर्मवाची सार्वधातुक परे हो तो धातु से यक् प्रत्यय हो।

'भू+यक्+ते'=भूयते देवदत्तेन। बभूवे।

७२१—स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ॥ ६ । ४ । ६२ ॥

भावकर्म विषय में स्य, सिच्, सीयुट् और तासि परे हो तो उपदेश में अजन्त, हन, ग्रह और दृश अंगों को विकल्प करके चिण्वत् कार्य्य और इट् का आगम हो।

यहाँ चिण्वद्भाव का विकल्प होने से जिस पक्ष में चिण्वत् कार्य्य होता है, वहीं इट् भी जानो। चिण् णित् है, इससे जो-जो कार्य णित् प्रत्ययों में होते हैं, वे ही स्य आदि के परे भी हो जावें। भाविता, यहाँ चिण्वत् कार्य्य वृद्धि होती है; भविता। भाविष्यते; भविष्यते। भाविषतै; भाविषातै। भविषतै; भविषातै। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट; भविषीष्ट।

७२२–चिण् भावकर्मणोः ॥ ३ । १ । ६६ ॥

भावकर्मवाची त शब्द परे हो तो च्लि के स्थान में चिण् आदेश हो। अभावि। अभाविष्यत; अभविष्यत॥

अनुपूर्वक भू धातु सकर्मक हो जाता है—अनुभूयते चैत्रेण त्वया मया वा आनन्दः, यहाँ आनन्द अनुपूर्वक भू धातु का कर्म है। उस आनन्द कर्म में लकारादि प्रत्यय के होने से उससे द्वितीया विभक्ति नहीं होती, क्योंकि वह अनभिहित नहीं रहा। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये।

अनुबभूवे। त्वमनुभावितासे, अनुभवितासे इत्यादि। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्; अन्वभविषाताम्॥

णिजन्त से भावकर्म में यक्—भाव्यते। भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। भाविता, यहाँ चिण्वद्भाव में इट् को (४२) सूत्र से असिद्ध मान कर (१७७) सूत्र से णिलोप हो जाता है। और जहाँ चिण्वद्भाव नहीं है, वहाँ—भावयिता। भाविष्यते; भावयिष्यते। भाव्यताम्। अभाव्यत। भाव्येत। भाविषीष्ट; भावयिषीष्ट। अभाविषाताम्; अभावयिषाताम्॥

सन्नन्त से भावकर्म्म—बुभूष्यते। बुभूषाञ्चक्रे। बुभूषिता। बुभूषिष्यते॥

यङन्त से भावकर्म्म—बोभूय्यते॥

यङ्लुगन्त से भावकर्म्म—बोभूयते। बोभवाञ्चक्रे। बोभाविता; बोभविता। स्तूयते परमात्मा। तुष्टुवे। स्ताविता; स्तोता। स्ताविष्यते; स्तोष्यते। अस्तावि। अस्ताविषाताम्; अस्तोषाताम्॥

अर्यते । (२५४) से गुण होकर—स्मर्यते । सस्मरे । आरिता, यहाँ परत्व और नित्यत्व मान कर प्रथम गुण तथा गुण को रपर करने से ऋ धातु हलन्त भी है, तथापि (स्यसिच्० ॥ ६ । ४ । ६२) इस सूत्र में जो उपदेश ग्रहण है, इससे उसको चिण्वद्भाव और तत्संनियोग इट् होता है; अर्त्ता । स्मारिता; स्मर्त्ता । संस्क्रियते, यहाँ (२५४) इस सूत्र से संयोगादि मान कर ऋकार को गुणादेश नहीं होता है क्योंकि यह संयोग सुट् से हुआ है । सुट् बहिरङ्ग वा कृ का अभक्त होने से असिद्ध है ।

स्रस्यते, यहाँ (१३९) इससे नकार का लोप हुआ । नन्द्यते, यहाँ इदित् मान कर नकार का लोप न हुआ । इज्यते, यहाँ (२८३) इससे सम्प्रसारण हुआ । शय्यते, यहाँ (५५२) से अयङ् आदेश हुआ ।

७२३–तनोतेर्यकि ॥ ६ । ४ । ४४ ॥

यक् प्रत्यय परे हो तो तनोति धातु को आकारादेश विकल्प करके होवे । तायते; तन्यते ॥

जन धातु को आकारादेश विकल्प (१८५) से होता है—जायते; जन्यते ॥

७२४–तपोऽनुतापे च ॥ ३ । १ । ६५ ॥

कर्म्मकर्त्ता और अनुताप अर्थ में, तप धातु से परे च्लि के स्थान में चिण् आदेश न हो ।

'अनुताप' पछतावे को कहते हैं । सो भावकर्म्मप्रक्रिया में ही चिण्निषेध होने के लिये अनुताप ग्रहण है—अन्वतप्त पापेन पापस्य कर्त्ता, यह भावकर्म्म का उदाहरण है । कर्मकर्त्ता का उदाहरण कर्म्मकर्तृप्रक्रिया में लिखेंगे ॥

दीयते । धीयते, (३४९) इस सूत्र से ईकारादेश ।

७२५-आतो युक् चिण्कृतोः ॥ ७ । ३ । ३३ ॥

ञित्, णित्, कृत् और चिण् परे हो तो आदन्त अङ्ग को युक् आगम हो ।

दायिता, दाता । धायिता; धाता । दायिषीष्ट; दाषीष्ट । अदायि । अदायिषाताम्; अदिषाताम् । अधायिषाताम्; अधिषाताम् ।

ग्लायते । म्लायते । जग्ले । मग्ले, यहाँ (२४२) सूत्र के अशित् शब्द में जो कर्मधारय समास मान कर इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय के परे निषेध किया है, उससे एश् आदि प्रत्ययों में आदि शित् न होने से आत्व निषेध नहीं होता है । ग्लायिता; ग्लाता । अग्लायि । अग्लायिषाताम्; अग्लासाताम् ॥

हन्यते । घानिता, यहाँ (५०३) से तकारादेश नहीं होता क्योंकि यहां चिण् विषय में निषेध है; हन्ता । घानिष्यते; हनिष्यते । हन्यते; हन्यतै । हन्यैते; हन्यैतै । घानिषते; घानिषतै । घानिषैते; घानिषैतै । हनिषते; हनिषतै । हनिषाते; हनिषातै । घानिषीष्ट, यहाँ (३०८) से सर्वत्र वध आदेश न हुआ, क्योंकि सीयुट् के परे विशेष विधान से चिण्वद्भाव वध आदेश का अपवाद है । वधिषीष्ट । अघानि । अघानिषाताम्; अहसाताम् । दूसरे पक्ष में—अवधि । अवधिषाताम् । अघानिष्यत; अहनिष्यत ॥

गृह्यते । ग्राहिता, यहाँ (४५५) इससे इट् को दीर्घादेश न हुआ क्योंकि उस प्रकरण में जो वलादिलक्षण इट् होता है, उसी इट् का दीर्घविधि में ग्रहण है; ग्रहीता । ग्राहिष्यते; ग्रहीष्यते । ग्राहिषीष्ट; ग्रहीषीष्ट । अग्राहि । अग्राहिषाताम ॥

दृश्यते । अदर्शि । अदर्शिषाताम्; अदृक्षाताम्, यहाँ सिच् के कित्व होने से (२७८) से अम् न हुआ ॥

गीर्यते । जगरे; जगले । गारिता; गालिता । गरीता; गलीता । गरिता; गलिता । गारिष्यते । गारिषतै; गारिषातै । गालिषतै; गालिषातै । गरीषतै; गरीषातै । गलीषतै; गलीषातै । गरिषतै; गरिषातै । गलिषतै; गलिषातै । गारिषतै; गारिषातै । गालिषते; गालिषाते । गरीषते; गरीषाते । गलीषते; गलीषाते । गरिषते; गरिषाते । गलिषते; गलिषाते । गीर्यते; गीर्याते । गीर्यतै; गीर्यातै ।

गीर्यताम् । अगीर्यत । गीर्येत । गालिषीष्ट; गारिषीष्ट; गरिषीष्ट,, यहाँ (४२१) इससे दीर्घ न हुआ; गीर्षीष्ट, यहाँ (४२०) से इट् विकल्प होता है । अगारि । अगारिषाताम्; अगरिषाताम्; अगीर्षाताम् । अगारिध्वम्; अगरीध्वम्; अगरिध्वम्; अगालिध्वम्; अगालीध्वम्; अगलिध्वम्; (४३२) से लत्व विकल्प होकर—अगारीढ्वम्; अगरीढ्वम् । अगरिढ्वम्; अगालिढ्वम्; अगलीढ्वम्; अगलिढ्वम्, (१९१) से मूर्द्धन्यादेश विकल्प से हुआ । इट् के अभाव पक्ष में—अगीर्ढ्वम्, यहाँ (२४०) से सिच् कित्, (१०९) से नित्य ढत्व होता है ।।

हेतुमत् णिजन्त से कर्म में लकार होकर—शम्यते मोहो गुरुणा ।।

७२६—चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्तरस्याम् ।। ६ । ४ । ९३ ।।

चिण् और णमुल् जिससे परे हों. ऐसा णिच् परे हो तो मित् अङ्गों की उपधा को विकल्प करके दीर्घ हो ।

शामिता; शमिता; शमयिता । शामिष्यते; शमिष्यते; शमयिष्यते ।

जहाँ णिजन्त नहीं है, वहाँ भाव में लकार होंगे—शम्यते मुनिना ।

७२७—नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः।। ७ । ३ । ३४ ।।

चिण् और ञित् णित् कृत् परे हों तो आङ्पूर्वक चम्वर्जित मकारान्त अङ्ग की उपधा को वृद्धि न हो ।

अशमि । अदमि । 'उदात्तोपदेश' ग्रहण से यहाँ न हुआ—अगामि । 'मान्त' ग्रहण से यहाँ न हुआ—अवादि । 'अनाचमि' ग्रहण से यहाँ न हुआ—आचामि ।

७२८–वा०–अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम् ॥

७ । ३ । ३४ ॥

'अनाचमि' यहाँ आचम्, कम्, वम् इन अङ्गों को निषेध कहना चाहिये अर्थात् चिण् और ञित् णित् कृत् परे हों तो उक्त सब अङ्गों की उपधा को वृद्धि न हो ।

अकामि । अवामि ॥

अजागारि, यहाँ (३६२) से गुण न हुआ क्योंकि चिण् के परे निषेध है ॥

७२९–भञ्जेश्च चिणि ॥ ६ । ४ । ३३ ॥

चिण् परे हो तो भञ्ज धातु के नकार का लोप विकल्प करके हो ।

अभाजि अभञ्जि ॥

७३०–विभाषा चिण्णमुलोः ॥ ७ । १ । ६९ ॥

चिण् और णमुल् परे हों तो लभ धातु को नुमागम विकल्प करके हो ।

अलम्भि । अलाभि ॥

द्विकर्मक—'गौर्दुह्यते पयः' इत्यादिकों में अप्रधान कर्म में लकार होते हैं तथा 'अजा नीयते ग्रामम्' इत्यादिकों में प्रधान कर्म में लकार होते हैं। यह निर्णय "कारकीय" ग्रन्थ के (२०) सूत्र के व्याख्यान में कर चुके हैं ॥

इति भावकर्मप्रक्रिया समाप्ता ॥ २० ॥

---

(२१) अथ कर्मकर्त्तृप्रक्रिया ॥

—*—

जब काम के अत्यन्त अच्छे प्रकार होने रूप अर्थ को प्रकट करने के लिये, कर्त्ता का क्रिया करना न कहा जाय, तब अन्य कारक भी कर्तृसंज्ञा को प्राप्त होते हैं क्योंकि वे अपने-अपने विषय में स्वतन्त्र हैं और स्वाधीन व्यापारवाले की कर्त्ता संज्ञा होती है। इस कारण प्रथम करण आदि संज्ञा होती हैं, तथापि उन कारकों के स्वतन्त्र होने से कर्तृसंज्ञा होकर उस कर्त्ता में भी लकार होते हैं—

करण—देवदत्तोऽसिना छिनत्ति, छिन्दतो देवदत्तस्यासिः स्वयमेव छिनत्ति—देवदत्त तलवार से काटता है, काटते हुए देवदत्त की तलवार आप ही काटती है। देवदत्तः काष्ठैः पचति, पचतो देवदत्तस्य काष्ठानि साधु पचन्ति। देवदत्तः स्थाल्यां पचति, पचतो देवदत्तस्य स्थाली स्वयमेव पचति।

और जब कर्म को कर्तृत्व विवक्षा होती है, तब प्रथम से सकर्मक भी धातु प्रायः अकर्मक हो जाते हैं और उनसे भाव वा कर्त्ता में लकार होते हैं। जैसे भाव में—देवदत्तः ओदनं पचति, पचतो देवदत्तस्य ओदनेन स्वयमेव पच्यते। भिद्यते काष्ठेन।

और कर्त्ता में तो—

७३१–कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ॥ ३ । १ । ८७ ॥

जिसकी कर्मस्थ क्रिया के तुल्य क्रिया है, वह कर्त्ता कर्मवत् हो।

यहाँ कार्य्यातिदेश अर्थात् कर्मविषयक काम कर्त्ता में भी हों। इसका प्रयोजन यह है कि—यक्, आत्मनेपद, चिण् और चिण्वद्भाव भी होवे—देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति, भिन्दतो देवदत्तस्य काष्ठं स्वयमेव भिद्यते। देवदत्त

ओदनं पचति, पचतो देवदत्तस्यौदनः स्वयमेव पच्यते। अभेदि काष्ठं स्वयमेव। अपाच्योदनः स्वयमेव। पाचिष्यते ओदनः स्वयमेव।

'वत्' ग्रहण करने से स्वाधीन कार्य भी होते हैं ※। भिद्यते कुसूलेन, यहां स्वाश्रय कार्य भाव में लकार हुआ है। 'कर्मणा' ग्रहण इसलिये है कि—करण और अधिकरण के तुल्यक्रिय कर्त्ता को कर्मवद्भाव न हो। जैसे—साध्वसिश्छिनत्ति। साधु स्थाली पचति।

इस प्रकरण में धातु का अधिकार है, इससे एक ही धातु में कर्मवद्भाव होता है, किन्तु—पचत्योदनं देवदत्तः, राधत्योदनः स्वयमेव, यहां न हुआ।

इस सूत्र से कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं का कर्त्ता कर्मवत् होता है किन्तु कर्तृस्थभावक तथा कर्तृस्थक्रिय धातुओं का कर्त्ता कर्मवत् नहीं होता। जैसे—

कर्तृस्थभावों में—देवदत्तः शास्त्रं चिन्तयति, शास्त्रं चिन्तयतो देवदत्तस्य शास्त्रं स्वयमेच चिन्तयति। अमात्यो राजानं मन्त्रयते, मन्त्रयमानस्यामात्यस्य राजा स्वयमेव मन्त्रयते।

कर्तृस्थक्रियों में—गच्छमि ग्रामं देवदत्तः, ग्रामं गच्छतो देवदत्तस्य ग्रामः स्वयमेव गच्छति। आरोहति हस्ति स्वयमेव।

कर्मस्थभावकों में—शेते बालः, शयानं बालं जनकः प्रयोजयति= जनको बालं शाययति, शाययतो जनकस्य बालः स्वयमेव शाय्यते, यहां सोना रूप भाव कर्मस्थ है।

※ "कर्मवत्०" सूत्र में "वत्" को छोड़ के "कर्म कर्मणा" कहने से तुल्यक्रिया कर्त्ता की कर्म संज्ञा होकर उसको कर्माश्रय कार्य ही होते किन्तु जो कर्म को कर्तृत्व विवक्षा करने से सकर्मक धातु अकर्मक होकर उससे भाव में लकार होते हैं, वे न होते। वत् ग्रहण करने से तो कर्म की तुल्यता होकर स्वाश्रय कार्य भी होते हैं॥

जहां कर्म में क्रिया कृत विशेष देख पड़े, वह कर्मस्थक्रिय होता है। जैसे—फटी हुई लकड़ियों में काटना रूप क्रिया प्रत्यक्ष देख पड़ती है। इससे भिद धातु कर्मस्थक्रिय है ॥

७३२–तपस्तपःकर्मकस्यैव ॥ ३ । १ । ८८ ॥

सकर्मकों में तपःकर्मवाले ही तप का कर्त्ता कर्मवत् हो।

यह सूत्र नियमार्थ है कि सकर्मक धातुओं को कर्मवद्भाव हो तो 'तप' धातु ही का हो। सो भी तपःकर्मवाले ही तप धातु का हो किन्तु और कर्मवाले का न हो।

वेदव्रतादीनि तपांसि तापसं तपन्ति, स तापसस्त्वगस्थिभूतः स्वर्गाय तपस्तप्यते—वेदव्रत आदि तप तापस अर्थात् तपस्या करनेवाले को संताप देते हैं, वह तापस अत्यन्त सुख के लिये तप को यत्न से सिद्ध करता है। पिछले सूत्र से कर्मवद्भाव न प्राप्त था, इससे विधान किया।

अन्वतप्त तपस्तापसः, यहां (७२४) इससे चिण् निषेध होकर सिच् हो जाता है। 'तपःकर्मक' ग्रहण करने से यहां न हुआ—उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः। कारुकः कटं करोति, कुर्वतस्तस्य कटः स्वयमेव क्रियते ॥

७३३–अचः कर्मकर्त्तरि ॥ ३ । १ । ६२ ॥

कर्मकर्त्ता में त शब्द परे हो तो अजन्त धातु से परे च्लि को विकल्प से चिण् आदेश हो।

अकारि कटः स्वयमेव। अकृत कटः स्वयमेव। कृषीवलः केदारं लुनीते, लुनतस्तस्य केदारः स्वयमेय लूयते। [अलावि केदारः स्वयमेव।] अलविष्ट केदारः स्वयमेव।

'अचः' इस ग्रहण से यहां न हुआ—अभेदि काष्ठं स्वयमेव। 'कर्मकर्तृ' ग्रहण से यहां न हुआ—अकारि कटो देवदत्तेन।

गोपालो गां व्रजमन्ववरुणद्धि, रुन्धतस्तस्य गौः स्वयमेवान्ववरुध्यते ॥

७३४—न रुधः ॥ ३ । १ । ६४ ॥

रुधि धातु से परे कर्मकर्त्ता में च्लि के स्थान में णिच् आदेश न हो ।

अन्ववारुणद्धि गौः स्वयमेव । 'कर्मकर्त्ता' ग्रहण से यहां न हुआ—अन्ववारोधि गौर्गोपालेन ॥

७३५—वा०—दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोः ॥ ३ । १ । ८७ ॥

सकर्मक दुह और पच धातु का कर्त्ता बहुल करके कर्मवत् हो ॥

७३६—न दुहस्नुनमां यक् चिणौ ॥ ३ । १ । ८९ ॥

दुह, स्नु और नम् इन धातुओं के कर्मवद्भाव में यक् और चिण् न हों ।

इनमें 'दुह' धातु से यक् का प्रतिषेध है और चिण् तो विकल्प से कहेंगे । गोपालो गां पयो दोग्धि, दुहतस्तस्य गौः पयः स्वयमेव दुग्धे ॥

७३७—दुहश्च ॥ ३ । १ । ६३ ॥

दुह धातु से परे, कर्मकर्त्ता में विकल्प करके च्लि को चिण् आदेश हो।

अदुग्ध गौः पयः स्वयमेव । 'कर्मकर्त्ता ग्रहण से—अदोहि गौर्गोपालेन ।

अनुरुदुम्बरं सलोहितं फलं पचति, पचतस्तस्योदुम्बरः सलोहितं फलं पच्यते ।

प्रस्नुते गौः स्वयमेव । प्रास्नोष्ट गौः स्वयमेव । नमते दण्डः स्वयमेव । अनंस्त दण्डः स्वयमेव ॥

७३८—वा०—सृजियुज्योः श्यंस्तु ॥ ३ । १ । ८७ ॥

सकर्मक सृज् और युज् धातु का कर्त्ता बहुल करके कर्मवत् और श्यन् हो ।

यह श्यन् यक् प्रत्यय का अपवाद है ॥

७३६–वा०–सृजेः श्रद्धोपपन्ने कर्त्तरि कर्मवद्भावो वाच्यश्चिरणात्मनेपदार्थः ।। ३ । १ । ८७ ।।

श्रद्धायुक्त कर्त्ता में, सृज धातु को कर्मवद्भाव कहना चाहिये, चिण् और आत्मनेपद होने के लिये ।

सृज्यते मालाम्—श्रद्धा से माला बनाता है । असर्जि मालाम्—श्रद्धा से माला बनाली । [युज धातु के न्याय्य कर्मकर्त्ता में श्यन् होता है, जैसे—] युज्यते ब्रह्मचारी योगम् ।।

७४०–वा०–भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात् ।। ३ । १ । ८७ ।।

भूषण अर्थवाले किरादि और सन्नन्त धातुओं को आत्मनेपद से अन्यत्र प्रतिषेध कहना चाहिये । अर्थात् उनको यक्, चिण् और चिण्वद्भाव न हो और आत्मनेपद ही हो ।

भूषार्थ में—माता कन्यां भूषयति, कन्यां भूषयित्र्याः मातुः कन्या स्वयमेव भूषयते । अबुभूषत कन्या स्वयमेव* । मण्डयते कन्या स्वयमेव । अममण्डत कन्या स्वयमेव । अलंकुरुते कन्या स्वयमेव । अलमकृत कन्या स्वयमेव ।

किरादि—अवकिरते हस्ती स्वयमेव । अवाकीर्ष्ट हस्ती स्वयमेव । गीर्यते ग्रासः स्वयमेव । अवागीर्ष्ट ग्रासः स्वयमेव ।

---

*यहां स्वार्थणिच् मानकर भूषार्थकों के प्रतिषेध में 'भूषयते' इत्यादि उदाहरण महाभाष्यकार ने दिये हैं क्योंकि "यक् चिणोः प्रतिषेधे०" इस (७४१) वार्त्तिक से केवल हेतुमत् णिच् से प्रतिषेध है । और भारद्वाजीय जो णिमात्र से प्रतिषेध पढ़ते हैं, वह उन्हीं का मत है । इसलिये सर्वसम्मत से ण्यन्त अण्यन्त दोनों पक्ष में "भूषाक०" इस वार्तिक में भूषार्थकों का ग्रहण किया है, अन्यथा महाभाष्यकार का "भूषयते कन्या स्वयमेव" इत्यादि उदाहरण देना व्यर्थ हो । इससे यहां कैय्यट ने जो भूषार्थकों का ग्रहण अण्यन्तों ही के लिये माना है, यह उनका व्याख्यान असङ्गत है ।।

सन्नन्त—चिकीर्षते कटः स्वयमेव । अचिकीर्ष्ट कटः स्वयमेव, यहां इच्छा कर्तृस्थ भी है तथापि करोति क्रिया की अपेक्षा लेकर कर्मस्थ क्रिया जाननी चाहिये क्योंकि करोति प्रधान है और इच्छा तो करोति के अधीन है किन्तु स्वतन्त्र नहीं है ॥

७४१–वा०–यक्चिणोःप्रतिषेधे हेतुमण्णिश्रिब्रूञामुपसंख्यानम् ॥ ३ । १ । ८९ ॥

यक् और चिण् के प्रतिषेध में हेतुमान् णि, श्रि और ब्रूञ् इनका उपसंख्यान करना चाहिये ।

णि—कारयते कटः स्वयमेव । [अचीकरत कटः स्वयमेव ।] श्रि—उच्छ्रयते दण्डः स्वयमेव । उदशिश्रियत दण्डः स्वयमेव । ब्रूञ्—ब्रूते कथा स्वयमेव । अवोचत कथा स्वयमेव ॥

७४२–वा०–भारद्वाजीयाः पठन्ति—यक्चिणोः प्रतिषेधे णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूञात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम् ॥ ३ । १ । ८९ ॥

पुच्छमुदस्यति = उत्पुच्छयते गौः । अन्तर्भावित ण्यर्थ मानकर—गामुत्पुच्छयते, यह व्यवस्था होगी । फिर कर्तृत्व की अपेक्षा में—'उत्पुच्छयते' गौः होगा । उदपुपुच्छत, यहां यक् और चिण् के प्रतिषेध से शप् और चङ् होते हैं ।

श्रन्थि और ग्रन्थि के आधृषीयत्व होने में णिच् के अभाव पक्ष के लिये इनका ग्रहण है । ग्रन्थते ग्रन्थमाचार्य्यः । श्रन्थते मेखलां देवदत्तः । ग्रन्थते ग्रन्थः स्वयमेव । श्रन्थते मेखला स्वयमेव । अग्रन्थिष्ट । अश्रन्थिष्ट ।

विकुर्वते* सैन्धवाः । फिर अन्तर्भावितण्यर्थ के प्रयोजनांश त्याग करने से—'विकुर्वते सैन्धवाः स्वयमेव' होगा । व्यकारिष्ट । व्यकारिषाताम् ।

---

* यहां (वेः शब्दकर्म्मणोऽकर्म्मकाच्च ॥ १ । ३ । ३५) इससे तङ हुआ है ॥

व्यकारिषत, यहां (७३३) से चिण्वद्भाव होता है। व्यकृत। व्यकृषाताम्। व्यकृषत॥

७४३–कुषिरञ्जोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च॥ ३।१।९०॥

प्राचीन आचार्यों के मत से, कुष और रञ्ज धातु को कर्मवद्भाव में श्यन् प्रत्यय और परस्मैपद हो, किन्तु यक् आत्मनेपद न हो।

कुष्यति कुष्यते वा पादः स्वयमेव। रज्यति रज्यते वा वस्त्रं स्वयमेव।

यह 'प्राचां' ग्रहण विकल्प के लिये है, और यह व्यवस्था से माना जाता है। इससे लिङ्, लुट, लिट् और स्यादि विषय में यह सूत्र नहीं प्रवृत्त होता—चुकुषे पादः स्वयमेव। ररञ्जे वस्त्रं स्वयमेव। कोषिषीष्ट पादः स्वयमेव। रङ्क्षीष्ट वस्त्रं स्वयमेव। कोषिष्यते पादः स्वयमेव। रङ्क्ष्यते वस्त्रं स्वयमेव। अकोषि पादः स्वयमेव। अरञ्जि वस्त्रं स्वयमेव॥

इति कर्मकर्तृप्रक्रिया समाप्ता॥ २१॥

---

(२२) अथ लकारार्थप्रक्रिया ॥

७४४–अभिज्ञावचने लृट् ॥ ३ । २ । ११२ ॥

अभिज्ञावचन अर्थात् स्मृतिबोधक उपपद हो तो धातु से लृट् प्रत्यय हो।

यह लङ् का अपवाद है। अभिजानासि वत्स कश्मीरेषु वत्स्यामः। स्मरसि बुध्यसे चेतयसे वा मित्र काश्यां पठिष्यामः ॥

७४५–न यदि ॥ ३ । २ । ११३ ॥

यत् शब्द सहित अभिज्ञावचन उपपद हो तो लृट् प्रत्यय न हो।

अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरेष्ववसाम, यहां निवासमात्र का स्मरण है, इससे यह अगले सूत्र का विषय नहीं है ॥

७४६–विभाषा साकाङ्क्षे ॥ ३ । २ । ११४ ।

अभिज्ञावचन उपपद हो और यत् शब्द उपपद हो वा न हो, तो धातु से विकल्प करके लृट् हो, साकाङ्क्ष अर्थ में।

अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः, तत्र सक्तून् पास्यामः। अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेष्ववसाम, तत्र सक्तूनपिबाम।

यद्—अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरान् गमिष्यामः, यत्कश्मीरानगच्छाम, यत्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे, यत्तत्रौदनमभुञ्जमहि।

अयद्—अभिजानासि देवदत्त कश्मीरान् गमिष्यामः, कश्मीरानगच्छाम, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे, तत्रौदनमभुञ्जमहि।

लक्ष्य और लक्षण के सम्बन्ध से वक्ता की आकाङ्क्षा होती है। उक्त उदाहरणों में निवास और गमन लक्षण है, और पान भोजन लक्ष्य है॥

(२९) से **लिट्** विधान कर चुके हैं, यहाँ उत्तम पुरुष के विषय में विशेष कहते हैं—

७४७–वा०–सुप्तमत्तयोरुत्तमः ॥ ३। २। ११५॥

सुप्त और मत्त के विषय में पारोक्ष्यभाव से उत्तम पुरुष होता है।

सुप्तोऽहं किल विललाप। सुप्तो न्वहं किल विललाप। मत्तो न्वहं किल विललाप॥

७४८–वा०–परोक्षे लिडत्यन्तापह्नवे च ॥ ३।२। ११५॥

'परोक्षे लिट्' यहां अत्यन्त अपह्नव अर्थात् मिथ्यापन में भी लिट् कहना चाहिये।

नो खण्डिकान् जगाम। नो कलिङ्गान् जगाम॥

७४९–हशश्वतोर्लङ् च ॥ ३। २। ११६॥

भूत अनद्यतन परोक्ष अर्थ में ह और शश्वत् शब्द उपपद हों तो धातु से लङ् और लिट् हो।

इति ह अकरोत्। इति ह चकार। शश्वदकरोत्। शश्वच्चकार॥

७५०–प्रश्ने चासन्नकाले ॥ ३। २। ११७॥

समीप काल के पूछने में जो भूत अनद्यतन परोक्ष है, उस अर्थ में धातु से लङ् और लिट् हो।

अगच्छत् किं देवदत्तः। जगाम किं देवदत्तः—कोई किसी से पूछता है कि क्या देवदत्त गया? 'प्रश्न' ग्रहण से अन्यत्र—जगाम देवदत्तः, यहां ... त हुआ। आसन्न काल से अन्यत्र—भवन्तं पृच्छामि जघान कंसं किल वासुदेवः॥

७५१–लट् स्मे ।। ३ । २ । ११८ ।।

भूत अनद्यतन परोक्ष काल में स्म उपपद हो तो धातु से लट् प्रत्यय हो। यजति स्म युधिष्ठिरः । स्म से अन्यत्र—इयाज युधिष्ठिरः ।।

७५२–अपरोक्षे च ।। ३ । २ । ११९ ।।

भूत अनद्यतन अपरोक्ष काल में भी स्म उपपद हो तो धातु से लट् हो। एवं पिता ब्रवीति स्म ।।

७५३–ननौ पृष्टप्रतिवचने ।। ३ । २ । १२० ।।

ननु शब्द उपपद हो तो प्रश्न के उत्तर देने अर्थ में, भूतकाल में वर्त्तमान धातु से लट् प्रत्यय हो।

अकार्षीः किम् ? ननु करोमि भोः । अवोचतत्र किं देवदत्तः ? ननु ब्रवीमि भोः । पृष्टप्रतिवचन से अन्यत्र—नन्वकार्षीन् माणवकः ।।

७५४–नन्वोर्विभाषा ।। ३ । २ । १२१ ।।

न और नु उपपद हों तो प्रश्न के उत्तर देने में, भूतकाल में वर्त्तमान धातु से विकल्प करके लट् हो।

अकार्षीः किम् ? न करोमि नाकार्षं वा । नु करोमि न्वकार्षं वा ।।

७५५–पुरि लुङ् चास्मे ।। ३ । २ । १२२ ।।

स्म रहित पुरा शब्द उपपद हो तो भूत अनद्यतन काल में धातु से विकल्प करके लुङ् और लट् हों।'

वसन्तीह पुरा छात्राः । अवात्सुरिह पुरा छात्राः । पक्ष में यथाप्राप्त हो—अवसन्निह पुरा छात्राः । ऊषुरिह पुरा छात्राः । 'अस्म' ग्रहण से यहां लुङ् न हुआ—धर्मेण स्म पुरा कुरवो युध्यन्ते ।।

७५६–यावत्पुरानिपातयोर्लट् ।। ३ । ३ । ४ ।।

निपातसंज्ञक यावत् और पुरा शब्द उपपद हों तो भविष्यत् काल में धातु से लट् प्रत्यय हो ।

यावद् भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते । 'निपात' ग्रहण से यहां न हुआ—यावद्दास्यति तावद्भोक्ष्यते । पुरा यास्यति, यहां 'पुरा' तृतीया का एकवचन है ।।

७५७–विभाषा कदाकर्ह्योः ।। ३ । ३ । ५ ।।

कदा और कर्हि शब्द उपपद हों तो भविष्यत् काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो ।

कदा भुङ्क्ते । कर्हि भुङ्क्ते । कदा भोक्ष्यते, भोक्ता । कर्हि भोक्ष्यते, भोक्ता ।।

७५८–किंवृत्ते लिप्सायाम् ।। ३ । ३ । ६ ।।

किं शब्द का प्रयोग उपपद हो तो भविष्यत्कालिक धातु से लाभ की इच्छा अर्थ में विकल्प करके लट् प्रत्यय हो ।

कं कतरं कतमं वा ददासि, दास्यसि, दातासि वा—कोई लाभ की इच्छावाला पूछता है कि तुम किसको दोगे ? लिप्सा अर्थ से अन्यत्र—कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति ।।

७५९–लिप्स्यमानसिद्धौ च ।। ३ । ३ । ७ ।।

अभीष्ट पदार्थ की सिद्धि गम्यमान हो तो भविष्यत्काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो ।

यो धनं ददाति स स्वर्गं गच्छति । यो धनं दास्यति स स्वर्गं गमिष्यति । यो धनं दाता स स्वर्गं गन्ता—धन देने से स्वर्ग प्राप्त होता है, इस प्रकार धन चाहता हुआ देनेवाले को उत्साह कराता है ।।

७६०–लोडर्थलक्षणे च ।। ३ । ३ । ८ ।।

विध्यादिक जो लोट् के अर्थ हैं, वे जिससे जाने जावें, उस अर्थ में वर्तमान धातु से भविष्यत् काल में विकल्प करके लट् प्रत्यय हो ।

उपाध्यायश्चेदागच्छति, आगमिष्यति, आगन्ता वा, अथ त्वं व्याकरणमधीष्व, यहां उपाध्याय का आगम पढ़ाने की प्रेरणा को विदित करता है ॥

७६१–लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ ३ । ३ । ९ ॥

लोडर्थ लक्षण में वर्तमान धातु से दो घड़ी से ऊपर जो भविष्यत् काल, उसमें विकल्प करके लिङ् और लट् हों।

उपाध्यायश्चेदागच्छति, आगच्छेत्, आगमिष्यति, आगन्ता वा, अथ त्वं छन्दोऽधीष्व ॥

७६२–वर्त्तमान सामीप्ये वर्त्तमानवद्वा ॥ ३ । ३ । १३१ ॥

वर्त्तमान के समीप का जो भूत वा भविष्यत् काल, उसमें वर्त्तमान धातु से वर्त्तमानवत् प्रत्यय विकल्प करके हों।

अर्थात् (वर्त्तमाने लट् ॥ ३ । २ । १२३) इस सूत्र से लेकर (उणादयो बहुलम् ॥ ३ । ३ । १) इस सूत्र पर्यन्त वर्त्तमानाधिकार में जिस जिस निमित्त से जो जो प्रत्यय कहे हैं, वे उन्हीं निमित्तों से वर्त्तमानसमीप भूत वा भविष्यत् काल में विकल्प करके हों।

कदा देवदत्तागतोसि ? अयमागच्छामि। आगच्छन्तमेव मां विद्धि। अयमागमम्। एषोऽस्म्यागतः। कदा देवदत्त गमिष्यसि ? एष गच्छामि। गच्छन्तमेव मां विद्धि। एष गमिष्यामि। गन्तास्मि। 'सामीप्य' ग्रहण से अतिकाल की विवक्षा में न हो—परुदगच्छत् पाटलिपुत्रम्, वर्षेण गमिष्यति ॥

७६३–आशंसायां भूतवच्च ॥ ३ । ३ । १३२ ॥

आशंसा गम्यमान हो तो भविष्यत् काल में धातु से विकल्प करके भूतवत् और वर्त्तमानवत् प्रत्यय हों।

अप्राप्तप्रियवस्तु के पाने की इच्छा करने को 'आशंसा' कहते हैं— उपाध्यायश्चेदागमत्, आगतः, आगच्छति, आगमिष्यति वा, एते वयं

व्याकरणमध्यगीष्महि, एते वयं व्याकरणमधीतवन्तः, अधीमहे, अध्येष्यामहे, यहां "सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः" [परि० ८८]. इस परिभाषाबल से लङ् और लिट् नहीं होते हैं। 'आशंसा' ग्रहण से यहां न हुआ—आगमिष्यति ॥

७६४—क्षिप्रवचने लृट् ॥ ३ । ३ । १३३ ॥

क्षिप्रवाची पद उपपद हो और आशंसा गम्यमान हो तो भविष्यत् काल में धातु से लृट् प्रत्यय हो।

यह पिछले सूत्र का अपवाद है। उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रमागमिष्यति क्षिप्रं व्याकरणमध्येष्यामहे। शीघ्रमाशु त्वरितमध्येष्यामहे वा ॥

७६५—आशंसावचने लिङ् ॥ ३ । ३ । १३४ ॥

आशंसा कहनेवाला पद उपपद हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो।

यह (७६३) सूत्र का अपवाद है। उपाध्यायश्चेदागच्छेत्, आशंसेऽधीयीय। आशंसेऽवकल्पये युक्तोऽधीयीय। आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥

७६६—नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ॥३।३।१३५॥

क्रिया के प्रबन्ध और सामीप्य में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हों।

अर्थात् भूत अनद्यतन में लङ् और भविष्यत् अनद्यतन में लुट् विहित हैं, वे न हों। क्रियाप्रबन्ध=क्रिया का निरन्तर होना, सामीप्य=तुल्य जातीय से अव्यवधान।

क्रियाप्रबन्ध—यावज्जीवं भृशमन्नमदात्। भृशमन्नं दास्यति। यावज्जीवं पुत्रोऽध्यापिपत्। यावज्जीवमध्यापयिष्यति। सामीप्य—येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधित, सोमेनायष्ट, गामदित। येयमावस्याऽऽगामिनी, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधास्यते, सोमेन यक्ष्यते, स गां दास्यते ॥

७६७–भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् ।।३।३।१३६।।

उरले भाग को लेकर मर्यादा हो तो भविष्यत् काल में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हों।

आपाटलिपुत्राद् योऽयमध्वा गन्तव्यस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र स्थास्यामि।'भविष्यत्' के ग्रहण से यहां न हुआ—आपाटलिपुत्राद्योऽयमध्वा-गतस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि।

'मर्यादावचन' से अन्यत्र—योऽयमध्वा निरवधिको गन्तव्यस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र द्विरोदनं भोक्तास्महे। 'अवरस्मिन्' ग्रहण से यहां न हुआ—आपाटलिपुत्राद् योऽयमध्वा गन्तव्यस्तस्य यत् परं कौशाम्ब्यास्तत्र द्विरोदनं भोक्तास्महे।।

७६८–कालविभागे चानहोरात्राणाम् ।।३।३।१३७।।

समय की मर्यादा के विभाग में उरले विभाग की अपेक्षा हो तो भविष्यत् काल में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हों, जो वह मर्यादाविभाग अहोरात्र-सम्बन्धी न हो।

योऽयं संवत्सर आगामी तत्र यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे। 'भविष्यत्' ग्रहण से यहां न हुआ—योऽयं वत्सरोऽतीतस्तस्य यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि।

'मर्यादा' से अन्यत्र—योऽयं निरवधिकः काल आगामी तस्य यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। अवरभाग की अपेक्षा में यह होगा और परभाग में अगले सूत्र से विधान करेंगे।

'अनहोरात्र' ग्रहण से यहां न हुआ—योऽयं मास आगामी तस्य योऽवरः पञ्चदशरात्रस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। योऽयं त्रिंशद्रात्र आगामी तस्य योऽवरोऽर्द्धमासस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे, तत्र सक्तून् पातास्मः। सब प्रकार से अहोरात्र के स्पर्श में प्रतिषेध है।।

७६९–परस्मिन् विभाषा ।। ३ । ३ । १३८ ।।

समय की मर्यादा के विभाग में परभाग की अपेक्षा हो तो विकल्प करके अनद्यतनवत् प्रत्यय हों, जो वह मर्यादावचन अहोरात्र-सम्बन्धी विभाग में न हो ।

योऽयं संवत्सर आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, अध्येतास्महे । 'अनहोरात्र' से अन्यत्र—योऽयं त्रिंशद्रात्र आगामी तस्य यः परः पञ्चदशरात्रस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे । भविष्यत्काल से अन्यत्र—[योऽयं संवत्सरो व्यतीतः तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि । मर्यादा से अन्यत्र—योऽयमपरिमितः काल आगामी तस्य यत्परं कार्तिक्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे । कालविभाग से अन्यत्र—] योऽयमध्वा गन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यत्परं कौशाम्ब्यास्तत्र अध्येतास्महे ।।

(९३) सूत्र से लृङ् विधान कर चुके हैं, उसका विशेष व्याख्यान करते हैं—

दक्षिणेन चेदायास्यन्न शकटं पर्य्याभविष्यत् । यदि कमलकमाह्वास्यन्न शकटं पर्याभविष्यत् । अभोक्ष्यत् भवान् घृतेन, यदि मत्समीपमागमिष्यत्, यहां सर्वत्र भविष्यत्काल सम्बन्धी कार्य का न होना हेतुमान् और दक्षिणमार्गगमन आदि हेतु हैं, तथा भविष्यत्कालविषयक हेतु और हेतुमान् की अतिपत्ति वाक्य में प्रतीत होती है ।।

७७०–भूते च ।। ३ । ३ । १४० ।।

लिङ्निमित्त में क्रियातिपत्ति हो तो भूतकाल में भी लृङ् प्रत्यय हो ।

दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः, अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी, यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत्, तदाऽभोक्ष्यत, न तु भुक्तवान्, अन्येन पथा स गतः ।।

७७१—वोताप्योः ॥ ३ । ३ । १४१ ॥

यहां से लेकर (उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ॥ ३ । ३ । १५२) इस सूत्र पर्य्यन्त जो विधान करेंगे, वहां भूतकाल में लिङ् के निमित्त में क्रियातिपत्ति हो तो लृङ् विकल्प करके होता है।

यह अधिकार समझना चाहिये। (विभाषा कथमि० ॥ ३ । ३ । १४३) यह सूत्र आगे कहेंगे इसके विषय में—कथं नाम तत्रभवान् वृषलमयाजयिष्यत्, याजयेद् वा ॥

७७२—गर्हायां लडपिजात्वोः ॥ ३ । ३ । १४२ ॥

कुत्सा अर्थ में अपि और जातु उपपद हों तो धातु से लट् प्रत्यय हो, सामान्यकाल में।

कालविशेष विहित जो प्रत्यय हैं, उनको यह परत्व से बाध लेता है। अपि तत्रभवान् वृषलं याजयति, जातु तत्रभवान् वृषलं याजयति, गर्हामहे, अहो अन्याय्यमेतत्। लिङ् निमित्त के अभाव से यहां क्रियातिपत्ति में लृङ् नहीं होता है ॥

७७३—विभाषा कथमि लिङ् च ॥ ३ । ३ । १४३ ॥

कथम् शब्द उपपद हो और निन्दा पाई जाय, तो धातु से लिङ् और लट् प्रत्यय विकल्प करके हों।

कथं नाम तत्रभवान् वृषलं याजयेत् ? कथं तत्रभवान् वृषलं याजयति? विकल्प पक्ष में—कथं नाम तत्रभवान् वृषलं याजयिष्यति ? कथं नाम तत्रभवान् वृषलं याजयिता, ? इत्यादि।

यहां लिङ् निमित्त है, इससे भूतकाल की क्रियातिपत्ति विवक्षा में विकल्प करके और भविष्यत्काल की में नित्य लृङ् होता है ॥

७७४—किंवृत्ते लिङ्लृटौ ॥ ३ । ३ । १४४ ॥

किम् शब्द का प्रयोग उपपद हो और गर्हा पाई जाय, तो धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय हों।

यहां लिङ् ग्रहण लट् की निवृत्ति के लिये है। को नाम वृषलो यं तत्रभवान् याजयेत्; यं तत्रभवान् वृषलं याजयिष्यति। कतरो नाम तत्रभवान् वृषलं याजयेत्; याजयिष्यति।

भूतकाल की क्रियातिपत्ति में विकल्प करके लृङ् और भविष्यत् सम्बन्धी में नित्य ही लृङ् होगा—को नाम वृषलो यं तत्रभवान् अयाजयिष्यत्॥

७७५–अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि॥ ३। ३। १४४॥

असंभावना और असहन अर्थ में किम् शब्द का प्रयोग उपपद हो वा न हो तो धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय हो।

यहां अधिक अच् वाले 'अनवक्लृप्ति' शब्द का पूर्वनिपात किंवृत्त और अकिंवृत्त से अर्थों के यथासंख्य न होने का प्रकाशक है [अनवक्लृप्ति—नावकल्पयामि न संभावयामि यद्भवान् गुरुं निन्देत्; यद्] भवान् गुरुं निन्दिष्यति। कः कतरः कतमो वा गुरुं निन्देत्, निन्दिष्यति वा। अमर्ष—न मर्षयामि यत्तत्रभवान् गुरुं निन्देत्, निन्दिष्यति वा। को नाम गुरुं निन्देत्, निन्दिष्यति वा।

लृङ् पूर्वनियम के तुल्य होता है। जैसे—नावकल्पयामि तत्रभवान् वृषलमयाजयिष्यत्॥

७७६–किंकिलास्त्यर्थेषु लृट्॥ ३। ३। १४६॥

किंकिल और अस्त्यर्थ के धातु उपपद हों तो अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ में धातु से लृट् प्रत्यय हो।

किंकिल शब्द क्रोध का प्रकाशक है। अस्त्यर्थक—अस्ति, भवति, विद्यति। यह लृट् लिङ् का अपवाद है। किंकिल नाम तत्रभवान् वृषलं याजयिष्यति। अस्ति नाम तत्रभवान् वृषलं याजयिष्यति, न श्रद्दधे, न मर्षयामि इत्यादि। यहां लृङ् नहीं प्राप्त है॥

७७७–जातुयदोर्लिङ्॥ ३। ३। १४७॥

जातु और यद् उपपद हों तो [अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ में] धातु से लिङ् हो।

यह लृट् का अपवाद है। जातु तत्रभवान् गुरुं निन्देत्। यन्नाम तत्रभवान् गुरुं निन्देत्, नावकल्पयामि, न मर्षयामि। लृङ् पूर्ववत्॥

७७८-वा०-जातुयदोर्लिङ्विधाने यदायद्योरुपसंख्यानम्॥ ३।३।१४७॥

यदा भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत्। यदि भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत्, नावकल्पयामि, न मर्षयामि। भूत, भविष्यत् क्रियातिपत्ति विवक्षा में पूर्ववत् लृङ् होगा॥

७७९-यच्च यत्रयोः॥ ३।३।१४८॥

यच्च वा यत्र उपपद हो और अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष गम्यमान हो, तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो।

यह लृट् का अपवाद है। यच्च तत्रभवान् गुरुं निन्देत्। यत्र तत्रभवान् गुरुं निन्देत्, नावकल्पयामि, न मर्षयामि। क्रियातिपत्ति में पूर्ववत् लृङ् होता है॥

७८०-गर्हायां च॥ ३।३।१४९॥

गर्हा गम्यमान हो और यच्च, यत्र उपपद हों, तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो।

यह सब लकारों का अपवाद है। यच्च यत्र वा तत्रभवान् वृषलं याजयेत्, गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्। क्रियातिपत्ति में पूर्ववत् लृङ् होता है॥

७८१-चित्रीकरणे च॥ ३।३।१५०॥

यच्च यत्र उपपद हों और चित्रीकरण गम्यमान हो, तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो।

'चित्रीकरण' आश्चर्य्य अद्भुत विस्मय करने योग्य को कहते हैं। यच्च यत्र वा भवान् वृषलं याजयेत्, आश्चर्यमेतत्!! क्रियातिपत्ति में यथाप्राप्त लृङ् होता है॥

७८२–शेषे लृडयदौ ।। ३ । ३ । १५१ ।।

यदि शब्द भिन्न यच्च यत्र से अन्य उपपद हो और चित्रीकरण गम्यमान हो, तो धातु से लृट् प्रत्यय हो ।

यह सब लकारों का अपवाद है । आश्चर्यं चित्रमद्भुतम् अन्धो नाम पर्वतमारोक्ष्यति; बधिरो नाम व्याकरणमध्येष्यते । 'अयदि' ग्रहण से यहां न हुआ—आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत । इस विषय में लिङ् निमित्त के अभाव से लृङ् नहीं होता ।।

७८३–उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ।। ३ । ३ । १५२ ।।

समानार्थक उत और अपि उपपद हों, तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो ।

अङ्गीकार अर्थ में उत, अपि समानार्थ हैं । उत कुर्य्यात् । अपि कुर्य्यात् । उताधीयीत । अप्यधीयीत । हां यह करेगा वा पढ़ेगा ।

'समर्थ' ग्रहण से यहां न हुआ—उत दण्डः पतिष्यति । अपि द्वारं धास्यति । दण्ड गिरेगा, द्वार को ढांप लेगा । यहां प्रश्नप्रच्छादन गम्यमान है ।

(वोताप्योः ।। ३ । ३ । १४१ ।।) यह नियम पूरा हो गया । अब यहां से लेकर भूतकाल में भी क्रियातिपत्ति में नित्य लृङ् होगा ।।

७८४–कामप्रवेदनेऽकच्चिति ।। ३ । ३ । १५३ ।।

कच्चित् शब्द उपपद न हो, तो अपने अभिप्राय के प्रकाश करने में धातु से लिङ् प्रत्यय हो ।

यह सब लकारों का अपवाद है । कामो मे गच्छेद् भवान् । अभिलाषा इच्छा वा मम भुञ्जीत भवान् । 'अकच्चित्' कहने से यहां न हुआ—कच्चिज्जीवति ते माता ।।

७८५–संभावनेऽलमिति चेत्सिद्धाप्रयोगे ।। ३।३।१५४।।

जो सिद्ध अलम् शब्द का प्रयोग न किया जाय, तो अलमर्थ सम्भावन में वर्त्तमान धातु से लिङ् प्रत्यय हो।

जहां वाक्य में अलम् शब्द का अर्थ परिपूर्णता अर्थात् प्रौढपन गम्यमान हो और उसका प्रयोग न हो, वहां सिद्ध अलम् का अप्रयोग तथा क्रियाओं में योग्यता का निश्चय करना 'सम्भावन' समझना चाहिये। यह सब लकारों का अपवाद है।

अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात्। अपि द्रोणपाकं भुञ्जीत। 'अलम्' ग्रहण से यहां न हुआ—विदेशस्थो देवदत्तः प्रायेण ग्रामं गमिष्यति। 'सिद्धाप्रयोग' ग्रहण से यहां न हुआ—अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति। भूत वा भविष्यत्काल की क्रियातिपत्ति में नित्य लृङ् होता है ।।

७८६–विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि ।।३।३।१५५।।

यद्शब्द वर्जित अलमर्थ संभावन अर्थ का कहनेवाला धातु उपपद हो, तो धातु से विकल्प करके लिङ् प्रत्यय हो, जो सिद्ध अलम् का अप्रयोग हो।

पूर्वसूत्र से नित्य लिङ् प्राप्त था, विकल्प के लिये यह सूत्र है। संभावयामि भुञ्जीत भवान्। संभावयामि भोक्ष्यते। भवान्।

'अयद्' ग्रहण से यहां न हुआ—संभावयामि यद् भुञ्जीत भवान् ।।

७८७–हेतुहेतुमतोर्लिङ् ।। ३ । ३ । १५६ ।।

हेतु कारण और हेतुमान् जिसमें कारण रहे अर्थात् फल, उनमें, वर्त्तमान जो धातु हो उससे लिङ् प्रत्यय विकल्प करके हो।

दक्षिणेन चेद् यायात् न शकटं पर्याभवेत्, यहां दक्षिणमार्ग से यान हेतु और अपरिपूर्ति होना फल है।

लिङ् वर्त्तमान था, पुनर्लिङ् ग्रहण विशेष काल के संग्रह करने के लिये है। इससे यह लकार भविष्यत्काल में होता है। द्वितीय पक्ष में लृट—दक्षिणेन चेद्यास्यति न शकटं पर्याभविष्यति। 'भविष्यत्' के नियम से यहां न हुआ—हन्तीति पलायते। वर्षतीति धावति। क्रियातिपत्ति में लृङ् होता है॥

७८८—इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥ ३ । ३ । १५७ ॥

इच्छा अर्थवाले धातु उपपद हों, तो लिङ् और लोट् प्रत्यय हों।

यह सब लकारों का अपवाद है। इच्छामि भुञ्जीत भवान्। इच्छामि भुङ्क्तां भवान्। कामये प्रार्थये पठतु भवान्।

कामप्रवेदने चेत् ॥ महाभाष्य·३। ३। १५७ ॥ जो अत्यन्त इच्छा विदित करना गम्यमान हो, तो उक्त लिङ् प्रत्यय हो, यह कहना चाहिये। अर्थात् यहां न हो—इच्छन् कटं करोति ॥

७८९—लिङ् च ॥ ३ । ३ । १५९ ॥

समानकर्त्तावाले इच्छार्थक धातु उपपद हों, तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो। भुञ्जीयेतीच्छति। अधीयीयेतीच्छति। क्रियातिपत्ति में लृङ् होता है॥

७९०—इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्त्तमाने ॥ ३ । ३ । १६० ॥

इच्छार्थक धातुओं से वर्त्तमान काल में विकल्प करके लिङ् प्रत्यय होता है।

इच्छति; इच्छेत्। कामयते; कामयेत। वष्टि; उश्यात्।

प्रथम (७७, ६४) सूत्रों से लिङ् और लोट् का विधान किया है। अब उस विषय के क्रम से उदाहरण देते हैं। जैसे—विधि—भवान् पठेत्। ग्रामं भवानागच्छेत्। निमन्त्रण—इह भवान् भुञ्जीत। आमन्त्रण—इह भवानासीत्। अधीष्ट—भवान्पुत्रमध्यापयेत्। संप्रश्न—किं भो वेदमधीयीय। प्रार्थन—अस्ति मे प्रार्थना व्याकरणमधीयीय। इसी प्रकार लोट् भी होगा—भवान् पठतु इत्यादि ॥

७९१–प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ।। ३ । ३ । १६३ ।।

प्रैष=प्रेरणा करना, अतिसर्ग=इच्छापूर्वक आज्ञा देना, प्राप्तकाल=कार्य के समय का अवसर पाना, इन अर्थों में धातु से कृत्यसंज्ञक और लोट्* प्रत्यय हो ।

कृत्य—भवता कटः करणीयः । कर्त्तव्यः कटः; कृत्यः, कार्यं इत्यादि । लोट्—करोतु, कटं भवानिह प्रेषितः, भवानतिसृष्टः, भवतः प्राप्तकालः कटकरणे ।।

७९२–लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ।। ३ । ३ । १६४ ।।

प्रैषादि अर्थ गम्यमान हों, तो दो घड़ी से ऊपर जो भविष्यत्काल है, उसमें वर्त्तमान धातु से लिङ् और यथाप्राप्त कृत्य और लोट् भी हों ।

मुहूर्त्तादुपरि भवता खलु कटः कर्त्तव्यः करणीयः कार्य्यः । भवान् खलु कटः कुर्य्यात् । भवान् खलु कटं करोतु । भवानिह प्रेषितः, अतिसृष्टः, प्राप्तकालो वा ।।

७९३–स्मे लोट ।। ३ । ३ । १६५ ।।

प्रैषादि अर्थ गम्यमान हो और स्म शब्द उपपद हो, तो ऊर्ध्वमौहूर्तिक अर्थ में वर्त्तमान धातु से लोट् प्रत्यय हो ।

यह लिङ् और कृत्य प्रत्ययों का अपवाद है । मुहूर्त्तादूर्ध्वं भवान् कटं करोतु स्म । माणवकमध्यापयतु स्म ।।

---

* (प्रैषातिसर्ग० ।। ३ । ३ । १६३) सूत्र की व्याख्या में जो कौमुदीकार ने लोट् का अनुकर्षण कर केवल उसको प्राप्तकाल अर्थ ही के लिये माना है, यह उनका मानना असङ्गत है । क्योंकि उक्त सूत्र की व्याख्या जो महाभाष्यकार ने की है, उससे स्पष्ट विदित होता है कि प्रैषादि तीनों अर्थों में लोट्प्रत्यय होता है । यथा—अयं प्रैषादिष्वर्थेषु लोट् विधीयते । स विशेषविहितः सामान्यविहितान् कृत्यान्" इत्यादि ।। महाभाष्य ३।३।१६३।।

७६४–अधीष्टे च ।। ३ । ३ । १६६ ।।

सत्कारपूर्विका चेष्टा गम्यमान हो और स्म उपपद हो, तो धातु से लोट् प्रत्यय हो ।

यह लिङ् का अपवाद है । अङ्ग स्म ब्रह्मन् माणवकमध्यापय ।।

७६५–लिङ् यदि ।। ३ । ३ । १६८ ।।

काल, समय और वेला तथा यद् शब्द उपपद हो, तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो ।

यह तुमुन् प्रत्यय का अपवाद है । कालो यद् भुञ्जीत भवान् । समयो यद् भुञ्जीत भवान् । वेला यद् भुञ्जीत भवान् ।।

७६६–अर्हे कृत्यतृचश्च ।। ३ । ३ । १६९ ।।

अर्ह कर्त्ता वाच्य वा गम्यमान हो, तो धातु से कृत्य, तृच् और लिङ् प्रत्यय हों ।

भवता खलु कन्या वोढव्या, वाह्या, वहनीया वा । भवान् खलु कन्याया वोढा । भगवान् खलु कन्यां वहेत् ।।

७६७–शकि लिङ् च ।। ३ । ३ । १७२ ।।

शक्ति अर्थ में धातु से लिङ् और कृत्य प्रत्यय हों ।

भवता खलु भारो वोढव्यः; वहनीयः । भवान् खलु भारं वहेत्, भवानिह शक्तः ।।

७६८–माङि लुङ् ।। ३ । ३ । १७५ ।।

माङ् उपपद हो, तो धातु से लुङ् प्रत्यय हो ।

यह सब लकारों का अपवाद है । मा कार्षीत् ।।

७६९–स्मोत्तरे लङ् च ।। ३ । ३ । १७६ ।।

स्म जिससे परे हो वह माङ् शब्द उपपद हो, तो धातु से लङ् और लुङ् प्रत्यय हों ।

मा स्म करोत् । मा स्म कार्षीत् । मा स्म हरत् । मा स्म हार्षीत् ।।

८००–धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ।। ३ । ४ । १ ।।

धात्वर्थ सम्बन्धकाल में प्रत्यय हों, अर्थात् जिस जिस काल में प्रत्यय कहे हैं, उनसे अन्यत्र भी हों ।

अग्निष्टोमयाजी तव पुत्रो जनिता । कृतः कटः श्वो भविता । भाविकृत्यमासीत् । अग्निष्टोमयाजी यह भूतकाल और जनिता यह भविष्यत्काल में है । यहां भूतकाल जनिता के भविष्यत्काल का सम्बन्ध पाकर साधु होता है ।

अष्टाध्यायी के क्रम से प्रत्ययाधिकार वर्त्तमान था, तथापि यहां 'प्रत्यय' ग्रहण का यह प्रयोजन है कि धात्वधिकार से अन्य भी प्रत्यय धातु सम्बन्ध काल में हो जावें—गोमानासीत् । गोमान् भविता, यहां गावो विद्यन्तेऽस्य इस विग्रह से वर्त्तमानकाल में भी किया हुआ मतुप्, आसीत्, भविता इन क्रियापदों के सम्बन्ध से भूत और भविष्यत्काल का कहनेवाला होता है ।।

८०१–क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ।। ३ । ४ । २ ।।

क्रियासमभिहार = वार वार होना अर्थ में धातु से लोट् और उस लोट् के स्थान में परस्मैपद हि और आत्मनेपद स्व आदेश हों, तथा त और ध्वम् भावी लोट् के स्थान में हि और स्व विकल्प करके हों ।

यह सब लकारों का अपवाद है, क्योंकि सब लकारों के विषय में होता है ।।

८०२–समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ।। ३ । ४ । ३ ।।

अनेक क्रियाओं के अध्याहार में, धातु से विकल्प करके लोट् और उस लोट् के स्थान में यथोक्त हि और स्व आदेश हों ।।

८०३-यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ।। ३ । ४ । ४ ।।

पूर्वोक्त लोट् विधान में यथाविधि अनुप्रयोग हो, अर्थात् जिस धातु से लोट् विहित हो उसी धातु का संख्या, काल और पुरुष के नियम से पीछे प्रयोग हो ।।

८०४-समुच्चये सामान्यवचनस्य ।। ३ । ४ । ५ ।।

समुच्चय अर्थ में लोट् विधान हो, तो सामान्य अर्थ कहनेवाले धातु का अनुप्रयोग हो ।।

८०५-वा०-क्रियासमभिहारे द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।। ८ । १ । १२ ।।

क्रियासमभिहारार्थविहित लोट् के विषय में द्विर्वचन हो ।

क्रियासमभिहार में परस्मैपद लट् लकार—स भवान् लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति । इमौ लुनीतः । इमे लुनन्ति । लुनीहि लुनीहीत्येवात्वं लुनासि । युवां लुनीथः । यूयं लुनीथ । लुनीहि लुनीहीत्येवाहं लुनामि । आवां लुनीवः । वयं लुनीमः इत्यादि ।

आत्मनेपद—अधीष्वाधीष्वेत्येवायमधीते । इमावधीयाते । इमेऽधीयते इत्यादि । इस प्रकार सब लकारों में उदाहरण जानना चाहिये ।

क्रियासमभिहार में—दुग्धं पिब, चणकान् चर्व, इत्यभ्यवहरति । अन्नं भुङ्क्ष्व, दाधिकमास्वादस्वेत्यभ्यवहरते । त, ध्वम् के विषय में—दुग्धं पिब, चणकाञ्चर्वेत्यभ्यवहरत । अन्नं भुङ्क्ष्व, दाधिकमास्वादस्वेत्यभ्यवहरध्वे । दुग्धं पिबत, चणकाञ्चर्वतेत्यभ्यवहरत । अन्नं भुङ्ग्ध्वं, दाधिकमास्वादध्वमित्यवहरध्वे ।

इसी प्रकार क्रियासमभिहार और समुच्चय अर्थ में सब लकारों के विषय में लोट् होता है ।

८०६–छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ॥ ३ । ४ । ६ ॥

छन्दोविषयक धातुसम्बन्ध होने पर सामान्यकाल में धातु से विकल्प करके लुङ्, लङ् और लिट् प्रत्यय हों।

लुङ्—शकलाङ्गुष्ठकोऽकरत् । अहं तेभ्योऽकरन्नमः । लङ्—अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः । लिट्—अद्य ममार । अद्य म्रियते ॥

इति लकारार्थप्रक्रिया समाप्ता ॥ २२ ॥

---

(२३) षत्वप्रक्रिया ॥

—※—

८०७–अपदान्तस्य मूर्द्धन्यः ॥ ८ । ३ । ५५ ॥

अपदान्त सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो ।

यह अधिकार करते हैं, अष्टाध्यायी में इस पाद की समाप्तिपर्यन्त । यह तृतीयपाद का प्रकरण है । सिषेव । सुष्वाप । अग्निषु । वायुषु इत्यादि, यहां सर्वत्र (५६) सूत्र से षत्व हुआ है ।

'अपदान्त' ग्रहण इसलिये है कि—'अग्निस्तत्र' यहां मूर्द्धन्य न हो । सकार को षकार कहते तो धकार को ढकार भी कहना पड़ता, इसलिये मूर्द्धन्य शब्द पढ़ा है ॥

८०८–सहेः साडः सः ॥ ८ । ३ । ५६ ॥

साड्रूप सह धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो ।

जलाषाट् । तुराषाट् । पृतनाषाट् । 'साड्' ग्रहण से—तुरासाहम्, यहां नहीं होता । स को इसलिये कहा कि—आकार को न हो जावे ॥

८०९–इण्कोः ॥ ८ । ३ । ५७ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । अपदान्त सकार को मूर्द्धन्यादेश कहेंगे, सो इण् कवर्ग से ही परे हो ।

जैसे—कर्तृषु । हर्तृषु । वाक्+सु=वाक्षु । 'इण् कवर्ग से परे' नियम इसलिये है कि—दास्यति; असौ, यहां न हो ॥

८१०—नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।। ८ । ३ । ५८ ।।

नुम्, विसर्जनीय और शर् प्रत्याहार इनके व्यवधान में भी इण् कवर्ग से परे अपदान्त सकार को मूर्द्धन्यादेश हो ।

जैसे नुम् के व्यवधान में—'सर्पि+नुम्+स+जस्=सर्पींषि । हवींषि । यजूंषि इत्यादि । विसर्जनीय के व्यवधान में—सर्पिःषु। धनुःषु । यजुःषु इत्यादि । शर्व्यवधान में—सर्पिष्षु । यजुष्षु । हविष्षु इत्यादि ।

इस सूत्र में नुम् आदि के व्यवधान का पृथक् पृथक् प्रत्येक का ग्रहण है, इसलिये—निंस्से; निंस्स्व, यहां नुम् और शर् दो के व्यवधान में षत्व नहीं होता ।।

८११—स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् ।। ८ । ३ । ६१ ।।

षण्रूप सन् परे हो, तो स्तु और णिजन्त धातुओं के इणन्त अभ्यास से परे जो आदेश का सकार उसको मूर्द्धन्य आदेश हो ।

स्तोतुमिच्छति=तुष्टूषति । णिजन्त से—सेवयितुमिच्छति= सिषेवयिषति । सुष्वापयिषति । सिषञ्जयिषति ।

इन धातुओं में इण् कवर्ग से परे अन्य सूत्रों से षत्व हो जाता, फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि षण्रूप सन् के परे स्तु और णिजन्त के ही अभ्यास से परे षत्व हो । इस नियम से—सिसिक्षति; सुसूपति, यहां षत्व नहीं होता ।

स्तौति और णिजन्त के साथ 'एव' शब्द पढ़ने से यह नियम नहीं होता कि स्तौति और णिजन्त को सन् हो के षत्व हो, इससे—'तुष्टाव' आदि में षत्व हो जाता है, और 'सिसिक्षति' में षत्व नहीं होता ।

८१२—सः स्विदिस्वदिसहीनां ।। ८ । ३ । ६२ ।।

षण्रूप सन् परे हो, तो स्विदि, स्वदि और सहि इन णिजन्त धातुओं के इणन्त अभ्यास से परे अपदान्त सकार को सकारादेश ही हो ।

स्वेदयितुमिच्छति = सिस्वेदयिषति । सिस्वादयिषति । सिसाहयिषति, यहां सकार को सकार कहने से मूर्द्धन्य नहीं होता ॥

८१३—प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि ॥ ८ । ३ । ६३

(परिनिविभ्यः सेवसित० ॥ ८ । ३ । ७०) इस आगामी (८२०) सूत्र के सित शब्द से पहिले पहिले अट् के व्यवधान में भी मूर्द्धन्य आदेश होता है ॥

अपि शब्द के पढ़ने से अड्व्यवाय से अन्यत्र निषेध नहीं होता ॥

८१४—स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य ॥ ८ । ३ । ६४ ॥

(उपसर्गात् सुनो० ॥ ८ । ३ । ६५) इस अगले (८१५) सूत्र में [स्थित स्था धातु से लेकर] (परिनिविभ्यः से० ॥ ८ । ३ । ७०) आगामी (८२०) सूत्र [के सित धातु] से पहिले पहिले इण् कवर्ग से परे अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है ॥

८१५—उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् ॥ ८ । ३ । ६५ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त इण् से परे सुनोति, सुवधि, स्यति, स्तौति, स्तोभति, स्था, सेनय, सेध, सिच, सञ्ज और स्वञ्ज इनके सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो ।

सुनोति—अभिषुणोति । परिषुणोति । अभ्यषुणोत् । पर्यषुणोत । सुवति—अभिषुवति । परिषुवति । अभ्यष्यवत् । पर्यषुवत् । स्यति—अभिष्यति । परिष्यति । अभ्यष्यत् । पर्यष्यत् । स्तौति—अभिष्टौति । परिष्टौति । अभ्यष्टौत् । पर्यष्टौत् । स्तोभति—अभिष्टोभते । परिष्टोभते । अभ्यष्टोभत । पर्यष्टोभत ।

स्था—अभिष्ठास्यति । परिष्ठास्यति । अभ्यष्ठात् । पर्यष्ठात् । स्थादिकों में अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार को भी मूर्द्धन्य

कह चुके हैं—अभितष्ठौ। अभितष्ठतुः। परितष्ठौ। परितष्टतुः, यहाँ अभ्यास में सकार नहीं। सेनय—सेनया अभियाति = अभिषेणयति। अभ्यषेणयत्। पर्यषेणयत्। अभिषेणयितुमिच्छति = अभिषिषेणयति। परिषिषेणयिषति, यहाँ अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार को भी मूर्द्धन्य होता है।

सेध—अभिषेधति। परिषेधति। अभ्यषेधत्। अभिषिषेध। सिच—अभिषिञ्चति। परिषिञ्चति। पर्यषिञ्चत्। अभिषिषिक्षति। सञ्ज—अभिषजति। अभ्यषजत्। अभिषिषङ्क्षति। स्वञ्ज—अभिष्वजते। अभ्यष्वजत। पर्यष्वजत। परिषिष्वङ्क्षते।

सिध धातु का गुण क्रिया निर्देश है, इससे दिवादि के सिध धातु को षत्व नहीं होता—परिसिध्यति; पर्यसिध्यत् 'उपसर्ग' ग्रहण इसलिये है कि—दधि सिञ्चति, यहाँ षत्व न हो। निर्गताः सेचका अस्माद् ग्रामात् = निःसेचको ग्रामः, यहां निर् उपसर्ग का सम्बन्ध गमन क्रिया के साथ है, सेचक शब्द के साथ नहीं।

८१६—सदिरप्रतेः ॥ ८ । ३ । ६६ ॥

प्रतिभिन्न उपसर्गस्थ निमित्त से परे सद् धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो।

निषीदति। विषीदति। न्यषीदत्। व्यषीदत्। निषसाद। विषसाद। प्रति का निषेध होने से—प्रतिसीदति, यहाँ षत्व न हुआ॥

८१७—स्तन्भेः ॥ ८ । ३ । ६७ ॥

उपसर्गस्थ इण् से परे स्तन्भ धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश होवे।

अभिष्टभ्नाति। परिष्टभ्नाति। अभ्यष्टभ्नात्। अभितष्टम्भ। परितष्टम्भ। यहाँ प्रति के निषेध की अनुवृत्ति नहीं आती है—प्रतिष्टभ्नाति। प्रत्यष्टभ्नात्। प्रतितष्टम्भ। यहाँ 'स्तम्भ' धातु को ही सूत्रकार ने नकारोपध पढ़ा है॥

८१८–अवाच्चालम्बनाविदूर्य्ययोः ।। ८ । ३ । ६८ ।।

आश्रय और कुछ समीप होने अर्थ में, अव उपसर्ग से परे स्तन्भ धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो ।

आलम्बन—अवष्टभ्यास्ते । अवष्टभ्य तिष्ठति । सामीप्य—अवष्टब्धा सेना । अवष्टब्धा शरत् । आलम्बन और अविदूर्य अर्थ से अन्यत्र अवस्तब्धो वृषलः शीतेन, यहाँ षत्व नहीं होता । अव उपसर्ग इणन्त नहीं है, इसलिये यह सूत्र पढ़ा है, नहीं तो पूर्वसूत्र से षत्व हो ही जाता ।।

८१९–वेश्च स्वनो भोजने ।। ८ । ३ । ६९ ।।

वि और अव उपसर्ग से परे भोजन अर्थ में स्वन धातु के सकार को मूर्द्धन्य हो ।

विष्वणति । व्यष्वणत् । विषष्वाण । अवष्वणति । अवाष्वणत् । अवषष्वाण । भोजन अर्थ से अन्यत्र—विस्वनति मृदङ्गः । अवस्वनति वीणा, यहाँ शब्द अर्थ में षत्व नहीं होता ।।

८२०–परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम् ।। ८ । ३ । ७० ।।

परि, नि, वि उपसर्गों से परे सेव, सित, सय, सिवु, सह, सुट्, स्तु और स्वञ्ज के सकार को मूर्द्धन्यादेश होवे ।

सेव—परिषेवते । निषेवते । विषेवते । पर्यषेवत । न्यषेवत । व्यषेवत । परिषिषेविषते । विषिषेविषते । सित—परिषितः । निषितः । विषितः । सय—परिषयः । निषयः ।

सिवु परिषीव्यति । निषीव्यति । विषीव्यति । पर्यषीव्यत्; [पर्यसीव्यत् ।] न्यषीव्यत्; [न्यसीव्यत् ।] व्यषीव्यत्; [व्यसीव्यत् ।] यहाँ सिव आदि में अट् के व्यवधान में अगले सूत्र (८२१) से षत्व विकल्प है । सह—परिषहते । निषहते । विषहते । पर्यषहत । न्यषहत । व्यषहत ।

पर्यसहत । न्यसहत । व्यसहत । सुट्—परिष्करोति [पर्यष्करोत्;] पर्यस्करोत् । स्तु—परिष्टौति । निष्टौति । विष्टौति । पर्यष्टौत्; पर्यस्तौत्, स्वञ्ज—परिष्वजते । विष्वजते । पर्यष्वजत् । पर्यस्वजत् ।

स्तु और स्वञ्ज धातु पूर्व (उपसर्गात्सुनोति० ॥ ८ । ३ । ६५) सूत्र (८१५) में भी पढ़े हैं, उससे षत्व हो जाता, फिर यहाँ पढ़ने का यही प्रयोजन है कि अगले सूत्र से अट् के व्यवधान में विकल्प से षत्व होवे ॥

८२१—सिवादीनां वाऽड्व्यायेऽपि ॥ ८ । ३ । ७१ ॥

अट् के व्यवधान में भी परि, नि, वि, इन उपसर्गों से परे पूर्वसूत्रोक्त सिवादिकों के सकार को विकल्प से मूर्द्धन्य आदेश हो ।

इस सूत्र के उदाहरण पिछले सूत्र में दे चुके हैं—पर्यषहत; पर्यसहत इत्यादि ॥

८२२—अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु ॥ ८ । ३ । ७२ ॥

अप्राणी अभिधेय हो, तो अनु, वि, परि, अभि, नि इन उपसर्गों से परे स्यन्द धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो विकल्प से ।

अनुष्यन्दते । विष्यन्दते । परिष्यन्दते । अभिष्यन्दते । निष्यन्दते तैलम् । अनुस्यन्दते । विस्यन्दते । परिस्यन्दते । अभिस्यन्दते । निस्यन्दते ।

'अप्राणि' ग्रहण से यहाँ न हुआ अनुस्यन्दते मत्स्य उदके । अनुस्यन्दते हस्ती । 'अप्राणिषु' यह पर्य्युदास प्रतिषेध है, इससे जहाँ प्राणि-अप्राणि दोनों का विषय है, वहाँ भी मूर्द्धन्यादेश हो जाता है । यहाँ ऐसा भाष्यकार का इङ्गित मालूम होता है—अनुष्यन्देते मत्स्योदके ॥

८२३—वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् ॥ ८ । ३ । ७३ ॥

निष्ठा प्रत्यय परे न हो, तो वि उपसर्ग से परे स्कन्द धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो ।

विष्कन्ता; विस्कन्ता। विष्कन्तुम्; विस्कन्तुम्। विष्कन्तव्यम्; विस्कन्तव्यम्। 'अनिष्ठा' ग्रहण से यहाँ न हुआ—विस्कन्नः॥

८२४–परेश्च॥ ८। ३। ७४॥

परि उपसर्ग से परे स्कन्द धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश विकल्प करके हो।

परिष्कन्ता। परिष्कन्तुम्। परिष्कन्तव्यम्। परिस्कन्ता। परिस्कन्तुम्। परिस्कन्तव्यम्।

यह सूत्र जो पिछले सूत्र से अलग किया है, इससे जानना चाहिये कि पिछले सूत्र से यहाँ 'अनिष्ठायाम्' इस पद की अनुवृत्ति नहीं आती है॥

८२५–परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु॥ ८। ३। ७५॥

प्राच्यभरत अभिधेय हों, तो 'परिस्कन्द' यहाँ मूर्द्धन्यादेश का अभाव निपातन है।

परिस्कन्दः। प्राच्यभरतों से अन्यत्र—परिष्कन्दः, यह होता है॥

८२६–स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः॥ ८। ३। ७६॥

निस, नि, वि इनके उत्तर स्फुरति और स्फुलति के सकार को मूर्द्धन्यादेश विकल्प करके हो।

स्फुरति—निष्ष्फुरति; निस्स्फुरति। निष्फुरति; निस्फुरति। विष्फुरति; विस्फुरति। स्फुलति—निष्ष्फुलति; निस्स्फुलति। निष्फुलति; निस्फुलति। विष्फुलति; विस्फुलति॥

८२७–वेः स्कभ्नातेर्नित्यम्॥ ८। ३। ७७॥

वि से परे स्कभ्नाति के सकार को नित्य मूर्द्धन्य आदेश हो।

विष्कभ्नाति। विष्कम्भिता। विष्कम्भितुम्। विष्कम्भितव्यम्॥

८२८—समासेऽङ्गुलेः सङ्गः ॥ ८ । ३ । ८० ॥

समास में अङ्गुलि शब्द से परे सङ्ग शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो।

अङ्गुलेः सङ्गः = अङ्गुलिषङ्गः। 'समास' ग्रहण से यहां न हुआ—अङ्गुलेः सङ्गं पश्य॥

८२९—भीरोः स्थानम् ॥ ८ । ३ । ८१ ॥

समास में भीरु शब्द से उत्तर स्थान शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो।

भीरुष्ठानम्। 'समास' ग्रहण से यहां न हुआ—भीरोः स्थानं पश्य॥

८३०—अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ॥ ८ । ३ । ८२ ॥

अग्नि शब्द से परे स्तुत्, स्तोम, सोम इनके सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो, समास में।

अग्निष्टुत्। अग्निष्टोमः। अग्नीषोमौ। दीर्घ अग्नि शब्द से परे मूर्द्धन्यादेश इष्ट है, इससे यहां न हुआ—अग्निसोमौ माणवकौ। 'समास' ग्रहण से यहां न हुआ—अग्नि सोमं पश्य॥

८३१—ज्योतिरायुषः स्तोमः ॥ ८ । ३ । ८३ ॥

समास में ज्योतिस् और आयुस् शब्द से परे, स्तोम शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो।

ज्योतिष्टोमः। आयुष्टोमः। 'समास' ग्रहण से यहां न हुआ—ज्योतिः स्तोमं दर्शयति।

८३२—मातृपितृभ्यां स्वसा ॥ ८ । ३ । ८४ ॥

समास में मातृ और पितृ से परे स्वसृ शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो।

मातृष्वसा। पितृष्वसा॥

८३३–मातुः पितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ ८ । ३ । ८५ ॥

समास में मातुर् और पितुर् से परे स्वसृ शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश विकल्प करके हो।

मातुःष्वसा; मातुःस्वसा। पितुःष्वसा; पितुःस्वसा। 'समास' ग्रहण से वाक्य में न हुआ—मातुः स्वसा ॥

८३४–अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम् ॥ ८ । ३ । ८६ ॥

शब्दसंज्ञा गम्यमान हो, तो अभिनिस् से परे स्तन धातु के सकार को विकल्प करके मूर्द्धन्यादेश हो।

अभिनिष्टानो वर्णः। अभिनिष्टानो विसर्जनीयः। अभिनिस्तानो वर्णः। अभिनिस्तानो विसर्जनीयः। 'शब्दसंज्ञा' से अन्यत्र—अभिनिस्तनति मृदङ्गः ॥

८३५–उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ॥ ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त और प्रादुस् शब्द से परे यकार और अच् जिससे परे हो उस अस् धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो।

अभिषन्ति। निषन्ति। विषन्ति। प्रादुःषन्ति। अभिष्यात्। निष्यात्। विष्यात्। प्रादुःष्यात्।

'उपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—दधि स्यात्। मधु स्यात् 'अस्ति, ग्रहण से यहां न हुआ—अनुसृतम्। 'यच् पर' ग्रहण से यहां न हुआ—निस्तः। विस्तः। प्रादुःस्तः ॥

८३६–सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ॥ ८ । ३ । ८८ ॥

सु, वि, निर् और दुर् से परे सुपि, सूति और सम के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो।

'सुपि यह संप्रसारण किये हुए स्वप् धातु का ग्रहण है—सुषुप्तिः। सुषुप्तः। विषुप्तः। निःषुप्तः। दुःषुप्तः। सूति—सुषूतिः। विषूतिः। निःषूतिः : दुःषूतिः। सम—सुषमम्। विषमम्। निःषमम्। दुःषमम् ॥

८३७–निनदीभ्यां स्नातेः कौशले ।। ८ । ३ । ८९ ।।

कुशलता गम्यमान हो तो नि और नदी से परे स्नाति के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो ।

निष्णातः शिल्पशास्त्रे । नद्यां स्नातीति = नदीष्णः※ । 'कौशल' ग्रहण से यहां न हुआ—निस्नातः । नद्यां स्नातो = नदीस्नातः ।।

८३८–सूत्रं प्रतिष्णातम् ।। ८ । ३ । ९० ।।

सूत्र वाच्य हो, तो प्रतिष्णात यह निपातन है ।

प्रतिष्णातं सूत्रम्—सूत्र शुद्ध है । यहां प्रति से स्ना धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हुआ । सूत्र से अन्यत्र—'प्रतिस्नातम्' होगा ।।

८३९–कपिष्ठलो गोत्रे ।। ८ । ३ । ९१ ।।

गोत्रविषयक कपिष्ठल शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन है ।

कपिष्ठल जिसका नाम है, वह कापिष्ठलि पुत्र है । अन्यत्र—कपेः स्थलम् = कपिस्थलम् ।।

८४०–प्रष्ठोऽग्रगामिनी ।। ८ । ३ । ९२ ।।

अग्रगामी अभिधेय हो, तो 'प्रष्ठः' यह निपातन है ।

प्रतिष्ठत इति प्रष्ठः—आगे चलता है । यहां प्र से परे स्था धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन किया है । 'अग्रगामी' ग्रहण से यहां न हुआ—व्रीहीनां प्रस्थः ।।

८४१–वृक्षासनयोर्विष्टरः ।। ८ । ३ । ९३ ।।

वृक्ष और आसन वाच्य हों, तो वि उपसर्ग से परे स्तृणाति धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन है ।

※ (सुपि: स्थः ।। ३ । २ । ४ ।।) इस सूत्र में योग-विभाग किया है, उससे 'नदीष्णः' यहां कप्रत्यय होता है ।।

विष्टरो वृक्षः । विष्टरम् आसनम् । 'वृक्षासन' ग्रहण से यहां न हुआ—वाक्यस्य विस्तरः ॥

८४२–छन्दोनाम्नि च ॥ ८ । ३ । ९४ ॥

छन्दोनाम विषय में वि पूर्वक स्तृञ् धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन है ।

विष्टारपङ्क्तिः । विष्टारबृहती । 'छन्दोनाम' ग्रहण से यहां न हुआ—पटस्य विस्तारः ॥

८४३–गवियुधिभ्यां स्थिरः ॥ ८ । ३ । ९५ ॥

गवि और युधि शब्द से परे स्थिर शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो ।

गविष्ठिरः । युधिष्ठिरः । इस सूत्र में जो गवि सप्तम्यन्त गो शब्द से मूर्द्धन्यादेश का विधान है, इस ज्ञापन से समास में गो शब्द से सप्तमी का अलुक् होता है ॥

८४४–विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् ॥ ८ । ३ । ९६ ॥

वि, कु, शमि, परि इनसे परे स्थल शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो ।

विष्ठलम् । कुष्ठलम् । शमिष्ठलम् । परिष्ठलम् । अन्यत्र—कुशस्थली । मरुस्थली ॥

८४५–अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ॥ ८ । ३ । ९७ ॥

अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु , शेकु, शङ्कु, अङ्गु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिस्, दिवि और अग्नि, इनसे परे स्थ शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो ।

अम्बष्ठः। आम्बष्ठः। गोष्ठः। भूमिष्ठः। सव्येष्ठः। अपष्ठः। द्विष्ठः। त्रिष्ठः। कुष्ठः। शेकुष्ठः। शङ्कुष्ठः। अङ्गुष्ठः। मञ्जिष्ठः। पुञ्जिष्ठः। परमेष्ठः। बर्हिष्ठः। दिविष्ठः। अग्निष्ठः॥

८४६–वा०–स्थास्थिन्स्थृणामिति वक्तव्यम्॥ ८। ३। ९७॥

सव्येष्ठाः। परमेष्ठी। सव्येष्ठा॥

८४७–सुषामादिषु च॥ ८। ३। ९८॥

सुषामादिक शब्दों में सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है।

शोभनं साम यस्यासौ=सुषामा ब्राह्मणः। निष्षामा। दुष्षेधः इत्यादि॥

८४८–एति संज्ञायामगात्॥ ८। ३। ९९॥

संज्ञाविषय में एकार परे हो, तो इण् और गरहित कवर्ग से परे सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो।

हरिषेणः। वारिषेणः। जानुषेणी। एकार से अन्यत्र—हरिसक्थम्। संज्ञा से अन्यत्र—पृथ्वी सेना यस्य स पृथुसेनो राजा। 'अगात्' के ग्रहण से यहां न हुआ—विष्वक्सेनः। इण्, कु से अन्यत्र—सर्वसेनः॥

८४९–नक्षत्राद्वा॥ ८। ३। १००॥

संज्ञा विषय में एकार परे हो, तो इण् और गकारभिन्न कवर्गवान् नक्षत्रवाची शब्द से परे सकार को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो।

रोहिणिषेणः; रोहिणिसेनः। भरणिषेणः; भरणिसेनः। गकार के निषेध से यहां न हुआ—शताभिषक्सेनः॥

८५०–ह्रस्वात्तादौ तद्धिते॥ ८। ३। १०१।

तकारादि तद्धित परे हो, तो ह्रस्व से परे सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो।

तकारादि तद्धित—तर, तम, तय, त्व, तल्, तस्, त्यप्। तर—सर्पिष्टरम्। यजुष्टरम्। तम—सर्पिष्टमम्। यजुष्टमम्। तय—चतुष्टयम्। चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः। त्व—सर्पिष्ट्वम्। यजुष्ट्वम्। तल्—सर्पिष्टा। यजुष्टा। तस्—सर्पिष्टः। त्यप्—आविष्टचः।

'ह्रस्व' ग्रहण से यहां न हुआ—धूस्तरा। गीस्तरा। 'तादि' ग्रहण से यहां न हुआ—सर्पिस्साद्भवति। तद्धित से अन्यत्र—सर्पिस्तर्पयति॥

८५१–निसस्तपतावनसेवने॥ ८। ३। १०२॥

तप धातु परे हो, तो अनासेवन अर्थ में निस् के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो।

आसेवन—वार-वार करना—अर्थ न हो वह 'अनासेवन' कहावे। निष्टपति सुवर्णम्—अग्नि से सुवर्ण को एकवार तपाता है। 'अनासेवन' ग्रहण से यहां न हुआ—निस्तपति पाणिं विष्णुमित्रः॥

८५२–युष्मत्ततक्षुःष्वन्तःपादम्॥ ८। ३। १०३॥

तकारादि युष्मत्, तत् और ततक्षुस् परे हों, तो सकार को मूर्द्धन्यादेश हो, जो वह सकार पाद के मध्य में हो तो।

तकारादि युष्मत्—त्वं, त्वां, ते, तव—त्वं—अग्निष्ट्वं नामासीत्। त्वा—अग्निष्ट्वा वर्द्धयामसि। ते—अग्निष्टे विश्वमानय। तव—अप्स्वग्ने सधिष्टव।

तत्—अग्निष्टद्विश्वमापृणाति। ततक्षुस्—द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। 'अन्तःपाद' ग्रहण से यहां न हुआ—नित्यमात्मनो विदाभूदग्निस्तत् पुनराह जातवेदो विचर्षणिः॥

८५३–यजुष्येकेषाम्॥ ८। ३। १०४॥

यजुर्वेद के विषय में तकारादि युष्मद्, तत् और ततक्षुस् परे हों, तो किन्हीं आचार्य्यों के मत से सकार को मूर्द्धन्यादेश हो।

अर्चिभिष्टवम्; अर्चिभिस्त्वम् । अग्निष्टेग्रम्; अग्निस्तेग्रम् । अग्निष्टत्; अग्निस्तत् । अर्चिभिष्टतक्षुः; अर्चिभिस्ततक्षुः ॥

८५४–स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि ॥ ८ । ३ । १०५ ॥

किन्हीं आचार्य्यों के मत से वेदविषय में इण् कवर्ग से परे स्तुत और स्तोम शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो ।

त्रिभिष्टुतस्य; त्रिभिस्तुतस्य । गोष्टोमं षोडशिनम्; गोस्तोमं षोडशिनम् ॥

८५५–पूर्वपदात् ॥ ८ । ३ । १०६ ॥

किन्हीं आचार्य्यों के मत में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे वेदविषय में सकार को मूर्द्धन्यादेश हो ।

द्विषन्धिः । त्रिषन्धिः । द्विसन्धिः । त्रिसन्धिः । मधुष्ठानम्; मधुस्थानम् । द्विषाहस्रं चिन्वीत, द्विसाहस्रं चिन्वीत ।

इस सूत्र में पूर्वपदमात्र का ग्रहण किया है, इससे असमास में भी पूर्वपद से परे सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है—त्रिः षमृद्धत्वाय; त्रिः समृद्धत्वाय ॥

८५६–सुञः ॥ ८ । ३ । १०७ ॥

वेदविषय में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे सुञ् निपात के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । अभी षु णः सखीनाम् । ऊर्ध्वं ऊ षु णः ॥

८५७–सनोतेरनः ॥ ८ । ३ । १०८ ॥

इण्कवर्ग से परे नकारान्तभिन्न सन् धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो ।

गोषाः । नृषाः । नकार के निषेध से यहाँ न हुआ—गोसनिं वाचमुदीरयन् ॥

८५८—सहेः पृतनर्त्ताभ्यां च ।। ८ । ३ । १०९ ।।

पृतना और ऋत से परे सह धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो।

पृतनाषाहम्। ऋताषाहम्। अन्यत्र—विश्वसाट्। चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है, इससे 'ऋतीषहम्' यहाँ भी मूर्द्धन्य होता है ।।

८५९—न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ।। ८ । ३ । ११० ।।

जिससे रेफ परे हो, उस सकार को तथा सृपि, सृजि, स्पृशि, स्पृहि और सवनादिकों के सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो।

रपर—विस्रंसिकायाः काण्डं जुहोति। विस्रब्धः कथयति। सृपि—पुरा क्रूरस्य विसृपः। सृजि—वाचो विसर्जनात्। स्पृशि—दिविस्पृशम्। स्पृहि—निस्पृहं कथयति।

सवनादि—सवने सवने; सूते सूते इत्यादि। इस गण में जो 'अश्वसनि' शब्द का ग्रहण किया है, इस ज्ञापक से अनिणन्त से भी परे सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है। जैसे—जलाषाहम्। अश्वषाः ।।

८६०—सात्पदाद्योः ।। ८ । ३ । १११ ।।

सात् और पदादि सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो।

सात्—अग्निसात्; दधिसात्; मधुसात्। पदादि—दधि सिञ्चति। मधु सिञ्चति ।।

८६१—सिचो यङि ।। ८ । ३ । ११२ ।।

यङ् परे हो, तो सिच् के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो।

सेसिच्येत। अभिसेसिच्येत। 'यङ्' ग्रहण से यहाँ न हुआ—अभिषिषिक्षति ।।

८६२–सेधतेर्गतौ ।। ८ । ३ । ११३ ।।

गति अर्थ में वर्त्तमान सेधति के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो।

अभिसेधयति गा:, । परिसेधयति गा: । 'गति' ग्रहण से यहाँ निषेध न हुआ—प्रतिषेधयति गा: ।।

८६३–प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च ।। ८ । ३ । ११४ ।।

प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध ये मूर्द्धन्यादेश प्रतिषेध के लिये निपातन हैं।

प्रतिस्तब्ध: । निस्तब्ध: ।।

८६४–सोढः ।। ८ । ३ । ११५ ।।

सोढ् के सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो।

'सोढ्' यह सह धातु का होता है—परिसोढ: । परिसोढुम् । परिसोढव्यम् । 'सोढ्' ग्रहण से यहाँ न हुआ— परिषहते ।।

८६५–स्तम्भुसिवुसहां चङि ।। ८ । ३ । ११६ ।।

चङ् परे हो, तो स्तम्भु, सिवु और सह के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो।

स्तम्भुसिवुसहां चङ्युपसर्गात् ।। महाभाष्य ८ । ३ । ११६ ।। स्तम्भु, सिवु, सह इनको उपसर्ग से जो प्राप्ति है, उसका निषेध हो किन्तु अभ्यास से जो प्राप्ति उसका निषेध न हो। स्तम्भु—पर्य्यतस्तम्भत् । अभ्यतस्तम्भत् । सिवु—पर्य्यसीषिवत् । न्यसीषिवत् । सह—पर्य्यसीषहत् । व्यसीषहत् ।।

८६६–सुनोतेः स्यसनोः ।। ८ । ३ । ११७ ।।

सुनोति के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो, स्य और सन् परे हों तो।

अभिसोष्यति । परिसोष्यति । अभ्यसोष्यत् । पर्यसोष्यत् । 'स्य सन्' ग्रहण से यहाँ न हुआ—सुषाव ।।

८६७–सदेः परस्य लिटि॥ ८ । ३ । ११८ ॥

लिट् परे हो, तो अभ्यास से परे सद् के सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो।

अभिषसाद । परिषसाद । निषसाद । विषसाद ।

८६८–वा०–सदा लिटि प्रतिषेधे स्वञ्जेरुपसङ्ख्यानम् ॥

८ । ३ । ११८ ॥

लिट् परे हो, तो सद् धातु के प्रतिषेध में स्वञ्ज के परे सकार को भी मूर्द्धन्यादेश का प्रतिषेध कहना चाहिये।

परिषस्वजे । परिषस्वजाते ॥

८६९–निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा च्छन्दसि

॥ ८ । ३ । ११९ ॥

वेदविषय में नि, वि, अभि इन उपसर्गों से परे अट् का व्यवधान हो, तो सकार को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो।

न्यषीदत् पिता नः, न्यसीदत्। व्यषीदत्। व्यसीदत्। अभ्यष्टौत्; अभ्यस्तौत् ॥

इति षत्वप्रक्रिया समाप्ता ॥ २३ ॥

※ (सदेः०) इस सूत्र में काशिकाकार ने ष्वञ्ज धातु को भी मिलाकर मूल सूत्र का अन्यथा पाठ (सदिस्वञ्जोः परस्य लिटि) करके व्याख्यान किया है, यह उनका व्याख्यान अनादरणीय है, क्योंकि ष्वञ्ज धातु के लिये तो महाभाष्य में वार्तिक ही पढ़ा है॥

(२४) अथ णत्वप्रक्रिया ॥

८७०—रषाभ्यां नो णः समानपदे ॥ ८ । ४ । १ ॥

रेफ और षकार से परे नकार को णकारादेश हो, यदि निमित्त और निमित्ती एकपदस्थ हों तो।

अवगीर्णम् । अवगूर्णम् । कुष्णाति । पुष्णाति । मुष्णाति । 'समानपद' ग्रहण से यहाँ न हुआ—अग्निर्नयति । वायुर्नयति । इस सूत्र में षकार ग्रहण अगले सूत्रों के लिये है, क्योंकि षकार से परे नकार को णत्वादेश ष्टुत्व से भी हो जाता है।

रषाभ्यां णत्वे ऋकारग्रहणम् ॥ महाभाष्यम् ८ । ४ । १ ॥ र और ष से परे णत्वादेश विधान में ऋकार का भी ग्रहण करना चाहिये। मातृणाम् । पितृणाम् ।

अथवा क्षुभ्नादिगण में जो नृनमन और तृप्नु शब्द का पाठ है, इस ज्ञापन से भी ऋकार से परे नकार को णत्वादेश होता है॥

८७१—अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ॥ ८ । ४ । २ ॥

अट्, कु, पु, आङ्, नुम् इनसे व्यवधान में भी रेफ और षकार से परे नकार को णकारादेश होता है।

अट्—करुणा । गुरुणा । किरिणा । गिरिणा । कवर्ग—अर्केण । मूर्खेण । पवर्ग—दर्पेण । रेफेण । गर्भेण । कर्मणा । चर्मणा । वर्मणा । आङ्—पर्याणद्धम् । अट्ग्रहण से भी आङ्व्यवाय में सिद्ध था, फिर 'आङ्' ग्रहण (पदव्यवायेऽपि ॥ ८ । ४ । ३७ ॥) इस (९११) प्रतिषेध के बाधने के लिये है।

नुम्—बृंहणम् । बृंहणीयम् । यहाँ 'नुम्' ग्रहण अनुस्वार का उपलक्षणमात्र है । इससे उक्त बृंहणम् बृंहणीयम्; उदाहरणों में नुम् के अभाव में अनुस्वार के व्यवधान से णत्वादेश होता है । नुम् के होते भी जहाँ अनुस्वार नहीं होता वहाँ नहीं होता है—प्रेन्वनम् । प्रेन्वनीयम् ॥

८७२–पूर्वपदात् संज्ञायामगः ॥ ८ । ४ । ३ ॥

संज्ञाविषय में गकारभिन्न पूर्वपदस्थ निमित्त से परे नकार को णकारादेश हो ।

द्रणसः । खरणसः । शूर्पणखा 'संज्ञा' से अन्यत्र—चर्मनासिकः । 'अग, ग्रहण से यहाँ न हुआ—ऋगयनम् ॥

८७३–वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः ॥ ८ । ४ । ३ ॥

संज्ञाविषय में पुरगा. मिश्रका, सिध्रका, शारिका, कोटरा, अग्रे, इन्हीं पूर्वपदों से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश हो, औरों से न हो ।

पुरुगावणम् । मिश्रकावणम् । सिध्रकावणम् । शारिकावणम् । कोटरावणम् । अग्रेवणम् । औरों से न हो । जैसे—कुवेरवनम् । शतधारवनम् । असिपत्रवनम् ॥

८७४–प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्यो संज्ञायामपि ॥ ८ । ४ । ५॥

संज्ञा वा असंज्ञा विषय में प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर, पीयूक्षा, इनसे परे वन शब्द के नकार को णकारादेश हो ।

प्रवणे यष्टव्यम् । निर्वणे प्रतिधीयते । अन्तर्वणम् । शरवणम् । इक्षुवणम् । प्लक्षवणम । आम्रवणम् । कार्ष्यवणम् । खदिरवणम् । पीयूक्षावणम् ।

८७५–विभाषौषधि*वनस्पतिभ्यः ॥ ८ । ४ । ६ ॥

निमित्तवान् ओषधि और वनस्पति वाचक जो पूर्वपद, उनसे पर शब्द के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो।

ओषधि—दूर्वावणम्; दूर्वावनम् । मूर्वावणम्; मूर्वावनम् । वनस्पति—शिरीषवणम्; शिरीषवनम् । बदरीवणम्; बदरीवनम् ।

द्व्यक्षरत्र्यक्षरेभ्य इति वक्तव्यम् ॥ महाभाष्य ८ । ४ । ६ ॥ दो अक्षर और तीन अक्षरवाले ओषधि और वनस्पतियों से हो, औरों से न हो । देवदारुवनम् । भद्रदारुवनम् ॥

८७६–वा०–इरिकादिभ्यःप्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ ८ । ४ । ६ ॥

इरिकादिकों से परे नकार के णत्वादेश का प्रतिषेध कहना चाहिये । इरिकावनम् । तिमिरिकावनम् ॥

८७७–अह्नोऽदन्तात् ॥ ८ । ४ । ७ ॥

निमित्तवान् अदन्त जो पूर्वपद उससे परे अह्न के नकार को णकारादेश हो ।

पूर्वाह्णः । अपराह्णः । 'अदन्त' ग्रहण से यहाँ न हुआ—निरह्नः । 'अह्न' के ग्रहण से यहाँ न हुआ । दीर्घाह्नी ॥

८७८–वाहनमाहितात् ॥ ८ । ४ । ८ ॥

आहितवाची निमित्तवान् पूर्वपद से परे वाहन शब्द के नकार को णकारादेश हो ।

---

* उद्भिज्जाः स्थावरास्सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।
ओषध्य फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ १ ॥
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥ २ ॥
मनुस्मृति, अध्याय १ । श्लोक ४७ ॥

यहाँ गाड़ी आदि में भर के जो वस्तु ले चलें, उसका ग्रहण 'आहित' शब्द से है। इक्षुवाहणम्। शरवाहणम्। दर्भवाहणम् 'आहित' ग्रहण से यहाँ न हुआ—दाक्षिवाहनम्। गर्गवाहनम्, यहाँ गमनक्रिया विवक्षित नहीं है॥

८७९–पानं देशे ॥ ८ । ४ । ९ ॥

देश अभिधेय हो, तो पूर्वपदस्थ निमित्त से परे पान शब्द से नकार को णकारादेश हो।

पीयत इति * पानम्—जो पिया जाय वह 'पान' कहावे। क्षीरं पानं येषान्ते क्षीरपाणाः उशीनराः। सुरापाणाः प्राच्याः। सौवीरपाणा वाह्लीकाः। कषायपाणा गान्धाराः।

इन उदाहरणों में मनुष्याभिधान से भी देशाभिधान की प्रतीति होती है। 'देश' ग्रहण से यहाँ न हुआ—दाक्षिपानम्॥

८८०–वा भावकरणयोः ॥ ८ । ४ । १० ॥

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे भाव और करण में जो पान शब्द, उसके नकार को णकारादेश हो विकल्प से।

भाव—क्षीरपाणम्; क्षीरपानम्। कषायपाणम्; कषायपानम्।
करण—क्षीरपाणः; क्षीरपानः कमण्डलुः॥

८८१–वा०वाप्रकरणे गिरिनद्यादीनामुपसंख्यानम् ॥ ८ । ४ । १० ॥

वाप्रकरण में गिरिनद्यादिकों की गणना करनी चाहिये।

गिरिणदी; गिरिनदी। चक्रणितम्बा; चक्रनितम्बा॥

---

* यहाँ (कृत्यल्युटो बहुलम्॥ ३ । ३ । ११३ ॥) इस सूत्र से कर्म में ल्युट् है॥

८८२--प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ॥ ८ । ४ । ११ ॥

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे, प्रातिपदिकान्त; नुम और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो विकल्प से।

प्रातिपदिकान्त—मापवापिणौ; मापवापिनौ। नुम्—मापवापाणि; मापवापानि। विभक्ति—मापवापेण; माषवापेन। व्रीहिवापेण; व्रीहिवापेन।

पूर्वपद के अधिकार से उत्तरपद का प्रातिपादिकस्थ अन्त्य जो नकार है उसको णत्वादेश विधान है। इससे यहाँ नहीं होता—गर्गाणां भगिनी = गर्गभगिनी। दक्षभगिनी। और जब यह वाक्य हो—गर्गाणां भगा = गर्गभग:, गर्गभगोऽस्या अस्तीति = गर्गभगिणी, तब (८८५) अगले सूत्र से नित्य णत्वादेश होता है।

माषवापिणी; माषवापिनी, यहाँ भी णकार विकल्प से होता है, क्योंकि "गतिकारकोपपदानां कृद्भिस्सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः" इस परिभाषा से कृदन्त के साथ ही में समास होने से कृत्संज्ञक प्रत्यय का नकार प्रातिपदिकान्त ही माना जाता है। इसी हेतु से सूत्र में नुम् का ग्रहण अलग किया है, क्योंकि नुम् समुदाय का भक्त है, अत एव प्रातिपदिकान्त नहीं होता है॥

८८३--वा०--युवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ ८ । ४ । ११ ॥

प्रातिपदिकान्तादि नकार को णत्वविधान में युवादिकों का प्रतिषेध कहना चाहिये।

आर्ययूना। क्षत्रिययूना। प्रपक्वानि। परिपक्वानि। दीर्घाह्नी शरत्।

८८४--एकाजुत्तरपदे णः ॥ ८ । ४ । १२ ॥

जिस में एकाच् उत्तरपद है, उस समास में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त, नुम् और विभक्ति के नकार को णकारादेश हो।

प्रातिपदिकान्त—वृत्रहणौ। वृत्रहण:। नुम्—क्षीरपाणि। सुरापाणि। विभक्ति—क्षीरपेण। सुरापेण। ण वर्त्तमान था, फिर 'ण' ग्रहण पूर्वविकल्प के बाधने के लिये है॥

८८५--कुमति च॥ ८।४।१३॥

कवर्गवान् उत्तरपदवाले समास में, पूर्वपदनिमित्त से परे, प्रातिपदिकान्त, नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो।

प्रातिपदिकान्त—वस्त्रयुगिणौ। वस्त्रयुगिण:। स्वर्गकामिणी। वृषगामिणी। नुम्—वस्त्रयुगाणि। खरयुगाणि। विभक्ति—वस्त्रयुगेण। खरयुगेण॥

८८६--उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य॥ ८।४।१४॥

समास वा असमास में उपसर्गस्थ निमित्त से परे, णोपदेश धातु के नकार को णकारादेश हो।

प्रणमति। परिणमति। प्रणयनम्। प्रणायक:। परिणायक:। 'उपसर्ग' ग्रहण से यहाँ न हुआ—प्रगता नायका अस्माद्देशात्=प्रनायको देश:। 'असमास' ग्रहण समास की निवृत्ति के लिये है, क्योंकि पूर्वपद के अधिकार से समास ही में प्राप्ति थी। 'णोपदेश' ग्रहण से यहाँ न हुआ—परिनर्द्दति। परिनृत्यति॥

८८७--हिनुमीना॥ ८।४।१५॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे, हिनु, मीना इनके नकार को णकारादेश हो।

प्रहिणोति। प्रहिणुत:। प्रमीणाति। प्रमीणीत:॥

८८८--आनि लोट्॥ ८।४।१६॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे, लोट लकार के आदेश आनि शव्द के नकार को णकारादेश हो।

प्रवपाणि । परिवपाणि । प्ररियाणि । परियाणि । 'लोट्' ग्रहण से वहां न हुआ—प्रवपानि मांसानि ।।

८८९—नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ।।८।४।१७।।

गद, नद, पत, पद, घुसंज्ञक (डुदाञ्, दाण्, दो, देङ्, डुधाञ्, धेट्), मा (माङ्, मेङ्), सो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, डुवप्, वह, शमु, चिञ्, दिह, ये धातु परे हों, तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश हो।

गद—प्रणिगदति । परिणिगदति । नद—प्रणिनदति । परिणिनदति । पत—प्रणिपतति । परिणिपतति । पद—प्रणिपद्यते । परिणिपद्यते । घु—प्रणिददाति । प्रणिदाता । प्रणियच्छति । प्रणिद्यति । प्रणिदयते । प्रणिदधाति । प्रणिधयति । मा—प्रणिमिमीते । प्रणिमयते । सो-प्रणिष्यति । परिणिष्यति । हन्—प्रणिहन्ति । या—प्रणियाति । वा प्रणिवाति । द्रा—प्रणिद्राति । प्सा—प्रणिप्साति । डुवप्—प्रणिवपति । परिणिवपति । वह—प्रणिवहति । शमु—प्रणिशाम्यति । चिञ्—प्रणिचिनोति । दिह—प्रणिदेग्धि ।

यहां (८६८) सूत्र से अड्व्यवाय का अनुवर्त्तन कर अट् के व्यवधान में भी नि के नकार को णकारादेश होता है—प्रण्यगदत् । प्रण्यागदात् ।।

८९०—शेषे विभाषा ऽकखादावषान्त उपदेशे ।।८।४।१८।।

उपदेश अवस्था में क, ख जिसके आदि में और ष अन्त में न हो, ऐसा पूर्वोक्तों से शेष धातु परे हो, तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो।

प्रणिपचति; प्रनिपचति । प्रणिभिनत्ति; प्रनिभिनत्ति । 'अकखादि' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रनिकरोति । प्रनिखादति । 'अषान्त' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रनिपिनष्टि । 'उपदेश' ग्रहण का यह फल है कि—

प्रनिचखाद प्रनिचकार प्रनिपेक्ष्यति इत्यादिकों में प्रतिषेध हो, तथा विश—प्रणिवेष्टा। प्रणिवेक्ष्यति, यहां प्रतिषेध न हो॥

८९१–अनितेरन्तः ॥ ८। ४। १९॥

अन्त—समीपवर्ती—जो—उपसर्गस्थ रेफ, उस से परे अन धातु के नकार को णकारादेश हो।

हे प्राण्। हे पराण्। प्राणिति। पराणिति।

यह (९१०) सूत्र का अपवाद है। 'अन्त' ग्रहण से यहां न हुआ—पर्यनिति, यहां दो वर्ण का व्यवधान है, इससे नकार को णकारादेश नहीं होता। एकवर्ण का व्यवधान तो अन धातु का जो 'अ' अवयव है, उसी से प्राप्त है॥

८९२–उभौ साभ्यासस्य ॥ ८॥ ४। २०॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे, अभ्यासयुक्त अन धातु के दोनों नकारों को णकार आदेश हो।

प्राणिणिपति। प्राणिणत्। पराणिणपति। पराणिणत्॥

८९३–हन्तेरत्पूर्वस्य ॥ ८। ४। २१॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे, हन् धातु के अकारपूर्वक नकार को णकारादेश हो।

प्रहण्यते। परिहण्यते। प्रहणनम्। परिहणनम्। 'अत्पूर्व' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रघ्नन्ति। परिघ्नन्ति। 'तपर करण' से यहां न हुआ—प्राघानि। पराघानि, ये चिण् के प्रयोग हैं।

८९४–वमोर्वा ॥ ८। ४। २२॥

व, म परे हों, तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे हन् धातु के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो।

प्रहण्वः; प्रहन्वः। प्रहण्मः; प्रहन्मः।

८६५—अन्तरदेशे ॥ ८ ॥ ४ ॥ २३ ॥

देश न अभिधेय हो, तो अन्तर् शब्द से परे हन् धातु के अकारपूर्वक नकार को णकारादेश हो।

अन्तर्हणनम्। 'अदेश' ग्रहण से यहां न हुआ—अन्तर्हननो देशः। 'अत्पूर्व' ग्रहण से यहां न हुआ—[अन्तर्घ्नन्ति। 'तपर' करण से यहां न हुआ—] अन्तरघानि॥

८६६—अयनं च ॥ ८। ४। २४॥

देश न कहा जाय, तो अन्तर् शब्द से परे अयन शब्द के नकार को णकारादेश हो।

अन्तरयणम्। 'अदेश' ग्रहण से यहां न हुआ—अन्तरयनो देशः॥

८६७—छन्दस्यृदवग्रहात् ॥ ८। ४। २५॥

वेदविषय में अवग्रह ऋकार जिसके अन्त में हो, उससे परे नकार को णकारादेश हो।

जो विग्रह में उच्चारण करने से निरवकाश गृहीत हो, वह 'अवग्रह' कहाता है। नृमणाः। पितृयाणम्। नृ, पितृ ये विग्रह में भिन्न-भिन्न भी पद हैं, तथापि यहां मकार और या के साथ ही ऋ का उच्चारण होता है॥

८६८—नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ॥ ८। ४। २६॥

वेदविषय में धातुस्थ निमित्त से तथा उरु और षु से परे, नस् शब्द के नकार को णकारादेश हो।

धातुस्थ—अग्ने रक्षा णः। शिक्षा णो अस्मिन्। उरु—उरु णस्कृधि। षु—अभी षु णः सखीनाम्। ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये॥

८६९—उपसर्गाद्बहुलम् ॥ ८। ४। २७॥

वेदविषय में उपसर्गस्थ निमित्त से परे, नस् के नकार को णकारादेश बहुल करके हो।

प्रणसः प्रणो राजा। 'बहुल' ग्रहण से—प्र नो मुञ्जतम्, यहां नहीं भी होता। भाषा में होता भी है—प्रणसं मुखम्॥

६००—कृत्यचः॥ ८।४।२८॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे, अच् जिसके पूर्व उस कृत्स्थ नकार को णकारादेश हो।

अन, मान, अनीय, अनि, इनि और निष्टादेश में जो नकार उनको णकारादेश होता है। अन—प्रयाणम्। परियाणम्। प्रमाणम्। परिमाणम्। मान—प्रयायमाणम्। परियायमाणम्। अनीय—प्रयाणीयम्। परियाणीयम्। अनि—अप्रयाणिः। अपरियाणिः। इनि—प्रयायिणी। परियायिणी। निष्टादेश—प्रहीणः। परिहीणः। प्रहीणवान्। परिहीणवान्।

'अच्' के ग्रहण से यहां न हुआ—प्रभुग्नः। परिभुग्नः। 'भुजो कौटिल्ये' से निष्ठा के परे प्रयोग है।

६०१—वा० कृत्स्थस्य णत्वे निर्विण्णस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम्॥ ८।४।२८॥

निर्विण्णोऽहमनेन वासेन॥

६०२—णेर्विभाषा॥ ८।४।२९॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे, ण्यन्तधातु से विहित कृत्स्थ अच्पूर्वक जो नकार, उस को णकारादेश विकल्प करके हो।

प्रयापणम्; प्रयापनम्। परियापणम्; परियापणम्। विहितविशेषण से—'प्रयाप्यमाणम्' यहां यक् प्रत्यय के व्यवधान में नकार को णत्वादेश होता है॥

६०३—हलश्चेजुपधात्॥ ८।४।३०॥

उपसर्गस्थ निमित्त से और हलादि इजुपध धातु से परे, कृत्स्थ अच्पूर्वक जो नकार, उसको णकारादेश विकल्प करके हो।

प्रकोपणम्; प्रकोपनम्। 'हल्' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रेहणम्। 'इजुपध' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रवपणम्॥

९०४—इजादेः सनुमः ॥ ८ । ४ । ३१ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे, इजादि सनुम् हलन्त धातु उससे विहित जो कृत् प्रत्यय, तत्स्थ अच्पूर्वक नकार को णकारादेश हो।

प्रेङ्खणम्। प्रेङ्गणम्। प्रोम्भणम्। इस विषय में णकारादेश सिद्ध था, फिर णत्वविधान इजादि सनुम् से नियम के लिये है, सनुम् से हो तो इजादि ही सनुम् से हो, अन्य से न हो—प्रमङ्गनम्, यहां णत्व नहीं होता ॥

९०५—वा निंसनिक्षनिन्दाम् ॥ ८ । ४ । ३२ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से निंस निक्ष और निन्द के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो।

प्रणिंसनम्; प्रनिंसनम्। प्रणिक्षणम्; प्रनिक्षणम्। प्रणिन्दनम्; प्रनिन्दनम् ॥

९०६—न भाभूपूकमिगमिप्यायिवेपाम् ॥ ८ । ४ । ३३ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायि और वेप धातु के कृत्स्थ नकार को णकारादेश न हो।

प्रभानम्। परिभानम्। प्रभवनम्। परिभवनम्। प्रपवनम्। परिपवनम्। प्रकमनम्। परिकमनम्। प्रगमनम्। परिगमनम्। प्रप्यायनम्। परिप्यायनम्। प्रवेपनम्। परिवेपनम्।

भादिषु पूञ् ग्रहणम् ॥ महाभाष्य ८ । ४ । ३२ ॥ भादिकों में पूञ् धातु का ग्रहण करना चाहिये। किन्तु पूङ् से नित्य णत्व होता है—प्रपवणं सोमस्य।

९०७—वा०—ण्यन्तस्य चोपसंख्यानं कर्तव्यम् ॥ ८ । ४ । ३३॥

प्रभापनम्। परिभापनम् ॥

९०८—षात्पदान्तात् ॥ ८ । ४ । ३४ ॥

पदान्त षकार से परे, नकार को णकारादेश हो।

निष्पानम् । दुष्पानम् । सर्पिष्पानम् । 'प' ग्रहण से यहां निषेध न हुआ—निर्णयः । 'पदान्त' ग्रहण से यहां निषेध न हुआ—कुष्णाति । पुष्णाति ।

'पदन्तात्' यहां, पदे अन्तः' यह सप्तमी समास इष्ट है, इससे यहां निषेध न हुआ—सुसर्पिष्केण ॥

९०९—नशेः षान्तस्य ॥ ८ । ४ । ३५ ॥

षकारान्त नश को णकारादेश न हो ।

प्रनष्टः । परिनष्टः । 'षान्त' ग्रहण से यहां निषेध न हुआ—प्रणश्यति । 'अन्त' ग्रहण भूतपूर्व षान्त से भी णत्व के प्रतिषेध के लिये है—प्रनङ्क्ष्यति । परिनङ्क्ष्यति ॥

९१०—पदान्तस्य ॥ ८ । ४ । ३६ ॥

पदान्त नकार को णकारादेश न हो ।

९११—पदव्यवायेऽपि ॥ ८ । ४ । ३७ ॥

वृक्षान् । प्लक्षान् । रामान् ॥

निमित्त और निमित्ती को पदव्यवधान भी हो, तो नकार को णत्वादेश न हो ।

मापकुम्भवापेन । प्रावनद्धम् ॥

९१२—क्षुभ्नादिषु च ॥ ८ । ४ । ३८ ॥

क्षुभ्नादिक शब्दों में नकार को णकारादेश न हो ।

क्षुभ्नाति । अजादेश के स्थानिवद्भाव से यहां निषेध होता है—क्षुभ्नीतः इत्यादि । अवहितलक्षणत्वप्रतिषेध क्षुभ्नादिकों में देखना चाहिये ॥

इति णत्वप्रक्रिया समाप्ता ॥ २४ ॥

---

(२५) अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया ॥

६१३–वासरूपोऽस्त्रियाम् ॥ ३ । १ । ९४ ॥

धात्वधिकार में स्त्री अधिकार के प्रत्ययों को छोडकर असरूप= असमानरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प करके हो ॥

६१४–कृत्याः ॥ ३ । १ । ९५ ॥

ण्वुल्प्रत्यय से पूर्व जो जो प्रत्यय अब आगे कहें, वे सब कृत्यसंज्ञक हों।

धात्वधिकार में धातु से जिन जिन प्रत्ययों का विधान होता है, वे प्रथम (३) सूत्र से कृत्संज्ञक होते हैं, फिर उन की कृत्य संज्ञा भी होती है।

६१५–कर्त्तरि कृत् ॥ ३ । ४ । ६७ ॥

कृत्संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में हों।

इससे सब कृत्संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में प्राप्त हुए। इस व्यवस्था में—

६१६–तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ॥ ३ । ४ । ७० ॥

कृत्यसंज्ञक, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म ही में हों।

इससे कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों का भावकर्म में सामान्य नियम है। (७९१; ७९६; ७९७) सूत्रों से प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल, अर्ह और शक्ति अर्थ में भी कृत्य प्रत्ययों का विधान है। इस विषय के उदाहरण भी उन्हीं सूत्रों पर दे चुके हैं, वैसे यहां और भी उदाहरण समझने चाहियें ॥

९१७–तव्यत्तव्यानीयरः ।। ३ । १ । ९६ ।।

धातु से तव्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्यय हों ।

तकार और रेफ स्वर के लिये हैं । भाव में उत्सर्गमात्र एकवचन और नपुंसक लिंग होता है—एधितव्यम् । एधनीयमनेन । कथितव्यः कथनीयो वा त्वया धर्म्मः । कथितु योग्यः शक्यो वा इत्यादि ।

९१८–वा०–केलिमर उपसंख्यानम्* ।। ३ । १ । ९६ ।।

पचेलिमाः=पक्तव्या माषाः । भिदेलियाः=भेत्तव्याः सरलाः, यहां कर्म्म में प्रत्यय है ।

९१९–वा०–वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च ।। ३ । १ । ९६ ।।

वस धातु से कर्त्ता में तव्यत् प्रत्यय और वह णित्संज्ञक भी हो, वह कहना चाहिये । वसतीति=वास्तव्यः ।

९२०–कृत्यल्युटो बहुलम् ।। ३ । ३ । ११३ ।।

कृत्यसंज्ञक और ल्युट् प्रत्यय बहुल करके हों, अर्थात् जहां जहां कहे हैं, वहां से अन्यत्र भी हों ।

जैसे कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भावकर्म से अन्यत्र—स्नात्यनेनेति=स्नानीयं चूर्णम् । दीयतेऽस्मै=दानीयो विप्रः । ल्युट् प्रत्यय करण, अधिकरण और भाव में कहेंगे, उससे अन्यत्र जैसे—आच्छाद्यते=आच्छादनं वासः । प्रस्कन्दनम् । प्रतपनम् ।

'बहुल' ग्रहण से और भी कृत् यथाविधान से अन्यत्र भी होते हैं । जैसे—पादाभ्यां ह्रियते=पापहारकः; गले चोप्यते=गलेचोपकः ।।

---

* 'केलिमर्, इस प्रत्यय को वृत्तिकारादिक कोई कर्मकर्त्ता में मानते हैं, सो महाभाष्य से विरुद्ध है, क्योंकि महाभाष्यकार ने तो उक्त प्रत्यय को कर्म ही में दिखलाया है ।।

९२१—अचो यत् ॥ ३ । १ । ९७ ॥

अजन्त धातु से यत् प्रत्यय हो ।

मेयम् । जेयम् । 'अच्' ग्रहण क्यों किया, हलन्त से तो ण्यत् विधान ही करेंगे ? प्रथम जो अजन्त धातु है उससे भी हो, इसलिये । जैसे—लव्यम् । पव्यम्, यहां आगामी आर्द्धधातुक का विषय मानकर गुण और अवादेश किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है ।

दित्स्यम् । धित्स्यम्, यहां आगामी आर्द्धधातुक विषय मानकर अकारलोप किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है ।

९२२—ईद्यति ॥ ६ । ४ । ६५ ॥

यत् प्रत्यय परे हो, तो आदन्त अङ्ग को ईकारादेश हो ।

आदेयम् । गेयम् ।

९२३—वा०—तकिशसिचतियतिजनीनामुपसंख्यानम् ॥ ३ । १ । ९७ ॥

तकि—तक्यम् । शसि—शस्यम् । चति—चत्यम् । यति—यत्यम् । जनि—जन्यम् । यहां जन धातु से यत् प्रत्यय का विधान केवल स्वर के लिये है, क्योंकि यत् और ण्यत् में इस का एकसा प्रयोग होता है ।

९२४—वा०—हन वध च ॥ ३ । १ । ९७ ॥

हन् धातु से यत् प्रत्यय और हन् को वध आदेश विकल्प करके कहना चाहिये ।

वध्यः दूसरे पक्ष में—घात्यः यहां आगामी ण्यत् प्रत्यय हो जाता है ॥

९२५—पोरदुपधात् ॥ ३ । १ । ९८ ॥

अकार जिसके उपधा में हो ऐसे पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय हो ।

शप्यम् । लभ्यम् । 'पवर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—पाक्यम् । वाक्यम् । 'अदुपध' ग्रहण से यहां न हुआ—कोप्यम् । गोप्यम् । 'तपकरण' दीर्घादिकों की निवृत्ति के लिये है—आप्यम् ॥

९२६–शकिसहोश्च ॥ ३ । १ । ९९ ॥

शक्लृ और सह धातु से यत् प्रत्यय हो ।

शक्यम् । सह्यम् ॥

९२७–गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥ ३ । १ । १०० ॥

उपसर्ग पूर्व न हो, तो गद, मद चर और यम् धातु से यत् प्रत्यय हो ।

गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् । यम्यम । 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रमाद्यम् । प्रमाद्यम् । इस सूत्र में 'यम' धातु का ग्रहण केवल अनुपसर्ग के लिये है, क्योंकि यम् धातु से यत् प्रत्यय (९२५) सूत्र से सिद्ध है—प्रयाम्यम्, यहां यत् न हुआ, वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय होगया ।

९२८–वा०–अनुपसर्गाच्चरेराङि चागुरौ ॥ ३ । १ । १०० ॥

अनुपसर्ग चर धातु से यत् के विधान में गुरु अभिधेय न हो, तो आङ् पूर्वक चर धातु से यत् प्रत्यय का विधान करना चाहिये ।

आचरितुं योग्यः = आचर्यो देशः । 'अगुरु' ग्रहण से यहां न हुआ—आचार्य उपनयमानः ॥

९२९–अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ॥ ॥ ३ । १ । १०१ ॥

गर्ह्य = निन्द्य, पणितव्य = व्यवहार के योग्य, अनिरोध = न रोकना, इन अर्थों में क्रम से अवद्य, पण्य, वर्या ये निपातन हैं ।

अवद्यं पापम् । गर्ह्य से अन्यत्र—अनुद्यं गनोदुःखम् । 'वद' धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय का (९३४) में विधान करेंगे, उनमें यत् के परे

वद्य, उसी से नञ् समास में अवद्य सिद्ध होगा। वह गर्ह्य अर्थ में निपातन है, अन्यत्र क्यप्प्रत्ययान्त रहेगा। जिसमें नञ् में 'अनुद्य' होता है।

पण्यं वस्त्रम्। पण्यः कम्बलः। पण्या गौः—अर्थात् ये बेचने योग्य पदार्थ हैं। यहां धातु से यत् प्रत्यय है। [अन्यत्र—पाण्यम् =] स्तुत्यम्।

शतेन वर्या, यहां वृङ् धातु से यत् है। अन्यत्र—वृत्या। स्त्रीलिङ्गनिर्देश से यहां न हुआ—वार्या ऋत्विजः॥

९३०–वह्यं करणम्॥ ३। १। १०२॥

वह धातु से करणकारक में यत् प्रत्यय निपातन है।

वहत्यनेनेति = वह्यं शकटम्। 'करण' ग्रहण से अन्यत्र—'वाह्यम्' होता है॥

९३१–अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः॥ ३। १। १०३॥

स्वामी और वैश्य अभिधेय हों, तो ऋ धातु से यत् प्रत्यय निपातन है।

अर्यः = स्वामी वैश्यो वा।

स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च॥ महाभाष्य ३। १। १०३॥ स्वामी अभिधेय हो 'अर्य' शब्द को अन्तोदात्तत्व भी निपातन है॥

९३२–उपसर्या काल्या प्रजने॥ ३। १। १०४॥

प्रजन = प्रथम गर्भग्रहण में जो काल्या = समय को प्राप्त हुई, वह अभिधेय हो, तो उपसर्य्या यह निपातन हो।

उपसर्या गौः। उपसर्या स्त्री, यहां उपपूर्वक सृ धातु से यत् प्रत्यय निपातन किया है। 'काल्या प्रजन' ग्रहण से यहां न हुआ—उपसार्या वसन्ते वाटिका॥

९३३–अजर्य्यं सङ्गतम्॥ ३। १। १०५॥

सङ्गत विशेष्य हो, तो नञ्पूर्वक जृष् धातु से कर्त्ता में यत् प्रत्यय निपातन हो।

न जीर्यति = अजर्यम् । अजर्यमार्यसङ्गतम् । 'सङ्गत' ग्रहण से यहां न हुआ—अजरिता कम्बलः ।।

९३४—वदः सुपि क्यप् च ।। ३ । १ । १०६ ।।

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो, तो वद धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय हो ।

ब्रह्मोद्यम् । ब्रह्मवद्यम् । वेद का कथन है । सत्योद्यम् । सत्यवद्यम् । 'सुप्' के ग्रहण से यहां न हुआ—वाद्यम् । अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रवाद्यम् ।।

९३५—भुवो भावे ।। ३ । १ । १०७ ।।

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो, तो भू धातु से भाव में क्यप् प्रत्यय हो ।

ब्रह्मणो भावो = ब्रह्मभूयम् । देवभूयं गतः । 'भाव' ग्रहण अगले सूत्रों के लिये है, क्योंकि सत्तार्थक भू धातु में अकर्म्मत्व मान कर भाव में क्यप् सिद्ध है । 'सुम्' के ग्रहण से यहां न हुआ—भव्यम् । 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रभाव्यम् ।।

९३६—हनस्त च ।। ३ । १ । १०८ ।।

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो, तो हन् धातु से भाव में क्यप् प्रत्यय और हन् को तकार अन्तादेश हो ।

ब्रह्मणो हननं = ब्रह्महत्या । गोहत्या । श्वहत्या वर्त्तते । 'सुप्' के ग्रहण से यहां न हुआ—घातः । 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रघातो वर्त्तते । 'भाव' ग्रहण से यहां न हुआ—श्वघात्यो वृषलः ।

९३७—वा०—हनस्तश्चित् स्त्रियां छन्दसि ।।३।१।१०८।।

वेदविषयक प्रयोग में (हनस्त च) इससे हन् धातु से विहित क्यप् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में चित् हो ।

तां भ्रूणहत्यां निगृह्यानुचरणम् । अस्यै त्वा भ्रूणहत्यायै चतुर्थं प्रतिपद्यते । 'स्त्रीलिङ्ग' ग्रहण से यहां चित् नहीं होता है—आघ्नते

दस्युहत्याय। 'छन्दो' ग्रहण से यहां चित्त्व धर्म्म नहीं होता—श्वहत्या। दस्युहत्या वर्त्तते* ॥

९३८—एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ॥ ३ । १ । १०९ ॥

इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष्, धातुओं से क्यप् प्रत्यय हो।

इत्यः। स्तुत्यः। शिष्यः, यहां (३७१) सूत्र से इत् हो जाता है। वृत्यः। आदृत्यः। जुष्यः।

क्यप् प्रत्यय वर्त्तमान था, फिर क्यप् के ग्रहण का यह प्रयोजन है कि—अवश्यस्तुत्यः, यहां आवश्यक अर्थ में वक्ष्यमाण जो ण्यत् प्राप्त है, वह न हो।

क्यविधौ वृञ् ग्रहणम् ॥ महाभाष्य ३ । १ । १०९ ॥ क्यब्विधि में वृञ् का ग्रहण है, इससे यहां न हुआ—वार्य्या ऋत्विजः।

(प्रशस्यस्य श्नः ॥ ५ । ३ । ६०) इस सूत्र में जो 'प्रशस्य' शब्द का ग्रहण है, इस ज्ञापन से शंसु धातु से भी क्यप् प्रत्यय होता है। क्योंकि प्र उपसर्गपूर्वक शंसु धातु का क्यप् के परे 'प्रशस्य' यह सिद्ध होता है।

९३९—वा०—अञ्जेश्जोपसङ्ख्यानं संज्ञायाम् ॥ ३।१।१०९ ॥

संज्ञा गम्यमान हो, जो अञ्जु धातु से क्यप् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये।

आनक्तचनेनेति=आज्यं घृतम्, यहां करण में क्यप् है। यह क्यप् आङ्पूर्वक ही से होता है—आङ्पूर्वस्य प्रयोगो भविष्यति ॥ महाभाष्य ३ । १ । १०९ ॥

९४०—ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः ॥ ३ । १ । ११० ॥

क्लृपि और चृति धातुओं को छोड़कर ऋकारोपध धातु से क्यप् प्रत्यय होता है।

---

* महाभाष्यकार के श्वहत्या, दस्युहत्या इन्हीं प्रयोगों से स्पष्ट है कि हन् धातु से यह क्यप् प्रत्यय लोक में नियम से स्त्रीलिङ्ग में होता है ॥

वृत्यम् । वृध्यम् । 'अक्लृपिचृति' ग्रहण से यहां न हुआ—कल्प्यम् । चर्त्यम् । 'तपर' करण से यहां न हुआ—कीर्त्यम्, यहां ण्यत् होता है, यह 'कृत संशब्दने' का प्रयोग है ॥

६४१—ई च खनः ॥ ३ । १ । १११ ॥

खन् धातु से क्यप् प्रत्यय और खन को ईकारादेश हो ।

खेयम्, यहां ह्रस्व इकार भी आदेश महाभाष्य को इष्ट है, क्योंकि (सन्धि० २०८) सूत्र से ह्रस्व वा दीर्घ दोनों के परे पूर्वपर के स्थान में गुण एकारादेश होजाता है ※ ॥

६४२—भृञोऽसंज्ञायाम् ॥ ३ । १ । ११२ ॥

असंज्ञाविषय में भृञ् धातु से क्यप् प्रत्यय हो ।

भृत्याः कर्म्मकराः । 'असंज्ञा' ग्रहण से यहां न हुआ—भार्य्या नाम क्षत्रियाः । भार्य्या गृहिणी, यहां तो ण्यत् होता है ।

'असंज्ञायाम्' इस प्रतिषेध से भार्या शब्द ण्यत्प्रत्ययन्त संज्ञाविषय में होता है, उसके लिये कहते हैं—

६४३—का०—संज्ञायां पुंसि दृष्टत्वान्न ते भार्या प्रसिध्यति ।
स्त्रियां भावाधिकारास्ति तेन भार्या प्रसिध्यति ॥१॥
अथवा बहुलं कृत्याः संज्ञायामिति तत् स्मृतम् ।
यथा यत्यं यथा जन्यं यथा भित्तिस्तथैव सा ॥२॥

३ । १ ११२ ॥

※ यहां काशिकाकार ने इकार दूसरा प्रश्लेष मानकर (ये विभाषा) इससे आत्व की व्यावृत्ति की है । यह उनका व्याख्यान आहोपुरुषिकामात्र है । क्योंकि क्यप् सन्नियोग में विधीयमान इत्व अन्तरङ्ग और यकारादि प्रत्यय के परे विधीयमान आत्व बहिरङ्ग है, इससे 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' इसी से आत्व की व्यावृत्ति हो जायगी, फिर प्रश्लेष इकार क्यों माना जाय ? इसलिये महाभाष्यकार की व्याख्या से विरुद्ध है ॥

प्रश्न—पुँल्लिङ्गविषयक संज्ञा में ण्यत् प्रत्यय के देखने से तुम्हारा 'भार्या' शब्द नहीं सिद्ध होता है ?

उत्तर—स्त्रीलिङ्गविषयक (सञ्ज्ञायां समज० ॥ ३ । ३ । ९९) इस सूत्र में भाव का अधिकार है, उससे भार्या शब्द प्रसिद्ध होता है। अर्थात् भाव का अधिकार मान कर स्त्रीलिङ्ग में भावविषयक क्यप् प्रत्ययान्त 'भृत्या' होगा; तथा कर्म में ण्यत्प्रत्ययान्त 'भार्या' हो जायगा ॥ १ ॥

अथवा जो उक्तसूत्र में भावाधिकार न मानें तो कृत्य और ल्युट् बहुल करके होते हैं। यह स्मरण संज्ञा के निमित्त भी होना चाहिये। जैसे यत्य जैसे जन्य और जैसे भित्ति शब्द है, वैसे ही वह 'भार्या' शब्द भी सिद्ध हो जायगा * ॥ २ ॥

६४४–मृजेर्विभाषा ॥ ३ । १ । ११३ ॥

मृज धातु से विकल्प करके क्यप् प्रत्यय हो।

मृज्यः ।

६४५–चजोः कु घिण्यतोः ॥ ७ । ३ । ५२ ॥

घित् और ण्यत् प्रत्यय परे हो, तो चकार और जकार को कुत्व हो।

मार्ग्यः, यहां वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय होता और (३५५) से वृद्धि हो गई ॥

६४६–राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥

॥ ३ । १ । ११४ ॥

राजसूय, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य से क्यप् प्रत्ययान्त निपातन हैं।

---

* अजन्त से विहित यत् प्रत्यय यत जन धातुओं से होता, और स्त्री अधिकार में भिद् धातु से अङ् विहित है, तथापि बाहुल भाव से क्तिन् भी होता है। वैसे ही बहुल भाव से 'ण्यत्' प्रत्ययान्त 'भार्या' शब्द हो जायगा ॥

अभिपवद्वारा राज्ञा सोतव्यो राजानस्सूयन्तेऽस्मिन्निति वा = राजसूयो यज्ञः, यहां राजन् शब्दपूर्वक 'पुञ् अभिषवे' धातु से क्यप् प्रत्यय और निपात से दीर्घादेश होता है। सरत्याकाशमार्गेण गच्छति वा सुवति लोकं कर्मणि प्रेरयतीति = सूर्यः, यहाँ 'सृ गतौ, वा षू प्रेरणे' धातु से क्यप् प्रत्यय और सृ को ऊकार आदेश वा षू को रुडागम निपातन है।

मृषा उद्यत इति = मृषोद्यम्, यहां मृषोपपद 'वद' धातु से (९३४) सूत्र से क्यप् और यत् की प्राप्ति में क्यप् विहित है। रोचतेऽसौ = रुच्यः, यहां 'रुच' धातु से कर्त्ता में क्यप् है। गुप्यते यत्तत् = कुप्यम्,—यहां संज्ञा में 'गुप' धातु को कुत्व निपातन है। गोप्यते यत्तत् = कुत्यम्,—सुवर्ण और रजत से भिन्न धन की संज्ञा है। अन्यत्र—'गोप्यम्' होगा।

कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते इति = कृष्टपच्याः, यहां कर्मकर्त्ता से 'पच्' से क्यप् प्रत्यय है। यो हि कृष्टे पक्तव्यः सः = कृष्टपाक्यो भवति। न व्यथत इति = अव्यथ्यः।

सूर्यरुच्याव्यथ्याः कर्त्तरि, कुप्यं संज्ञायाम्, कृष्टपच्यस्यान्तोदात्तत्वं च कर्म कर्त्तरि च॥ महाभाष्य ३।१।११४॥

९४७—भिद्योद्ध्यौ नदे॥ ३। १। ११५॥

नद अभिधेय हो, तो भिद्य, उद्ध्य ये क्यप् प्रत्ययान्त निपातन है।

भिनत्ति कूलमिति = भिद्यः। उज्झत्युदकमिति = उद्ध्यः, यहां 'उज्झ त्यागे' धातु को धत्व भी निपातन है। नद से अन्यत्र—भेत्ता। उज्झिता॥

९४८—पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे॥ ३। १। ११६॥

नक्षत्र अभिधेय हो, तो पुष्य, सिद्ध्य ये निपातन हैं।

पुष्यत्यस्मिन् कार्य्याणीति = पुष्यः। सिद्ध्यन्त्यस्मिन्नर्था इति = सिद्ध्यः। अन्यत्र—पोषणम्। सेधनम्॥

९४९—विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु ।।३।१।११७।।

मुञ्ज, कल्क, हलि इन अर्थों में, विपूय, विनीय, जित्य ये शब्द यथासङ्ख्य निपातन हैं।

विपू, विनी तथा जि से यत् प्रत्यय की प्राप्ति में क्यप् प्रत्यय निपातन किया है। विपूयो मुञ्जः—रज्ज्वादि कर्म के लिये शोधने योग्य है। अन्यत्र—विपाव्यम्। विनेतुं योग्यो = विनीयः कल्कः। विनेयमन्यत्। जित्यो हलिः। जेयमन्यत्।।

९५०—प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ।। ३ । १ । ११८ ।।

प्रति और अपि से परे ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो।

प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि ।। महाभाष्य ३ । १ । ११८ ।। मत्तस्य न प्रतिगृह्यम्। अनृतं हि मत्तो वदति तस्मान्नापि गृह्यम्। लोक में—प्रतिग्राह्यम्। अपिग्राह्यम्।

९५१—पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ।। ३ । १ । ११९ ।।

पद, अस्वैरिन्, बाह्या और पक्ष्य अर्थ में ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो।

पद—प्रगृह्यं पदम्—जिसकी प्रगृह्य संज्ञा करते हैं। अवगृह्यं पदम्—जिसका अवग्रह करते हैं। अस्वैरी = परतन्त्र—गृह्यकाः पक्षिणः—गृहीत हैं।

बाह्या—ग्रामगृह्याः वाप्यः—ग्राम से बाहर बावड़ी है। नगरगृह्या सेना—नगर से बाहर सेना है, यह प्रतीति होती है। स्त्रीलिङ्ग निर्देश से यहां न हुआ—ग्रामग्राह्याः पादपाः। पक्ष्य—पक्ष में जो हो वह 'पक्ष्य' कहावे। आर्यैर्गृहीतुं योग्यः = आर्यगृह्यः पक्ष्यः। अर्जुनगृह्याः। वासुदेवगृह्याः।

९५२—विभाषा कृवृषोः ।। ३ । १ । १२० ।।

कृञ् और वृष धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प करके हो।

कृत्यम्; कार्यम्। वृष्यम्; वर्ष्यम्।।

९५३—युग्यं च पत्रे ॥ ३ । १ । १२१ ॥

पत्र=वाहन अभिधेय हो, तो युग्य यह निपातन है।

युग्योऽश्वः। युग्यो गौः, यहां 'युज्' धातु से क्यप् और धातु को कुत्वादेश निपातन है। 'पत्र' ग्रहण से यहां न हुआ—योग्यम् ॥

९५४—अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥ ३ । १ । १२२ ॥

अमावस्यत् यह विकल्प करके निपातन है।

अर्थात् अमापूर्वक 'वस' धातु से ण्यत् प्रत्यय के परे विकल्प करके वृद्धि का अभाव निपातन है। अमा शब्द सहार्थ में वर्त्तमान है। सह वसतोऽस्यां सूर्याचन्द्रमसाविति=अमावस्या; अमावास्या ॥

९५५—छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥ ३ । १ । १२३ ॥

निष्टर्क्य, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य, स्तर्या, ध्वर्य, खन्य, खान्य, देवयज्या, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य, स्ताव्य और उपचाय्यपृड ये निपातन हैं।

निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः—यहां निस् पूर्वक 'कृती' धातु से ण्यत् प्रत्यय, धातु का आद्यन्त विपर्यय और निस् के स् को ष् आदेश निपातन है। स्पर्द्धन्ते वा उ देवहूये—यहाँ देवपूर्वक 'ह्वेञ्' वा 'हु' धातु से क्यप् प्रत्यय धातु के उकार को दीर्घ और तुक् का अभाव निपातन है। प्रणीयः; उन्नीयः—प्र और उद् इनसे परे 'नी' धातु से क्यप्।

उच्छिष्यः—उत्पूर्वक 'शिष' से क्यप्। मर्यः—मृङ् से यत्। स्तर्या—'स्तृञ्' से यत् और स्त्रीलिङ्ग में निपातन है। ध्वर्यः—'ध्वृ' से यत्। खन्य; खान्यः—'खन' से यत् और ण्यत्। शुन्धध्वं दैव्याय कर्म्मणे देवयज्यायै—

देवपूर्वक 'यज' धातु से यत् प्रत्यय और स्त्रीलिङ्ग में निपातन है। आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति—आङ् पूर्वक 'प्रच्छ' धातु से क्यप्। प्रतिषीव्यः—प्रतिपूर्वक 'सीव्यति' से क्यप् और षत्व निपातन है।

ब्रह्मवाद्यम्—ब्रह्मन् उपपद 'वद' धातु से ण्यत्। भाव्यः; स्ताव्यः—'भू' और 'ष्टुञ्' से ण्यत्। उपचाय्यपृडम्—यहाँ उपपूर्वक 'चिञ्' धातु से पृड उत्तरपद के परे ण्यत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है। **हिरण्य इति च ॥ महाभाष्य ३। १। १२३ ॥** हिरण्य अर्थ में 'उपचाय्यपृड' हो। हिरण्य से अन्यत्र—'उपचेयपृडम्' होगा।

निष्टक्र्ये व्यत्ययं विद्यान्निसः षत्वं निपातनात्।
ण्यदायादेश इत्येतावुपचाय्ये निपातितौ ॥ १ ॥
ण्यदेकस्माच्चतुर्भ्यः क्यप् चतुर्भ्यश्च यतो विधिः।
ण्यदेकस्माद्यशब्दश्च द्वौ क्यपौ ण्यद्विधिश्चतुः॥२॥ महाभाष्य ३।१।१२३॥

इन कारिकाओं का अर्थ निष्टक्र्यादि प्रयोगों की व्याख्या में आ गया है॥

९५६–ऋहलोर्ण्यत् ॥ ३ । १ । १२४ ॥

ऋवर्णान्त और हलन्तों से ण्यत् प्रत्यय हो।

धार्य्यम्। हार्य्यम्। वाक्यम्। पाक्यम् (९४५)।

९५७–वा०–पाणौ सृजेर्ण्यद्विधिः ॥ ३ । १ । १२४ ॥

पाणि शब्द उपपद हो, तो सृज धातु से ण्यत् प्रत्यय का विधान करना योग्य है।

पाणिभ्यां सृज्यत इति=पाणिसर्ग्या रज्जुः, यहाँ (९४५) से कुत्व हो गया।

९५८–वा०–समवपूर्वाच्च ॥ ३ । १ । १२४ ॥

समवपूर्व भी सृज धातु से ण्यत् प्रत्यय विधान करने योग्य है। समवसर्ग्या रज्जुः।

९५९—वा०—लपिदभिभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥ ३।१।१२४॥

लप और दभ * धातु से भी ण्यत् प्रत्यय कहने योग्य है।

अपलाप्यम्। अपदाभ्यम्॥

९६०—न क्वादेः ॥ ७।३।५९॥

कवर्ग जिसके आदि में है, उस धातु के चकार और जकार को कुत्व न हो।

कूज्यमनेन। खर्ज्यम्। गर्ज्यम्। कूजः। खर्जः। गर्जः॥

९६१—अजिव्रज्योश्च ॥ ७।३।६०॥

अज और व्रज धातु को कुत्व न हो।

परिव्राज्यम्। परिव्राजः। समाजः। उदाजः, यहाँ घञ् प्रत्यय है। ण्यत् प्रत्यय की विवक्षा में (१५५) सूत्र से वी भाव होने से अज धातु का ण्यत् प्रत्ययान्त प्रयोग नहीं होता॥

९६२—वञ्चेर्गतौ ॥ ७।३।६३॥

गति अर्थ में वर्त्तमान वञ्च धातु को कवर्गादेश न हो।

वञ्चितुं गन्तुं योग्यम्=वञ्च्यम्। 'गति' ग्रहण से यहाँ न हुआ— वङ्क्यं काष्ठम्=काष्ठ टेढ़ा है॥

९६३—ण्य आवश्यके ॥ ७।३।६५॥

आवश्यक अर्थ में ण्यप्रत्यय परे हो, तो कवर्गादेश न हो।

अवश्यपाच्यम्। अवश्यवाच्यम्। आवश्यक से अन्यत्र— पाक्यम्। वाक्यम्।

९६४—यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ॥ ७।३।६६॥

ण्य प्रत्यय परे हो, तो यज, याच, रुच, प्रवच, ऋच इन धातुओं को कुत्वादेश न हो।

---

* धातु पाठ में अपठित भी दभ धातु वार्त्तिकवल से स्वीकार करना चाहिये॥

याज्यम् । याच्यम् । रोच्यम् । प्रवाच्यम्—यह पाठ विशेष का नाम है । अर्च्यम् । यद्यपि ऋदुपधत्व मानकर 'ऋच' धातु से क्यप् प्रत्यय भी प्राप्त है, तथापि ण्य के परे जो इस को कुत्व का निषेध किया है, इस ज्ञापन से ण्यत् प्रत्यय इससे होगा ।

९६५–वा०–ण्यप्रतिषेधे त्यजेरुपसंख्यानम् ।। ७ । ३ । ६६ ।।

ण्य के परे कुत्व प्रतिषेध में त्यज धातु का उपसंख्यान करना चाहिये ।

त्यक्तुं योग्यम् = त्याज्यम् ।।

९६६–भोज्यं भक्ष्ये ।। ७ । ३ । ६९ ।।

भक्ष्य अर्थ में भोज्य यह निपातन हो ।

भोज्यमभ्यवहार्यमिति वक्तव्यम् ।। महाभाष्य ।। ७ । ३ । ६९ ।। अभ्यवहार्यमात्र अर्थ हो, तो भोज्य यह निपातन हो—भोज्यः सूपः । भोज्या यवागूः । अभ्यवहार से अन्यत्र—भोग्यः कम्बलः ।।

९६७–ओरावश्यके ।। ३ । १ । १२५ ।।

आवश्यक अर्थ द्योत्य हो, तो उवर्णान्त धातु से ण्यत् प्रत्यय हो ।

लाव्यम् । पाव्यम् । आवश्यक से अन्यत्र—लव्यम् । पव्यम् ।।

९६८–आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ।। ३ । १ । १२६ ।।

आङ्पूर्वक षुञ्, यु, डुवप्, रप्, लप्, त्रपि और चम् धातु से ण्यत् प्रत्यय हो ।

यह यत् प्रत्यय का अपवाद है । आसाव्यम् । याव्यम् । वाप्यम् । राप्यम् । लाप्यम् । त्राप्यम् । आचाम्यम् ।।

९६९–आनाय्योऽनित्ये ।। ३ । १ । १२७ ।।

अनित्य अर्थ अभिधेय हो, तो आङ्पूर्वक णीञ् धातु से आनाय्य यह निपातन है ।

आनाय्योऽनित्य इति चेद्दक्षिणाग्नौ कृतं भवेत् ।
एकयोनौ तु तं विद्यादानेयो ह्यन्यथा भवेत् ॥

महाभाष्य ३ । १ । १२७ ॥

आनाय्यो दक्षिणाग्निः, यहाँ ण्यत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है। जो गार्हपत्य अग्नि से लिया जाता और आहवनीय अग्नि के साथ एक योनि को प्राप्त है, उस विशेष दक्षिणाग्नि में यह शब्द रूढ़ि है। और जो वैश्य कुल से लिया जाता है, उसमें 'आनेय' होगा।

९७०–प्रणाय्योऽसंमतौ ॥ ३ । १ । १२८ ॥

असंमति अभिधेय हो, तो प्रणाय्य यह निपातन हो।

संमति=प्रीति का विषय और भोग में आदर बुद्धि जिसमें न हो वह 'असंमति' कहावे। प्रणाय्यश्चोरः। प्रणाय्योऽप्रियः। प्रणाय्योऽन्तेवासी—यह विरक्त है, अर्थात् भोगों में इच्छा नहीं रखता है॥

९७१–पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु ॥ ३ । १ । १२९ ॥

मान, हविष्, निवास, सामिधेनी ये अभिधेय हों, तो यथाक्रम से पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य, धाय्या से निपातन हैं।

मीयतेऽनेनेति=पाय्यं मानम्, यहाँ ण्यत् प्रत्यय, धातु के आदि म को प आदेश होता है। अन्यत्र—मेयम्। सम्यङ् नीयते होमार्थमग्नि प्रतीति=सान्नाय्यं हविः, ण्यत् आयादेश और सम् के अकार को दीर्घ निपातन होता है। अन्यत्र—सन्नेयम्।

निचीयते धान्यादिकमत्रेति=निकायः, निवासः, आय् और धातु के आदि को कुत्व निपातन है। अन्यत्र—चेयम्। धीयतेऽनया समिदिति=धाय्या सामिधेनी ऋक्। ण्यत् प्रत्यय निपातन है। सामिधेनी शब्द ऋग्विशेष का वाचक है। धाय्या शंसत्यग्निर्नेता त्वं सोमक्रतुभिः।

६७२–क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ ॥ ३ । १ । १३० ॥

क्रतु अभिधेय हो, तो कुण्डपाय्य और संचाय्य निपातन हैं। कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोम इति=कुण्डपाय्यः क्रतुः, यहां तृतीयान्त कुण्डशब्दपूर्वक पिबति से यत् प्रत्यय और युगागम निपातन है। [संचीयतेऽसौ=संचाय्यः, यहां सम्पूर्वक चिनोति से ण्यत् आयादेश निपातन है।] 'क्रतु' ग्रहण से यहां न हुआ—कुण्डपानम्। तथा सञ्चेयः।

६७३–अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ॥ ३ । १ । १३१ ॥

अग्नि अभिधेय हो, तो परिचाय्य, उपचाय्य और समूह्य ये निपातन हों।

परिचेतुं योग्यः= परिचाय्यः। उपचाय्यः—परि उपपूर्वक चिञ् धातु से ण्यत् और आयादेश निपातन है। समूह्यं चिन्वीत पशुकामः—सम्पूर्वक 'वह' धातु से ण्यत् प्रत्यय धातु को सम्प्रसारण और दीर्घत्व निपातन है। अग्नि से अन्यत्र—परिचेयम्। उपचेयम्। संवाह्यम्॥

६७४–चित्याग्निचित्ये च ॥ ३ । १ । १३२ ॥

अग्नि अभिधेय हो, तो चित्य और अग्निचित्या निपातन हों।

चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्निचयनमेव अग्निचित्या—यहां भाव में य प्रत्यय अन्तोदात्तत्व और तुगागम निपातन होता है।

अग्निचित्येत्यन्तोदात्तत्वं भावे॥ महाभाष्य ३।१।१३२॥

६७५–भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा॥ ३ । ४ । ६८ ॥

भव्य आदि कृत्यप्रत्ययान्त कर्त्ता में विकल्प करके निपातन हैं।

द्वितीय पक्ष में यथाप्राप्त भाव कर्म में होंगे। भवत्यसौ भव्यः। भव्यमनेन वा। गेयो माणवकः साम्नाम्। गेयानि माणवकेन सामानि। प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य। प्रवचनीयो वा गुरुणा स्वाध्यायः। उपस्थानीयोऽन्तेवासी गुरोः। उपस्थानीयः शिष्येण वा गुरुः। जायतेऽसौ जन्यः। जन्यमनेन वा। आप्लवते = आप्लाव्यः। आप्लाव्यमनेन वा। आपतत्यसावापात्यः। आपात्यमनेन वा॥

इति कृदन्तकृत्यप्रक्रिया समाप्ता॥ २५॥

---

(२६) अथ कृदन्तप्रक्रिया ॥

६७६–ण्वुल्तृचौ ॥ ३ । १ । १३३ ॥

सब धातुओं से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हों ।

इस प्रकरण में सर्वत्र (३) सूत्र से कृत्संज्ञा होती और (९१५) सूत्र से कृत्संज्ञक प्रत्यय सामान्य से कर्त्ता में होते हैं । करोतीति=कारकः । कर्त्ता । हारकः । हर्त्ता । स्त्रीलिङ्ग में—कारिका । कर्त्री । हारिका । हर्त्री । कुटिता, यहां (३४५) सूत्र से ङित्व मान कर गुणादेश न हुआ । कोटकः । विजिता, (४२८) सूत्र से इट् होता है ।

घातकः, यहां (५०३) सूत्र से तकारादेश । दायकः । शमकः । दमकः । रन्धकः । जम्भकः, यहां (१६५) सूत्र से नुम् । रधिता, (४०८) से नुम् निषेध । एषिता; एष्टा । सहिता; सोढा, यहां (२१२) सूत्र से इट् । ण्यन्त—भावयिता । सन्नन्त—बुभूषिता । यङन्त—पापचकः, यहां अल्लोप के स्थानिवद्भाव से वृद्धि न हुई । यङ्लुगन्त—पापाचकः ॥

६७७–नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः॥ ३ । १ । १३४ ॥

नन्द्यादिक, ग्रह्यादिक और पचादिक धातुओं से यथाक्रम ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय हों ।

अर्थात् नन्द्यादिकों से ल्यु, ग्रह्यादिकों से णिनि और पचादिकों से अच् होता है । नन्दयतीति=नन्दनः । जनानर्द्दयतीति=जनार्द्दनः । मधुसूदनः । विशेषेण भीषयतीति=विभीषणः । वामनः । मदनः । दूषणः । लवणः, यहां गणपाठक्रम से निपातन से णत्वादेश है ।

ग्राही । स्थायी । मन्त्री । विशयी, यहां वृद्धि का अभाव निपातन है। विषयी, यहां षत्व निपातन है। परिभावी; परिभवी, यहां विकल्प करके वृद्धि का अभाव है। पचतीति = पचः ।

अजपि सर्वधातुभ्यः ॥ महाभाष्य ३ । ७ । १३४ ॥ सब धातुओं से अच् प्रत्यय कहना चाहिये । भवतीति = भवः । सवः । यह अच् प्रत्यय धातुमात्र से इष्ट है, इससे पचादिगण का कथन शब्दों के साथ अनुबन्ध लगाने और बाधकों के बांधने के लिये है। जैसे—नदट् । चोरट् । देवट् इत्यादि टित् माने हैं। नदः । चोरः । देवः । स्त्रीलिङ्ग में—नदी । चोरी । देवी, यहां इगुपधत्व मान कर 'दिवु' धातु से क प्रत्यय प्राप्त था, उसको बाध कर अच् प्रत्यय हुआ । जारभरा । श्वपचा इनमें अगला अण् प्राप्त था । चेक्रियः । लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः ॥

९७८–इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ॥ ३ । १ । १३५ ॥

इक् जिसके उपधा में हो, और ज्ञा प्री तथा कृ धातु से क प्रत्यय हो । बुधः । विक्षिपः । ज्ञः । प्रीणातीति = प्रियः । किरतीति = किरः ॥

९७९–आतश्चोपसर्गे ॥ ३ । १ । १३६ ॥

उपसर्ग पूर्व हो, तो आदन्त धातु से क प्रत्यय हो ।
आगे ण प्रत्यय कहेंगे, उसका यह अपवाद है । प्रस्थः । प्रवः ।

९८०–पाघ्राध्माधेट्दृशः शः ॥ ३ । १ । १३७ ॥

पा, घ्रा, ध्मा, धेट् और दृश धातु से श प्रत्यय हो ।

पिबतीति = पिबः । उत्पिबति = उत्पिबः । विपिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । विधयः । पश्यतीति = पश्यः ।

९८१–वा०–जिघ्रः संज्ञायां प्रतिषेधः ॥ ३ । १ । १२८ ॥

व्याजिघ्रतीति = व्याघ्रः ॥

९८२–अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसाति-साहिभ्यश्च ।। ३ । १ । १३८ ।।

उपसर्गरहित लिम्प, विन्द्, धारि, पारि, वेदि, उदेजि, चेति, साति, साहि इन धातुओं से श प्रत्यय हो।

लिम्पतीति = लिम्प: । विन्दतीति = विन्द: । धारयतीति = धारय: । पारयतीति = पारय: । वेदयतीति = वेदय: । उदेजयतीति = उदेजय: । चेतयतीति = चेतय: । 'साति' सुखार्थक सौत्र धातु है। सातयतीति = सातय: । सहायतीति = साहय: 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रलिप: ।

९८३–वा०–अनुपसर्गान्नौ लिम्पे: ।। ३ । १ । १३८ ।।

अनुपसर्ग विषय में निपूर्वक लिम्प धातु से श प्रत्यय कहना चाहिये।

निलिम्पा नाम देवा: ।।

९८४–वा०–गवादिषु विन्दे: संज्ञायाम् ।। ३ । १ । १३८ ।।

गवादिक उपपद हों,तो विद्लृ धातु से श प्रत्यय संज्ञा में कहना चाहिये।

गोविन्द: । अरविन्द: ।

९८५–ददातिदधात्योर्विभाषा ।। ३ । १ । १३९ ।।

उपसर्गरहित डुदाञ् और डुधाञ् धातु से श प्रत्यय विकल्प करके हो।

यह (९८८) सूत्र का अपवाद है। ददातीति = दद:; दाय: । दध:, धाय: अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ—प्रददातीति = प्रद: । प्रध:, यहां (९७८) सूत्र से क प्रत्यय होगया ।।

९८६–ज्वलितिकसन्तेभ्यो ण: ।। ३ । १ । १४० ।।

उपसर्गरहित ज्वल आदि कस पर्यन्त धातुओं से विकल्प करके ण प्रत्यय हो।

यहां इति शब्द आदि के लिये है ज्वलतीति = ज्वाल; ज्वल: । चाल:; चल:; दूसरे पक्ष में अच् प्रत्यय होजाता है। 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रज्वल: ।

९८७–वा०–तनोतेरुपसंख्यानम् ॥ ३ । १ । १४० ॥

तनु धातु से ण प्रत्यय का उपसंख्यान चाहिये ।

अवतनोतीत्यवतानः ॥

९८८–श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च ॥ ३ । १ । १४१ ॥

श्यैङ्, आकारान्त, व्यध, आस्रु, संस्रु अतीण्, अवसा, अवहृ, लिह, श्लिष, श्वास इन धातुओं से ण प्रत्यय हो ।

आकारान्त ग्रहण से श्यैङ् और अवपूर्वक सा धातु से ण हो जाता, तथापि इनका अलग ग्रहण सोपसर्ग लक्षण क प्रत्यय के बाधने के लिये है । अवश्यायः । प्रतिश्यायः । दायः । धायः । शायः । व्याधः । आस्रावः । संस्रावः । अत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ॥

९८९–दुन्योरनुपसर्गे ॥ ३ । १ । १४२ ॥

उपसर्ग पूर्व न हो, तो दु और नी धातु से ण प्रत्यय हो ।

दुनोतीति = दावः । नयतीति = नायः । 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रदवः । प्रणयः ॥

९९०–विभाषा ग्रहः ॥ ३ । १ । १४३ ॥

ग्रह धातु से विकल्प करके ण प्रत्यय हो ।

यह अच् का अपवाद है । गृह्णातीति = ग्राहः; ग्रह । यह व्यवस्थित विभाषा है, इससे जलचर में 'ग्राहः' नित्य होता, और ज्योतिः में 'ग्रहः' यही होता है ※ ॥

※ इस सूत्र के विवरण में जो काशिकाकार ने (भवतश्चेति वक्तव्यम् ॥ ३ । १ । १४३ ॥) यह वार्त्तिक पढ़ा है, सो महाभाष्यकार के मत से विरुद्ध है, महाभाष्य में उसका मूल नहीं है । इससे प्राप्त्यर्थक 'भू' धातु से अच्प्रत्ययान्त 'भाव' और सत्तार्थक से भव समझ लेना चाहिये । भाव पदार्थों का नाम और भव महादेव और संसार आदि का नाम है ।

९९१–गेहे कः ॥ ३ । १ । १४४ ॥

गेह—घर—कर्त्ता हो, तो ग्रह धातु से क प्रत्यय हो।

गृह्णाति धान्यादिकमिति = गृहम्। गृह्णन्ति पदार्थानिति = गृहाणि वेश्मानि। तात्स्थ्योपाधि से स्त्रीजनों को भी 'गृह' कहते हैं—गृहाः दाराः॥

९९२–शिल्पिनि ष्वुन् ॥ ३ । १ । १४५ ॥

शिल्पी कर्त्ता हो, तो धातु से ष्वुन् प्रत्यय हो।

नृतिखनिरञ्जिभ्य इति वक्तव्यम् ॥ ३ । १ । १४५ ॥

शिल्प = क्रिया करने की चतुराई जिसमें विद्यमान है, वह 'शिल्पी' कहावे। नृत्यतीति = नर्त्तकः। खनकः। नर्त्तकी। खनकी। रञ्जकः। रञ्जकी* ॥

९९३–गस्थकन् ॥ ३ । १ । १४६ ॥

शिल्पी कर्त्ता हो, तो गै धातु से थकन् प्रत्यय हो।

गायतीति = गाथकः। स्त्रीलिङ्ग में—गाथिका।

९९४–ण्युट् च ॥ ३ । १ । १४७ ॥

---

* रजकः; रजकी, यहां शिल्पी कर्त्ता में उणादिस्थ क्वुन् प्रत्यय होता है। इस विषय में जो कौमुदीकार ने लिखा कि भाष्यमत से नृति खनि इन्हीं से ष्वुन् और रञ्जि से क्वुन् होता है, यह उनका कथन अयुक्त है, क्योंकि जो रञ्जि से ष्वुन् नहीं होता है, तो महाभाष्यकार ने रञ्जि का परिगणन क्यों किया? महाभाष्य के परिगणन से नृति खनि और रञ्जि इन तीनों से ष्वुन् प्रत्यय होगा। इस विषय में काशिकाकार ने ष्वुन् प्रत्यय का विधान करके भी नकार का लोप माना, यह उनका मानना असङ्गत है, क्योंकि नलोप तो कित् ङित् के परे होता है। और महाभाष्यकार भी 'रजक' शब्द को उणादिस्थ क्वुन् प्रत्यय से मानते हैं। **रजकरजनरजःसु कित्वात् सिद्धम्। कित एवैते औणादिकाः** ॥ महाभाष्य ६। ४। २४॥

शिल्पी कर्त्ता में गै धातु से ण्युट् प्रत्यय भी हो।

गायतीति=गायनः। स्त्री—गायनी॥

६६५—हश्च व्रीहिकालयोः॥ ३। १। १४८॥

व्रीहि और काल कर्त्ता हों, तो ओहाक् और ओहाङ् धातु से ण्युट् प्रत्यय हो।

जहाति जलं जिहीते प्राप्नोति वा=हायनो व्रीहिः। जहाति भावान् जिहीते प्राप्नोति वा=हायनो वत्सरः॥

६६६—प्रसृल्वः समभिहारे वुन्॥ ३। १। १४९॥

समभिहार—वार वार होने अर्थ में प्रु, सृ, लू इन धातुओं से वुन् प्रत्यय हो।

प्रुसृल्वः साधुकारिणि वुन् विधानम्॥ महाभाष्य ३। १। १४९॥

साधुकारी अर्थात् अच्छे प्रकार क्रिया करनेवाला कर्त्ता अभिधेय हो, तो प्रु, सृ, लू इनसे वुन् का विधान करना चाहिये।

प्रवत इति प्रवकः। सरकः। लवकः। साधुकारित्व अर्थ में वुन् विधान से जहां एक वार भी अच्छे प्रकार काम करना हो, वहां वुन् प्रत्यय हो, और वार वार भी काम का अच्छा करना न हो वहां न हो।

६६७—आशिषि च॥ ३। १। १५०॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान हो, तो धातु से वुन् प्रत्यय हो।

जीवतात्—जीवकः। नन्दतात्—नन्दकः॥

६६८—कर्मण्यण्॥ ३। २। १॥

कर्म उपपद हो, तो धातु से अण् प्रत्यय हो।

कर्म तीन प्रकार का है, अर्थात् निर्वर्त्य, विकार्य्य, प्राप्य *। निर्वर्त्य—कुम्भकारः । विकार्य्य—काण्डलावः । शरलावः । प्राप्य—वेदाध्यायः । चर्चापारः । शमनीपारः । सूत्रपाठः, यहां सर्वत्र उपपद समास होता है।

आदित्यं पश्यति । हिमवन्तं शृणोति । ग्रामं गच्छति इत्यादिकों में अनभिधान से नहीं होता, अर्थात् लोक में अर्थप्रतिपादन करने के लिये आदित्य 'दर्श' आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं।

९९९—वा०—अन्नादायेति च कृतां व्यत्ययश्छन्दसि ।।३।२।१।।

वेदविषय में अन्नादाय इत्यादिक प्रयोगों के लिये कृत्संज्ञक प्रत्ययों का व्यत्यय देखना चाहिये।

अत्तीति अन्नः, अन्नस्यादः अन्नादः, तस्मै अन्नादाय । अन्नादायान्नपतये । य आहुतिमन्नादां हुत्वा । 'अन्नमत्ति' इस विग्रह में कर्मोपपद 'अद' धातु से अण् की प्राप्ति में पचाद्यच् का विधान है।

१०००—वा०—शीलिकामिभक्ष्याचारिभ्यो णः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वञ्च ।। ३ । २ । १ ।।

---

* जिसका उपादानकारण विद्यमान न हो वह 'निर्वर्त्य' कहाता है। जैसे संयोगं करोति । अथवा जिसका विद्यमान भी उपादान कारण न विवक्षित हो, वह भी 'निर्वर्त्य' कहाता है। जैसे—घटं करोति । जब उपादान कारण ही परिणामी माना जाय तो निर्वर्त्य कर्म्म भी विकारी हो जाता है। जैसे—मृदं घटं करोति । और जब भेदविवक्षा है, तब वही निर्वर्त्य कर्म्म रहता है। जैसे—मृदा घटं करोति । 'विकार्य्य कर्म दो प्रकार का है, अर्थात् एक तो प्रकृति के विनाश से जो कुछ विकार उत्पन्न हो जैसे—काष्ठादि विकार भस्म । और दूसरा गुणान्तर से जो उत्पन्न हो। जैसे—सुवर्णादि विकार कुण्डलादि । जिसमें प्रत्यक्ष वा अनुमान से क्रियाकृत विशेष न पाया जाय, अर्थात् प्रथम जैसा ही रहे वह 'प्राप्य' कर्म्म कहाता है ।।

शीलि, कामि, भक्षि और आङ्पूर्वक चर इन धातुओं से ण प्रत्यय और पूर्वपद को प्रकृतिस्वर कहना चाहिये ।

मांसशीलः । मांसशीला । मांसकामः । मांसकामा । मांसभक्षः । मांसभक्षा । कल्याणाचारः । कल्याणाचारा ।

१००१–वा०–ईक्षिक्षमिभ्यां च ॥ ३ । २ । १ ॥

सुखप्रतीक्षः । सुखप्रतीक्षा । कल्याणक्षमः । कल्याणक्षमा ॥

१००२–ह्वावामश्च ॥ ३ । २ । २ ॥

कर्म उपपद हो, तो ह्वेञ्, वेञ् और माङ् धातु से अण् प्रत्यय हो ।

स्वर्गह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥

१००३–आतोऽनुपसर्गे कः ॥ ३ । २ । ३ ॥

उपसर्गरहित कर्म उपपद हो, तो आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय हो ।

यह अण् का अपवाद है । गोदः । कम्बलदः । पार्ष्णित्रम् । 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—गोसंदायः ॥

१००४–सुपि स्थः ॥ ३ । २ । ४ ॥

सुबन्त उपपद हो, तो स्था धातु से क प्रत्यय हो * ।

कूटस्थः । समस्थः । विषमस्थः ।

इस सूत्र में महाभाष्यकार ने योगविभाग भी माना है । जैसे—'सुपि'—सुबन्त उपपद हो तो आकारान्त धातु से क प्रत्यय हो । कच्छेन

---

*स्था धातु से भी कर्त्ता में क प्रत्यय इष्ट हो तो इससे पृथक् क विधान न करते, इसलिये पृथक्विधान सामर्थ्य से स्था से भाव में क होगा । परन्तु यह भावस्थ क प्रत्यय कर्त्तावाले क प्रत्यय की बाधा नहीं करता क्योंकि 'स्थः' इस अंश में भाव का प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं है ॥

पिबतीति = कच्छपः । कटाहेन पिबतीति = कटाहपः । द्वाभ्यां पिबतीति = द्विपः । पादपः । 'स्थः'—सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क प्रत्यय हो । आखूनामुत्थानमाखूत्थः । शलभोत्थः ।

'सुपि' इस अंश में कर्त्ता में क प्रत्यय होगा, 'स्थ' भाव में होने के लिये है; अब अगले सूत्रों में 'कर्मणि; सुपि' इन दोनों पदों की अनुवृत्ति है, अर्थात् यथायोग्यता से दोनों उपस्थित होते हैं ॥

१००५—तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥ ३ । २ । ५ ॥

तुन्द और शोक कर्म उपपद हों, तो परिपूर्वक मृज और अपपूर्वक नुद धातु से क प्रत्यय हो ।

आलस्यसुखाहरणयोः ॥ महाभाष्य ३ । २ । ५ ॥

(तुन्दशोकयोः०) इस विषय में आलस्य, सुखाहरण और कहना चाहिये । अर्थात् आलस्य गम्यमान हो और सुखोत्पत्ति अर्थ हो, तो उक्त धातुओं से क प्रत्यय हो ।

तुन्दं परिमार्ष्टि = तुन्दपरिमृजोऽलस आस्ते । अन्यत्र—तुन्दपरिमार्जः । शोकापनुदः पुत्रो जातः । अन्यत्र—शोकापनोदः—अर्थात् जो संसार की अनित्यता आदि दिखा कर शोकमात्र की निवृत्ति करता, किन्तु सुख नहीं उत्पन्न करता ।

१००६—वा०—कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ३ । २ । ५ ॥

मूलानि विभुजति = मूलविभुजो रथः । नखानि मुञ्चन्ति = नखमुचानि धनूंषि । काकगुहास्तिलाः । सरसिरुहं कुमुदम् ॥

१००७—प्रे दाज्ञः ॥ ३ । २ । ६ ॥

कर्म उपपद हो, तो प्रपूर्वक दा और ज्ञा धातु से क प्रत्यय हो ।

धनं प्रददाति = धनप्रदः । शास्त्रप्रज्ञः । पथिप्रज्ञः । प्रमात्र से अन्यत्र—धनसंप्रदायः ॥

१००८—समि ख्यः ।। ३ । २ । ७ ।।

कर्म उपपद हो, तो सम्पूर्वक ख्या धातु से क प्रत्यय हो ।

शास्त्रसंख्यः । गोसंख्यः ।।

१००९—गापोष्टक् ।। ३ । २ । ८ ।।

कर्म उपपद हो, तो उपसर्ग रहित गा, पा धातुओं से ठक् प्रत्यय हो ।

साम गायतीति = सामगः । सामगी ।

सुराशीध्वोः पिबतेः ।। महाभाष्य ३ । २ । ८ ।।

सुरापः । सुरापा । शीधुपः । शीधुपी । इन से अन्यत्र—क्षीरपा ब्राह्मणी । पिबती से अन्यत्र—सामसंगायः ।

१०१०—वा०—बहुलं तणि ।। ३ । २ । ८ ।।

तण्—संज्ञा, छन्द—विषय में पिबति से बहुल करके टक् प्रत्यय हो ।

या ब्राह्मणी सुरापी भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति । या ब्राह्मणी सुरापा भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति ।।

१०११—हरतेरनुद्यमनेऽच् ।। ३ । २ । ९ ।।

कर्म उपपद हो, तो अनुद्यमन अर्थ में वर्त्तमान हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो ।

'उद्यमन' उद्यम को कहते हैं, उससे अन्य 'अनुद्यमन' कहाता है । अंशं हरति = अंशहरः । भागहरः । रिक्थहरः । 'अनुद्यमन' ग्रहण से यहां न हुआ—भारहारः ।

१०१२—वा०—अचप्रकरणे शक्तिलाङ्गलाङ्कुशयष्टितोमर-घटघटीधनुष्षु ग्रहेरुपसंख्यानम् ।। ३ । २ । ९ ।।

अच्प्रकरण में शक्ति, लाङ्गल, अङ्कुश, यष्टि, तोमर, घट, घटी, धनुष् ये उपपद हों, तो ग्रह धातु से अच् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये ।

शक्तिग्रहः। लाङ्गलग्रहः। अंकुशग्रहः। यष्टिग्रहः। तोमरग्रहः। घटग्रहः। घटीग्रहः। धनुर्ग्रहः।

१०१३–वा०–सूत्रे च धार्य्येऽर्थे ।। ३ । २ । ९ ।।

तथा सूत्र उपपद हो, तो धारणार्थक ग्रह धातु से उपसंख्यान करना चाहिये।

सूत्रग्रहः—सूत्र को धारण करता है। 'धार्यार्थ' से अन्यत्र—सूत्रग्राहः—अर्थात् जो सूत्र को ग्रहण करता है।

१०१४–वयसि च ।। ३ । २ । १० ।।

वयस् यौवनादिभाव गम्यमान हो, तो कर्मोपपद हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो।

यह उद्यमन के लिये है। कवचहरः कुमारः। शकटहरः वृषभः।

१०१५–आङि ताच्छील्ये ।। ३ । २ । ११ ।।

ताच्छील्य—तत्स्वभावता—अर्थ गम्यमान हो और कर्म उपपद हो, तो आङ्पूर्वक हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो।

पुष्पाणि आहरति तच्छीलः=पुष्पाहरः। फलाहरः—स्वभाव से निष्प्रयोजन भी पुष्प और फलों को लेता है। ताच्छील्य से अन्यत्र—भारमाहरतीति=भाराहारः ।।

१०१६–अर्हः ।। ३ । २ । १२ ।।

कर्म्म उपपद हो, तो अर्ह धातु से अच् प्रत्यय हो।

वेदार्हः। स्त्री—वेदार्हा ।।

१०१७–स्तम्बकर्णयो रमिजपोः ।। ३ । २ । १३ ।।

स्तम्ब और कर्ण ये सुबन्त यथासंख्य उपपद हों, तो रम और जप धातु से अच् प्रत्यय हो।

रम अकर्म्मक और जप शब्दकर्म्मक है। इससे यहां कर्म्म शब्द की अनुवृत्ति नहीं होती है।

स्तम्बकर्णयोर्हस्तिसूचकयोः ॥ महाभाष्य ३। २। १३ ॥

(स्तम्बकर्णयोः०) यहां हस्तिन् सूचक और कहना चाहिये। अर्थात् हस्ति और सूचक अभिधेय हों, तो उक्त अच् प्रत्यय हो।

स्तम्बे रमते = स्तम्बेरमो हस्ती। कर्णे जपति = कर्णेजपः सूचकः। हस्ति, सूचक से अन्यत्र—स्तम्बेरन्ता। कर्णेजपिता मशकः॥

१०१८–शमि धातोः संज्ञायाम् ॥ ३। २। १४ ॥

शम् उपपद हो, तो संज्ञाविषय में धातुमात्र से अच् प्रत्यय हो।

शङ्करः। शम्भवः। शंवदः। यहां 'धातु' ग्रहण हेत्वादि अर्थों में जो ट प्रत्यय का विधान करेंगे, उसके बाधने के लिये है। अर्थात् उन अर्थों में भी शम्पूर्वक 'कृञ्' धातु से अच् प्रत्यय हो। शङ्करा नाम परिव्राजिका, शङ्करा नाम शकुनिका तच्छीला च॥

१०१९–अधिकरणे शेतेः ॥ ३। २। १५ ॥

सुबन्त उपपद हो, तो अधिकरण में शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो।

खे शेते = खशयः। गर्त्तशयः।

१०२०–वा०–अधिकरणे शेतेः पार्श्वादिषूपसंख्यानम् ॥ ३। २। १५ ॥

(अधिकरणे शेतेः) यहां पार्श्वादि पूर्व हो, तो भी उपसंख्यान करना चाहिये।

पार्श्वाभ्यां शेते = पार्श्वशयः। पृष्ठशयः। उदरशयः।

१०२१–वा०–दिग्धसहपूर्वाच्च ॥ ३। २। १५ ॥

दिग्धसहपूर्वक भी शीङ् धातु से अच् प्रत्यय कहना चाहिये।

दिग्धेन सह शेते=दिग्धसहशयः, यह 'दिग्धसह' इतना समुदाय पूर्व इष्ट है, किन्तु प्रत्येक शब्द पूर्व इष्ट नहीं है।

१०२२–वा०–उत्तानादिषु कर्त्तृषु ॥ ३। २। १५॥

कर्तृवाचक उत्तानादिक शब्द उपपद हों, तो शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो।

उत्तानः शेते=उत्तानशयः। अवतो मूर्द्धा यस्य स अवमूर्द्धा, अवमूर्द्धा शेते=अवमूर्द्धशयः।

१०२३–वा०–गिरौ डश्छन्दसि ॥ ३। २। १५॥

गिरि शब्द उपपद हो, तो वेदविषय में शीङ् धातु से ड प्रत्यय कहना चाहिये।

गिरौ शेते=गिरिशः। लोक में—'गिरिशः' यह शब्द (स्त्रैण ताद्धित—९८३) सूत्र से तद्धित विषय में होता है॥

१०२४–चरेष्टः ॥ ३। २। १६॥

अधिकरणवाची सुबन्त उपपद हो, तो चर धातु से ट प्रत्यय हो।

खे चरतीति=खेचरः। खेचरी। निशाचरः। निशाचरी। कुरुचरः। कुरुचरी। मद्रचरः। मद्रचरी। दिवाचरः। दिवाचरी। 'अधिकरण' ग्रहण से यहां न हुआ—कुरूँश्चरतीति। पञ्चालाँश्चरतीति *।

१०२५–भिक्षासेनादायेषु च ॥ ३। २। १७॥

भिक्षा, सेना और आदाय शब्द उपपद हों, तो चर धातु से ट प्रत्यय हो।

---

* 'कुरु देश में भ्रमण करता है' इस अर्थ की अपेक्षा में 'कुरुषु चरति' यह विग्रह होता। और अन्यदेश से कुरुदेश को प्राप्त होता है, इस विवक्षा में 'कुरूंश्चरति' यह विग्रह होता है॥

भिक्षां चरतीति = भिक्षाचरः। सेनाचरः। 'आदाय' यह ल्यवन्त है। आदाय चरतीति = आदायचरः। 'सहचरः' यह तो पचादिगण में जो चरट शब्द का पाठ है, उससे बनेगा।

१०२६–पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥ ३ । २ । १८ ॥

पुरस्, अग्रतस्, अग्रे ये उपपद हों, तो सृ धातु से ट प्रत्यय हो।

पुरस्सरति = पुरस्सरः। अग्रतस्सरः। अग्रम् अग्रेण अग्रे वा सरति = अग्रेसरः, यहां अग्रे शब्द एकारान्त निपातन से है।

१०२७–पूर्वे कर्त्तरि ॥ ३ । २ । १९ ॥

कर्तृवाचक पूर्व शब्द उपपद हो, तो सृ धातु से ट प्रत्यय हो।

पूर्वः सरतीति = पूर्वसरः। 'कर्त्तृ' से अन्यत्र—पूर्वं देशं सरतीति = पूर्वसारः।

१०२८–कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ॥ ३ । २ । २० ॥

हेतु, ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थ गम्यमान और कर्म उपपद हो, तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो।

हेतु = कारण, ताच्छील्य = तत्स्वभावता, आनुलोम्य = अनुकूलपन। हेतु—यशस्करी विद्या। शोककरी कन्या। दुःखकरं पापम्। ताच्छील्य—श्राद्धकरः। अर्थकरः। आनुलोम्य—वचनकरः। इनसे अन्यत्र—कुम्भकारः। नगरकारः।

१०२९–दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्त्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥ ३ । २ । २१ ॥

दिवादिक शब्द उपपद हों, तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो।

दिवा करोति = दिवाकरः । विभां करोति = विभाकरः । निशाकरः । प्रभाकरः भास्करः, यहां (सन्धि०—२०१) से सत्व । कारकरः । अन्तकरः । अनन्तकरः । आदिकरः । बहुकरः, संख्या से पृथक् 'बहु' शब्द का ग्रहण बहुत्व की अपेक्षा से है । नान्दीकरः । किंकरः । लिपि, लिबि एकार्थक हैं—लिपिकरः । लिबिकरः । बलिकरः ।

[भक्तिकरः । कर्तृकरः । चित्रकरः । क्षेत्रकरः ।] संख्या—एककरः, द्विकरः; त्रिकरः । जङ्घाकरः । बाहुकरः । अहस्करः । यत्करः । तत्करः । चोर अभिधेय हो तो 'तस्करः' होगा, (सन्धि०—२४८) से सुडागम और तलोप । धनुष्करः । अरुष्करः, यहां (सन्धि०—१९८) में षत्व ।

किंयत्तद्बहुषु कृञोऽज्विधानम् ॥ महाभाष्य ३ । २ । २१ ॥

पूर्वोक्त शब्दों में किं यद् तद् और बहु उपपद हों, तो कृञ् धातु से अच् प्रत्यय का विधान करना चाहिये, अन्यत्र ट होगा । किंकरा । यत्करा । तत्करा । बहुकरा । 'किंकरी; तस्करी' आदि ङीबन्त तो पुंयोग से होते हैं ॥

१०३०—कर्मणि भृतौ ॥ ३ । २ । २२ ॥

कर्मवाचक कर्मशब्द उपपद हो, तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो, भृति—वेतन—अर्थ गम्यमान हो तो ।

कर्माणि करोति = कर्मकरो भृत्यः । भृति से अन्यत्र—कर्मकारः ॥

१०३१—न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥ ३ । २ । २३ ॥

शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मन्त्र, पद ये उपपद हों, तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय न हो ।

हेत्वादि अर्थों में प्राप्त ट प्रत्यय का प्रतिषेध है—शब्दकारः। श्लोककारः। कलहकारः। गाथाकारः। वैरकारः। चाटुकारः। मूत्रकारः। मन्त्रकारः। पदकारः॥

१०३२–स्तम्बशकृतोरिन्॥ ३। २। २४॥

स्तम्ब और शकृत् उपपद हों, तो कृञ् धातु से इन् प्रत्यय हो।

स्तम्बशकृतोर्व्रीहिवत्सयोः॥ महाभाष्य ३। २। २४॥

उक्त सूत्र में व्रीहि, वत्स और कहना चाहिये।

स्तम्बकरिर्व्रीहिः। शकृत्करिर्वत्सः। अन्यत्र—स्तम्बकारः। शकृत्कारः॥

१०३३–हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ॥ ३। २। २५॥

दृति और नाथ कर्म उपपद हों, और पशु कर्त्ता हो, तो हृञ् धातु से इन् प्रत्यय हो।

दृतिं चर्ममयं पात्रं हरति=दृतिहरिः। नाथं नासारज्जुं हरति=नाथहरिः पशुः। अन्यत्र—दृतिहारः नाथहारः॥

१०३४–फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च॥ ३। २। २६॥

फलेग्रहि और आत्मम्भरि ये दोनों शब्द निपातन हैं।

फलानि गृह्णाति=फलेग्रहिः, यहां उपपद को एकार और धातु से इन् प्रत्यय निपातन है।

भृञः कुक्ष्यात्मनोर्मुम् च॥ महाभाष्य ३। २। २६॥

भृञ् धातु से इन् प्रत्यय के विधान में कुक्षि और आत्मन् शब्द को मुम् आगम निपातन होना चाहिये।

कुक्षिं बिभर्ति=कुक्षिम्भरिः। आत्मम्भरिश्चरति यूथमसेवमानः। यहां चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है, इससे—'उदरम्भरिः' यह भी निपातन जानना चाहिये॥

१०३५–छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥ ३ । २ । २७ ॥

कर्म उपपद हो, तो वेदविषय में वन, षण, रक्ष, मथ इन धातुओं से इन् प्रत्यय हो ।

ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम्[1] । गोसनिम्[2] । यौ पथिरक्षी[3] श्वानौ । हविर्मथीनाम्[4] ॥

१०३६–एजेः खश् ॥ ३ । २ । २८ ॥

कर्म उपपद हो, तो णिजन्त एजृ धातु से खश् प्रत्यय हो ।

जनान् एजयतीति = 'जन + एजि + शप् + खश्' यहां—

१०३७–अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ॥ ६ । ३ । ६७ ॥

खिदन्त उत्तरपद परे हो, तो अरुष्, द्विषत् और अव्ययभिन्न अजन्त शब्दों को मुमागम हो ।

मुम् होकर—'जन + म् + एज् + अय् + अ' = जनमेजयः ।

१०३८–वा०–खश्प्रकरणे वातशुनीतिलशर्धेष्वजधेट्तुदजहातिभ्यः ॥ ३ । २ । २८ ॥

खश् प्रत्यय के प्रकरण में वात, शुनी, तिल, शर्द्ध ये यथाक्रम उपपद हों, तो अज, धेट्, तुद और जहाति से खश् प्रत्यय का विधान करना चाहिये ।

वातमजाः मृगाः । शुनीं धयति, यहां—

१०३९–खित्यनव्ययस्य ॥ ६ । ३ । ६६ ॥

---

१. यजुः० १ । १७ ॥ २. अथर्व० ५ । २० । १० ॥
३. अथर्व० ८ । १ । १० ॥ ४. ऋ० ७ । १०४ । २० ॥

खिदन्त उत्तरपद परे हो, तो अव्ययरहित पूर्वपद को ह्रस्व आदेश हो ।

शुनिंधय: ।

तिलंतुद: । शर्द्धमपानशब्दं जहति जाहयन्ति वा शर्द्धञ्जहा: माषा:, यहां 'हा' धातु अन्तर्भावितण्यर्थ है ।।

१०४०–नासिकास्तनयोर्ध्माधेटो: ।। ३ । २ । २९ ।।

नासिका और स्तन कर्म उपपद हों, तो ध्मा और धेट् धातुओं से खश् प्रत्यय हो ।

स्तने धेट: नासिकायां ध्मश्च धेटश्च ।। महाभाष्य ३ । २ । २९ ।। स्तनं धयति = स्तनन्धय: । नासिकन्धम: । नासिकन्धय: । स्त्रीलिङ्ग में—स्तनन्धयी, यहां धेट् के टित् होने से (स्त्रैणता०—३५) से ङीप् प्रत्यय हो जाता है । सूत्र में बह्वच् भी नासिका शब्द का पूर्वनिपात अल्पाच्तर-पूर्वनिपात के अनित्यत्व के लिये है ।।

१०४१–नाडीमुष्ट्योश्च ।। ३ । २ । ३० ।।

नाडी और मुष्टि कर्म उपपद हों, तो ध्मा और धेट् धातु से खश् प्रत्यय हो ।

यहां 'मुष्टि' इस घिसंज्ञकान्त का अपूर्वनिपात है, इससे संख्यातानुदेश नहीं होता है । नाडीं धयति = नाडिन्धय: । नाडीं धमति = नाडिन्धम: । मुष्टिन्धय: । मुष्टिन्धम: । चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है, इससे—वातन्धय: । वातन्धम: पर्वत: । खरिंधय: । खरिन्धम:, ये भी जानने चाहियें ।

१०४२–वा०–नासिकानाडीमुष्टिघटीखारीष्विति वक्तव्यम् ।। ३ । २ । ३० ।।

घटिन्धय: । घटिन्धम: । खारिन्धय: । खारिन्धम: । नासिका, नाड़ी और मुष्टि शब्दों के विषय में उदाहरण दे चुके हैं ।।

१०४३–उदि कूले रुजिवहोः ।। ३ । २ । ३१ ।।

कूल कर्म उपपद हो, तो उत्पूर्वक रुज और वह धातु से खश् प्रत्यय हो।

कूलमुद्रुजतीति = कूलमुद्रुजो रथः । कूलमुद्वहः ।।

१०४४–वहाभ्रे लिहः ।। ३ । २ । ३२ ।।

वह और अभ्र कर्म उपपद हों, तो लिह धातु से खश् प्रत्यय हो।

वहं स्कन्धं लेढीति—'वह + मुम् + लिह + शप् + खश्' = वहंलिहो गौः, यहां अदादित्व में शप् का लुक् हो जाता है। अभ्रंलिहो वायुः ।।

१०४५–परिमाणे पचः ।। ३ । २ । ३३ ।।

परिमाणवाचक कर्म उपपद हो, तो पच् धातु से खश् प्रत्यय हो।

प्रस्थं पचति = प्रस्थंपचा स्थाली । द्रोणम्पचः कटाहः ।।

१०४६–मितनखे चः ।। ३ । २ । ३४ ।।

मितं और नख ये कर्म उपपद हों, तो पच धातु से खश् प्रत्यय हो।

मितं पचति = मितम्पचा ब्राह्मणी । नखम्पचा यवागूः, यहां 'पच' धातु ताप अर्थ वाचक है ।।

१०४७–विध्वरुषोस्तुदः ।। ३ । २ । ३५ ।।

विधु और अरुष् कर्म उपपद हों, तो तुद धातु से खश् प्रत्यय हो।

विधुन्तुदः । अरूंषि मर्मस्थलानि तुदति = अरुन्तुदः यहां मुम् किये पीछे अरुष् के षकार को संयोगान्तलोप हो जाता है ।।

१०४८–असूर्य्यललाटयोर्दृशितपोः ।। ३ । २ । ३६ ।।

असूर्य्य और ललाट शब्द यथाक्रम से उपपद हों, तो दृशि और तप धातु से खश् प्रत्यय हो।

सूर्य्यं न पश्यन्ति = असूर्यंपश्या राजदाराः, यह नञ् का दृश से सम्बन्ध है, इससे यह असमर्थ समास इसी (असूर्य्य०) निर्देश से होता है। अनिवार्य्य सूर्य का भी दर्शन नहीं करनेवाली राजदारा हैं। ललाटंतपः सूर्यः ॥

१०४९–उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥ ३ । २ । ३७ ॥

उग्रम्पश्य, इरम्मद और पाणिन्धम ये शब्द निपातन किये हैं।

उग्र शब्द यहां क्रियाविशेषण है। उग्रं यथा स्यात्तथा पश्यति = उग्रम्पश्यः। इरया जलेन माद्यति = इरम्मदः। पाणयो ध्मायन्तेऽस्मिन्निति = पाणिन्धमः पन्थाः—जो अन्धकारयुक्त मार्ग होता है उसमें सर्पादिक क्षुद्र जीवों की निवृत्ति के लिये कभी हाथ से ताली भी देते हैं॥

१०५०–प्रियवशे वदः खच् ॥ ३ । २ । ३८ ॥

प्रिय और वश ये कर्म उपपद हों, तो वद् धातु से खच् प्रत्यय हो।

प्रियं वदतीति = प्रियंवदः। वशंवदः॥

१०५१–वा०–खच्प्रकरणे गमेः सुपि उपसंख्यानम् ॥ ३ । २ । ३८ ॥

खच् के प्रकरण में सुबन्तपूर्वक गम धातु से भी उपसंख्यान करना चाहिये।

मितंगमो हस्ती। मितंगमा हस्तिनी।

१०५२–वा०–विहायसो विह च ॥ ३ । २ । ३८ ॥

इस प्रकरण में विहायस् शब्द जो गम धातु के पूर्व हो, तो उसको विह आदेश भी हो।

विहायसाऽऽकाशमार्गेण गच्छति = विहंगमः पक्षी।

—

१०५३–वा०–खच्च डिद्वा ॥ ३ । २ । ३८ ॥

विहायस् शब्द को विह आदेश होने में गम् से परे खच् प्रत्यय विकल्प करके डित्वत् हो ।

विहंगः ।

१०५४–वा०–डे च ॥ ३ । २ । ३८ ॥

गम् से ड प्रत्यय परे हो, तो भी विहायस् को विह आदेश हो ।

विहगः, यहाँ गम् धातु से (१०७१) इससे ड प्रत्यय होता है ॥

१०५५–द्विषत्परयोस्तापेः ॥ ३ । २ । ३९ ॥

द्विषत् और पर कर्म उपपद हो, तो णिजन्त तप धातु से खच् प्रत्यय हो ।

द्विषन्तं तपति = 'द्विषत्+ताप्+णिच्+खच्' इस अवस्था में—

१०५६–खचि ह्रस्वः ॥ ६ । ४ । ९४ ॥

खच्परक णि परे हो, तो अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश हो ।

इससे ह्रस्वादेश होकर—'द्विषन्तपः' सिद्ध होता है । ऐसे ही—परन्तपः । द्विषतीं तापयति, यहां लिङ्गविशिष्टपरिभाषा का अनित्यत्व* मान कर खच् नहीं होता है ।
अथवा (द्विषत्परयोः०) यहां 'द्विषत्' कारकनिर्देश मान कर तकारान्त द्विषत् शब्द का ग्रहण है ॥

१०५७–वाचि यमो व्रते ॥ ३ । २ । ४० ॥

---

* वा०—(नासिकानाडी० ॥ ३ । २ । ३०) यहां घट शब्द के साथ घटी शब्द के ग्रहण से लिङ्गविशिष्टपरिभाषा अनित्य है ॥

व्रत—नियम अर्थ में वाच् कर्म उपपद हो, तो यम धातु से खच् प्रत्यय हो । वाचं यच्छति = 'वाच्+अम्+यम्+खच्' यहां—

१०५८–वाचंयमपुरन्दरौ च ।। ६ । ३ । ६९ ।।

वाचंयम और पुरन्दर ये निपातन किये हैं, अर्थात् वाच् और पुर् शब्द को अमन्तत्व निपातन है ।

इससे वाच् शब्द को अमन्तत्व होकर—'वाचंयमः' होता है । नियम से अन्यत्र असामर्थ्य से वचन न निकले, वहां—'वाग्यामः' होगा ।।

१०५९–पूःसर्वयोर्दारिसहोः ।। ३ । २ । ४१ ।।

पुर, सर्व ये कर्म यथाक्रम से उपपद हों, तो दारि, सह धातुओं से भी खच् प्रत्यय हो ।

पुरं दारयति = पुरंदरः, यहां भी अमन्तत्व हो गया । सर्वसहः ।

कृत्संज्ञकों में (९२०) सूत्र के बहुल नियम से भगपूर्वक दारि धातु से भी खच् प्रत्यय होता है—भगन्दरः ।।

१०६०–सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ।। ३ । २ । ४२ ।।

सर्व, कूल, अभ्र, करीष ये कर्म उपपद हों, तो कष धातु से खच् प्रत्यय हो ।

सर्वं कषति = सर्वंकषः खलः । कूलङ्कषा नदी । अभ्रङ्कषो गिरिः । करीषङ्कषा वात्या ।।

१०६१–मेघर्त्तिभयेषु कृञः ।। ३ । २ । ४३ ।।

मेघ, ऋति, भय ये कर्म उपपद हों, तो कृञ् धातु से खच् प्रत्यय हो ।

मेघङ्करः । ऋतिङ्करः । भयङ्करः, यहां भय शब्द के साथ तदन्तविधि भी है—अभयङ्करः ।।

१०६२–क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ।। ३ । २ । ४४ ।।

क्षेम, प्रिय, मद्र ये कर्म उपपद हों, तो कृञ् धातु से अण् और खच् प्रत्यय हों।

क्षेमं करोति=क्षेमकारः। क्षेमंकरः। प्रियकारः। प्रियङ्करः। मद्रकारः। मद्रङ्करः।

यहां 'वा' ग्रहण करने से दूसरे पक्ष में (९९८) सूत्र से अण् प्रत्यय हो जाता है, फिर अण् ग्रहण हेत्वादिक अर्थों में जो कृञ् से ट प्रत्यय विहित है, उसके बाधने के लिये है। क्षेमकरः, यहां तो कर्म की शेषत्वविवक्षा मान कर कृञ् से पृथक् 'पचाद्यच्' होता है ।।

१०६३–आशिते भुवः करणभावयोः ।। ३ । २ । ४५ ।।

आशित शब्द सुबन्त उपपद हो, तो भू धातु से करण और भाव में खच् प्रत्यय हो।

करण—आशितो भवत्यनेनेति=आशितम्भव ओदनः। भाव—आशितस्य भवनम्=आशितंभवं वर्त्तते ।।

१०६४–संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः ।।

३ । २ । ४६ ।।

कर्म वा अन्य सुबन्त उपपद हो, तो भृ, तॄ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दम इन धातुओं से संज्ञाविषय में खच् प्रत्यय हो।

यहां यथासंभव कर्म और सुप् उक्त धातुओं से सम्बद्ध होते हैं। विश्वं बिभर्ति=विश्वम्भरा वसुन्धरा। रथेन तरति=रथन्तरं साम। पतिंवरा कन्या। शत्रुञ्जयो हस्ती। युगन्धरः पर्वतः। शत्रुंसहः। शत्रुंतपः। अरिन्दमः। 'संज्ञा' ग्रहण से यहां न हुआ—कुटुम्बं बिभर्तीति=कुटुम्बभारः ।।

१०६५–गमश्च ।। ३ । २ । ४७ ।।

सुबन्त उपपद हो, तो संज्ञा में गम् धातु से खच् प्रत्यय हो।

सुतया गच्छति=सुतंगमः। पृथक् सूत्र उत्तरार्थ है।

१०६६–अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ॥ ३ । २ । ४८ ॥

अन्त, अत्यन्त, अध्वन्, दूर, पार, सर्व, अनन्त ये कर्म उपपद हों, तो गम् धातु से ड प्रत्यय हो।

अन्तगः। अत्यन्तगः। अध्वगः। दूरगः। पारगः। सर्वगः। अनन्तगः। यहां डकार टिलोप के लिये है, इससे ड प्रत्यय के परे भसंज्ञा के विना भी टिलोप हो जाता है।

१०६७–वा०–डप्रकरणे सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् ॥ ३ । २ । ४८ ॥

गम् धातु से ड प्रत्यय के प्रकरण में सर्वत्र और पन्न शब्द का भी उपसंख्यान करना चाहिये।

सर्वत्र गच्छति = सर्वत्रगः। पन्नं पतितं गच्छति = पन्नगः।

१०६८–वा०–उरसो लोमश्च ॥ ३ । २ । ४८ ॥

ड प्रकरण में गम् धातु से उरस् पूर्व हो, तो उसके अन्त्य सकार का लोप भी हो।

उरसा गच्छति = उरगः।

१०६९–वा०–सुदुरोरधिकरणे ॥ ३ । २ । ४८ ॥

सु और दुर् उपपद हों, तो गम् धातु से अधिकरण में ड प्रत्यय कहना चाहिये।

सुखेन गच्छत्यस्मिन्निति = सुगः। दुःखेन गच्छत्यस्मिन्निति = दुर्गो मार्गः।

१०७०–वा०–निरो देशे ॥ ३ । २ । ४८ ॥

देश अभिधेय हो, तो निर् से परे गम् धातु से ड प्रत्यय कहना चाहिये।

निश्चयेन गच्छत्यस्मिन्निति = निर्गो देशः।

१०७१–वा०–अपर आह–डप्रकरणे अन्येष्वपि दृश्यते ॥
३ । २ । ४८ ॥

इस प्रकरण में और भी उपपद हो, तो ड प्रत्यय देखा गया है।

तत्र स्त्र्यगारगः। अश्नुते यावदन्नाय ग्रामगः। ध्वंसते गुरुतल्पगः॥

१०७२–आशिषि हनः ॥ ३ । २ । ४९ ॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान और कर्म उपपद हो, तो हन धातु से ड प्रत्यय हो।

शत्रुं वध्यात् = शत्रुहस्तव पुत्रो भूयात्। तिमिहः। 'आशीः' से अन्यत्र—शत्रुघातः।

१०७३–वा०–दाराबाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम् ॥
३ । २ । ४९ ॥

संज्ञाविषय में दारुशब्द [उपपद हो, तो आङ्] पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और अन्त्य को टकारादेश कहना चाहिये।

दारु आहन्ति = दार्वाघाटः। दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम् [यजु० २४। ३५]।

१०७४–वा०–चारौ वा ॥ ३ । २ । ४९ ॥

चारु शब्द उपपद हो, तो आङ्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय नित्य और अन्त्य को टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये।

चार्वाघाटः; चार्वाघातः।

१०७५–वा०–कर्मणि समि च ॥ ३ । २ । ४९ ॥

कर्म्म उपपद हो, तो सम्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और उसको टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये।

वर्णान् संहन्ति = वर्णसंघाट:; वर्णसंघात:। पदानि संहन्ति = पदसंघाट:; पदसंघात: ॥

१०७६—अपे क्लेशतमसो: ॥ ३ । २ । ५० ॥

क्लेश, तमस् कर्म उपपद हों, तो अपपूर्वक हन धातु से ड प्रत्यय हो।

क्लेशमपहन्ति = क्लेशापह: पुत्र:। तमोऽपहन्ति = तमोपह: सूर्य: ॥

१०७७—कुमारशीर्षयोर्णिनि: ॥ ३ । २ । ५१ ॥

कुमार और शीर्ष कर्म उपपद हों, तो हन धातु से णिनि प्रत्यय हो।

कुमारं हन्ति = कुमारघाती। शीर्षघाती, यह शीर्ष शब्द शिरस् शब्द को शीर्षभाव निपातन के लिये है ॥

१०७८—लक्षणे जायापत्योष्टक् ॥ ३ । २ । ५२ ॥

जाया और पति ये कर्म उपपद हों, और लक्षणवान् कर्त्ता अभिधेय हो, तो हन धातु से टक् प्रत्यय हो।

जायां हन्ति = जायाघ्नो ब्राह्मण:। पतिघ्नी वृषली ॥

१०७९—अमनुष्यकर्तृके च ॥ ३ । २ । ५३ ॥

कर्म उपपद हो, तो मनुष्यभिन्न कर्त्ता में हन धातु से टक् प्रत्यय हो।

जायां हन्ति = जायाघ्नस्तिलकालक:। पतिं हन्ति—पतिघ्नी पाणिरेखा। शणघ्नी शकुनी। श्लेष्माणं हन्ति = श्लेष्मघ्नं मधु। पित्तं हन्ति = पित्तघ्नं घृतम्।

'अमनुष्यकर्तृक' ग्रहण से यहां न हुआ—आखुघात: शूद्र:। 'नगरघाती हस्ती' यहां टक् प्रत्यय प्राप्त भी है, तथापि कृत्संज्ञकों के बहुलभाव से कर्मोपपद लक्षण अण् होता है।

'भ्रूणघ्न:; शत्रुघ्न:; कृतघ्न:' इत्यादिक तो मूलविभुजादि क प्रत्यय से होते हैं ॥

१०८०–शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥ ३ । २ । ५४ ॥

शक्ति गम्यमान हो और हस्ति, कपाट कर्म उपपद हों, तो हन धातु से टक् प्रत्यय हो ।

यह मनुष्यकर्तृक विषय के लिये सूत्र है । हस्तिनं हन्तुं शक्तः = हस्तिघ्नो मनुष्यः । कपाटघ्नश्चोरः । 'शक्ति'ग्रहण से यहाँ न हुआ—विषेण हस्तिनं हन्ति = हस्तिघातः; यहाँ अण् होता है ॥

१०८१–पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥ ३ । २ । ५५ ॥

शिल्पी कर्त्ता अभिधेय हो, तो पाणिघ, ताडघ ये दोनों शब्द निपातन हैं ।

पाणिं हन्ति = पाणिघः । ताडघः; यहाँ पाणि और ताड कर्मोपपद हन धातु से टक् प्रत्यय के परे धातु को टि लोप और घकारादेश निपातन है ।

१०८२–वा०–राजघ उपसंख्यानम् ॥ ३ । २ । ५५ ॥

उक्त निपातनों में 'राजघ' यह भी उपसंख्यान करना चाहिये ।

राजानं हन्ति = राजघः ॥

१०८३–आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ॥ ३ । २ । ५६ ॥

च्विरहित च्व्यर्थ आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय ये कर्म्म उपपद हों, तो कृञ् धातु से करण में ख्युन् प्रत्यय हो ।

अनाढ्यमाढ्यमनेन कुर्वन्ति = आढ्यंकरणम् । सुभगङ्करणम् । स्थूलङ्करणम् । पलितङ्करणम् । नग्नङ्करणम् । अन्धङ्करणम् । प्रियङ्करणम् ।

'च्व्यर्थ' ग्रहण से यहाँ न हुआ—आढ्यं घृतेन कुर्वन्ति घृतेनाभ्यञ्जयन्ति । 'अच्वौ' यह प्रतिषेध आगे के लिये है, क्योंकि यहाँ च्व्यन्त विषय में

ख्युन् के प्रतिषेध में ल्युट् हो जायगा। ल्युट् में समान रूप समान ही स्वर आदि कार्य हैं। आढ्यीकरणम्※ ॥

१०८४–कर्त्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ॥ ३ । २ । ५७ ॥

च्विरहित च्व्यर्थ आढ्यादिक् सुबन्त उपपद हों, तो भू धातु से कर्त्ता में खिष्णुच् और खुकञ् प्रत्यय हों।

अनाढ्य आढ्यो भवति=आढ्यम्भविष्णुः। आढ्यम्भावुकः। सुभगम्भविष्णुः। सुभगम्भावुकः। स्थूलम्भविष्णुः। स्थूलम्भावुकः। पलितम्भविष्णुः। पलितम्भावुकः। नग्नम्भविष्णुः। नग्नम्भावुकः। अन्धम्भविष्णुः। अन्धम्भावुकः। प्रियम्भविष्णुः। प्रियम्भावुकः।

'कर्तृ' ग्रहण से करण में नहीं होते हैं। च्व्यर्थमात्र से अन्यत्र—आढ्यो भविता। 'अच्वि' ग्रहण से यहाँ नहीं होता—आढ्यी भविता ॥

१०८५–स्पृशोऽनुदके क्विन् ॥ ३ । २ । ५८ ॥

अनुदक सुबन्त उपपद हो, तो स्पृश धातु से क्विन् प्रत्यय हो।

घृतं स्पृशति=घृतस्पृक्। मन्त्रेण स्पृशति=मन्त्रस्पृक्। जलेन स्पृशति=जलस्पृक्। 'अनुदक'ग्रहण से यहां न हुआ—उदकस्पर्शः। कर्म की अनुवृत्ति नहीं है, किन्तु निवृत्त हो गई ॥

※ ख्युनि प्रतिषेधानर्थक्यं ल्युट्ख्युनोरविशेषात्। ख्युनि च्विप्रतिषेधोऽनर्थकः। कि कारणम्? ल्युट्ख्युनोरविशेषात् ख्युना मुक्ते ल्युटा भवितव्यम्। न चैवास्ति विशेषः। च्विन्त उपपदे ख्युनो वा ल्युटो वा। तदेव रूपं स एव च स्वरः ॥ महाभाष्य ३। २। ५६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में (स्त्रैणताद्धित—३६) से ख्युन् प्रत्ययान्त से भी ङीप् हो जायगा। आढ्यङ्करणी। काशिकाकार ने जो इस विषय में अर्थतः ल्युट् प्रत्यय का भी प्रतिषेध माना है, सो असङ्गत है ॥

१०८६—ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चाञ्च ॥ ३ । २ । ५९ ॥

ऋत्विक्, दधृष्, स्रज्, दिश्, उष्णिज् ये क्विन्प्रत्ययान्त निपातन और अञ्जु, युजि, क्रुञ्च धातुओं से क्विन् प्रत्यय हो।

ऋतौ यजति, ऋतुं यजति वा, ऋतुप्रयुक्तो यजति वा = ऋत्विक्, यहां ऋतुशब्दपूर्वक 'यज' धातु से क्विन् प्रत्यय है। धृष्णोतीति = दधृक्, यहां 'ञिधृषा' धातु से क्विन् प्रत्यय, धातुद्विर्वचन और अन्तोदात्तत्व भी निपातन है। सृज्यते या सा स्रक्, यहां 'सृज्' से कर्म्म में क्विन् प्रत्यय और अमागम निपातन है।

दिश्यते जनैर्या सा दिक्, यहां 'दिश्' से कर्म्म में क्विन् है। ऊर्ध्वं स्निह्यति = उष्णिक्, यहां उत्पूर्वक 'स्निह्' धातु से क्विन् षत्व और उपसर्गान्त लोप निपातन है। निपातन शब्दों के साथ जो अञ्चु आदि धातुओं से क्विन् का विधान किया है, इससे उनमें कुछ अलाक्षणिक कार्य भी होता है। जैसे—सोपपद अञ्च से क्विन्—प्रकर्षेणाञ्चति = प्राङ्। प्रत्यङ्। उदङ्।

युज् और क्रुञ्च से निरुपपद से होता है—युङ्। युञ्जौ। युञ्जः। क्रुङ्। क्रुञ्चौ। क्रुञ्चः यहां निपातन से न लोप नहीं होता। इन क्विन्-प्रत्ययान्तों में (नामि०—११५) से सर्वत्र पदान्त में कुत्व होता है।

१०८७—त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ॥ ३ । २ । ६० ॥

त्यदादिक उपपद हों, तो अनालोचन अर्थ में वर्तमान 'दृश' धातु से कञ् और क्विन् प्रत्यय हों।

तमिवेमं पश्यन्ति जनाः सोऽयं स इव दृश्यमानस्तमिवात्मानं पश्यति = तादृक्। तादृशः। यादृक्। यादृशः। स्त्री—तादृशी। यादृशी, यहां (स्त्रैणताद्धित—३५) सूत्र से ङीप् प्रत्यय हो जाता है।

'अनालोचन'ग्रहण से यहाँ न हुआ—तं पश्यति तद्दर्शः। तादृगादिक शब्द रूढ़ि शब्दों के समान हैं। दर्शनक्रिया के अर्थ को नहीं कहते हैं।

१०८८—वा०—दृशेः समानान्ययोश्च ॥ ३ । २ । ६० ॥

समान और अन्य शब्द भी उपपद हों और अनालोचन गम्यमान हो, तो 'दृश्' धातु से क्विन् और कञ् प्रत्यय हों।

सदृक् । सदृशः । अन्यादृक् । अन्यादृशः ॥

१०८९—सत्सूद्विद्रुषहदुहयुजविदभिदछिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् ॥ ३ । २ । ६१ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो; तो सदादिक धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो।

द्विष के साहचर्य से अदादि षूङ् धातु का ग्रहण है। 'युज' से युजिर् और युज दोनों का ग्रहण है। विद इसको अकारान्त पढ़ने से 'विद ज्ञाने' 'विद सत्तायाम्' 'विद विचारणे' इन तीनों का ग्रहण है, किन्तु 'विद्लृ' का नहीं है।

सत्—शुचिषत् । द्युषत् । परिषत । सू—वीरसूः । शतसूः । प्रसूः । द्विष्—मित्रद्विट् । परिद्विट् । प्रद्विट् । द्रुह्—मित्रध्रुक् । मित्रध्रुग् । प्रध्रुक् दुह्—गोधुक् । परिधुक् । युज्—अश्वयुक् । प्रयुक् । विद्—वेदवित् । प्रवित् । ब्रह्मवित् । भिद्—काष्ठभित् । प्रभित् । छिद्—रज्जुच्छित् । प्रच्छित् । जि—शत्रुजित् । परिजित् । नी—सेनानीः । प्रणीः । 'ग्रामणीः' इत्यादिकों में (स्त्रैणताद्धित—६६६) सूत्र में 'ग्रामणी' शब्द के निर्देश को मानकर (८७२) से णत्व होजाता है। राजृ—विराट् । सम्राट् ॥

१०९०—भजो ण्विः ॥ ३ । २ । ६२ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो, तो भज धातु से ण्वि प्रत्यय हो।

विश्वं भजति = विश्वभाक् । सुखभाक् । प्रभाक् ॥

१०९१–छन्दसि सहः ॥३ । २ । ६३ ॥

वेदविषय में सुवन्त उपपद हो, तो सह धातु से ण्वि प्रत्यय हो। तुराषाट्, यहां (८०८) से षत्व होता है॥

१०९२–वहश्च ॥ ३ । २ । ६४ ॥

वेदविषय में सुवन्त उपपद हो, तो वह धातु से ण्वि प्रत्यय हो। प्रष्ठवाट्॥

१०९३–कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥ ३ । २ । ६५ ॥

वेदविषय में कव्य, पुरीष, पुरीष्य ये उपपद हों, तो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो।

कव्यवाहनः । पुरीषवाहनः । पुरीष्यवाहनः ॥

१०९४–हव्येऽनन्तःपादम् ॥ ३ । २ । ६६ ॥

वेदविषय में हव्य शब्द उपपद हो, तो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो, जो वह पाद के मध्य में न हो।

अग्निश्च हव्यवाहनः । 'अनन्तःपाद' ग्रहण से यहां न हुआ—हव्यवाडग्निरजरः पिता नः ।

१०९५–जनसनखनक्रमगमो विट् ॥ ३ । २ । ६७ ॥

वेदविषय में सुवन्त उपपद हो, तो जन आदि धातुओं से विट् प्रत्यय हो।

जन—अब्जाः । गोजाः । सन—गोषा इन्द्रो नृषा असि । खन—विसखाः । कूपखाः । क्रम—दधिक्राः । गम—अग्रेगा उन्नेतॄणाम् ॥

१०९६–अदोऽनन्ने ॥ ३ । २ । ६८ ॥

अद धातु से अन्नभिन्न सुवन्त उपपद हो, तो विट् प्रत्यय हो।

आममत्ति = आमात् । सस्यात् । 'अनन्न' ग्रहण से यहां न हुआ— अन्नादः ।

१०९७—क्रव्ये च ॥ ३ । २ । ६९ ॥

क्रव्य शब्द उपपद हो, तो अद धातु से विट् प्रत्यय हो ।

क्रव्यात्, यहां भी पूर्व सूत्र से विट् प्रत्यय होजाता, फिर यह सूत्र असरूप प्रत्यय के बाध के लिये है। इससे क्रव्योपपद 'अद' धातु से अण् प्रत्यय नहीं होता है ॥

१०९८—दुहः कप् घश्च ॥ ३ । २ । ७० ॥

सुबन्त उपपद हो, तो दुह धातु से कप् प्रत्यय और धातु को घकारान्तादेश हो ।

कामान्दोग्धि = कामदुघा । अर्थदुघा ॥

१०९९—मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ॥३।२।७१॥

मन्त्र विषय में श्वेतवह, उक्थशस्, पुरोडाश इनसे ण्विन् प्रत्यय हो ।

कर्तृवाचक श्वेत शब्दोपपद 'वह' धातु से कर्मकारक में ण्विन् प्रत्यय हो—श्वेता यं वहन्ति स श्वेतवाः । कर्म्मवाचक वा करणवाचक उक्थ शब्दपूर्वक 'शंसु' धातु से ण्विन्—उक्थानि शंसति उक्थैर्वा शंसति = उक्थशाः । पुरः पूर्वक 'दाशृ' को डकारादेश कर्म्म में ण्विन्—पुरो दाशन्त इममिति = पुरोडाः, इस विषय में पदान्त में (नामि०—१२१, १२३) से डस् आदि कार्य होते हैं ॥

११००—अवे यजः ॥ ३ । २ । ७२ ॥

मन्त्रविषय में अव उपपद हो, तो यज धातु से ण्विन् प्रत्यय हो ।

अवयजति = अवयाः । त्वं यज्ञे वरुणस्यावया असि ॥

११०१–विजुपे छन्दसि ।। ३ । २ । ७३ ।।

वेदविषय में उप उपपद हो, तो यज्ञ धातु से विच् प्रत्यय हो ।

उपयड्भिरूर्ध्वं वहन्ति । यहां 'छन्दो' ग्रहण ब्राह्मण विषय के लिये भी है ।।

११०२–आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ।। ३ । २ । ७४ ।।

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो, तो आकारान्त धातु से मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और विच् प्रत्यय हों ।

मनिन्—शोभनं ददाति = सुदामा । अश्वत्थामा । क्वनिप्—सुधीवा । सुपीवा । वनिप्—भूरिदावा । घृतपावा । विच्—कीलालपाः ।।

११०३–अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ।। ३ । २ । ७५ ।।

आकारान्तों से अन्य धातुओं से भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, विच्, प्रत्यय देखे जाते हैं ।

११०४–नेड्वशि कृति ।। ७ । २ । ८ ।।

वशादि कृत्संज्ञक प्रत्यय परे हो, तो इट् न हो ।।

इससे इट् का निषेध होकर—शोभनं शृणोति = सुशर्मा । क्वनिप्—प्रातरित्वा । प्रातरित्वानौ । वनिप्—विजावा । अग्रेगावा । विच्—रेडसि पर्णं नयेः ।

यहां 'अपि' शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये है । इससे केवल से भी होता है—धीवा । पीवा ।।

११०५–क्विप् च ।। ३ । २ । ७६ ।।

धातु से क्विप् प्रत्यय हो ।

उखायाः स्रस्यते = उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहाद् भ्रश्यति = वाहभ्रट् । यह क्विप् प्रत्यय सोपपद वा निरुपपद धातु से लोक वेद में सर्वत्र होता है ।

११०६–इस्मन्त्रन्क्विषु च ॥ ६ । ४ । ९७ ॥

इस्, मन्, त्रन्, क्वि ये परे हों तो छादि धातु की उपधा को ह्रस्व आदेश हो।

तनुं छादयति = तनुच्छत्। ज्वरतीति = जूः। जूरौ। जूरः। तूः। स्रूः। जनानवतीति = जनौः। जनावौ। जनावः। मवतीति = मूः, यहां सर्वत्र (५५१) से ऊठ्। मूर्च्छतीति—मूः। मुरौ। मुरः। धूर्वतीति—धूः। धुरौ। धुरः, (५६०) से छ् और व् लोप होता है।

११०७–गमः क्वौ ॥ ६ । ४ । ४० ॥

क्वि परे हो, तो गम के अनुनासिक का लोप हो।

अङ्गान् गच्छति = अङ्गगत्। कश्मीरगत्। कलिङ्गगत्।

११०८–वा०–गमादीनामिति वक्तव्यम् ॥ ६ । ४ । ४० ॥

क्वि के परे गमादिकों के अनुनासिक का लोप हो।

परितस्तनोतीति = परीतत्। परीतत्सह कुण्डिकया। संयच्छतीति = संयत्। शोभनं नमति = सुनत्।

११०९–वा०–ऊङ् च ॥ ६ । ४ । ४० ॥

लोपविषय में गमादिकों के अन्त्य को ऊङ् भी हो।

अग्रे गच्छति = अग्रेगूः। अग्रे भ्राम्यति = अग्रेभ्रूः॥

१११०–स्थः क च ॥ ३ । २ । ७७ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो, तो स्था धातु से क और क्विप् प्रत्यय हो।

शं सुखं यथा स्यात्तथा तिष्ठति = शंस्थः। शंस्थाः। यद्यपि क, क्विप् प्रत्यय (१००४, १०१४) सूत्रों से हो जाते, तथापि यह सूत्र बाधकों के बाधने

के लिये है। इससे 'शंस्थ:' आदि में (१०१८) सूत्र से प्राप्त अच् को बाधता है ॥

११११–सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥ ३ । २ । ७८ ॥

अजातिवाची सुबन्तमात्र उपपद और ताच्छील्य अर्थ गम्यमान हो, तो धातु से णिनि प्रत्यय हो।

उष्णं भोक्तुं शीलमस्य = उष्णभोजी । शीतभोजी । कटुभोजी । मिष्टभोजी। न्यायकारी। उदासर्तुं शीलमस्या: = उदासारिणी। उदासारिण्यौ। उदासारिण्य: । प्रत्यासारिण्य: । अनुयायी । विमारी । अनुजीवी ।

'अजाति' ग्रहण से यहां न हुआ—गवां दोग्धा । 'ताच्छील्य' ग्रहण से यहां न हुआ—कदाचिन्न्यायं करोति ।

१११२–वा०–णिन्विधौ साधुकारिण्युपसंख्यानम् ॥ ३ । २ । ७८ ॥

साधु करोति = साधुकारी । साधु ददाति = साधुदायी ।

१११३–वा०–ब्रह्मणि वद: ॥ ३ । २ । ७८ ॥

ब्रह्म उपपद हो, तो वद धातु से णिनि प्रत्यय हो ।

ब्रह्म वदति = ब्रह्मवादी । ब्रह्मवादिनो वदन्ति ।

उक्त दोनों वार्तिक ताच्छील्य से अन्यत्र के लिये हैं ॥

१११४–कर्त्तर्युपमाने ॥ ३ । २ । ७९ ॥

उपमानवाची कर्त्ता उपपद हो, तो धातु से णिनि प्रत्यय हो।

उष्ट्र इव क्रोशति = उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । अताच्छील्यार्थ वा जात्यर्थ यह सूत्र है । 'कर्त्तृ' ग्रहण से यहां न हुआ—अपूपानिव माषान् भक्षयति । 'उपमान'ग्रहण से यहां न हुआ—उष्ट्र: क्रोशति ।

११११५—व्रते ।। ३ । २ । ८० ।।

शास्त्रोक्त नियम गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो, तो धातु से णिनि प्रत्यय हो ।

स्थण्डिलस्थायी । स्थण्डिलशायी—नियम से स्थण्डिल ही पर सोता है। 'व्रत'ग्रहण से यहां न हुआ—कदाचित् स्थण्डिले शेते देवदत्तः । यह जाति के अर्थ वा ताच्छील्य से अन्य अर्थ में होने के लिये सूत्र है ।।

१११६—बहुलमाभीक्ष्ण्ये ।। ३ । २ । ८१ ।।

आभीक्ष्ण्य—वार वार होना अर्थ गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो, तो धातु से णिनि प्रत्यय हो ।

कषायपायिणो गान्धाराः । क्षीरपायिण उशीनराः । सौवीरपायिणो वाह्लीकाः । 'वहुल'ग्रहण से यहां न हुआ—कुल्माषखादः ।

१११७—मनः ।। ३ । २ । ८२ ।।

सुबन्त उपपद हो, तो मन् धातु से णिनि प्रत्यय हो ।

दर्शनीयं मन्यते = दर्शनीयमानी । शोभनमानी । बहुमानी ।

सामान्य मन् के ग्रहण से मन् मात्र का ग्रहण प्राप्त है, तथापि पूर्व सूत्र से 'बहुल' शब्द की अनुवृत्ति करके किसी मन् से णिनि नहीं भी होता, इससे यहां 'मन्यति' का ग्रहण है, किन्तु तनादिस्थ 'मनु' धातु का ग्रहण नहीं है ।।

१११८—आत्ममाने खश्च ।। ३ । २ । ८३ ।।

आत्ममान—अपने को मानना अर्थ गम्यमान हो, तो मन धातु से णिनि और खश् प्रत्यय हो ।

आत्मानं पण्डितं मन्यते = पण्डितंमन्यः । पण्डितमानी । 'आत्ममाने' ग्रहण से यहां दो प्रत्यय न हुए—विष्णुमित्रं पण्डितं मन्यते = पण्डितमानी ।

११११९–इच एकाचोऽम् प्रत्ययवच्च ॥ ६ । २ । ६८ ॥

खिदन्त उत्तरपद परे हो, तो इजन्त एकाच् को अम् आगम हो और वह अम् विभक्ति के तुल्य हो।

गांमन्य:, यहां (१११) से ओकार को आकारादेश होता है। स्त्रींमन्य:, स्त्रियंमन्य:, यहां (नामि०—९०) से इयङ् विकल्प करके होता है। 'इच्'ग्रहण से यहां न हुआ—त्वम्मन्यः। 'एकाच्'ग्रहण से यहां न हुआ—लेखाभ्रुंमन्य: ॥

११२०–भूते ॥ ३ । २ । ८४ ॥

यहां से जो प्रत्यय विधान करें, सो भूतकाल में हों।

यह अधिकार वर्त्तमानाधिकार से पूर्व पूर्व है ॥

११२१–करणे यजः ॥ ३ । २ । ८५ ॥

करण उपपद हो, तो भूतकाल में यज धातु से णिनि प्रत्यय हो।

सोमेनेष्टवान् = सोमयाजी । अग्निष्टोमेनायाक्षीत् अयष्ट वा = अग्निष्टोमयाजी भूतकाल से अन्यत्र—अग्निष्टोमेन यजते ॥

११२२–कर्मणि हनः ॥ ३ । २ । ८६ ॥

कर्म उपपद हो, तो हन धातु से भूतकाल में णिनि प्रत्यय हो।

पितृव्यघाती। मातुलघाती। यहां से सह (११३२) पर्यन्त कर्माधिकार है ॥

११२३–ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ॥ ३ । २ । ८७ ॥

ब्रह्मन्, भ्रूण, वृत्र ये कर्म उपपद हों, तो भूतकाल में हन धातु से क्विप् प्रत्यय हो।

ब्रह्माणमवधीत् = ब्रह्महा । भ्रूणहा । वृत्रहा । धातुमात्र से क्विप् प्रत्यय का विधान कर चुके हैं, इससे यह ब्रह्मादिविषयक क्विप् प्रत्यय नियमार्थ है । वह यहां दो प्रकार का नियम है । प्रथम—भूतकाल में ब्रह्मादिक ही उपपद हों, तो हन धातु से क्विप् हो, अन्योपपद हो तो न हो । इससे—'पुरुषं हतवान्' यहां क्विप् न हुआ । दूसरा—भूतकाल में ब्रह्मादिक उपपद हों तो हन से क्विप् ही हो किन्तु और प्रत्यय न हो । इससे 'वृत्रमवधीत्' यहां कर्मोपपद अण् भी नहीं होता ।

११२४–बहुलं छन्दसि ।। ३ । २ । ८८ ।।

वेदविषय में कर्म उपपद हो, तो हन धातु से बहुल करके क्विप् प्रत्यय हो ।

मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत् । पितृहा । भ्रातृहा । कहीं नहीं भी होता—अमित्रघातः ।।

११२५–सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ।। ३ । २ । ८९ ।।

स्वादिक कर्म उपपद हों, तो कृञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय हो ।

शोभनं कृतवान् = सुकृत् । कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् ।

यहां तीन प्रकार का नियम है । प्रथम—स्वादिक उपपद हों, तो कृञ् से क्विप् ही हो और प्रत्यय न हो । इससे 'कर्म कृतवान्' यहां अण् नहीं होता । दूसरा—स्वादिक उपपद हों, तो कृञ् ही से क्विप् हो । इससे 'मन्त्रमधीतवान्' यहां क्विप् न हुआ । तीसरा—स्वादिक उपपद हों, तो भूतकाल ही में कृञ् से क्विप् हो, अन्यकाल में न हो । इससे 'मन्त्रङ्करोति करिष्यति वा' यहां क्विप् नहीं होता ।

स्वादिकों का नियम नहीं है, इससे अन्योपपद में भी सामान्य क्विप् होता है—भाष्यकृत् । शास्त्रकृत् ।।

११२६—सोमे सुञः ॥ ३ । २ । ९० ॥

सोम कर्म उपपद हो, तो भूतकाल में षुञ् धातु से क्विप् प्रत्यय हो।

सोमं सुतवान् = सोमसुत् ॥

११२७—अग्नौ चेः ॥ ३ । २ । ९१ ॥

अग्नि कर्म उपपद हो, तो चिञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय हो।

अग्नि चितवान् = अग्निचित्। अग्निचितौ। अग्निचितः ॥

११२८—कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥ ३ । २ । ९२ ॥

कर्म उपपद हो, तो भूतकाल में चिञ् धातु से कर्म कारक में क्विप् प्रत्यय हो, जो उपपद और प्रत्यय के समुदाय से अग्न्याधारस्थल विशेष की आख्या पाई जाय।

श्येन इव चितः = श्येनचित्। कङ्कचित्। अग्नि के लिये जो ईंटों का चयन करना है, उसकी संज्ञा हैं ॥

११२९—कर्मणीनिर्विक्रियः ॥ ३ । २ । ९३ ॥

कुसानिमित्तक कर्म उपपद हो, तो विपूर्व डुक्रीञ् धातु से भूतकाल में इनि प्रत्यय हो।

सोमं विक्रीतवान् = सोमविक्रयी। रसविक्रयी। कर्म वर्त्तमान था फिर कर्मग्रहण शुद्ध कर्म से अन्य कर्म को ग्रहण करने के लिये है। इससे यहाँ कुत्सानिमित्तक कर्म का ग्रहण होता है। अतएव यहाँ न हुआ— धान्यविक्रायः ॥

११३०—दृशेः क्वनिप् ॥ ३ । २ । ९४ ॥

कर्म उपपद हो, तो दृश धातु से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो।

पारं दृष्टवान् = पारदृश्वा। मेरुदृश्वा ॥

११३१—राजनि युधिकृञः ॥ ३ । २ । ९५ ॥

राजन् शब्द कर्म उपपद हो, तो युधि, कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो।

राजानं योधितवान् = राजयुध्वा । यद्यपि युधि अकर्म्मक है, तथापि अन्तर्भावितण्यर्थ मानकर सकर्मक हो जाता है। राजानं कृतवान् = राजकृत्वा ॥

११३२—सहे च ॥ ३ । २ । ९६ ॥

सह शब्द उपपद हो, तो युधि कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो।

सहायौत्सीत् = सहयुध्वा । सहाकार्षीत् = सहकृत्वा ॥

११३३—सप्तम्यां जनेर्डः ॥ ३ । २ । ९७ ॥

सप्तम्यन्त उपपद हो, तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय हो।

उपसरे जातः = उपसरजः । सरसिजः, यहाँ सामासिक (तत्पुरुषे कृति० ॥ ६ । ३ । १४) सूत्र से सप्तमी का अलुक् भी है। लुक् पक्ष में—सरोज ।

११३४—पञ्चम्यामजातौ ॥ ३ । २ । ९८ ॥

जातिभिन्न पञ्चम्यन्त उपपद हो, तो जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय हो।

संस्काराज्जात = संस्कारजः । पङ्कजः । दुःखजः । 'अजाति' ग्रहण से यहाँ न हुआ—हस्तिनो जातः । अश्वाज्जातः ।

११३५—उपसर्गे च संज्ञायाम् ॥ ३ । २ । ९९ ॥

उपसर्ग उपपद हो, तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय संज्ञाविषय में हो।

प्रकर्षेण जाताः = प्रजाः ।

११३६–अनौ कर्मणि ।। ३ । २ । १०० ।।

कर्म उपपद हो, तो अनूपसर्गपूर्वक जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय हो ।

राममनुजातो = रामानुजः । भरतानुजः ।।

११३७–अन्येष्वपि दृश्यते ।। ३ । २ । १०१ ।।

अन्य भी उपपद हों, तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय देखा जाता है ।

सप्तम्यन्तोपपद में कहा है, उससे अन्यत्र, जैसे—नाजनीति = अजः । द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जाताः = द्विजाः ।

अजातिविषयक पञ्चम्यन्तोपपद में कहा है, उससे अन्यत्र जाति विषय में, जैसे—ब्राह्मणजो धर्म्मः । क्षत्रियजं युद्धम् । वैश्यजो व्यापारः ।

उपसर्गोपपद से संज्ञाविषय में कहा है, उससे अन्यत्र असंज्ञा में, जैसे—अभिजाः, परिजाः केशाः ।

अनूपूर्वक से कर्मोपपद में कहा है, अन्यत्र—अनुजातः । अनुजः । अपि शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये है। इससे यहाँ भी होता है—परितः खाताः परिखा । आखा ।।

११३८–क्तक्तवतू निष्ठा ।। १ । १ । २६ ।।

क्त, क्तवतु ये निष्ठासंज्ञक हों ।

११३९–निष्ठा: ।। ३ । २ । १०२ ।।

भूतकाल में धातु से निष्ठासंज्ञक प्रत्यय हों ।

अकारीति = कृतः । अकार्षीदिति = कृतवान् । भुक्तम् । भुक्तवान् । यह क्त प्रत्यय कर्म्म (९१६) में, और क्तवतु कर्त्ता (९१५) में होता है ।।

११४०–निष्ठायामण्यदर्थे ॥ ६ । ४ । ६० ॥

ण्यदर्थ जो भावकर्म्म * उससे अन्य अर्थ कर्त्ता आदि में निष्ठा परे हो, तो क्षि धातु को दीर्घादेश हो ।

११४१–क्षियो दीर्घात् ॥ ८ । २ । ४६ ॥

क्षि धातु के दीर्घ से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ।

अक्षैषीदिति = क्षीणवान् । भाव में—क्षितमनेन । कर्म में—क्षितः कामोऽनया ॥

११४२–रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ॥८।२।४२॥

रेफ और दकार से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश तथा उस निष्ठा से पूर्व धातु के दकार को भी नकारादेश हो ।

र—शीर्णः । विस्तीर्णम्, यहाँ (२६५) सूत्र से ऋकार को इकारादेश, (संधि०—५७) सूत्र से रपरत्व होता है । द—भिन्नः; भिन्नवान् । 'रद' ग्रहण से यहाँ न हुआ—कृतः; कृतवान् । 'निष्ठा' ग्रहण से यहाँ न हुआ—कर्त्ता । 'त' ग्रहण से यहाँ न हुआ—चरितम् । 'पूर्व' ग्रहण से पर को न हुआ—भिन्नवद्भ्याम् ॥

११४३–संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ॥ ८ । २ । ४३ ॥

संयोगादि जो यण्वान् आकारान्त धातु, उससे परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ।

संस्त्यानः । ग्लानः । प्रद्राणः । 'संयोगादि' ग्रहण से यहाँ न हुआ—यातः; यातवान् । 'आद्' ग्रहण से यहाँ न हुआ—च्युतः; च्युतवान् । प्लुतः;

---

* ण्यत् कृत्यसंज्ञक प्रत्यय है । कृत्यप्रत्यय (९१६) सूत्र से भावकर्म्म में होते हैं, इससे ण्यदर्थ भावकर्म्म है ॥

प्लुतवान्। 'धातु' ग्रहण से यहां न हुआ—निर्यातः। 'यण्वद्' ग्रहण से यहां न हुआ—स्नातः; स्नातवान्॥

११४४—ल्वादिभ्यः ॥ ८। २। ४४॥

लूञादिक धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो।

यहां क्र्यादिगणस्थ 'लूञ् छेदने' से लेकर 'प्ली गतौ' इस धातु पर्यन्त धातुओं का ग्रहण है। उनमें रेफ से परे नकारादेश पूर्व से भी सिद्ध है, शेष धातुओं से अप्राप्त है। लूनः; लूनवान्। धूनः; धूनवान्।

११४५—वा०—दुग्वोर्दीर्घश्च ॥ ८। २। ४४॥

दु और गु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश और उनको दीर्घ भी कहना चाहिये।

दु—आदूनः। गु—आगूनः।

११४६—वा०—पूञो विनाशे ॥ ८। २। ४४॥

विनाश अर्थ में वर्त्तमान पूञ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो।

पूनाः यवाः *—यव विनाश को प्राप्त हो गये। 'विनाश' ग्रहण से यहां न हुआ—पूतं धान्यम्—धान्य पवित्र है।

११४७—वा०—सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्त्तृकस्य ॥ ८। २। ४४॥

जिसका ग्रासकर्म ही कर्त्ता हुआ हो, उस सिञ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो।

असायि ग्रासः स्वयमेवेति = सिनो ग्रासः स्वयमेव।

---

* धातु अनेकार्थ होते हैं, इससे 'पूनाः यवाः' जहां पूञ् धातु विनाशार्थक है॥

'ग्रासकर्मकर्त्तृ' ग्रहण से यहां न हुआ—सिता पाशेन सूकरी, पाश से सूकरी आप ही बंध गई। इस अपेक्षा में निष्ठा के 'त' को 'न' न हुआ—ग्रास शब्द भी जब कर्म ही रहता तब निष्ठा के तकार को नकार नहीं होता है—सितो ग्रासो देवदत्तेन ॥

११४८–ओदितश्च ॥ ८ । २ । ४५ ॥

जिसका ओकार इत्संज्ञक हो, उससे परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो।

ओलजी—लग्नः; लग्नवान्। ओविजी—उद्विग्नः; उद्विग्नवान्। ओहाक्—प्रहीणः; प्रहीणवान् ॥

११४९–द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः ॥ ६ । १ । २४ ॥

निष्ठा परे हो, तो द्रवमूर्त्ति—घृतादि पदार्थ का कड़ापन, और स्पर्श—छूने अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो।

स्पर्श—शीतं वर्त्तते। शीतो वायुः। 'द्रवमूर्त्ति' के अगले सूत्र उदाहरण देंगे। 'द्रवमूर्त्तिस्पर्श' ग्रहण से यहां न हुआ—संश्यानो वृश्चिकः; सिमिटा हुआ बीछू है ॥

११५०–श्योऽस्पर्शे ॥ ८ । २ । ४७ ॥

स्पर्शभिन्न अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु से परे, निष्ठा तकार को नकारादेश हो।

शीनं धृतम्—जमा घृत है। 'अस्पर्श' ग्रहण से यहां न हुआ—शीतो वायुः ॥

११५१–प्रतेश्च ॥ ६ । १ । २५ ॥

निष्ठा परे हो, तो प्रति से परे श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो।

प्रतिशीनः; प्रतिशीनवान् ॥

११५२–विभाषाभ्यवपूर्वस्य ।। ६ । १ । २६ ।।

निष्ठा परे हो, तो अभि अव पूर्वक श्यैङ् धातु को विकल्प करके सम्प्रसारण हो ।

अभिशीनम्; अभिश्यानम् । अवशीनम्; अवश्यानम् । द्रवमूर्त्तिस्पर्श-विवक्षा में भी विकल्प होता है—अभिशीनम्; अभिश्यानम् । अवशीनम्; अवश्यानम् वा घृतम् । अभिशीतः; अभिश्यानः । अवशीतः; अवश्यानो वा वायुः ।

यह व्यवस्थित विभाषा है, इससे अभि, अव और किसी के साथ में हों तो सम्प्रासारण नहीं होता—समवश्यानः । समभिश्यानः ।।

११५३–अञ्चोऽनपादाने ।। ८ । २ । ४८ ।।

अनपादान में अञ्चु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ।।

११५४–यस्य विभाषा ।। ७ । २ । १५ ।।

जिस धातु के विषय में कहीं विकल्प करके इट् कहा है, उससे निष्ठा में इडागम न हो ।

'सम्+अञ्चु+त' = समक्नः । न्यक्नः । उदित् धातु से क्त्वा प्रत्यय को (१५२६) से विकल्प करके इडागम कहेंगे, इससे यहां इट् (४६) से न हुआ । 'अनपादान' ग्रहण से यहां न हुआ—उदक्तमुदकं कूपात् ।।

११५५–दिवोऽविजिगीषायाम् ।। ८ । २ । ४९ ।।

अविजिगिषा—न जीतने की इच्छा अर्थ में दिवु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ।।

आद्यूनः । 'अविजिगीषा' ग्रहण से यहां न हुआ—द्यूतं वर्त्तते ।।

११५६–निर्वाणोऽवाते ॥ ८ । २ । ५० ॥

अवात अर्थ में निर्वाण यह निपातन है।

निर्वाणो मुनिः—निवृत्तसुख को मुनि प्राप्त है। यहां वात—पवन से अन्य कर्त्ता में निरपूर्वक 'वा' धातु से परे निष्ठा तकार को नकारादेश होता है। वात में तो—'निर्वातः' होगा ॥

११५७–शुषः कः ॥ ८ ॥ २ । ५१ ॥

शुष धातु से परे निष्ठा के तकार को ककारादेश हो।

शुष्कः; शुष्कवान्; शुष्कवन्तौ; शुष्कवन्तः ॥

११५८–पचो वः ॥ ८ । २ । ५२ ॥

पच धातु से परे निष्ठा के तकार को वकारादेश हो।

पक्वः; पक्ववान् ॥

११५९–क्षायो मः ॥ ८ । २ । ५३ ॥

क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश हो।

क्षामः; क्षामवान् ॥

११६०–स्त्यः प्रपूर्वस्य ॥ ६ । १ । २३ ॥

निष्ठा परे हो, तो प्रपूर्वक स्त्यै धातु को सम्प्रसारण हो ॥

११६१–प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् ॥ ८ । २ । ५४ ॥

प्रपूर्वक स्त्यै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश विकल्प करके हो।

प्रस्तीमः; प्रस्तीमवान्। प्रस्तीतः; प्रस्तीतवान् ॥

११६२–आदितश्च ॥ ७ । २ । १६ ॥

आकार जिसका इत्संज्ञक हो, उससे परे निष्ठा को इट् आगम न हो ॥

११६३–ति च ॥ ७ । ४ । ८९ ॥

तकारादि कित् परे हो, तो चर फल धातुओं के अकार को उकारादेश हो ॥

११६४–अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ॥ ८ । २ । ५५ ॥

उपसर्ग से न परे हो, तो फुल्ल, क्षीव, कृप और उल्लाघ ये निपातन हैं।

फुल्लः, यहाँ **'ञिफला विशरणे'** धातु से निष्ठा के त को लत्व निपातन और (११६२) से इट् निषेध तथा (११६३) से उकार होता है। इस धातु से निष्ठा को लकार एकदेश में भी इष्ट है—फुल्लवान्। **'क्षीबृमदे'**—क्षीवः, मत्त का नाम है। **'कृश तनूकरणे'**—कृशः, दुर्बलशरीर। उत् पूर्वक **'लाघृ सामर्थ्ये'** से उल्लाघः—नीरोग कहाता है।

इन प्रयोगों में निष्ठा के तकार का लोप और उसके असिद्ध (सन्धि०–९४) से होने से प्राप्त इट् का निषेध निपातन है। उपसर्ग से परे उक्त निपातन नहीं होते हैं। जैसे—प्रफुल्लितः। प्रक्षीवितः। प्रकृशितः। प्रोल्लाघितः। 'प्रफुल्ल' शब्द तो **'फुल्ल विकसने'** धातु से (९७७) सूत्र से होगा।

११६५–वा०–उत्फुल्लसंफुल्लयोरिति वक्तव्यम् ॥८।२।५५॥

ञिफला धातु से निष्ठा के तकार को नकारादेश विधान में उत्फुल्ल, संफुल्ल इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये।

उत्फुल्लः। संफुल्लः ॥

११६६–नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् ।।८।२।५६।।

नुद, विद, उन्द, त्रा, घ्रा, ह्री इन धातुओं से परे निष्ठा के तकार और पूर्व दकार को नकारादेश विकल्प करके हो।

नुद—नुन्नः; नुत्तः। विद—विन्नः; वित्तः; यहाँ रुधादिगणस्थ 'विद विचारणे' धातु का ग्रहण है। उन्दी—'उन्द+त' यहाँ—

११६७–श्वीदितो निष्ठायाम् ।। ७ । २ । १४ ।।

श्वि और ईदित् धातु से परे निष्ठा को इट् आगम न हो।

इससे इट् का निषेध होकर—उन्नः; उत्तः।

त्रा—त्रातः; त्राणः। घ्रा—घ्राणः; घ्रातः। ह्री—ह्रीणः; ह्रीतः।।

११६८–न ध्याख्यापॄमूर्छिमदाम् ।। ८ । २ । ५७ ।।

ध्या, ख्या, पॄ, मूर्छि, मद इनसे परे निष्ठा को नकारादेश न हो। ध्यातः; ध्यातवान्। ख्यातः; ख्यातवान्। पूर्तः; पूर्तवान्। मूर्त्तः; (५६०); मूर्त्तवान्। मत्तः; मत्तवान्।।

११६९–वित्तो भोगप्रत्यययोः ।। ८ । २ । ५८ ।।

भोग और प्रत्यय—प्रतीत अर्थ में 'वित्त' यह निपातन हो।

भोग—बहुवित्तमस्य, इसके बहुत धन है। सब प्रकार धन ही भोगते हैं। इससे भोग अर्थ प्रकाशित होता है। प्रत्यय—वित्तोऽयं पुरुषः, पुरुष प्रतीत हुआ है यहाँ 'विद्लृ' का ग्रहण है। उक्त अर्थों से अन्यत्र—'विन्नः' होगा।

वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते।
विन्तेर्विन्नश्च वित्तश्च भोगे वित्तश्च विन्दतेः।।

महाभाष्य ८। २। ५८।।

'विद ज्ञाने' से निष्ठान्त—विदितः, और 'विद सत्तायाम्' से निष्ठान्त—विन्नः, तथा 'विद विचारणे' से निष्ठान्त—(११६६) विन्नः; वित्तः। और भोग वा प्रत्यय में 'विद्लृ लाभे' से—वित्तः इष्ट है। यहां कारिका में भोग उपलक्षण मात्र है, इससे प्रत्यय का भी ग्रहण है॥

११७०–भित्तं शकलम् ॥ ८ । २ । ५९ ॥

शकल—टुकड़ा वाच्य हो, तो 'भित्त' यह निपातन है।

भिदिर्—भित्तं शकलम्। अन्यत्र—भिन्नम्॥

११७१–ऋणमाधमर्ण्ये ॥ ८ । २ । ६० ॥

आधमर्ण्य—ऋण का लेना अर्थ में 'ऋण' यह निपातन हो।

ऋणं धारयति, यहाँ 'ऋ' धातु से निष्ठा के तकार को नकारादेश निपातन है। 'आधमर्ण्य' ग्रहण से यहाँ न हुआ—ऋतं वक्ष्यामि।

ऋणे अधमः अधमर्णः, अधमर्णस्य भावः=आधमर्ण्यम्—ऋण में जो लेनेवाला है वह 'अधम' कहाता है। यहाँ समास में सप्तम्यन्त ऋण शब्द का अपूर्वनिपात 'आधमर्ण्य' इस निर्देश को देख कर होता है, तथा यह 'आधमर्ण्य' उपलक्षण भी है, इससे 'उत्तमर्ण' यह भी होता है॥

११७२-नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्त्तसूर्त्तगूर्त्तानि छन्दसि ॥ ८ । २ । ६१ ॥

वेदविषय में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त्त, सूर्त्त, गूर्त्त ये निपातन हों।

नसत्तमञ्जसा। निषत्तमस्य चरतः, इनमें नञ् और निपूर्वक 'सद्' धातु से निष्ठातकार को नकारादेश का अभाव निपातन है। लोक में—असन्नः; निषण्णः होंगे। अनुत्तमा ते मघवन्, यहाँ नञ्पूर्वक 'उन्दी' से निष्ठा को नत्वाभाव निपातन है। 'अनुन्नः'—यह लोक में होगा।

प्रतूर्त्तं वाजिनम् यहाँ 'त्वर' वा 'तुर्वी' धातु से निष्ठा को नत्वाभाव। लोक में—'प्रतूर्णम्' । सूर्त्ता गावः, यहाँ 'सृ' धातु से निष्ठा को नत्वाभाव। लोक में—'सृताः' गूर्त्ता अमृतस्य, यहाँ 'गूरी' से निष्ठा को नत्वाभाव। लोक में—गूर्णम् ॥

११७३-स्फायः स्फी निष्ठायाम् ॥ ६ । १ । २२ ॥

निष्ठा परे हो, तो स्फाय धातु को स्फी आदेश हो।

स्फायी—स्फीतः; स्फीतवान् । 'निष्ठा' ग्रहण से यहाँ न हुआ—स्फातिः, यहाँ क्तिन् प्रत्ययान्त है ॥

११७४—इण् निष्ठायाम् ॥ ७ । २ । ४७ ॥

निर् से परे जो कुष धातु उससे निष्ठा परे हो, तो उसको इडागम हो

निष्कुषितः ॥

११७५—वसतिक्षुधोरिट ॥ ७ । २ । ५२ ॥

वस और क्षुध धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् का आगम हो।

वस—उषितः; उषितवान् । क्षुध—क्षुधितः; क्षुधितवान् ॥

११७६—अञ्चेः पूजायाम् ॥ ७ । २ । ५३ ॥

पूजार्थ में अञ्चु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम हो।

अञ्चिता अस्य गुरवः । पूजा से अन्यत्र—उदक्तमुदकं कूपात् ॥

११७७—लुभो विमोहने ॥ ७ । २ । ५४ ॥

विमोहन—व्याकुल करना अर्थ में वर्त्तमान लुभ धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् का आगम हो।

विलुभितः। विलुभितानि पदानि। 'विमोहन' ग्रहण से यहां न हुआ—लुब्धो वृषलः।

११७८–क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ॥ ७ । २ । ५० ॥

क्लिश धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को विकल्प करके इट् आगम हो

क्लिष्टः; क्लिष्टवान्। क्लिशितः; क्लिशितवान्, यहां **'क्लिश उपतापे और क्लिशू विबाधने'** इन दोनों का ग्रहण है॥

११७९–पूङ्श्च ॥ ७ । २ । ५१ ॥

पूङ् धातु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम विकल्प करके हो।

'पू+इ+त' यहां—

११८०–पूङः क्त्वा च ॥ १ । २ । २२ ॥

पूङ् धातु से परे सेट् क्त्वा और निष्ठा कित् न हो।

पवितः। इट् विकल्प में—पूतः॥

११८१–निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥१।२।१९॥

शीङ्, ञिष्विदा, ञिमिदा, ञिक्ष्विदा, ञिधृषा इनसे परे सेट् निष्ठा कित् न हो। शीङ्—शयितः; शयितवान्, यहां ङकारोच्चारण यङ्लुगन्त की निवृत्ति के लिये है—शेश्यितः; शेश्यितवान्।

११८२–वा०–आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या ॥३।२।१०२॥

आदि कर्म—प्रथमक्रिया में धातु से निष्ठासंज्ञक प्रत्यय कहना चाहिये॥

११८३–आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च ॥ ३ । ४ । ७१ ॥

आदिकर्म्म में जो क्त प्रत्यय विहित है, वह कर्त्ता और भावकर्म्म में हो।

११८४–विभाषा भावादिकर्मणोः ॥ ७ । २ । १७ ॥

आकार जिसका इत्संज्ञक हो उस धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो निष्ठा, उसको विकल्प करके इट् आगम न हो।

प्रस्वेदितम् मैत्रेण—मैत्र ने प्रस्वेद किया। प्रस्वेदितश्चैत्रः—चैत्र प्रथम प्रस्वेद को प्राप्त हुआ। प्रस्वेदितवान्। प्रमेदितम्; प्रमेदितः; प्रमेदितवान्। प्रक्ष्वेदितम्; प्रक्ष्वेदितः; प्रक्ष्वेदितवान्। प्रधर्षितम्; प्रधर्षितः; प्रधर्षितवान्॥

११८५–मृषस्तितिक्षायाम्॥ १ । २ । २० ॥

मृष धातु से परे तितिक्षा—सहन अर्थ में इट् सहित निष्ठा कित न हो।

मर्षितः; मर्षितवान्। 'तितिक्षा' ग्रहण से यहां न हुआ—अपमृषितं वाक्यम्, स्पष्टाक्षर वाक्य नहीं है॥

११८६–उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥१।२।२१॥

उकारोपध धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो सेट् निष्ठा, सो विकल्प करके कित् न हो।

प्रद्युतितम्; प्रद्योतितं वाऽनेन। प्रद्योतितः; प्रद्युतितः। साधुः। प्रमुदितम्; प्रमोदितमनेन। प्रमुदितः; प्रमोदितः साधुः। 'उदुपध' ग्रहण से यहां न हुआ—लिखितमनेन। विदितमनेन। 'भावादिकर्म' ग्रहण से यहां न हुआ—रुचितं कार्षापणं ददाति। 'सेट्' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रभुक्त ओदनः।

यहां शब्विकरण धातुओं का ग्रहण इष्ट है—'**शब्विकरणेभ्य एवेष्यते॥ महाभाष्य । १ । २ । २१ ॥**' इससे यहां न हुआ—गुधितः; गुधितवान्॥

११८७–निष्ठायां सेटि ॥ ६ । ४ । ५२ ॥

सेट् निष्ठा परे हो, तो णि प्रत्यय का लोप हो।

भावितः; भावितवान् । गुह—गूढः; गूढवान् । वनु—वतः । तनु—ततः, (३०३) । पत्लृ—पतितः । यद्यपि पत् धातु को विकल्प करके इट् (५१९) से विहित है, इससे निष्ठा में इट् निषेध भी (११५४) से प्राप्त है, तथापि सामासिक (द्वितीया० २ । १ । २४) सूत्र में पतित शब्द के ग्रहण से 'पतित' यहां इडागम (८६) से होता है ॥

११८८—क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताऽविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु॥७।२।१८॥

मन्थ, मनस्, तमस्, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास, भृश इन अर्थों में यथासंख्य करके क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ ये इट्रहित निपातन हैं ।

'क्षुभ संचलने'—क्षुब्धो मन्थः । 'मन्थ' यह मथनी आदि जो मन्थनदण्ड हैं उनका नाम है । मंथ से अन्यत्र—क्षुभितम् । **'स्वन ध्वन शब्दे'**—स्वान्तं मनः । ध्वान्तं तमः । अन्यत्र—स्वनितम् । ध्वनितम् । **'लगे संगे'** लग्नं सक्तम्—जो किसी में लग रहा है, यहां निष्ठा को नकारादेश भी निपातन है । अन्यत्र—लगितम् । **'म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे'**—म्लिष्टम् अविस्पष्टम्—जो अच्छे प्रकार स्पष्ट न हो । **'रेभृ शब्दे'**—विरिब्धः स्वरः । इन दोनों प्रयोगों में एकार को इकार भी निपातन है । अन्यत्र—म्लेच्छितम् । विरेभितम् ।

'फण गतौ' फाण्टम् अनायाससाध्यं कषायम्—विना परिश्रम से सिद्ध होनेवाले काढ़े को कहते हैं, अर्थात् जो ओषधि पकाई वा पीसी न जाय किन्तु जल में भिगोने से उससे जो रस उत्पन्न हो और उसको पीछे से कुछ उष्ण कर लिया जाय, वह अनायाससाध्य काढा 'फाण्ट' कहाता है । अन्यत्र—फाणितम् । **'बाहृ प्रयत्ने'** बाढं भृशम्—अतिशय को कहते हैं । अन्यत्र—बाहितम् ॥

११८९–धृषिशसी वैयात्ये ।। ७ । २ । १९ ।।

निष्ठा परे हो, तो वैयात्य—अविनय * अर्थ में ञिधृषा और शसु अनिट् हों, अन्यत्र न हों।

ञिधृषा—अयं धृष्टः पुरुषः यह ढीठ पुरुष है। शसु—अयं विशस्तः पुरुषः—यह हिंसक पुरुष है। 'ञिधृषा' से निष्ठा को इट् निषेध (११६२ सूत्र से सिद्ध तथा 'शसु' से (११५४) सूत्र से सिद्ध है, इससे वैयात्य अर्थ में यह अनिट् विधान करना नियमार्थ है। अर्थात् वैयात्य ही अर्थ में धृषि, शसि अनिट् हों, अन्यत्र न हों। वैयात्य से अन्यत्र—धर्षितः। विशसितः ।।

११९०–दृढः स्थूलबलयोः ।। ७ । २ । २० ।।

स्थूल और बलवान् ये अर्थ वाच्य हों, तो 'दृढ' यह निपातन है।

दृढः स्थूलः। दृढो बलवान्, यहां 'दृह दृहि वृद्धौ' इन दोनों धातुओं से क्त प्रत्यय को इट् का अभाव और ढकारादेश तथा धातु के हकार का लोप और दृहि के इदिद्भाव से (१२७) से हुए नकार का लोप निपातन है। स्थूल और बल से अन्यत्र—दृहितः, दृंहितः ।।

११९१–प्रभौ परिवृढः ।। ७ । २ । २१ ।।

प्रभु वाच्य हो, तो 'परिवृढ' यह निपातन है।

परिवृढः कुटुम्बी, यहां 'वृह वृहि वृद्धौ' इनसे दृढ शब्द के तुल्य समस्त कार्य होते हैं। प्रभु अर्थ से अन्यत्र—परिवृहितः; परिवृंहितः ।।

---

* विरूपं यातं गमनं चेष्टनं यस्य स वियातस्तस्य भावो वैयात्यमविनयः—जिसका विरूप गमन-चेष्टा है, वह 'वियात' कहाता है, उसका होना 'वैयात्य' अर्थात् अविनय कहाता है ।।

११९२–कृच्छ्रगहनयोः कषः ॥ ७ । २ । २२ ॥

कृच्छ्र—दुःख वा दुःख का निमित्त, और गहन—सघन अर्थ में कष धातु से निष्ठा को इडागम न हो।

कृच्छ्र—कष्टं दुःखम्: कष्टो रोगः—दुःख तथा दुःख का निमित्त रोग आदि 'कष्ट' कहाता है। गहन—कष्टाः पर्वताः। कष्टानि वनानि। 'कृच्छ्रगहन' से अन्यत्र—कषितं सुवर्णम् ॥

११९३–घुषिरविशब्दने ॥ ७ । २ । २३ ॥

निष्ठा परे हो, तो अविशब्दन—विशब्दन प्रतिज्ञा उससे अन्य अर्थ में घुषिर् धातु अनिट् हो।

घुष्टा रज्जुः। 'अविशब्दन' ग्रहण से यहां न हुआ—अवघुषितं वाक्यमाह। अर्थात् प्रतिज्ञात वाक्य कह रहा है। चुरादिगणस्थ घुषिर् धातु से * जो णिच् होता है, उसकी अनित्यता में अविशब्दन निषेध ज्ञापक है ॥

११९४–अर्देः सन्निविभ्यः ॥ ७ । २ । २४ ॥

सम्, नि, वि, इन से परे जो अर्द धातु, उससे परे निष्ठा को इट् आगम न हो।

समर्णः, (११४२) न्यर्णः। व्यर्णः। 'अर्द' ग्रहण से यहाँ न हुआ—समेधितः। 'सन्निवि' ग्रहण से—'अर्दितः' यहाँ न हुआ ॥

---

* 'घुषिर्' धातु पिछले दो गणों में पढ़ा है, अर्थात् भ्वादिगण में 'घुषिर् अविशब्दने' तथा चुरादिगण में 'घुषिर् विशब्दने'। इन दोनों में से अविशब्दन अर्थ में निष्ठा के परे घुषिर् धातु अनिट् है, विशब्दन में अनिट् नहीं है। यहाँ यह शङ्का है कि विशब्दन में इट् निषेध क्यों किया, अर्थात् विशब्दन में चुरादि णिच् होकर घोषि हो जाता है, किन्तु घुष नहीं रहता है, इससे 'अविशब्दने' यह ज्ञापक है कि चुरादि णिच् उक्त धातु से अनित्य है ॥

११९५–अभेश्चाविदूर्य्ये ।। ७ । २ । २५ ।।

आविदूर्य्य—जो बहुत दूर न हो वा अति समीप हो, उस अर्थ में अभि से परे जो अर्द् धातु, उससे परे निष्ठा को इट् न हो ।

अभ्यर्णम् (११४२) । अन्यत्र—शीतेनाभ्यर्दितो वृषभः—वृषभ शीत से पीड़ित हो रहा है ।।

११९६–णेरध्ययने वृत्तम् ।। ७ । २ । २६ ।।

अध्ययन अर्थ में ण्यन्त वृतु धातु से निष्ठा को इट् का अभाव और णिच् का लोप निपातन है ।

वृत्तं व्याकरणमनेन—इसने व्याकरण का संपादन कर लिया । 'अध्ययन' से अन्यत्र—वर्त्तिता रज्जुः, वर्त्ती हुई डोरी है ।।

११९७–शृतं पाके ।। ६ । १ । २७ ।।

क्तप्रत्यय के परे पाक अर्थ में णिजन्त वा णिच् रहित श्रा धातु को शृभाव निपातन है ।।

११९८–वा०–क्षीरहविषोरिति वक्तव्यम् ।। ६ । १ । २७ ।।

उक्त शृभाव क्षीरहविर्विषयक पाक अर्थ में कहना चाहिये ।

'श्रा पाके'—शृतं क्षीरं स्वयमेव; शृतं हविः स्वयमेव । णिजन्त—शृतं क्षीरं देवदत्तेन । अन्यत्र—श्राणा, (११४३); श्रपिता वा यवागूः । श्रा धातु अकर्मक है, इससे कर्मकर्तृ विषयक पच् धातु के अर्थ में वर्त्तमान हैं । णिजन्त श्रा धातु से फिर प्रयोजकव्यापार में णिच् किया जाय । जैसे—'श्रा+पुक्+णिच्+णिच्+क्त+सु' यहाँ—

११९९–वा०–श्रपेः शृतमन्यत्र हेतोरिति वक्तव्यम् ।। ।। ६ । १ । २७ ।।

णिजन्त श्रा=श्रपि धातु से जो हेतु अर्थात् प्रयोजक व्यापार उससे अन्यत्र शृभाव निपातन करना चाहिये ।

अभाव का निषेध होकर—अश्रपि क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेन, अपित क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेनेति ॥

१२००–वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टछन्नज्ञप्ताः ॥ ७ । २ । २७ ॥

णिच् विषय में दान्त, शान्त, पूर्ण, दस्त, स्पष्ट, छन्न, ज्ञप्त ये विकल्प करके निपातन हैं ।

दमु—दान्तः, (५८८); पक्ष में—दमितः । शमु—शान्तः; शमितः । पूरी—पूर्णः; पूरितः । दसु—दस्तः; दासितः । स्पश—स्पष्टः; स्पाशितः । छद—छन्न,; छादितः । इन दान्तादिकों में णिलुक् और इट् का अभाव निपातन है । ज्ञप—ज्ञप्तः; ज्ञापितः । 'ज्ञप्त' का ग्रहण विकल्पार्थ इट् विधान के लिये है, क्योंकि ज्ञप से (५१५) सूत्र से इट् विकल्प विधान है, इससे (११५४) सूत्र से नित्य इट् प्रतिषेध प्राप्त है ॥

१२०१–रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ॥ ७ । २ । २८ ॥

रुष, अम, त्वर, संघुष्, आस्वन इन धातुओं से निष्ठा को इट् आगम विकल्प करके हो ।

रुष—रुष्टः; रुषितः, (२१२) से इट् विकल्प । (११५४) सूत्र से निषेध प्राप्त था । अम—आन्तः, (५८८); अमितः । जित्वरा—तूर्णः; त्वरितः, (११६०) से इट् प्रतिषेध प्राप्त था । संघुषिर्—संघुष्टः; संघुषितः । आस्वन—आस्वान्तः; आस्वनितः ॥

१२०२–हृषेर्लोमसु ॥ ७ । २ । २९ ॥

लोम विषय में वर्त्तमान हृष धातु से परे निष्ठा को विकल्प करके इट् आगम हो ।

१२०३–वा० हृषेर्लोमकेशकर्त्तृकस्येति वक्तव्यम् ॥ ७ । २ । २९ ॥

उक्त इट् विकल्प लोम और केशकर्त्तृक हृष धातु से कहना चाहिये।

हृष्टानि लोमानि; हृषितानि लोमानि। हृष्टं लोमभिः; हृषितं लोमभिः। हृष्टाः केशाः; हृषिताः केशाः। हृष्टं केशैः; हृषितं केशैः। **'हृषु अलीके'** तथा **'हृष तुष्टौ'** दोनों का ग्रहण है। उनमें हृषु उदित् होने से निष्ठा में (११५४) से अनिट् तथा हृष सेट् है। 'लोम' से अन्यत्र—हृषु—हृष्टो देवदत्तः। हृष—हृषितो देवदत्तः।

१२०४–वा०–विस्मितप्रतिघातयोरिति वक्तव्यम् ॥ ७ । २ । २९ ॥

विस्मित—विस्मय को प्राप्त, प्रतिघात—ताड़ना को प्राप्त, इन अर्थों में हृष् धातु से इट् विकल्प करके कहना चाहिये।

विस्मित—हृष्टो देवदत्तः; हृषितो देवदत्तः। प्रतिघात—हृष्टा दन्ताः; हृषिता दन्ताः ॥

१२०५–अपचितश्च ॥ ७ । २ । ३० ॥

'अपचित' यह विकल्प करके निपातन है।

अपचितः; अपचायितो वाऽनेन गुरुः—इसने गुरु सत्कारयुक्त किया। यहाँ अपपूर्वक **'चायृ'** धातु से निष्ठा को इडभाव और धातु को चिभाव निपातन है ॥

१२०६–प्यायः पी ॥ ६ । १ । २८ ॥

निष्ठा परे हो, तो ओप्यायी धातु को विकल्प करके पी आदेश हो।

'ओप्यायी वृद्धौ'—पीनं मुखम्; पीनमुरः।

१२०७–वा०–आङ्पूर्वादन्धूधसोः ॥ ६ । १ । २८ ॥

आङ्पूर्वक ओप्यायी धातु को यदि अन्धु और ऊधस् वाच्य हों, तो निष्ठा के परे पी आदेश कहना चाहिये ।

आपीनोऽन्धुः; आपीनमूधः ।

पूर्व सूत्र से सर्वत्र पी आदेश सिद्ध है, फिर भी जो 'आङ्पूर्वक' इत्यादि विधान है, सो नियमार्थ है, अर्थात् आङ्पूर्वक से निष्ठा के परे अन्धु और ऊधस् ही वाच्य हों, तो पी आदेश हो, अन्यत्र न हो । आप्यानश्चन्द्रमाः ।

तथा यह उभयतोनियम भी है । अन्धु, ऊधस् वाच्य हों, तो आङ्-पूर्वक ही से निष्ठा के परे पी आदेश हो, अन्यपूर्व से न हो । प्रप्यानोऽन्धुः; प्रप्यानमूधः ॥

१२०८–ह्लादो निष्ठायाम् ॥ ६ । ४ । ९५ ॥

निष्ठा परे हो, तो ह्लाद अङ्ग को ह्रस्वादेश हो । प्रह्लन्नः; प्रह्लन्नवान् । 'निष्ठा' ग्रहण से यहाँ न हुआ—प्रह्लादयति ॥

१२०९–द्यतिस्यतिमास्थामित्तिकिति ॥ ७ । ४ । ४० ॥

तादि कित् परे हो, तो द्यति, स्यति, मा, स्था इन अङ्गों को इकारादेश हो ।

द्यति—'**दो अवखण्डने**' दितः; दितवान् । स्यति—'**षो अन्तकर्मणि**'—सितः; सितवान् । मा—'**मा माने, माङ् माने, मेङ् प्रणिदाने**'—मितः; मितवान् । स्था '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**'—स्थितः; स्थितवान् ॥

१२१०–शाछोरन्यतरस्याम् ॥ ७ । ४ । ४१ ॥

तादि कित् परे हो, तो शा, छा अङ्गों को इकारादेश विकल्प करके हो ।

निशितम्; निशातम्। निशितवान्; निशातवान्। अवच्छितम्; अवच्छातम्। अवच्छितवान्; अवच्छातवान्।

यह व्यवस्थित विभाषा है, इससे व्रतविषय में 'श्यति' को नित्य इकारादेश होता है। संशितं व्रतम्– सम्यक् प्रकार से संपादन किया व्रत है। संशितो ब्राह्मणः—व्रतविषयक यत्नवान् ब्राह्मण है॥

१२११–दधातेर्हिः॥ ७।४।४२॥

तादि कित् परे हो, तो डुधाञ् धातु को हि आदेश हो।

अभिहितम्। निहितम्। विहितम्॥

१२१२–सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च॥ ७।४।४५॥

वेदविषय में सुधित, वसुधित, नेमधित, धिष्व, धिषीय में निपातन हैं।

गर्भं माता सुधितं रक्षणासु। वसुधितमग्नौ जुहोति। नेमधिता बाधन्ते इनमें सु, वसु, नेमपूर्वक **'डुदाञ्'** धातु को इकारादेश निपातन है। लोक में—सुहित, वसुहित और नेमहित होगा।

धिष्व सोमम्। सुरेता रेतो धिषीय—इन दोनों में 'डुधाञ्' को इत्व वा प्रत्यय को इडागम निपातन है। 'धिष्व' लोट् मध्यमैकवचन में है। लोक में—'धत्स्व' होता है। तथा 'धिषीय' आशीर्लिङ् के उत्तमैकवचन में है। लोक में—'धासीय' होता है॥

१२१३–दो दद् घोः॥ ७।४।४६॥

तादि कित् परे हो, तो घुसंज्ञक दा धातु को दथ आदेश हो। डुदाञ्– दत्तः; दत्तवान्। 'दा' ग्रहण से यहाँ न हुआ- **'धेट् पाने'** धीतः; धीतवान्, यहाँ (३४६) से ईकारादेश होता है। 'घु'ग्रहण से यहाँ न हुआ—दैप् शोधने—अवदातं मुखम्।

उक्त आदेश को दत्, दद्, दध्, दथ्, इनमें कौनसा मानना चाहिये—

१२१४–का०–तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्याद् दान्ते दोषो निष्ठा नत्वम् । धान्ते दोषो धत्वप्राप्तिस्थान्तेऽदोषस्तस्मात्थान्तः ।। महा० ७ । ४ । ४६ ।।

यदि उसको तान्त अर्थात् 'दत्' मानें तो 'विदत्त' यहाँ अगले (१२१७) सूत्र से उपसर्ग के इक् को दीर्घादेश * प्राप्त है। दान्त 'दद्' मानें तो 'दद्+त+सु'=दत्तः, यहाँ (११४२) सूत्र से निष्ठा को तथा पूर्व द को नकारादेश प्राप्त है। धान्त 'दध्' मानें तो (१४१) सूत्र से निष्ठा तकार को धकार प्राप्त है। इससे थान्त 'दथ्' मानना चाहिये। क्योंकि थान्त में दोष नहीं है।

उपसर्ग से परे 'प्र+दा+त+सु' यहाँ—

१२१५–अच उपसर्गात्तः ।। ७ । ४ । ४७ ।।

अजन्त उपसर्ग से परे घुसंज्ञक दा धातु को त आदेश हो।

आदेश होकर 'प्रद्त्+त+सु'=प्रत्तम्; अवत्तम्।

१२१६–का०–अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि । सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ।। महा० । ७ । ४ । ४७ ।।

अवदत्त, विदत्त, आदिकर्म में प्रदत्त, सुदत्त, अनुदत्त तथा निदत्त ये भी इष्ट हैं। अर्थात् इन सवों में दा को तकारादेश प्राप्त है, सो न हुआ

---

* (दस्ति ।। ६ । ३ । १३४) इस सूत्र का जब यह अर्थ हो कि डुदाञ् धातु का जो तकारान्त आदेश उसके विषय में इगन्तोपसर्ग को दीर्घ हो, तब दीर्घादेश प्राप्त है। दान्त धान्त पक्ष में भी पारिभाषिकस्थ सन्निपात परिभाषा के विरोध से दत्व धत्व नहीं प्राप्त हैं ।।

किन्तु 'दथ्' आदेश होता है। 'चेष्यते' यहाँ चकारग्रहण से यह जानना चाहिये कि एक पक्ष में तकार आदेश होता भी है।

१२१७–दस्ति ॥ ६ । ३ । १२४ ॥

डुदाञ् धातु का जो तकारादि आदेश सो परे हो, इगन्त उपसर्ग को दीर्घादेश हो।

नीत्तम् । वीत्तम् । परीत्तम्, इन में दा के आकार के स्थान में यद्यपि (१२१५) से त आदेश होता है, तथापि (सं०—३०२) सूत्र से पूर्व द् को चर् होकर तकारादि आदेश हो जाता है।

आश्रयात्सिद्धत्वं भविष्यति ॥ महाभाष्य ६ । ३ । १२४ ॥ चर्त्व के आश्रय से चर् का सिद्धभाव हो जायगा। अर्थात् (दस्ति) यहाँ जो तकारादि का आश्रय किया है, इससे चर् (सन्धि०—९४) असिद्ध नहीं होगा॥

१२१८–अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति ॥ २ । ४ । ३६ ॥

ल्यप् और तादि कित् परे हो, तो अद धातु को जग्धि आदेश हो।

अद—जग्धः; जग्धवान्, यहाँ क्त प्रत्यय के परे अद को जग्धि आदेश; इकारेत् संज्ञा (नामिक – १३) निष्ठा तकार को (१४१) से धकार और पूर्वधकार का (सं०—३१०) से लोप हो जाता है॥

सः कटं प्रकृतः। प्रकृतः कटस्तेन, यहाँ (११८३) सूत्र से आदिकर्मविषयक क्त प्रत्यय कर्ता में होता है॥

तथा—प्रक्षीणः तपस्वी, यहाँ भी कर्ता में क्त होता और (११४०) से क्षि धातु को दीर्घ, (११४१) सूत्र से निष्ठा को नत्वादेश होता है।

१२१९–वाऽऽक्रोशदैन्ययोः ॥ ६ । ४ । ६१ ॥

भावकर्म से अन्य अर्थ में निष्ठा परे हो, तो आक्रोश—कोसना, और दैन्य—दीनता अर्थ में, क्षि धातु को विकल्प करके दीर्घादेश हो।

आक्रोश—क्षीणायुर्भव, यहाँ क्षि को दीर्घादेश होकर (११४१) से निष्ठा को नत्व हो जाता है। द्वितीय पक्ष में—क्षितायुर्भव। दैन्य—क्षितः क्षीणोऽयं वा तपस्वी ॥

१२२०—वा०—निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः ॥ ८। २। १॥

षत्वविधि, स्वरविधि प्रत्ययविधि तथा इड्विधि में निष्ठादेश सिद्ध है, यह कहना चाहिये।

षत्व—वृक्णः; वृक्णवान् यहाँ (११४८) से निष्ठा को नकारादेश, उसके असिद्ध (सं०—९४) होने से च् को (२३३) से षत्व प्राप्त है, सो नकारादेश के सिद्ध होने से झल् के अभाव से नहीं होता, किन्तु (सं० १६१) कुत्व होता है। स्वर आदि विषयों की आवश्यकता न होने से उनके उदाहरण नहीं दिये ॥

१२२१—गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्य्यतिभ्यश्च ॥ ३। ४। ७२॥

गति जिनका अर्थ है, उनसे तथा अकर्मक, श्लिष, शीङ्, स्था, आस, वस, जन, रुह्, जृष् इन धातुओं से विहित जो क्त प्रत्यय सो कर्त्ता और यथाप्राप्त भावकर्म में हो।

गत्यर्थ—'गम्लृ'—ग्रामं गतो देवदत्तः—ग्राम को देवदत्त गया। गतो ग्रामो देवदत्तेन देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ। अकर्मक—'ग्लै'—ग्लानो देवदत्तः; ग्लानं देवदत्तेन। श्लिष—पत्नीमाश्लिष्टः पतिः; आश्लिष्टा पत्नी पत्या। शीङ्—खट्वामधिशयितः; खट्वाऽधिशयिता।

स्था—गुरुमुपस्थितः; गुरुरुपस्थितस्तेन । आस—उपासितः परमेश्वरं भवान्; उपासितः परमेश्वरो भवता । वस—गुरुमनूषितो भवान्, अनूषितो गुरुर्भवता । जन—राममनुजातो लक्ष्मणः; अनुजातो लक्ष्मणेन रामः । रुह—अश्वमारूढो देवदत्तः; आरूढोऽश्वो देवदत्तेन । जॄष्—शुनीमनुजीर्णः श्वा; शुनानुजीर्णा शुनी ।

उक्त प्रयोगों में (९१६) सूत्र से प्राप्त भावकर्म में भी क्त होता है। श्लिष आदि अकर्मक भी हैं, तथापि सोपसर्ग सकर्मक हो जाते हैं, इससे इनका ग्रहण है ॥

१२२२–क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ॥ ३ । ४ । ७६ ॥

ध्रौव्य—स्थिरता, गति—गमन; और प्रत्यवसान—भक्षण अर्थ वाले धातुओं से विहित जो क्त प्रत्यय, सो अधिकरण और यथाप्राप्त भावकर्म में हो।

जो ध्रौव्यार्थक अकर्मक हैं उनसे कर्त्ता, भाव, अधिकरण में, गत्यर्थकों से कर्त्ता, कर्म, अधिकरण में, तथा प्रत्यवसानार्थकों से कर्म और अधिकरण में 'क्त' होता है।

ध्रौव्यार्थ—आसितो यज्ञदत्तः; आसितं यज्ञदत्तस्य वा । गत्यर्थ—देवदत्तो ग्रामं गतः; गतो देवदत्तेन ग्रामः—देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ है। गतं देवदत्तस्य, यहाँ देवदत्त का ग्राम हुआ है। प्रत्यवसानार्थ—भुक्त ओदनो देवदत्तः; देवदत्तस्य भुक्तम् ।

उक्त उदाहरणों में (९१६; १८६) सूत्रों के अनुसार कर्म और कर्ता में भी क्त प्रत्यय होता है ॥

१२२३–ञीतः क्तः ॥ ३ । २ । १८७ ॥

ञि जिसका इत्संज्ञक हो, उससे वर्त्तमानकाल में क्त प्रत्यय हो।

ञिक्ष्विदा—क्ष्विण्णः; क्ष्विण्णवान् ॥

१२२४–मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥ ३ । २ । १८८ ॥

मति—इच्छा, बुद्धि—ज्ञान, पूजा—सत्कार, इन अर्थों वाले धातुओं से वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय हो।

राज्ञां मतः। राज्ञामिष्टः। राज्ञां बुद्धः। राज्ञां ज्ञातः। राज्ञां पूजितः। राज्ञामर्चितः। 'राज्ञाम्' यह षष्ठी (कार०—१२०) से होती है। चकार अनुक्तशब्दों के संग्रह करने के लिये है, इससे अगले प्रयोग भी जानने चाहियें।

१२२५–का०–शालितो रक्षितः क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि। रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि ॥ १ ॥

हृष्टतुष्टौ तथाक्रान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ।
कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत्स्मृताः ॥ २ ॥
३ । २ । १८८ ॥

शीलित, रक्षित, क्षान्त, आक्रुष्ट, जुष्ट, रुष्ट, रुषित, अभिव्याहृत, हृष्ट, तुष्ट, क्रान्त तथा संयत और उद्यत ये भी वर्त्तमानकाल में जानने चाहियें। 'कष्ट' इस शब्द को भविष्यत्काल में कहते हैं। और 'अमृत' शब्द का पूर्ववत् शीलित आदि के तुल्य वर्त्तमानकाल में स्मरण करना चाहिये। न म्रियन्ते = अमृताः ॥

१२२६–नपुंसके भावे क्तः ॥ ३ । ३ । ११४ ॥

भाव का प्रकाश करना हो, तो नपुंसकलिङ्ग में धातु से क्त प्रत्यय हो।
हसितम्। शयितम्। जल्पितं देवदत्तेन ॥

१२२७–सुयजोर्ङ्वनिप् ॥ ३ । २ । १०३ ॥

पुञ् और यज धातु से भूतकाल में ङ्वनिप् प्रत्यय हो ।

असावीत् असोष्ट वा = सुत्वा; सुत्वानौ; सुत्वानः । अयाक्षीत् अयष्ट वा = यज्वा; यज्वानौ; यज्वानः ॥

१२२८—जीर्यतेरतृन् ॥ ३ । २ । १०४ ॥

जृष् धातु से भूतकाल में अतृन् प्रत्यय हो ।

अजरत् अजारीद् वा = जरन्; जरन्तौ; जरन्तः । वासरूपविधि (९१३) से निष्ठासंज्ञक भी होते हैं—जीर्णः; जीर्णवान् ॥

१२२९—छन्दसि लिट् ॥ ३ । २ । १०५ ॥

वेदविषय में भूतकाल में धातु से लिट् प्रत्यय हो ।
अहं सूर्यमुभयतो ददर्श । अहं द्यावापृथिवी आततान ॥

१२३०—लिटः कानज्वा ॥ ३ । २ । १०६ ॥

पूर्वविहित (१२२९) वेदविषयक लिट् के स्थान में कानच् आदेश विकल्प करके हो ।

अग्निमचैषीत् = अग्निं चिक्यानः । सोमं सुषुवाणः—इनमें चिञ् वा पुञ् धातु से लिट् के स्थान में कानच् आदेश है । विकल्प के ग्रहण से कहीं नहीं भी होता । जैसे पूर्वोक्त उदाहरण—'अहं सूर्यमुभयतो ददर्श' इत्यादि ।

१२३१—क्वसुश्च ॥ ३ । २ । १०७ ॥

पूर्वविहित (१२२९) वेदविषयक लिट् के स्थान में क्वसु आदेश भी हो ।

१२३२—वस्वेकाजाद्घसाम् ॥ ७ । २ । ६७ ॥

द्विर्वचन किये हुए एकाच्, आकारान्त, घस्लृ इन्हीं धातुओं से परे जो वसु उसको इट् आगम हो ।

एकाच्—अशकदिति = शेकिवान्, यहाँ शक्लृ धातु से लिट् (१२२९) के स्थान में क्वसु (१२३१) से और धातुद्विर्वचन (३६) से तथा एत्वाभ्यासलोप (१२५) से होकर जो एकाच् 'शेक' हो जाता है, उससे परे वसु को इडागम हो जाता है।

आत्—पपिवान्। घस्लृ—जक्षिवान्, यहाँ (२१४) सूत्र से उपधालोप और उसको (सन्धि०—६८) से रूपातिदेश होकर द्वित्व (३६) से और षत्व (२८४) से हो जाता है। क्वसु तो लिट् के स्थान में ही होता है।

और लिड्विषय में क्रादिनियम (१४८) से वा उदात्तत्व से इट् प्राप्त ही है, फिर भी जो इट् का विधान किया, इससे यह सूत्र नियमार्थ है, अर्थात् वसु को इट् एकाच् आदि ही से परे हो, अन्य से न हो। इससे— 'बिभिद्वान्; बभूवान् इत्यादि में इट् नहीं होता॥

१२३३—भाषायां सदवसश्रुवः॥ ३। २। १०८॥

भाषा अर्थात् लोक में सद, वस, श्रु, इन धातुओं से परे भूतकाल में विकल्प करके लिट् और उसके स्थान में क्वसु आदेश नित्य हो।

षद्लृ—उपसेदिवान्। कौत्सः पाणिनिम्। विकल्पपक्ष में अपने अपने विषय में यथोक्त प्रत्यय होते हैं। जैसे—भूतसामान्यकाल से लुङ्— उपासदत्। परोक्षभूत में लिट्—उपससाद। अनद्यतनभूत में लङ्— उपासीदत्।

'वस निवासे'—अनूषिवान् (२८३) कौत्सः पाणिनिम्। अन्ववात्सीत्। अन्ववसत्। अनूवास। श्रु—उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम्। उपाश्रौषीत्। उपाशृणोत्। उपशुश्राव॥

१२३४—उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च॥ ३। २। १०९॥

उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान् ये भाषा में निपातन हैं।

उपेयिवान्—यहाँ उपपूर्वक 'इण् गतौ' धातु से लिट् विकल्प करके और उसको नित्य क्वसु द्विर्वचन (३६), अभ्यास दीर्घ (३४०), और अभ्यासदीर्घसामर्थ्य से एकादेश (सन्धि०—१०६) का प्रतिबन्ध होकर अनेकाच् 'उप+ई+इ+वसु' से इट् निपातन है।

उपेयुषा। उपेयुषे। उपेयुषः। उपेयुषि, इत्यादिकों में निपातन इट् नहीं होता, क्योंकि 'उपेयिवान्' यहां क्रादिनियम (१४८) से प्राप्त भी इट् था, पर (१२३२) सूत्र के नियम से अनेकाच् से नहीं होता था, उसी इट् का प्रादुर्भाव मात्र किया, किन्तु अपूर्व इट् विधान नहीं किया। इससे अजादिकों में जहाँ वसु को (नामि०—१५६) सूत्र से संप्रसारण होता, वहाँ इट् नहीं होता है। यहाँ उप अविवक्षित है, जैसे—समीयिवान्। ईयिवान्। लिट् के विकल्प पक्ष में पूर्ववत् लुङादि होते हैं। उपागात्। उपैत्। उपेयाय।

अनाश्वान्—यहां नञ्पूर्वक 'अश भोजने' धातु से पूर्ववत् लिट् क्वसु और इट् अभाव निपातन है। विकल्प पक्ष में—अनाश्वान्। नाशीत्। नाश्नात्। नाश।

अनूचानः कर्त्तरि ॥ महाभाष्य ३। २। १०९ ॥

अनूक्तवान् अनूचानः, यहाँ अनुपूर्वक 'वच' से कर्त्ता में पूर्ववत् लिट् उसके स्थान में कानच् आदेश निपातन है। दूसरे पक्ष में—अनूचानः। अन्ववोचत्। अन्वब्रवीत्। अनूवाच ॥

१२३५–विभाषा गमहनविदविशाम् ॥ ७। २। ६८ ॥

गम, हन, विद, विश इनसे परे वसु को इट् विकल्प करके हो।

गम्लृ—जग्मिवान् (२१४); जगन्वान् (१३७)। हन—जघ्निवान्। जघन्वान्। विद—विविदिवान्; विविद्वान्। विश—विविशिवान्; विविश्वान् 'विश' के साहचर्य्य से यहां 'विद' करके 'विद्लृ लाभे' का ग्रहण है।

जो इस ग्रन्थ में (२७७) संख्या पर सूत्र लिखा है, उससे अष्टाध्यायी के क्रम से मण्डूक-प्लुतिवत् दृश् का अनुवर्त्तन कर 'दृशिर्' से 'ददृशिवान्; ददृश्वान्' से भी समझने चाहियें ॥

१२३६—सनिंससनिवांसम् ॥ ७ । २ । ६९ ॥

वसु के इट् प्रकरण में 'सनिंससनिवांसम्' यह निपातन है ।

अग्जित्वाग्ने सनिंससनिवांसम्, यहां सनिङ्पूर्वक **'षुञ् अभिषवे'** वा **'षन संभक्तौ'** से वसु को इट् आगम तथा एत्व और अभ्यास लोप का अभाव निपातन है । यह निपातन वेद ही में आता है ॥

१२३७—लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ॥ ३ । २ । १२४ ॥

जब प्रथमान्त के साथ लट् (४) प्रत्यय का समानाधिकरण न हो, तो उसके स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय विकल्प से हों ।

ये दोनों प्रत्यय शित् हैं, इससे इनकी सार्वधातुक संज्ञा (१८) से होकर, इनके परे शप् (१९) आदि प्रत्यय भी होते हैं। जैसे—'पच्+शप्+शतृ+अम्'=पचन्तं चैत्रं पश्य, यहां लट् जिसका वाचक है, वह कर्तृसंज्ञक चैत्र शब्द द्वितीयान्त है ।

(७५४) इस संख्या पर जो सूत्र लिखा है, उससे विभाषा पद की अनुवृत्ति यहां आती है, उसको व्यवस्थित विभाषा मानकर प्रथमासमानाधिकरण में लट् के स्थान से शतृ शानच् विकल्प करके होते हैं, यह समझना चाहिये । पचन् मैत्रः पचति मैत्रो वा मैत्र किसी के लिये पका रहा है। अप्रथमासमानाधिकरण में तो नित्य होते हैं ॥

१२३८—आने मुक् ॥ ७ । २ । ८२ ॥

आन परे हो, तो अङ्ग के अकार को मुक् का आगम हो।

पचमानं चैत्रं पश्य, यहां लट् के स्थान में शानच् आदेश है। पचमानो मैत्रः; पचते मैत्रः—मैत्र अपने लिये पकाता है।

१२३९–वा०–माङ्याक्रोशे ॥ ३ । २ । १२४ ॥

माङ् उपपद हो, तो आक्रोश—निन्दा अर्थ में उक्तविषयक शतृ शानच् हों। मा पाचन्। मा पचमान—मत पका रे॥

१२४०–सम्बोधने च ॥ ३ । २ । १२५ ॥

संबोधनविषय में लट् के स्थान में शतृ शानच् प्रत्यय विकल्प करके हों। हे पचन्। हे पचमान। हे कुर्वन्। हे कुर्वाण॥

१२४१–लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥ ३ । २ । १२६ ॥

क्रिया के लक्षण—परिचय कराने, और हेतु—कारण अर्थ में वर्तमान धातु से परे लट् के स्थान में शतृ शानच् आदेश विकल्प करके हों।

लक्षण—शयाना वर्धते दूर्वा। शयाना भुञ्जते यवनाः। हेतु—धनमर्जयन् वसति। अधीयानो वसति। 'लक्षणहेतु' ग्रहण से यहां न हुए—अधीते; भुङ्क्ते। 'क्रिया' ग्रहण से द्रव्य और गुण के परिचयादि में न हुए—यः कम्पते स वटः। यः स्थिरो भवति स गुरुः॥

१२४२–ईदासः ॥ ७ । २ । ८३ ॥

आस् धातु से आन को ईकारादेश हो।

आसीनः। आस्ते। आसीनं पश्य। आसीनेन कृतम् इत्यादि।

१२४३–विदेः शतुर्वसुः ॥ ७ । १ । ३६ ॥

विद—'विद ज्ञाने' से परे शतृ को वसु आदेश विकल्प करके हो। विद्वान्; विदन्। विदुषी, (नामि०—१५६)॥

१२४४–तौ सत् ॥ ३ । २ । १२७ ॥

पूर्वोक्त शतृ और शानच् सत्संज्ञक हों ॥

१२४५–लृटः सद्वा ॥ ३ । ३ । १४ ॥

लृट् के स्थान में सत्संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों ॥

यहां भी यह विकल्प व्यवस्थित विभाषा है, इससे जैसे लट्स्थानी शतृ शानच् प्रथमासमानाधिकरण में विकल्प करके और द्वितीयादिकों में नित्य होते हैं, वैसे यहां भी हों। करिष्यन्तं करिष्यमाणं मैत्रं पश्य । करिष्यमाणः । करिष्यति । हे करिष्यन् । हे करिष्यमाण । अर्जयिष्यमाणो वसति ॥

१२४६–पूङ्यजोः शानन् ॥ ३ । २ । १२८ ॥

वर्त्तमानकाल में पूङ् और यज धातु से शानन् प्रत्यय हो ।

पूङ्—पवमानः । यज—यजमानः ॥

१२४७–ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ॥३।२।१२९॥

वर्त्तमानकाल में ताच्छील्य—स्वभाव, वयोवचन—अवस्थासम्बन्धीवचन, शक्ति—सामर्थ्य, इन अर्थों में धातु से चानश् प्रत्यय हो ।

ताच्छील्य—घृतं भुञ्जानः । वयोवचन—कवचं बिभ्राणः । शक्ति—शत्रुं निघ्नानः ॥

१२४८–इङ्धार्य्योः शत्रकृच्छ्रिणि ॥ ३ । २ । १३० ॥

कष्टसाध्य जिसका क्रियाफल न हो वह कर्त्ता वाच्य हो, तो वर्त्तमान-काल में इङ् और णिजन्त धृञ् से शतृ प्रत्यय हो ।

अधीयन् पारायणम् । धारयन्नुपनिपदम् । 'अकृच्छ्रिन्' ग्रहण से यहां न हुआ—कृच्छ्रेणाधीते । कृच्छ्रेण धारयति ॥

१२४९–द्विषोऽमित्रे ॥ ३ । २ । १३१ ॥

अमित्र—शत्रु कर्त्ता वाच्य हो, तो वर्त्तमानकाल में द्विष धातु से शतृ प्रत्यय हो ।

द्वेष्टीति द्विषन् । द्विषन्तौ । द्विषन्तः । 'अमित्र' ग्रहण से यहां न हुआ—पिता पुत्रं द्वेष्टि ॥

१२५०—सुञो यज्ञसंयोगे ॥ ३ । २ । १३२ ॥

वर्त्तमानकाल में यज्ञसंयोग—अभिषव अर्थ में वर्त्तमान षुञ् धातु से शतृ प्रत्यय हो ।

सर्वे सुन्वन्तः । यहां संयोगग्रहण प्रधान कर्त्ताओं के ग्रहण करने के लिये है, अर्थात् साधारण यज्ञ करने कराने वालों के ग्रहण में नहीं होता—याजकाः सुन्वन्ति । यज्ञ का ही संयोग ग्रहण क्यों किया—सुरां सुनोति, यहां न हो ॥

१२५१—अर्हः प्रशंसायाम् ॥ ३ । २ । १३३ ॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमानकाल में अर्ह धातु से शतृ प्रत्यय हो ।

भवान् विद्यामर्हन् । 'प्रशंसा' ग्रहण से यहां न हुआ—तस्करो वधमर्हति ॥

१२५२—आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ॥ ३ । २ । १३४ ॥

यहां से लेकर क्विप् प्रत्ययपर्यन्त जो प्रत्यय कहें, वे वर्त्तमानकाल में तच्छील—जो स्वभाव से फल को न चाह कर कर्म में प्रवृत्त हो, तद्धर्मा—जो विना भी शील मेरा धर्म है, ऐसा मान कर कर्म में प्रवृत्त हो, तत्साधुकारी—क्रिया को सुन्दरता से करे, इन कर्त्ताओं में हों ॥

१२५३—तृन ॥ ३ । २ । १३५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में धातुमात्र से तृन् प्रत्यय हो ।

तच्छील—कटं करोति तच्छील: = कटं कर्त्ता। जनापवादान् वदिता। तद्धर्मा—उन्नयन्ति तद्धर्मिण: = उन्नेतारस्तौल्वलायना: पुत्रे जाते। तत्साधुकारी—साधु कटं करोति = कटं कर्त्ता।

१२५४–वा०–तृन्विधावृत्विक्षु चानुपसर्गस्य ॥ ३। २। १३५॥

तृन् प्रत्यय के विधान करने में ऋत्विज् आदि कर्त्ता हों, तो उपसर्गरहित धातु से तृन् प्रत्यय कहना चाहिये।

जुहोतीति = होता। पुनातीति = पोता। 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—प्रतिहर्त्ता; यहां तृच् होता है।

१२५५–वा०–त्विषेर्देवतायामकारश्चोपधाया अनिट्त्वं च ॥ ३। २। १३५॥

देवता अर्थ में त्विष धातु से तृन् प्रत्यय तथा उपधा को अकार और इट् का अभाव भी कहना चाहिये।

त्विष—त्वेषितुं शीलमस्य = त्वष्टा।

१२५६–वा०–क्षदेश्च नियुक्ते ॥ ३। २। १३५॥

नियुक्त—जो कहीं अधिकार पाये हो, उस कर्त्ता में क्षद धातु से तृन् प्रत्यय कहना चाहिये।

'क्षद' सौत्र धातु है, इसको आच्छादन अर्थ में मानते हैं। 'क्षत्ता' सारथि का नाम है।

१२५७–वा०–छन्दसि तृच्च ॥ ३। २। १३५॥

वेदविषय में क्षद धातु से तृच और तृन् प्रत्यय हों।

क्षत्तृभ्य: संगृहीतृभ्य: ॥

१२५८–वा०–अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच् ॥ ३। २। १३६॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में अलंकृञ्, निराकृञ्, प्रजन, उत्पच, उत्पत, उन्मद, रुच, अपत्रप, वृतु; वृधु; सह, चर इन धातुओं से इष्णुच् प्रत्यय हो।

अलंकृञ्—अशं कर्त्तुं शीलमस्य, अलं कर्त्तुं धर्मोऽस्य, साध्वलं करोति वा=अलंकरिष्णुः। निराकृञ्—निराकरिष्णुः। प्रजन—प्रजनिष्णुः। उत्पच—उत्पचिष्णुः। उत्पत—उत्पतिष्णुः। उन्मद—उन्मदिष्णुः। रुच—रोचिष्णुः। अपत्रप—अपत्रपिष्णुः। वृतु—वर्त्तिष्णुः। वृधु—वर्धिष्णुः। षह—सहिष्णुः। चर—चरिष्णुः॥

१२५९—णेश्छन्दसि॥ ३। २। १३७॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में णिजन्त धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो।

दृषदं धारयिष्णवः। वीरुधः पारयिष्णवः॥

१२६०—भुवश्च॥ ३। २। १३८॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में भू धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो।

भविष्णुः। चकार अनुक्त के ग्रहण करने के लिये है, इससे 'टुभ्राजृ' णिजन्त से 'भ्राजयिष्णुः' भी समझ लेना चाहिये॥

१२६१—ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः॥ ३। २। १३९॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में ग्ला, जि, स्था और भू इन धातुओं से ग्स्नु प्रत्यय हो।

ग्लै—ग्लास्नुः। जि—जिष्णुः। ष्ठा—स्थास्नुः। भू—भूष्णुः।

यहाँ चर्त्व होकर 'ग्' को 'क्' हो गया है। (४५) सूत्र में 'ग्' के निर्देश से उक्त प्रयोगों में गुणादेश नहीं होता, तथा (२५५) सूत्र में 'ग्' के निर्देश से 'भूष्णुः' यहाँ इडागम भी नहीं होता है।

१२६२—वा० स्थादंशिभ्यां स्नुश्छन्दसि॥ ३। २। १३९॥

वेद में स्था और दंश धातु से स्नु प्रत्यय हो।

स्थास्नु जङ्गमं दंक्ष्णवः पशवः ॥

१२६३–त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥ ३ । २ । १४० ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में त्रसी, गृधु, ञिधृषा—और क्षिप् धातुओं से क्नु प्रत्यय हो ।

त्रसी—त्रस्नुः । गृधु—गृध्नुः । ञिधृषा—धृष्णुः । क्षिप—क्षिप्नुः ॥

१२६४–शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ॥ ३ । २ । १४१ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में शमु * आदि आठ धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो ।

'घिनुण्' यहां घकार कुत्व के लिये, उकार उगित् कार्य के लिये, णकार वृद्धि के लिये है । शमितुं शीलं धर्मो वाऽस्य, साधु शाम्यति वा = शमी । शमिनौ । शमिनः ।

यहाँ उगित् कार्य्य नुम् (नामि०—११२) नहीं होता । नुम् विधि में अष्टाध्यायी के क्रम से (नामि०—४५) सूत्र से झल् का अपकर्षण कर 'झलन्त उगित् को नुम् आगम हो' ऐसा अर्थ वहां जानेंगे । यहाँ वृद्धि (१२६) से प्राप्त है, उसी की निवृत्ति (७२७) से हो जाती है ।

तमी । दमी । श्रमी । भ्रमी । क्षमी । क्लमी । प्रमादी । आठ का ही ग्रहण क्यों किया ? असु—असिता, यहां न हो ॥

१२६५–संपृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च ॥ ३ । २ । १४२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में सम्पृचादि धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो ।

---

* 'शमु उपशमे', 'तमु काङ्क्षायाम्', 'दमु उपशमे', 'श्रमु तपसि खेदे च', 'भ्रमु अनवस्थाने', 'क्षमुष् सहने', 'क्लमु ग्लानौ', 'मदी हर्षे', ये आठ 'शमादि' धातु हैं ॥

सम्पृच——यहां रुधादि 'पृचौ संपर्के' इसका ग्रहण है। सम्पृणक्ति तच्छील: = संपर्क्की। अनुरुध——अनुरुध्यते तच्छील: = अनुरोधी। आङ्‌यम—आयच्छति तच्छील: = आयामी। आयस——आयस्यति आयसति वा तच्छील: = आयासी। परिसृ——परिसरति तच्छील: = परिसारी। संसृज——संसृज्यते तच्छील: = संसर्गी।

परिदेवि——यहाँ 'देवृ देवने' इस भ्वादिस्थ का ग्रहण है। परिदेवते तच्छील: = परिदेवी——जो विलाप करता है, उसके जैसा स्वभाव वाला पुरुष है। संज्वर——संज्वरति तच्छील: = संज्वारी। परिक्षिप——'क्षिप प्रेरण' दिवादि वा तुदादि दोनों का ग्रहण है। परिक्षिप्यति परिक्षिपति परिक्षिपते वा तच्छील: = परिक्षेपी। परिरट——परिरटति तच्छील: = परिराटी। परिवद——परिवदति तच्छील: = परिवादी। परिदह——परिदह्यति तच्छील: = परिदाही। परिमुह——परिमुह्यति तच्छील: = परिमोही।

दुष——दुष्यति तच्छील: = दोषी। द्विष——द्वेष्टि तच्छील: = द्वेषी। द्रुह——द्रुह्यति तच्छील: = द्रोही। दुह——दोग्धि तच्छील: = दोही। युज——यहाँ 'युज समाधौ' दिवादि 'युजिर् योगे' रुधादि इन दोनों का ग्रहण है। युज्यते युनक्ति युङ्क्ते वा तच्छील: = योगी। आक्रीड़——आक्रीडते तच्छील: = आक्रीडी। विविचिर्——विविनक्ति विविनक्ते वा तच्छील: = विवेकी।

त्यज——त्यागी, (९४५)। रञ्ज——रागी। भज——भागी। अतिचर——अतिचारी। अपचर——अपचारी। आमुष——आमुष्णाति तच्छील: = आमोषी। अभिआङ्‌हन——अभ्याहन्ति तच्छील: = अभ्याघाती, (३०४, ५०३) इन सूत्रों से कुत्व और तकारादेश होता है॥

१२६६—वौ कषलसकत्थस्रम्भः ॥ ३ । २ । १४३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विपूर्वक कष, लस, कत्थ, स्रम्भु इन धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो।

'कष हिंसायाम्'—विकाषी । **'लस श्लेषणक्रीडनयोः**—विलासी । **'कत्थ श्लाघायाम्'**—विकत्थी । **'स्रम्भु विश्वासे'**—विस्रम्भी ॥

१२६७—अपे च लषः ॥ ३ । २ । १४४ ॥

अप और वि पूर्व हों, तो लष धातु से घिनुण् प्रत्यय हो, तच्छीलादि अर्थों में । **''लष कान्तौ'**—अपलाषी; विलाषी ॥

१२६८—प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ॥ ३ । २ । १४५ ॥

तच्छीलादिकों में प्र पूर्वक लप, सृ, द्रु, मथ, वद, वस इन धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो ।

प्रलप—प्रलापी । प्रसृ—प्रसारी । प्रद्रु—प्रद्रावी । प्रमथे—प्रमाथी । प्रवद—प्रवादी । प्रवस—**'वस निवासे'**=प्रवासी ॥

१२६९—निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् ॥ ३ । २ । १४६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में निन्द आदि धातुओं से वुञ् प्रत्यय हो ।

णिदि—निन्दकः । हिसि—हिंसकः । **'क्लिश उपतापे'** वा **'क्लिशू विबाधने'** दोनों का ग्रहण है—क्लेशकः । खाद—खादकः । विनाश—'वि णश णिच्'—विनाशयति तच्छीलः=विनाशकः । परिक्षिप—परिक्षेपकः । परिरट—परिराटकः । परिवद—परिवादकः । 'वि आ भाष'—व्याभाषकः ।

ण्वुल् (९७६) प्रत्यय से भी उक्त प्रयोग सिद्ध है, फिर वुञ् प्रत्यय का यह प्रयोजन है कि तच्छीलादिकों में वासरूपन्याय (९१३) से तृच् आदि अन्य प्रत्यय नहीं होते हैं ॥

१२७०—देविक्रुशोश्चोपसर्गे ॥ ३ । २ । १४७ ॥

उपसर्ग पूर्व हो, तो देवि और क्रुश धातु से वुञ् प्रत्यय हो, तच्छीलादि अर्थों में ।

आदेवयति तच्छील: = आदेवक: । परिदेवक: । परिक्रोशक: । 'उपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—देवयिता । क्रोष्टा, यहां तृन् हो जाता है ।।

१२७१–चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ।। ३ । २ । १४८ ।।

तच्छीलादि कर्त्ताओं में चलन और शब्द अर्थ वाले अकर्मक धातुओं से युच् प्रत्यय हो ।

'चल कंपने'—चलन: । **'कपि संचलने'**—कम्पन: **'चुप मन्दायां गतौ'**—चोपन: । शब्दार्थ—शब्दन: । रवण: । 'अकर्मक' ग्रहण से यहां न हुआ—विद्यां पठिता; शास्त्रं वदिता, यहां तृन् हो जाता है ।।

१२७२-अनुदात्तेतश्च हलादे: ।। ३ । २ । १४९ ।।

अनुदात्त जिसका इत्संज्ञक हो ऐसा जो हलादि अकर्मक धातु, उससे भी युच् प्रत्यय हो, तच्छीलादि अर्थों में ।

वृतु—वर्त्तन: । वृधु—वर्द्धन: । 'अनुदात्तेत्' के ग्रहण से यहां न हुआ—भविता । 'हलादि' ग्रहण से यहां न हुआ—एधिता । 'अकर्मक' ग्रहण से यहां न हुआ—वस्त्रं वसिता, यहां तृन् होजाता है ।।

१२७३–जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपद: ।। ३ । २ । १५० ।।

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जु आदि धातुओं से युच् प्रत्यय हो ।

'जु' यह सौत्र धातु है, इसको गति वा वेग अर्थ में मानते हैं— जवन: । चङ्क्रम्य—'क्रमु + यङ्'—चङ्क्रम्यते तच्छील: = चङ्क्रमण: । दन्द्रम्य—'द्रमु + यङ् = दन्द्रमण: । सृ—सरण: । गृधु —गर्द्धन: । ज्वल—ज्वलन: । शुच—शोचन: । लष—लषण: । पत्लृ—पतन: । पद—पदन: ।

यद्यपि (१२७२) सूत्र से 'पद' धातु से युच् प्रत्यय हो जाता, तथापि 'पद' का ग्रहण इसलिये है कि इससे सामान्य युच् प्रत्यय को बाध के

विशेष उकञ् (१२७७) प्रत्यय न हो जाय, क्योंकि तच्छीलादिकों में (९१३) सूत्र के अनुसार परस्पर प्रत्यय नहीं होते हैं, इस अंश में यही पदग्रहण ज्ञापक है।

असरूपनिवृत्त्यर्थंतर्हि पदिग्रहणं क्रियतेः। एतज्ज्ञापयत्याचार्य्यस्ताच्छीलिकेषु ताच्छीलिका वासरूपन्यायेन न भवन्ति॥ महाभाष्य ३।२।१५०॥

१२७४—क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ॥ ३।२।१५१॥

तच्छीलादिकों में कोप और भूषण अर्थवाले धातुओं से युच् प्रत्यय हो।

कोपार्थ—क्रोधनः। रोषणः। मण्डार्थ—मण्डनः। भूषणः॥

१२७५—न यः॥ ३।२।१५२॥

यकारान्त धातु से युच् प्रत्यय न हो।

'क्नूयी शब्दे उन्दे च'—क्नूयिता। 'क्ष्मायी विधूनने'—क्ष्मायिता, इनमें (१२७२) सूत्र से युच् प्रत्यय प्राप्त है, सो नहीं होता, किन्तु तृन् (१२५३) प्रत्यय हो जाता है॥

१२७६—सूददीपदीक्षश्च॥ ३।२।१५३॥

सुद, दीप, दीक्ष इन धातुओं से युच् प्रत्यय न हो।

'षूद क्षरणे'—सूदयति तच्छीलः=सूदिता, (१२५३)। दीपी—दीपिता। दीक्ष—दीक्षिता, इन सबों में (१२७१) सूत्र से युच् प्राप्त है।

यहां 'दीप' ग्रहण क्यों किया, क्योंकि दीप् धातु से विशेष विहित र (१२९१) प्रत्यय, सामान्य युच् (१२७२) प्रत्यय को बाध के हो जाता, इसलिये दीप ग्रहण ज्ञापक है, वासरूपन्याय (९१३) से र प्रत्यय के साथ युच् का समावेश होता है। इस ज्ञापन से यह प्रयोजन है कि 'कम्रा—कन्या; कमना कन्या' इत्यादि सिद्ध हों॥

१२७७—लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ् ॥ ३ । २ । १५४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में लष, पत, पद, स्था, भू, वृष, हन, कम, गम, शॄ इन धातुओं से उकञ् प्रत्यय हो ।

लष—अपलाषुकः । पत्लृ—प्रपातुकः । पद—पादुकः । ष्ठा—उपस्थायुकः । भू—भावुकः । वृष—प्रवर्षुकः पर्जन्यः । हन—घातुकः । कमु—कामुकः । गम्लृ—आगामुकः । 'शॄ हिंसायाम्'—शृणाति तच्छीलः= शारुकः । किंशारुकं तीक्ष्णम् ॥

१२७८—जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ॥ ३ । २ । १५५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ् इन धातुओं से षाकन् प्रत्यय हो ।

जल्प—जल्पाकः । भिक्ष—भिक्षाकः । कुट्ट—कुट्टाकः । 'लुटि* स्तेये'—लुण्टाकः । वृङ्—वराकः । स्त्रीलिङ्ग में—जल्पाकी, (स्त्रै०—७०) से ङीष् हो जाता है ॥

१२७९—प्रजोरिनिः ॥ ३ । २ । १५६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में प्रपूर्वक जु धातु से इनि प्रत्यय हो ।

प्रजवी । प्रजविनौ । प्रजविनः ॥

१२८०—जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥ ३ । २ । १५७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जि, दृ, क्षि, विश्रि, इण्, टुवमु, अव्यथ, अभ्यम, परिभू और प्रसू इन धातुओं से इनि प्रत्यय हो ।

---

* इस धातु को कोई आचार्य 'लुठि' कोई 'लुडि' भी पढ़ते हैं ॥

जि—जेतुं शीलमस्य = जयी। दृङ्—दरी। 'क्षि क्षये, क्षि निवासगत्योः'—क्षयी। विश्रिञ्—विश्रयी। इण्—अत्ययी। टुवमु—वमी। नञ्+व्यथ—अव्यथी। अभि+अमि—अभ्यमी। परि+भू—परिभवी। प्रसू—प्रसवी॥

१२८१—स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्॥ ३।२।१५८॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्पृह आदि धातुओं से आलुच् प्रत्यय हो।

स्पृह ईप्सायाम्'—स्पृहयालुः। 'ग्रह ग्रहणे'—ग्रहयालुः। 'पत गतौ'—पतयालुः, ये चुरादि अदन्तों में हैं। दय—दयालुः। नि+'द्रा कुत्सायाम्'—निद्रालुः। तद्+द्रा—तन्द्रालुः, यहां तद् के द् को नकारादेश निपातन है। श्रत्+डुधाञ्—श्रद्धालुः।

१२८२—वा०—आलुचि शीङ् ग्रहणम्॥ ३।२।१५८॥

आलुच् प्रत्यय के विषय में शीङ् का भी ग्रहण करना चाहिये। शयितुं शीलमस्य = शयालुः॥

१२८३—दाधेट्सिशदसदो रुः॥ ३।२।१५९॥

दा, धेट्, सि, शद और सद धातुओं से रु प्रत्यय हो, तच्छीलादि अर्थों में।

दातुं शीलमस्य = दारुः। धातुं शीलमस्य = धारुः। सीव्यति तच्छीलः = सेरुः। शीयते तच्छीलः = शद्रुः। सीदति तच्छीलः = सद्रुः॥

१२८४—सृघस्यदः क्मरच्॥ ३।२।१६०॥

सृ, घस, अद् इन धातुओं से क्मरच् प्रत्यय हो, तच्छीलादि अर्थों में। सृ—सृमरः। घस्लृ—घस्मरः। अद—अद्मरः॥

१२८५—भञ्जभासमिदो घुरच्॥ ३।२।१६१॥

भञ्ज, भास और मिद इन धातुओं से घुरच् प्रत्यय हो, तच्छीलादि अर्थों में।

भञ्जो—भङ्गुरः, (९४५) भासृ—भासुरः। ञिमिदा—मेदुरः॥

१२८६—विदिभिदिच्छिदेः कुरच्॥ ३। २। १६२।

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विद आदि धातुओं से कुरच् प्रत्यय हो।

'विद ज्ञाने'—वेत्ति तच्छीलः=विदुरः। भिदिर्—भिदुरः। छिदिर्—छिदुरः॥

१२८७—इण्नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप्॥ ३। २। १६३॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में इण्, नश, जि, सर्त्ति इन धातुओं से क्वरप् प्रत्यय हो।

इण्—इत्वरः। णश—नश्वरः। जि—जित्वरः। सृ—सृत्वरः, (सं०—२७३) से तुक्। स्त्रीलिङ्ग में—इत्वरी, (स्त्रैण०—३५), जित्वरी इत्यादि॥

१२८८—गत्वरश्च॥ ३। २। १६४॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में गत्वर यह निपातन है।

गन्तुं शीलमस्य=गत्वरः। स्त्री—गत्वरी, यहां 'गम्लृ' से क्वरप् और अनुनासिकलोक निपातन है॥

१२८९—जागरूकः॥ ३। २। १६५॥

तच्छीलादिकों में जागृ धातु से ऊक प्रत्यय हो।

'जागृ निद्राक्षये'—जागरूकः॥

१२९०—यजजपदशां यङः॥ ३। २। १६६॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यज, जप, दंश इनके यङ् से परे ऊक प्रत्यय हो।

यायज्य—यायजितुं शीलमस्य = यायजूकः। जञ्जप्य—जञ्जपूकः। दंदश्य—दंदशूकः॥

१२६१–नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ॥३।२।१६७॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में नम् आदि धातुओं से परे र प्रत्यय हो।

णम्—नम्रं काष्ठम्। कपि—कंप्रा शाखा। ष्मिङ्—स्मेरं मुखम्। अजस = 'जसु मोक्षणे' नञ्पूर्वक है—अजस्रं निरन्तरम्। कमु—कम्रा कन्या। हिंसि—हिंस्रं रक्षः। दीपी—दीपितुं शीलमस्य = दीप्तः वह्निः॥

१२६२–सनाशंसभिक्ष उः ॥ ३। २। १६८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में सन्नन्त, आशंस, भिक्ष इन धातुओं से उ प्रत्यय हो।

सन्नन्त—पिपठिषितुं शीलमस्य = पिपठिषुः। चिकीर्षुः। आशंस—आङः शसि इच्छायाम्' भ्वादिः—आशंसते तच्छीलः = आशंसुः। भिक्षुः॥

१२६३–विन्दुरिच्छुः ॥ ३ ।२ । १६९ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विन्दु और इच्छु ये निपातन हों।

वेत्ति तच्छीलो = विन्दुः, यहां 'विद ज्ञाने' धातु से उ प्रत्यय और नुमागम निपातन है। इच्छति तच्छीलः = इच्छुः, यहां 'इषु इच्छायाम्' से उ प्रत्यय और छकारादेश निपातन है॥

१२६४–आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥ ३ ।२। १७१॥

वेदविषय में आकारान्त, ऋवर्णान्त, गम, हन और जन इन धातुओं से कि और किन् प्रत्यय हों, और वे लिट् प्रत्यय के तुल्य हों॥

आ—'पा पाने'—पपौ तच्छीलः = पपिः सोमम्। डुदाञ्—ददिर्गाः, इनमें लिड्वद्भाव मान कर (३६) सूत्र से धातुद्विर्वचन हो जाता है। ऋ—'भृ'—बभ्रिर्वज्रम्। तृ—मित्रावरुणौ ततुरिः। 'गॄ शब्दे'– दूरे ह्यध्वा

जगुरिः । गम्लृ—जग्मियुर्वा । हन—जघ्निर्वृत्रम् । जन—जज्ञिर्बीजम्, इनमें उपधालोप (२१४) सूत्र से होता है ।

यद्यपि (१३७) से कित् संज्ञा सिद्ध भी है, तथापि लिट् के कित्व विषय में भी जो गुणविधान (२५८) किया है, उसके प्रतिषेध के लिये 'कि; किन्' इन प्रत्ययों में ककार पढ़ा है ।

(आदृ०) यहां आ, ऋ का अलग अलग सुख से उच्चारण होने के लिये मध्य में 'द्' पड़ा, किन्तु तपरकरण नहीं है ।

१२९५–वा०–उत्सर्गश्छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात् ॥ ३ । २ । १७१ ॥

वेदविषय में सद आदि धातुओं से कि, किन् प्रत्ययों का दर्शन है, इससे ये उत्सर्गमात्र हैं ऐसा कहना चाहिये । अर्थात् आकारान्तों से अन्यत्र भी होते हैं ।

'सदिमनिरमिनमिविचीनाम्' ॥ महाभाष्य ३ । २ । १७१ ॥

षद्लृ—सेदिः । मन—मेनिः । रम—रेमिः । णम—नेमिश्चक्रमिवाभवन् । विचिर्—विविचि रत्नधातमम् ।

१२९६–वा०–भाषायां धाञ्कृसृजनिनमिभ्यः ॥ ३ । २ । १७१

भाषा में धाञ्, कृ, सृ, जन, नम इन धातुओं से कि, किन् प्रत्यय कहना चाहिये, तच्छीलादि अर्थों में ।

डुधाञ्—दधिः । कृ—चक्रिः । सृ—सस्रिः । जन—जज्ञिः । णम—नेमिः ।

१२९७–वा०–सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ ॥ ३ । २ । १७१ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त सहादि धातुओं से कि, किन् प्रत्ययों को कहना चाहिये ।

'सह+यङ्'—वृषा सहमानं सासहिः । 'वह+यङ्'—वावहिः । 'चल+यङ्'—चाचलिः । 'पत्लृ+यङ्'—पापतिः, यहां नीक् (५४३) का अभाव निपातन है ॥

१२९८—स्वपितृषोर्नजिङ् ॥ ३ । २ । १७२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्वप् और तृष् धातु से नजिङ् प्रत्यय हो। ञिष्वप—स्वप्नक् । ञितृषा—तृष्णक् ॥

१२९९—शॄवन्द्योरारुः ॥ ३ । २ । १७३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में शॄ और वदि धातु से आरु प्रत्यय हो। 'शॄ हिंसायाम्'—शरारुः । 'वदि अभिवादनस्तुत्योः'—वन्दारुः ॥

१३००—भियः क्रुक्लुकनौ ॥ ३ । २ । १७४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में भी धातु से क्रु और क्लुकन् प्रत्यय हो। 'ञिभी भये'—बिभेति तच्छीलो=भीरुः । भीलुकः ।

१३०१—वा०—भियः क्रुकन्नपि वक्तव्यः ॥ ३ । २ । १७४ ॥

भी धातु से क्रुकन् प्रत्यय भी कहना चाहिये। भीरुकः ॥

१३०२—स्थेशभासपिसकसो वरच् ॥ ३ । २ । १७५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्था आदि धातुओं से वरच् प्रत्यय हो॥

'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'—स्थातुं शीलमस्य=स्थावरः । 'ईश ऐश्वर्ये'—ईशितुं शीलमस्य=ईश्वरः । 'भासृ दीप्तौ'—भास्वरः । पिसृ; पेसृ गतौ'—पेस्वरः । 'कस गतौ'—विकस्वरः ॥

१३०३—यश्च यङः ॥ ३ । २ । १७६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त या धातु से वरच् प्रत्यय हो।

'याया+य+वर+सु' यहां पर यकार के अकार का लोप(१७२) से किये पीछे उसको स्थानिवद्भाव (सन्धि०--६३) जो प्राप्त है, उसका यलोपविधि के प्रति प्रतिषेध (सन्धि०—६४) से होकर यलोप हो जाता हैं। यायावरः ॥

१३०४–भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ॥ ३।२।१७७॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में भ्राज आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो।

टुभ्राजृ--विभ्राजते तच्छीलः=विभ्राट्; विभ्राड्। विभ्राजौ। विभ्राजः। भासृ—भाः। भासौ। भासः। धुर्वि—धूः। धुरौ। धुरः(५६०) द्युत्--विद्युत्। 'ऊर्ज बलप्राणनयोः'—ऊर्क्, ऊर्ग्। पॄ—पूः। पुरौ, यहां (३८०) से उत्। जु—यह सौत्र धातु गति और वेग में वर्त्तमान है—जूः। जुवौ, यहां उत्तरसूत्र (१३०६) में जो वार्त्तिक पढ़ा है, उससे दीर्घादेश जानना चाहिये। ग्रावस्तु–'ग्राव+ष्टुञ्'-- * ग्रावस्तुत्। ग्रावस्तुतौ। ग्रावस्तुतः ॥

१३०५–अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ ३।२।१७८॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में और धातुओं से भी क्विप् प्रत्यय देखा जाता है।

पचति तच्छीलः=पक्। भिनत्ति—भित्। छिनत्ति--छित्।

यहां 'दृश्यते' यह दृशि ग्रहण विशेष विधान करने के लिए है, अर्थात् उक्त क्विप् के परे कहीं दीर्घ, कहीं द्विर्वचन, कहीं संप्रसारण, कहीं संप्रसारण का अभाव आदि कार्य्य होते हैं। जैसे--

---

* यहां ग्राव शब्द का स्तु धातु के साथ निपातन से समास कर पीछे क्विप् प्रत्यय होता है ॥

१३०६–वा०–वचिप्रच्छायतस्तुकटजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥ ३ । २ । १७८ ॥

वच, प्रच्छ, आयतस्तु, कटप्रु, जु, श्रिञ् इन धातुओं से क्विप् प्रत्यय, दीर्घ तथा संप्रसारण का अभाव कहना चाहिये ।

वक्तीति—वाक् । पृच्छति—प्राट् । आयतं स्तौति—आयतस्तूः । कटं प्रवते—कटप्रूः । जवते—जूः, यहां 'जु' का ग्रहण केवल दीर्घ के लिये है । हरिं श्रयति—श्रीः लक्ष्मीः ।

१३०७–वा०–द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च ॥ ३ । २ । १७८ ॥

द्युत्, गम्लृ, हु इनसे क्विप् और इनको द्वित्वादेश हो ।

द्युत्—विद्युत्, यहां 'द्युत्' धातु को क्विप् के परे द्विर्वचन और उक्त दृशि ग्रहण से पूर्व की अभ्यास संज्ञा (३७) से तथा उस अभ्यास को संप्रसारण (२१८) से हो जाता है । गम्लृ—जगत्, (११०७) से अनुनासिक लोप होता है ।

१३०८–वा०–जुहोतेर्दीर्घश्च ॥ ३ । २ । १७८ ॥

हु धातु को दीर्घ भी होना चाहिये ।

जुहूः ।

जुहोतेर्ह्वयतेर्वा ॥ महाभाष्य ३ । २ । १७८ ॥

'हु दानादानयोः' अथवा ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च' इनसे 'जुहूः' सिद्ध होता है ।

१३०९–वा०–दृणातेर्ह्रस्वश्च द्वे च क्विप्चेति वक्तव्यम् ॥ ३ । २ । १७८ ॥

दृणाति—'दृ विदारणे' से क्विप् प्रत्यय, धातु को द्विर्वचन और ह्रस्वादेश भी कहना चाहिये ।

दद्रृत् ।

दृणतेर्दीर्यतेर्वा ॥ महाभाष्य ३ । २ । १७८ ॥

'दृ' से कर्त्ता वा कर्म में 'ददृत्' होता है। दृणाति वा दीर्य्यते या सा = ददृत्।

१३१०–वा०–ध्यायतेः सम्प्रसारणं च ॥ ३ । २ १७८ ॥

'ध्यै चिन्तायाम्' धातु से क्विप् और उसको संप्रसारण हो।

धीः ।

ध्यायतेर्दधातेर्वा ॥ महाभाष्य ३ । २ । १७८ ॥

'धीः' यह 'ध्यै' से वा 'डुधाञ्' से सिद्ध होता है।

१३११–भुवः संज्ञान्तरयोः ॥ ३ । २ । १७९ ॥

संज्ञा वा अन्तर गम्यमान हो, तो भू धातु से क्विप् प्रत्यय हो।

संज्ञा—मित्रभूः, यह संज्ञा है। अन्तर—प्रतिभूः, धन के लेने देने वालों के बीच जो विश्वास कराने को स्थिर हो जाता है वह 'प्रतिभू' कहाता है॥

१३१२–विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् ॥ ३ । २ । १८० ॥

संज्ञा न गम्यमान हो, तो वि, प्र, सम् इन उपसर्गों से उत्तर जो भू धातु उससे डु प्रत्यय हो।

विभुः—जो सर्वगत है। प्रभुः स्वामी। संभुः—जिसका संभव है। 'असंज्ञा' ग्रहण से जहां 'विभूः' किसी का नाम हो, वहां न हो।

१३१३–वा०–डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानं धातुविधितुक्प्रतिषेधार्थम् ॥ ३ । २ । १८० ॥

डु प्रत्यय के प्रकरण में धातुविधि—धातुग्रहण से जो विधान किया जाय, और तुक् के प्रतिषेध के लिए मितद्र्वादि शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये।

मितं द्रवति प्राप्नोति = मितद्रुः । मितद्रू । मितद्रवः, यहां धातु को विहित उवङ् [नामि०—९२] नहीं होता, तथा 'मितद्रु' यहां (सं०—२७३) से तुक् नहीं होता । शं कल्याणं भावयति = शम्भूः, यहाँ अन्तर्भावित ण्यर्थ माना जाता है ।

१३१४– धः कर्मणि ष्ट्रन् ।। ३ । २ । १८१ ।।

कर्मकारक में धेट् और डुधाञ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो ।

धयन्ति बालाः स्तन्यार्थिनो यां सा = धात्री, [स्त्रैण०-७०] उपमाता । दधति वा भैषज्यार्थं यां सा = धात्री (आमलकी) आंवले का नाम है ।।

१३१५–दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ।। ३ । २ । १८२ ।।

करण कारक में दाप् आदि धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय हो ।

'दाप् लवने—दात्यनेन = दात्रम् । **'णीञ् प्रापणे'** नयत्यनेन व्यवहारानिति = नेत्रम् । **'शसु हिंसायाम्'**—शस्त्रम् । **'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च'**—योत्रम्। **'युजिर् योगे'**—योक्त्रम् । **'ष्टुञ् स्तुतौ'**—स्तोत्रम् । **'तुद व्यथने'**—तोत्रम् । **'षिञ् बन्धने**—सेत्रम् । षिच् क्षरणे'—सेक्त्रम् ।

'मिह सेचने'—ड म् । **'पत्लृ गतौ'**—पतति गच्छत्यनेनेति = पत्रं वाहनम् । **''दंश दंशने'**—दंष्ट्रा, (स्त्रै०—२) । अनुनासिक लोप के साथ जो दंश का निर्देश है, सो यह ज्ञापक के लिये है, अर्थात् नलोप जिनके परे (३०३) कहा है, उनसे अन्यत्र भी होता है । इससे 'दशनम्' यहाँ ल्युट् के परे भी होता है । **'णह बन्धने'**—नद्ध्रम् ।।

१३१६–हलसूकरयोः पुवः ।। ३ । २ । १८३ ।।

करण कारक में पूङ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो, जो वह करण हल और सूकर का अवयव हो ।

पवते पुनाति वाऽनेन तत् = पोत्रं हलमुखं सूकरमुखं वा ।।

१३१७–अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ।। ३ । २ । १८४ ।।

करण कारक में ऋ आदि धातुओं से इत्र प्रत्यय हो ।

'ऋ गतौ'—अरित्रम् । 'लूञ् छेदने'—लवित्रम् । 'धू विधूनने'—धवित्रम् । 'षू प्रेरणे'—सवित्रम् । 'खनु अवदारणे'—खनित्रम् । 'षह मर्षणे'—सहित्रम् । 'चर गतिभक्षणयोः'—चरित्रम् ।।

१३१८–पुवः संज्ञायाम् ।। ३ । २ । १८५ ।।

करण कारक में पूङ् वा पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय हो, जो समुदाय से संज्ञा गम्यमान हो तो ।

पवित्रम्—कुश वा ग्रन्थियुक्त कुश 'पैंती' आदि को कहते हैं ।।

१३१९–कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः ।। ३ । २ । १८६ ।।

ऋषि और देवता वाच्य संज्ञा हो, तो करण वा कर्त्ता कारक में पूङ् वा पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय हो ।

यहाँ यथासंख्य ऋषि, देवता से संबन्ध है, अर्थात् ऋषि वाच्य हो तो करण में देवता वाच्य हो तो कर्त्ता में 'इत्र' होता है ।।

पूयतेऽनेनेति=पवित्रोऽयमृषिर्वेदः । अग्निः पवित्रं स मा पुनातु ।।

१३२०–उणादयो बहुलम् ।। ३ । ३ । १ ।।

वर्त्तमानकाल और संज्ञाविषय में धातु से उण् आदि प्रत्यय बहुल करके हों ।

डुकृञ्—करोतीति=कारुः—शिल्पिनः संज्ञेयम् । वा—वातीति=वायुः पवनः, इत्यादि प्रकृति प्रत्यय के अनुसार उणादिगणस्थ उदाहरण जानने चाहिये ।

'बहुल' ग्रहण से कहे हुए कारक आदि के नियम से अन्यत्र भी शिष्ट प्रयोग के अनुसार प्रकृति प्रत्यय की कल्पना से उणादिगण के प्रयोगों से और भी प्रयोग बनते हैं । इस विषय में 'महाभाष्यकार' ने कहा है कि:—

का०—बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥१॥
नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
यन्न विशेषपदार्थसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥२॥
संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनुबन्ध----———मेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥३॥

उक्त सूत्र में प्रकृतियों की तनुदृष्टि—तनुता देखने से, बाहुलक[1]—बहुल शब्द से बहुत अर्थों का ग्रहण तथा उण् आदि प्रत्ययों का भी प्रायः[2]—बहुल करके, समुच्चय—समूह किया है, अर्थात् उणादिगण में वे प्रत्यय भी निःशेष नहीं पढ़े हैं, और कार्य्यों की सशेषविधि[3] —उणादिगण के सूत्रों में असमस्त कार्य्य कहे किन्तु निःशेष नहीं कहे, देखने से वह बहुल शब्द पढ़ा है, तथापि वैदिक और रूढ़िभव—संज्ञावाचक शब्द अच्छे प्रकार सिद्ध करने ही हैं, इससे पाणिनि आचार्य्य ने प्रकृतियों की तनुता देख कर बहुल शब्द पढ़ा है ॥१॥

---

१ बहुलग्रहण से यह समझना चाहिये कि जो उणादिगण में अपठित प्रकृति हैं, उनसे भी उणादि प्रत्यय होते हैं। जैसे—'हृप' धातु से उलच् प्रत्यय कहा है, वह 'शकि शङ्कायाम्' से भी होता है—'शङ्कुला' ॥

२ बहुलवचन से यह समझना चाहिये कि जो उणादिगण में प्रत्यय नहीं कहे हैं, वे भी होते हैं। जैसे—महाभाष्यकार ने (ऋलृक्) सूत्र के भाष्य में ऋ धातु से फिड, फिड्ड प्रत्यय मानकर 'ऋफिडः; ऋफिड्डः' प्रयोग दिखलाये हैं ॥

३ उणादिगण में जो अनुक्त कार्य हैं, वे भी बहुल वचन से होते हैं। जैसे—'षण्ढः' यहाँ 'षप' धातु के मूर्द्धन्य ष को सत्वादेश का अभाव वा सत्वादेश करके मूर्द्धन्यादेश हो जाता है ॥

इस विषय में और आचार्य्यों का ऐसा सिद्धान्त है कि वे प्रकृत्यादि विभाग से शब्दों का साधन मानते हैं, किन्तु रूढ़िप्रकार से नहीं मानते। जैसे—(नाम च०) निरुक्तकार निरुक्तग्रन्थ में शब्दों को धातुज अर्थात् प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से कहते और व्याकरणविषय में शकट ऋषि के तोक—अपत्य=शाकटायन वैयाकरण शब्दों को धातुज कहते हैं, इससे जो विशेष * प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से न जाना जाय, वह प्रकृति और प्रत्यय से कल्पनीय है, अर्थात् उसकी सिद्धि के लिये प्रकृति को देखकर उसके कार्य्य के अनुसार प्रत्यय और प्रत्यय को देख कर प्रकृति की कल्पना करनी चाहिये ॥ २ ॥

यह कल्पना सर्वत्र नहीं होती किन्तु—(संज्ञासु०) संज्ञा आदि शब्दों में धातुरूप और उन धातुओं से परे प्रत्यय तथा वृद्धि, गुण, उदात्तस्वर आदि कार्य्य के अनुसार प्रत्ययों के अनुबन्ध जानना चाहिये। उणादिकों में यही शिक्षा करने योग्य है ॥ ३ ॥

१३२१—भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ ३ । ३ । २ ॥

भूतकाल में भी उण् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं।

जैसे—वृत्तमिदं=वर्त्म। चरितमिति=चर्म। जो वर्त्त गया वह 'वर्त्म' और जो चरित हो गया वह 'चर्म' कहाता है। यहाँ वृतु और चर धातु से भूतकाल में उणादिगणस्थ मनिन् प्रत्यय होता है ॥

१३२२—भविष्यति गम्यादयः ॥ ३ । ३ । ३ ॥

भविष्यत्काल में 'गमिन्' आदि उणादिप्रत्ययान्त शब्द देखे जाते हैं।

ग्रामं गमी, यहाँ गम्लृ से उणादिस्थ इनि प्रत्यय भविष्यत्काल में होता है।

---

* विशिष्यते यः स विशेषः, पदमर्थः प्रयोजनं यस्य व्युत्पाद्यत्वेन स पदार्थः, विशेषश्चासौ पदार्थो विशेषपदार्थस्तस्माद् यन्न समुत्थं विशिष्ट-प्रकृतिप्रत्ययोत्पादनेन न व्युत्पादितमिति यावत् ॥

१३२३–वा०–भविष्यतीत्यनद्यतन उपसंख्यानम् ॥ ३ । ३ । ३ ॥

भविष्यत्काल में गम्यादिकों के विधान में अनद्यतन का उपसंख्यान करना चाहिये ।

श्वो ग्रामं गमी—कल के दिन ग्राम को जाने वाला है ॥

१३२४–दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥ ३ । ४ । ७३ ॥

दाश और गोघ्न ये उणादिप्रत्ययान्त शब्द संप्रदान कारक में निपातन हैं ।

दाशन्ति यच्छन्ति यस्मै स = दाशः । गौर्हन्यते यस्मै स = गोघ्नः ॥

१३२५–भीमादयोऽपादाने ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीम आदि उणादिप्रत्ययान्त शब्द अपादान कारक में जानने चाहियें ।

बिभेत्यस्मादिति = भीमः । भीष्मः, इत्यादि ॥

१३२६–ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ ३ । ४ । ७५ ॥

संप्रदान अपादान से अन्यत्र अर्थात् और कारकों में उण् आदि प्रत्यय हों ।

जि—जयतीति = जायुः इत्यादि ॥

१३२७–तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ॥ ३ । ३ । १० ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद हो, तो भविष्यत्काल में धातु से तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हों ।

'भुज्+तुमुन्+सु गच्छति', यहाँ तुमुन् के उ, न् इनकी इत्संज्ञा और लोप होकर—

१३२८—कृन्मेजन्तः ॥ १ । १ । ३८ ॥

मान्त और एजन्त जो कृत्प्रत्यय तदन्त जो शब्द, सो अव्ययसंज्ञक हों। इससे अव्यय संज्ञा हो जाती है। भोक्तुं गच्छति। पठितुं गच्छति। सभां द्रष्टुं गच्छति।

यहां (१३२७) सूत्र में जो ण्वुल् प्रत्यय का ग्रहण किया है, इससे जानना चाहिये कि तुमुन् के विषय में वासरूपविधि से तृजादिक नहीं होते हैं, क्योंकि जो तृजादिक होते तो वासरूपविधि से ण्वुल् (९७६) हो ही जाता॥

१३२९—समानकर्त्तृकेषु तुमुन् ॥ ३ । ३ । १५८ ॥

इच्छा अर्थवाले समानकर्त्तृक धातु समीपवर्ती हों, तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो।

इच्छति भोक्तुम्। कामयते भोक्तुम्। भोक्तुं वाञ्छति। 'समानकर्तृक' ग्रहण से यहाँ न हुआ—पठन्तं देवदत्तमिच्छति विष्णुमित्रः। अक्रियार्थोपपद के लिए यह सूत्र है—इच्छत्येवं भोक्तुम्, इससे यहां भी तुमुन् होता है॥

१३३०—शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ॥ ३ । ४ । ६५ ॥

शक आदि धातु उपपद हों, तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो।

शक्लृ—शक्नोति भोक्तुम्। ञिधृषा—धृष्णोति भोक्तुम्। ज्ञा—जानाति भोक्तुम्। ग्लै—ग्लायति भोक्तुम्। घट—घटते भोक्तुम्। रभ—भोक्तुमारभते। लभ—लभते भोक्तुम्। क्रम—भोक्तुं क्रमते। षह—भोक्तुं सहते। अर्ह—भोक्तुमर्हति।

अस्त्यर्थ—अस, भू, विद—भोक्तुमस्ति। भोक्तुम् भवति। विद्यते भोक्तुम्। यह भी अक्रियार्थोपपद के लिये सूत्र है। शक्यमेवं भोक्तुम्, यहाँ भी तुमुन् होता है॥

१३३१—पर्य्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ।। ३ । ४ । ६६ ।।

परिपूर्णता को कहनेवाले अलमर्थ—सामर्थ्यवचन उपपद हों, तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो ।

पर्याप्तो भोक्तुम् । अलम्भोक्तुम् । भोक्तुम् पारयति । भोक्तुं कुशलः। 'पर्याप्तिवचन' ग्रहण से यहाँ न हुआ—अलं कृत्वा । 'अलमर्थ' ग्रहण से यहाँ न हुआ—पर्याप्तम्भुङ्क्ते, यहाँ भोजन करनेवाले की प्रभुता गम्यमान है ।।

१३३२—कालसमयवेलासु तुमुन् ।। ३ । ३ । १६७ ।।

काल, समय और वेला ये शब्द उपपद हों, तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो ।

कालो भोक्तुम् । भोक्तुं वेला । भोक्तुं समयः ।

यहां अष्टाध्यायी के क्रम से (७९१) सूत्र में से प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल इन अर्थों का भी सम्बन्धानुवर्त्तन है, अर्थात् प्रैषादि अर्थों के ही विषय में यह तुमुन् होता है । इससे यहाँ न हुआ—कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ।।

१३३३—भाववचनाश्च ।। ३ । ३ । ११ ।।

क्रियार्थाक्रिया उपपद हो, तो धातु से भविष्यत्काल में भाववचन (भावाधिकार १३३५ विहित) घञ् आदि प्रत्यय हों ।

यागाय याति । पाठाय गच्छति । पुष्टये प्रयतते—यज्ञ करने को वा पढ़ने को जाता और पुष्टि के लिये उत्तम यत्न करता है । यहाँ कर्म में चतुर्थी (कारकीय—६१) से होती है । 'वचन' ग्रहण इसलिये है कि जिस जिस प्रकृति और नियम से जो जो प्रत्यय भावाधिकार में कहा है, वह वह इस विषय में उन्हीं नियमों से हो ।

यद्यपि सामान्य विहित भाववचन क्रियार्थाक्रिया के विषय में हो जाते, परन्तु यहाँ वासरूपविधि के न होने से क्रियार्थोपपदविषयक तुमुन् के बाधने में नहीं होते हैं । इसलिये यह (१३३३) सूत्र कहा ।।

१३३४–अण् कर्मणि च ॥ ३ । ३ । १२ ॥

क्रियार्थाक्रिया और कर्म उपपद हो, तो धातु से भविष्यत्काल में अण् प्रत्यय हो ।

यहां 'चकार' कर्म सन्नियोग के लिये है, अर्थात् जहां कर्म और क्रियार्थाक्रिया साथ रहें, वहां यह अण् हो ।

काण्डानि लवितुं गच्छति = काण्डलावो गच्छति । अश्वं दातुं व्रजति = अश्वदायो व्रजति । परत्व से यह कादिकों (१००३) को बाधता है ॥

१३३५–पदरुजविशस्पृशो घञ् ॥ ३ । ३ । १६ ॥

पद आदि धातुओं से घञ् प्रत्यय हो ।

यहाँ से तीनों काल में प्रत्यय होते हैं, किन्तु भविष्यत्काल की निवृत्ति है । पद्यतेऽसौ = पादः । रूजत्यसौ = रोगः । विशत्यसौ = वेशः । इसी प्रकार 'पत्स्यते अपादि वा = पादः' इत्यादि जानना चाहिये ।

१३३६–वा०–स्पृश उपतापे ॥ ३ । ३ । १६ ॥

उक्त घञ् प्रत्यय स्पृश धातु से उपताप अर्थ में हो, यह कहना चाहिये ।

स्पृशतीति = स्पर्शः उपतापः—कष्ट को कहते हैं । 'उपताप' ग्रहण से यहां न हुआ—कम्बलस्य स्पर्शः = कम्बलस्पर्शः, यहाँ पचाद्यच् (९७७) हो जाता है ॥

१३३७–सृ स्थिरे ॥ ३ । ३ । १७ ॥

सृ धातु से स्थिर कर्त्ता में घञ् प्रत्यय हो ।

स्थिर शब्द से चिरकालस्थायी का ग्रहण है । यश्चिरं तिष्ठन् कालान्तरं सरति प्राप्नोति स = सारः—जो चिरकाल ठहरा हुआ कालान्तर को प्राप्त होता है, वह 'सार' कहाता है । 'स्थिर' ग्रहण से यहाँ न हुआ—सर्त्ता; सारकः (९७६) ।

१३३८—वा०—व्याधिमत्स्यबलेष्विति वक्तव्यम् ।। ३।३।१७।।

व्याधि, मत्स्य और बल अर्थ में सृ धातु से घञ् प्रत्यय कहना चाहिये।

अत्यन्तं सरति = अतिसारो व्याधिः । विविधं सरति; इतस्ततो जलेऽटति = विसारो मत्स्यः । शाल इव सरति = शालसारः । खदिरसारः बलम् ।।

१३३९—भावे ।। ३ । ३ । १८ ।।

भाव वाच्य हो, तो धातु से घञ् प्रत्यय हो ।

यहाँ यह जानना चाहिये कि क्रियासामान्यवाची भू धातु है, इससे अर्थ निर्देश किया हुआ सार्वधातुविषयक होता है । भाव अर्थात् धात्वर्थ सो भी धातु से ही कहा जायेगा, इसलिये धातु के सिद्ध प्रयोग से जो धात्वर्थ निष्पन्न होता है, वह वाच्य हो तो घञ् होता है । जैसे—कारः । हारः, इत्यादि ।

१३४०—स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ।। ६ । १ । ४७ ।।

घञ् प्रत्यय परे हो, तो स्फुर, स्फुल इन धातुओं के एच् के स्थान में आकारादेश हो ।

स्फारः । स्फालः ।।

१३४१—इकः काशे ।। ६ । ३ । १२३ ।।

काश उत्तरपद परे हो, तो इगन्त उपसर्ग को दीर्घादेश हो ।

नीकाशः । अनूकाशः, यहाँ 'काशृ दीप्तौ' धातु से घञ् हुआ है । 'इगन्त' ग्रहण से यहाँ दीर्घ नहीं होता—प्रकाशः ।।

१३४२—स्यदो जवे ।। ६ । ४ । ४८ ।।

घञ् प्रत्यय परे हो और जव—वेग अभिधेय हो, तो 'स्यद' यह निपातन है ।

गोस्पदः, यहाँ 'स्यन्दू प्रस्रवणे' धातु से घञ् प्रत्यय, नलोप और वृद्धि (१२६) का अभाव निपातन है। 'जव' ग्रहण से—घृतस्यन्दः, यहाँ नलोप नहीं होता ॥

१३४३–अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ॥ ६ । ४ । २४ ॥

नलोपविषय में अवोद, एध, ओद्म, प्रश्रथ, हिमश्रथ ये निपातन हैं।

अवोदः—यहाँ अवपूर्वक 'उन्दी क्लेदने' धातु से घञ् प्रत्यय के परे नलोप निपातन है। एधः—यहाँ 'ञिइन्धी दीप्तौ' से घञ् प्रत्यय के परे नलोप और गुणादेश निपातन है। अन्यथा (५५४) सूत्र से गुणप्रतिषेध प्राप्त है।

ओद्मः—'यहाँ 'उन्दी' धातु का नं लोप और गुणादेश उणादिगणस्थ मन् प्रत्यय के परे निपातन है। प्रश्रथः—यहाँ 'श्रन्थ' धातु से नकार का लोप और वृद्धि का न होना निपातन है। इसी प्रकार हिमपूर्वक श्रन्थ से—'हिमश्रथः' सिद्ध होता है ॥

१३४४–अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ॥ ३ । ३ । १९ ॥

कर्त्ताभिन्न कारक में भी संज्ञाविषय में घञ् प्रत्यय हो।

प्रसीव्यत इति = प्रसेवः। आहरन्ति रसं यस्मात्स = आहारः। 'अकर्त्तृ' ग्रहण से यहाँ न हुआ—'मिष स्पर्द्धायाम्'—मिषत्यसौ = मेषः—मेढ़ा का नाम है, यहाँ अच् हो जाता है। 'संज्ञा' ग्रहण से यहाँ न हुआ—कर्त्तव्यः कटः। गन्तव्यो मार्गः। संज्ञा से अन्यत्र भी घञ् होने के लिये चकार है, इससे यहाँ भी होता है—को लाभो भवता लब्धः ॥

१३४५–घञि च भावकरणयोः ॥ ६ । ४ । २७ ॥

भावकरणवाची घञ् प्रत्यय परे हो, तो रञ्ज धातु के उपधा नकार का लोप हो।

भाव में—रञ्जनं रागः । करण में—रज्यतेऽनेनेति = रागः । 'भावकरण' ग्रहण से यहाँ नलोप न हुआ—रञ्जत्यस्मिन्निति रङ्गः ।

यहाँ से आगे अष्टाध्यायी के क्रम से (कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ ३ । ३ । ११३) सूत्र पर्य्यन्त 'भावे; अकर्त्तरि; कारके' इन पदों का अधिकार है ॥

१३४६—परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ॥ ३ । ३ । २० ॥

परिमाण का कथन हो, तो सब धातुओं से घञ् प्रत्यय हो ।

चिञ्—एकस्तण्डुलनिचायः । तण्डुलानां निचायस्तण्डुलनिचायः* । पूञ्—द्वौ शूर्पनिष्पावौ । 'कॄ विक्षेपे'—द्वौ कारौ । त्रयः काराः । 'परिमाणाख्या' ग्रहण से यहाँ न हुआ—निश्चयः ।

१३४७—वा०—दारजारौ कर्त्तरि णिलुक् च ॥ ३ । ३ । २० ॥

दार, जार ये दोनों प्रयोग कर्त्ता में कहने चाहियें, और इनके विषय में णिच् प्रत्यय का लुक् भी कहना चाहिये ।

'दॄ विदारणे'—दारयन्तीति = दाराः । 'जॄष् वयोहानौ'—जारयन्तीति = जाराः ।

१३४८—वा०—करणे वा ॥ ३ । ३ । २० ॥

अथवा करण कारक में दार, जार शब्द कहने चाहियें ।

इस पक्ष में णिलुक् नहीं है—दीर्य्यन्ते तैर्दाराः । जीर्य्यन्ति तैर्जाराः ॥

१३४९—इङश्च ॥ ३ । ३ । २१ ॥

इङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ।

---

* यह चावलों की ढेरी अर्थात् मन आदि परिमाण से पूर्ण है । जो शूर्प से निरन्तर शुद्ध किया जाय वह 'शूर्पनिष्पाव' कहाता है । दो शूर्पनिष्पाव अर्थात् दो वार शूर्प से जितना शुद्ध हो सके, उतना धान्य है । दो कार अर्थात् दो वार शूर्प आदि से किरा जाये उतना धान्य है ॥

यह वक्ष्यमाण अच् का अपवाद है। उपेत्यस्मादधीत इत्युपाध्यायः, यहाँ 'इङ्' धातु से अपादान में घञ् प्रत्यय है।

१३५०–वा०–इङश्चेत्यपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष् ॥ ३ । ३ । २१ ॥

'इङश्च' इस विषय में स्त्रीलिङ्ग में अपादान कारक में घञ् प्रत्यय का उपसंख्यान करना और उस घञ् प्रत्ययान्त से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये।

उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी; उपाध्याया, (स्त्रैण०—८९)।

१३५१–वा०–शॄ वायुवर्णनिवृतेषु ॥ ३ । ३ । २१ ॥

'श' इस धातु से वायु, वर्ण, निवृत—आवरण, आच्छादन—इन अर्थों में घञ प्रत्यय कहना चाहिये।

'शॄ हिंसायाम्'—शृणात्यनेनेति=शारो वायुः, करण में घञ् है। शीर्य्यते चित्रीक्रियतेऽनेनेति=शारो वर्णः, गौरिवाकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कृशः। नि शीर्य्यते निव्रियते आच्छाद्यतेऽनेनेति=नीशारो निवृतम्। 'अकृत-नीशारः'—जिसने छप्पर आदि नहीं छवाया, वह पुरुष प्रायः करके शिशिर ऋतु में गौ के तुल्य दुवला हो जाता है॥

१३५२–उपसर्गे रुवः ॥ ३ । ३ । २२ ॥

उपसर्ग उपपद हो, तो रु धातु से घञ् प्रत्यय हो।

संरावः। 'उपसर्ग' ग्रहण से यहाँ न हुआ—रवः, यहाँ (१३९१) से अप् हो जाता है॥

१३५३–समि युद्रुदुवः ॥ ३ । ३ । २३ ॥

सम् उपपद हो, तो यु, द्रु, दु, इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो।

सं यूयते मिश्रीक्रियते गुडादिभिरिति=संयावः—मीठी पूड़ी आदि का नाम है। सन्द्रावः। सन्दावः॥

१३५४–श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे ॥ ३ । ३ । २४ ॥

उपसर्ग उपपद न हो, तो श्रि, णी, भू इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो

श्रायः। नायः। भावः। 'उपसर्ग' निषेध से यहां न हुआ—प्रश्रयः। प्रणयः। प्रभवः। 'प्रभावः' यह तो प्रादिसमास से होता है तथा 'नयः पृथिवीपतेः' यह कृत्संज्ञकों के बहुलभाव से होता है।

१३५५–वौ क्षुश्रुवः ॥ ३ । ३ । २५ ॥

वि उपपद हो, तो क्षु, श्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो।

विक्षावः। विश्रावः। 'वि' ग्रहण से यहां न हुआ—क्षवः, श्रवः॥

१३५६–अवोदोर्नियः ॥ ३ । ३ । २६ ॥

अव, उद ये उपसर्ग उपपद हों, तो नी धातु से घञ् प्रत्यय हो।

अवनायः—नीचे को पहुँचाना। उन्नायः—ऊपर को पहुँचाना॥

१३५७–प्रे द्रुस्तुस्रुवः ॥ ३ । ३ । २७ ॥

प्र उपपद हो, तो द्रु, स्तु, स्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो।

प्रद्रावः। प्रस्तावः। प्रस्रावः। 'प्र' ग्रहण से यहां न हुआ—द्रवः। स्रवः। स्तवः, यहां वक्ष्यमाण अप् (१३९१) से हो जाता है॥

१३५८–निरभ्योः पूल्वोः ॥ ३ । ३ । २८ ॥

निर, अभि ये यथासंख्य उपपद हों, तो पू, लू इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो।

'पू' यह सामान्य 'पूङ्; पूञ' दोनों का ग्रहण है। निर् पू—निष्पूयते शूर्पादिभिर्यः स निष्पावः—यह किसी धान्यविशेष का नाम है। अभिलावः॥

१३५९—उन्न्योर्ग्रः ॥ ३ । ३ । २९ ॥

उद् और नि उपपद हों, तो गॄ धातु से घञ् प्रत्यय हो।

'गॄ शब्दे; गॄ निगरणे'—उद्गॄ = उद्गारः समुद्रस्य। नि गॄ = निगारो मनुष्याणाम्। 'उद्, नि' ग्रहण से यहां न हुआ—गरः। अप् (१३९१) से हो जाता है॥

१३६०—कॄ धान्ये ॥ ३ । ३ । ३० ॥

धान्य अर्थ में वर्त्तमान जो उद् नि पूर्वक कॄ धातु उससे घञ् प्रत्यय हो।

'कॄ विक्षेपे' उत्कारो निकारो वा धान्यस्य—धान्य का ऊपर को किराना वा एक तार किराना। धान्य से अन्यत्र—भैक्ष्योत्करः। पुष्पनिकरः—फूलों का समूह॥

१३६१—यज्ञे समि स्तुवः ॥ ३ । ३ । ३१ ॥

यज्ञ अर्थ में सम् पूर्वक स्तु धातु से घञ् प्रत्यय हो।

समेत्य स्तुवन्ति छन्दोगा यस्मिन् देशे स देशः = संस्तावः, यहां अधिकरण में घञ् प्रत्यय है। यज्ञ से अन्यत्र—संस्तवः परिचयः॥

१३६२—प्रे स्त्रोऽयज्ञे ॥ ३ । ३ । ३२ ॥

प्र उपपद हो, तो यज्ञभिन्न अर्थ में स्तॄञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो।

'स्तॄञ् आच्छादने'—छन्दसां प्रस्तारः। मणिप्रस्तारः। 'अयज्ञ' ग्रहण से यहां न हुआ—बर्हिषः प्रस्तरः—कुशों की मूठी॥

१३६३—प्रथने वावशब्दे ॥ ३ । ३ । ३३ ॥

अशब्दविषयक प्रथन—विस्तीर्णता गम्यमान हो, और वि उपपद हो, तो स्तॄञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो।

पटस्य विस्तारः। 'प्रथन' ग्रहण से यहां न हुआ—अयं तृणविस्तरः—यह तृण अर्थात् कुश आदि का बिछावना है। 'अशब्द' ग्रहण से यहां न हुआ—वचसां विस्तरः। ग्रन्थविस्तरः। इन में अगला अप् प्रत्यय (१३९१) से हो जाता है।

१३६४–छन्दोनाम्नि च ॥ ३ । ३ । ३४ ॥

छन्दोनाम वाच्य हो, तो विपूर्वक स्तृञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो।

यहां छन्दस् शब्द से गायत्री आदि छन्दों का ग्रहण है। विस्तीर्यन्तेऽस्मिन्नक्षराणि स=विष्टारः विष्टारं च तत् पङ्क्तिश्छन्दः विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः। विष्टारबृहती छन्दः, यहां (८४२) सूत्र से षत्व होता है॥

१३६५–उदि ग्रहः ॥ ३ । ३ । ३५ ॥

उद् उपपद हो, तो ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो।

उद्ग्राहः।

१३६६–वा०–उद्ग्राभनिग्राभौ च छन्दसि स्रुगुद्यमननिपातनयोः ॥ ३ । ३ । ३५ ॥

स्रुच—हवन करने के पात्र का उठाना धरना अर्थ हो, तो उद्ग्राभ, निग्राभ ये [यथासंख्य] निपातन हैं।

यहां उद् नि पूर्वक ग्रह धातु से भाव में घञ् और उसके हकार को भकार आदेश हुआ है॥

१३६७–समि मुष्टौ ॥ ३ । ३ । ३६ ॥

सम् उपपद हो, तो मुष्टिविषयक—पञ्जा लड़ाने अर्थ में ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो।

अहो मल्लस्य संग्राहः। अहो मुष्टिकस्य संग्राहः। 'मुष्टि' ग्रहण से यहां न हुआ—द्रव्यस्य संग्रहः॥

१३६८–परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥ ३ । ३ । ३७ ॥

द्यूत अर्थ में परिपूर्वक णीञ् और अभ्रेष—उचित करने अर्थ में निपूर्वक इण् धातु से घञ् प्रत्यय हो ।

द्यूत—परिणयनं परिणायः, परिणायेन शारान् हन्ति—सब ओर से एर फेर से पाशाओं को छीनता झपटता है । अभ्रेष—एषोऽत्र न्यायः । 'द्यूताभ्रेष' से अन्यत्र—परिणयो विवाहः । न्ययो नाशः ॥

१३६९–परावनुपात्यय इणः ॥ ३ । ३ । ३८ ॥

अनुपात्यय अर्थ में परिपूर्वक इण् धातु से घञ् प्रत्यय हो ।

तव पर्य्यायः । मम पर्य्यायः । 'अनुपात्यय' ग्रहण से यहां न हुआ—कालस्य पर्ययः—काल का व्यतीत होना ॥

१३७०–व्युपयोः शेतेः पर्याये ॥ ३ । ३ । ३९ ॥

पर्याय गम्यमान हो, तो वि उप पूर्वक शीङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ।

तव विशायः—तुम्हारा जागना । मम विशायः—मेरा जागना । तव राजोपशायः—तुम्हारा राजा के समीप सोना । मम राजोपशायः—मेरा राजा के समीप सोना । 'पर्याय' ग्रहण से यहां न हुआ—विशयः । उपशयः ॥

१३७१–हस्तादाने चेरस्तेये ॥ ३ । ३ । ४० ॥

अस्तेय अर्थात् चोरी से अन्यत्र जो हाथ से ग्रहण करना, उस अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ।

पुष्पप्रचायः । फलप्रचायः—पुष्प फलों का हाथ से इकट्ठा करना । हस्तादान से अन्यत्र—दण्डेन फलसंचयं करोति, यहां घञ् नहीं होता । 'अस्तेय' ग्रहण से यहां नहीं होता—चौर्येण फलप्रचयः ॥

१३७२–निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ॥ ३ । ३ । ४१ ॥

निवास—अच्छे प्रकार जिसमें वसें, चिति—चिनाजाना, शरीर, उपसमाधान—ढेर लगाना, इन अर्थों में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय और धातु के आदि चकार को ककार आदेश हो।

निवास—निवसंत्यस्मिन्निति = निकायः, कश्मीर निकायः। चिति—आचीयतेऽसावित्याकायः—जो अच्छे प्रकार चिना जाय, वह 'आकाय' कहाता है। आकायमग्निं चिन्वीत। शरीर—चीयतेऽस्मिन् सक्थ्यादिकमिति कायः। उपसमाधान—धान्यनिकायः॥

१३७३—सङ्घे चानौत्तराधर्य्ये॥ ३। ३। ४२॥

अनौत्तराधर्य—ऊपर नीचे न होना विषयक जो संघ—प्राणियों का एकत्र होना, उस अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय और उसके आदिभूत चकार को क आदेश हो।

ब्राह्मणनिकायः। भिक्षुनिकायः। वैयाकरणनिकायः। 'अनौत्तराधर्य' ग्रहण से यहां न हुआ—सूकरनिचयः—प्रायः सूकर सोते हुए एक दूसरे के ऊपर भी हो रहते हैं। 'प्राणिविषयकसंघ' लेने से यहां न हुआ—ज्ञानकर्मसमुच्चयः॥

१३७४—कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्॥ ३। ३। ४३॥

कर्मव्यतिहार—क्रिया का परस्पर होना गम्यमान हो, स्त्रीलिङ्ग में में धातु से णच् प्रत्यय हो।

यह भाव में होता है। 'वि+अव+क्रुश+णच्' यहाँ (स्त्रै०–८२२) सूत्र में स्वार्थ में ताद्धित अञ् प्रत्यय होकर 'व्यवक्रुश+अ+अ' इस अवस्था में (स्त्रै०—९१९) सूत्र से ऐच् प्राप्त हुआ, उसका (स्त्रै०—९२२) से निषेध होकर (स्त्रै०—१६७) सूत्र से वृद्धि तथा (स्त्रै०—३५) सूत्र से ङीप् प्रत्यय हो जाता है—व्यावक्रोशी। व्यावहासी। 'स्त्री' ग्रहण से यहाँ न हुआ—व्यतिपाको वर्त्तते। 'कर्मव्यतिहार' से अन्यत्र—क्रोशो वर्त्तते॥

१३७५–अभिविधौ भाव इनुण् ।। ३ । ३ । ४४ ।।

अभिविधि—अभिव्याप्ति अर्थात् क्रिया और गुणों से परिपूर्ण सम्बन्ध अर्थ हो, तो धातु से भाव में इनुण् प्रत्यय हो ।

समन्ताद् रवणं समन्ताद् रूयत इति वा सांराविणम्, यहाँ सम्पूर्वक 'रु' धातु से इनुण् और उसके परे धातु को वृद्धि (६०) से, तदनन्तर 'संराविन्' शब्द से स्वार्थ में अण्, और अण् के परे आदि अच् को (स्त्रै०—१६७) से वृद्धि, और अण् के पूर्व को प्रकृतिभाव (स्त्रै०—९०१) सूत्र से हो जाता है । सांराविणं वर्त्तते ।

'अभिविधि' ग्रहण से यहाँ न हुआ—संरावः,इत्यादिकों में घञ् हो जाता है । भाव वर्त्तमान था फिर 'भाव' इसलिये है कि वासरूपविधि से अभिविधिविषयक भाव में घञ् न हो, परन्तु वक्ष्यमाण ल्युट् प्रत्यय तो होता है ।।

१३७६–आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः ।। ३ । ३ । ४५ ।।

आक्रोश—अच्छे प्रकार कोसना अर्थ गम्यमान हो, तो अव नि पूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो ।

अवग्राहो वृषल ते भूयात् । निग्राहो हन्त ते वृषल भूयात् । 'आक्रोश' ग्रहण से यहाँ न हो—अवग्रहः पदस्य—पद का विग्रह । निग्रहश्चोरस्य—चोर का बाँधना ।।

१३७७–प्रे लिप्सायाम् ।। ३ । ३ । ४६ ।।

लाभ की इच्छा गम्यमान हो, तो प्रपूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो ।

पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः । 'लिप्सा' ग्रहण से यहाँ न हुआ—प्रग्रहः पात्राणाम् ।।

१३७८–परौ यज्ञे ।। ३ । ३ । ४७ ।।

परि उपसर्ग उपपद हो, तो ग्रह धातु से यज्ञ अर्थ में घञ् प्रत्यय हो ।

उत्तरपरिग्राहः स्फ्येनवेदेर्भवति । यज्ञ से अन्यत्र—परिग्रहो देवदत्तस्य ।।

१३७९–नौ वृ धान्ये ॥ ३ । ३ । ४८ ॥

धान्य अभिधेय हो और नि उपसर्ग उपपद हो, तो वृञ् वा वृङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो।

नीवाराः व्रीहयः, यहाँ (उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् ॥ ६ । ३ । १२२) इस सूत्र से नि को दीर्घ हो गया। धान्य से अन्यत्र—निवरा कन्या। यहां अगला अप् (१३९१) प्रत्यय हो जाता है॥

१३८०–उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ॥ ३ । ३ । ४९ ॥

उद् उपपद हो, तो श्रिञ्, यू, पू, द्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो।

श्रिञ्—उच्छ्रायः। यु—उद्यावः। 'पूञ्; पूङ्'—उत्पावः। द्रु—उद्रावः॥

१३८१–विभाषाङि रुप्लुवोः ॥ ३ । ३ । ५० ॥

आङ् उपपद हो, तो रु और प्लु धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो।

आरावः; आरवः। आप्लावः; आप्लवः॥

१३८२–अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ॥ ३ । ३ । ५१ ॥

वर्षा का प्रतिबन्ध अभिधेय हो और अव उपपद हो, तो ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो।

अपने समय में हो रही जो वर्षा है, उसका किसी कारण से जो अभाव होना उसको 'वर्षप्रतिबन्ध' कहते हैं। अवग्राहो देवस्य; अवग्रहो देवस्य। 'वर्षप्रतिबन्ध' ग्रहण से यहाँ न हुआ—अवग्रहः पदस्य॥

१३८३–प्रे वणिजाम् ॥ ३ । ३ । ५२ ॥

वणिज् सम्बन्धी प्रत्ययार्थ हो, तो प्रपूर्वक ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो।

तुलाप्रग्राहेण चरति तुलाप्रग्रहेण वा चरति, यहां वणिक्सम्बन्धी तुला सूत्र का ग्रहण है, अर्थात् तुला—तखरी, तक आदि—जिससे ग्रहण करी जाय उस सूत्र के साथ चलता है। 'वणिक्' ग्रहण से यहाँ न हुआ—प्रग्रहो धनस्य ॥

१३८४–रश्मौ च ॥ ३ । ३ ५३ ॥

रश्मि अभिधेय हो और प्र शब्द उपपद हो, तो ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो।

प्रग्रहः; प्रग्राहः—रथ में जुड़े हुये घोड़ों की वागों को कहते हैं ॥

१३८५–वृणोतेराच्छादने ॥ ३ । ३ । ५४ ॥

प्र उपपद हो, तो वृञ् धातु से आच्छादन अर्थ में विकल्प करके घञ प्रत्यय हो।

प्रवारः; प्रवरः। 'आच्छादन' ग्रहण से यहाँ न हुआ—प्रवरा गौः, (१३९१) ॥

१३८६–परौ भुवोऽवज्ञाने ॥ ३ । ३ । ५५ ॥

परि उपपद हो, तो अवज्ञान—तिरस्कार अर्थ में भू धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो।

परिभावः; परीभावः, (उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् ॥६।३।१२२) इससे दीर्घ; परिभवः। अवज्ञान से अन्यत्र—परितः सर्वतो भवनं परिभवः, यहाँ अप् हो जाता है ॥

१३८७–एरच् ॥ ३ । ३ । ५६ ॥

इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय हो।

चिञ्—चायः। जि—जयः। क्षि—क्षयः। भाव और कर्त्ताभिन्न कारक का अधिकार है, इसलिये प्रकरण के उक्त अनुक्त सब प्रत्यय भाव वा कर्त्ताभिन्न कारकों में प्रायः होते हैं।

१३८८—वा०—भयादीनामिति वक्तव्यम् ।। ३ । ३ । ५६ ।।

-भयादि शब्दों की सिद्धि अच् प्रत्यय से कहनी चाहिये ।

ञिभी—भयम् । वृषु —वर्षम् । नपुंसकलिङ्ग भाव में क्त प्रत्यय कहेंगे, उसकी निवृत्ति के लिये यह वार्तिक है, परन्तु **'वृषभो वर्षणात् ।। महाभाष्य १ । १ । १ ।।'** इस भाष्यवचन से 'वर्षण' शब्द तो भाव में होता ही है ।

१३८९—वा०—कल्प्यादिभ्यः प्रतिषेधः ।। ३ । ३ । ५६ ।।

कल्पि आदि धातुओं से अच् प्रत्यय का प्रतिषेध कहना चाहिये ।

'कल्पि' यह णिजन्त **'कृपू सामर्थ्ये'** है । 'कृपू+णिच्+घञ्+सु'=कल्पः । अर्थः । मन्त्रः, ये भी णिजन्तों से हैं । णिजन्त सब इवर्णान्त हो जाते हैं, इसलिये 'कल्पि' आदि से अच् ※ प्राप्त था, उसके प्रतिषेध में घञ् हो जाता है

१३९०—वा०—जवसवौ छन्दसि वक्तव्यौ ।। ३ । ३ । ५६ ।।

वेदविषय में जव, सव ये अच्प्रत्ययान्त कहने चाहियें ।

'जु' सौत्र धातु है, उससे 'जु+अच्+सु'=जवः होता है । ऊर्वोरस्तु मे जवः । 'षु वा षू' धातु से अच् होकर 'सवः' होता है—अयं मे पञ्चौदनः सवः । यह अच् विधान अन्तोदात्त (सौवर—३४) स्वर के लिये है, क्योंकि 'जवः, सवः' प्रयोग अप् से भी सिद्ध थे ।।

१३९१—ऋदोरप् ।। ३ । ३ । ५७ ।।

ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय हो ।

※ किन्ही नवीन पन्थवालों का यह भी सिद्धान्त है कि (एरच् ।। ३ । ३ । ५६) यह अण्यन्तों से होता है, ण्यन्तों से नहीं होता । सो उनका कथन भाष्यविरुद्ध है ।।

कॄ—करः। शॄ—शरः। यु—यवः। लू—लवः। पू—पवः। 'ॠदो०' यहां ॠ और उकार का अलग अलग उच्चारण होने के लिये दकार के साथ निर्देश है, किन्तु तपर करण नहीं है॥

१३९२–ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ॥ ३ । ३ । ५८ ॥

ग्रह्, वृ, दृ, निश्चि इनसे अप् प्रत्यय हो।

यह घञ् और अच् का अपवाद है। ग्रह—ग्रहः। वृ—वरः। दृ—दरः। निस्+चि—निश्चयः। गम्लृ—गमः॥

१३९३–वा०–वशिरण्योश्चोपसंख्यानम् ॥ ३ । ३ । ५८ ॥

अप् प्रत्यय के विधान में वश और रण धातु की भी गणना करनी चाहिये।

वशनं = वशः, सवशं सैन्धवम्। रणन्त्यस्मिन्निति = रणः, धनंजयं रणे रणे।

१३९४–वा०–घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम् ॥ ३ । ३ । ५८ ॥

स्था, स्ना, पा, व्यध, हन, युध आदि धातुओं के लिये घञर्थ—भाव कर्त्ताभिन्न कारक में क प्रत्यय का विधान करना चाहिये।

प्रतिष्ठन्तेऽस्मिन् धान्यानीति = प्रस्थः, प्रस्थे हिमवतः शृंगे। प्रस्नान्ति अस्मिन्निति = प्रस्नः। प्रपिबन्त्यस्यामिति = प्रपा। आविध्यन्ति तेनाविधः। विघ्नन्ति तस्मिन्मनांसि = विघ्नः। आयुध्यन्ते तेनायुधम्॥

१३९५–वा०–द्विर्वचनप्रकरणे कृञादीनां क उपसंख्यानम् ॥ ६ । १ । १२ ॥

क प्रत्यय के परे द्विर्वचनप्रकरण में कृञ् आदि धातुओं की गणना करनी चाहिये, अर्थात् क प्रत्यय के कृञादिकों को द्वित्व हो।

यह वार्तिक (६।१।११) सूत्र के व्याख्यान में पढ़ा है। 'कृञ्+क+सु'=चक्रम्। 'क्लिदू+क+सु'=चिक्लिदम्। **'क्नसु ह्वरणदीप्त्योः'**—'क्नसु+क+सु'=चक्नसः॥

१३९६—उपसर्गेऽदः॥ ३।३।५९॥

उपसर्ग उपपद हो, तो अद धातु से अप् प्रत्यय हो।

'प्र+अद+अप्+सु' इस अवस्था में—

१३९७—घञपोश्च॥ २।४।३८॥

घञ् और अप् प्रत्यय परे हो, तो अद धातु को घस्लृ आदेश हो।

घस्लृ आदेश होकर—प्रघसः। जहां उपसर्ग पूर्व नहीं है, वहां भी 'अद+घञ्+सु'=घासः, घञ् के परे घस्लृ आदेश हो जाता है॥

१३९८—नौ ण च॥ ३।३।६०॥

नि उपपद हो, तो अद धातु से ण और अप् प्रत्यय हो।

'नि+अद+ण+सु'=न्यादः। 'नि+अद+अप्+सु'=निघसः॥

१३९९—व्यधजपोरनुपसर्गे॥ ३।३।६१

उपसर्गभिन्न जो व्यध और जप धातु, उनसे अप् प्रत्यय हो।

व्यधः। जपः। 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—आव्याधः। आजापः, यहां घञ् प्रत्यय (१३३९) से हो जाता है॥

१४००—स्वनहसोर्वा॥ ३।३।६२॥

उपसर्ग उपपद न हों, तो स्वन, और हस धातु से विकल्प करके अप् प्रत्यय हो।

स्वनः; स्वानः। हसः; हासः। विकल्प पक्ष में घञ् हो जाता है। 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहां अप् नहीं होता—प्रस्वानः। प्रहासः॥

१४०१–यमः समुपनिविषु च ।। ३ । ३ । ६३ ।।

सम्, उप, नि, वि उपसर्ग उपपद हों वा न हों, तो यम धातु से विकल्प करके अप् प्रत्यय हो ।

संयमः; संयामः । उपयमः; उपयामः । नियमः; नियामः । वियमः; वियामः । यमः; यामः । विकल्प पक्ष में घञ् हो जाता है ।।

१४०२–नौ गदनदपठस्वनः ।। ३ । ३ । ६४ ।।

नि उपसर्ग उपपद हो, तो गद, नद, पठ, स्वन इन धातुओं से विकल्प करके अप प्रत्यय हो ।

निगदः; निगादः । निनदः; निनादः । निपठः; निपाठः । निस्वनः; निस्वानः ।।

१४०३–क्वणो वीणायां च ।। ३ । ३ । ६५ ।।

नि उपसर्ग उपपद हो वा न हो, तो क्वण धातु से तथा वीणार्थविषयक जो क्वण धातु उससे अप् प्रत्यय विकल्प करके हो ।

और भी उपसर्गों के ग्रहण के लिये वीणा अर्थविषयक से विधान है । क्वण—निक्वणः, निक्वाणः । क्वणः; क्वाणः । वीणा अर्थ में—प्रक्वणः; प्रक्वाणः । इन सबसे अन्यत्र—अतिक्वाणो वर्त्तते ।।

१४०४–नित्यं पणः परिमाणे ।। ३ । ३ । ६६ ।।

परिमाण गम्यमान हो, तो पण धातु से नित्य अप् प्रत्यय हो ।

'पण व्यवहारे स्तुतौ च'—मूलकपणः । शाकपणः—वेचने आदि के लिये परिमाण से मूली वा शाक आदि की जो गड्डियां बांधना उसको कहते हैं । परिमाण से अन्यत्र—पाणः ।।

३१०५–मदोऽनुपसर्गे ।। ३ । ३ । ६७ ।।

उपसर्ग उपपद न हो, तो मद धातु से अप् प्रत्यय हो ।

विद्यामदः । धनमदः । कुलमदः । 'अनुपसर्ग' ग्रहण से यहाँ न हुआ—उन्मादः । प्रमादः ॥

१४०६—प्रमदसंमदौ हर्षे ॥ ३ । ३ । ६८ ॥

प्रमद, संमद ये दोनों हर्ष अर्थ में निपातन हैं ।

'मदी हर्षे'—प्रमदः । संमदः । 'हर्ष' ग्रहण से यहाँ न हुआ—प्रमादः । संमादः ॥

१४०७—समुदोरजः पशुषु ॥ ३ । ३ । ६९ ॥

सम् और उद् उपसर्ग उपपद हों, तो पशुविषय में वर्त्तमान अज धातु से अप् प्रत्यय हो ।

'अज गतिक्षेपणयोः'—सम् पूर्वक अज धातु समुदाय अर्थ को कहता है । पशूनां समजः—पशुओं का समुदाय । पशूनामुदजः—पशुओं को प्रेरणा देना अर्थात् हांकना आदि । 'पशु' ग्रहण से यहाँ नहीं होता—ब्राह्मणानां समाजः । आर्य्यसमाजः । क्षत्रियाणामुदाजः ॥

१४०८—अक्षेषु ग्लहः ॥ ३ । ३ । ७० ॥

अक्षविषय में ग्रह धातु से अप् प्रत्ययान्त 'ग्लह' यह निपातन है ।

अक्षस्य ग्लहः—पाशाओं का ग्रहण करना । ग्रह धातु से (१३९२) से अप् प्रत्यय सिद्ध है, तथापि उसके रेफ को लकारादेश करने के लिए यह निपातन किया है । 'अक्ष' ग्रहण से यहाँ न हुआ—केशग्रहः ॥

१४०९—प्रजने सर्त्तेः ॥ ३ । ३ । ७१ ॥

प्रजन—प्रथम गर्भधारण विषय में सृ धातु से अप् प्रत्यय हो ।

गवामुपसरः—प्रथम गर्भधारण कराने के लिये गौ के समीप बैल का जाना । अवसरः । प्रसरः, इत्यादि तो (१४७७) सूत्र से होंगे ॥

१४१०—ह्वः संप्रसारणं च न्यभ्युपविषु ॥ ३ । ३ । ७२ ॥

नि, अभि, उप, वि ये उपपद हों, तो ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उसको संप्रसारण हो ।

'नि+ह्वेञ्+अप्+सु'=निहवः । 'अभि+ह्वेञ्+अप्+सु'=अभिहवः । 'उप+ह्वेञ्+अप्+सु'=उपहवः । 'वि+ह्वेञ्+अप्+सु'=विहवः । अन्यत्र—'प्र+ह्वेञ्+घञ्+सु'=प्रह्वायः, घञ् होजाता है ॥

१४११—आङि युद्धे ॥ ३ । ३ । ७३ ॥

युद्ध अभिधेय हो, तो आङ् पूर्वक ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उसको संप्रसारण हो ।

आहूयन्ते स्पर्द्धया भटा अस्मिन्निति=आहवः । युद्ध से अन्यत्र—आह्वायः ।

१४१२—निपानमाहावः ॥ ३ । ३ । ७४ ॥

जो निपान अभिधेय हो, तो 'आहाव' यह निपातन है ।

निपिबन्त्यस्मिन् जलमिति=निपानम्—जल पीने का स्थान । यहाँ आङ्पूर्वक ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय तथा उसको संप्रसारण और वृद्धि निपातन है ॥

१४१३—भावेऽनुपसर्गस्य ॥ ३ । ३ । ७५ ॥

भाव वाच्य हो, तो उपसर्गरहित ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उसको संप्रसारण हो ।

ह्वानं हवः, हवे हवे शूरमिन्द्रम् । यहाँ भावग्रहण से प्रकृत कर्त्ता भिन्न कारक की अनुवृत्ति नहीं होती है ॥

१४१४—हनश्च वधः ॥ ३ । ३ । ७६ ॥

उपसर्गरहित हन् धातु से भी अप् प्रत्यय, और उस प्रत्यय के साथ हन् को वध आदेश भाव में हो ।

यहाँ चकार का सम्बन्ध आदेश के साथ नहीं है, किन्तु आदेश तो अप् से द्वितीय विधान है, सो हो ही जायेगा। इससे चकारग्रहण से प्रकरण के अनुसार दूसरा घञ् प्रत्यय भी होता है।

'हन्+अप्+सु' = वधः। वध आदेश अन्तोदात्त है, इससे अनुदात्त (सौवर—२४) से अप् प्रत्यय के साथ एकादेश (संधि० १२९) भी उदात्त ही (सौवर—८५) से होता है। 'हन्+घञ्+सु' = घातः। वधो दस्यूनाम्। घातः शत्रूणाम्॥

१४१५—मूर्त्तौ घनः॥ ३। ३। ७७॥

मूर्त्ति—कठिनपन वाच्य हो, तो हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो।

अभ्रघनः—बद्दलों की सघनता। दधिघनः—दधि की कठिनाई अर्थात् उसका अत्यन्त जमना।

घन शब्द जब मूर्त्ति—कठिनाई मात्र में होता है तो 'घनं सैन्धवम्; घनं दधि' इत्यादि प्रयोग कैसे होंगे, क्योंकि घन यह सैन्धव वा दधि का गुण हुआ। इसलिये गुण से गुणी की विवक्षा—घन शब्द से तद्धर्मनिष्ठ दधि आदि का कथन हो तो उक्त प्रयोग होंगे॥

१४१६—अन्तर्घनो देशे॥ ३। ३। ७८॥

देश अभिधेय हो, तो अन्तर् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और उसको घन आदेश हो।

अन्तर्घनः—यह वाहीक नामक देशों में किसी देश का नाम है। इस शब्द को पाठान्तर से भी मानते हैं, जैसे—अन्तर्घणः। देश से अन्यत्र—अन्तर्घातः॥

१४१७—अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च॥ ३। ३। ७९॥

अगार—गृह के एक देश में प्रघण, प्रघाण ये निपातन हैं।

गृह के द्वार देश में दो कोठे होने चाहियें—एक भीतर, दूसरा बाहर। उनमें से जो बाहर का कोठा है, उस अर्थ में ये निपातन हैं।

प्रविशद्भिर्जनैः प्रकर्षेण हन्यत इति=प्रघणः; प्रघाणः; यहां कर्म में अप् तथा घञ् प्रत्यय और हन् को घन आदेश निपातन है। अगारैकदेश से अन्यत्र—प्रघातः॥

१४१८—उद्घनोऽत्याधानम् ॥ ३ । ३ । ८० ॥

अत्याधान—ऊपर स्थापन करना गम्यमान हो, तो उद्घन यह निपातन है।

ऊर्ध्वं हन्यन्तेऽस्मिन् काष्ठानीति=उद्घनः, यह जिस काठ पर धर के दूसरे काठ को गढ़ते (छीलते) हैं उसका नाम है। यहाँ उद्पूर्वक हन् धातु से अप् और उसको घन आदेश निपातन है॥

१४१९—अपघनोऽङ्गम् ॥ ३ । ३ । ८१ ।

अङ्ग अभिधेय हो, तो अपघन यह निपातन है।

अङ्ग शरीर के अवयवमात्र का नाम है, परन्तु यहाँ हाथ-पैर का ग्रहण है। अपहन्त्यनेनेति=अपघनः पाणिः पादो वा, यहाँ अपपूर्वक हन् से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश निपातन है। अन्यत्र—अपघातः॥

१४२०—करणेऽयोविद्रुषु ॥ ३ । ३ । ८२ ॥

अयस्, वि, द्रु उपपद हों, तो हन् धातु से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो।

अयो लोहो हन्यतेऽनेनेति=अयो घनः। विघनः। द्रुघनः। इस शब्द को पाठान्तर से भी मानते हैं—द्रुघणः, (८७२) से णत्व हो जाता है॥

१४२१—स्तम्बे क च ॥ ३ । ३ । ८३ ॥

स्तम्ब शब्द उपपद हो, तो हन् धातु से करण में क और अप् प्रत्यय और अप् के संनियोग में हन् को घन आदेश हो।

क—स्तंम्बो हन्यतेऽनेन=स्तम्बघ्नः । अप—स्तम्बघनः । करण से अन्यत्र—स्तम्बस्य हननं=स्तम्बघातः ॥

१४२२–परौ घः ॥ ३ । ३ । ८४ ॥

परि उपपद हो, तो हन् धातु से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घ आदेश हो ।

परितः सर्वतो हन्यतेऽनेनेति=परिघः ॥

१४२३–परेश्च घाङ्कयोः ॥ ८ । २ । २२ ॥

घ और अङ्क शब्द परे हों, तो परि के रेफ को विकल्प करके लकारादेश हो ।

परिघः; पलिघः । पर्य्यङ्कः; पल्यङ्कः, यहां (पारिभाषि०—१) परिभाषा के अनुसार 'घ' इस स्वरूप का ग्रहण है, घुसंज्ञा का ग्रहण नहीं है ॥

१४२४–उपघ्न आश्रये ॥ ३ । ३ । ८५ ॥

आश्रय अर्थ में उपघ्न यह निपातन है ।

आश्रय शब्द से यहाँ सामीप्य का ग्रहण है । पर्वतेनोपहन्यते तत्सामीप्येन गम्यत इति=पर्वतोपघ्नः । ग्रामोपघ्नः—पर्वत के निकट निकट जाना । यहाँ उपपूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् की उपधा का लोप निपातन और कुत्व (३०४) सूत्र से होता है ॥

१४२५–संघोद्घौ गणप्रशंसयोः ॥ ३ । ३ । ८६ ॥

गण—समूह और प्रशंसा अर्थ में यथासंख्य करके संघ, उद्घ ये निपातन हैं ।

संहननं संघः । गवां संघः, यहाँ सम्पूर्वक हन् से भाव में अप् प्रत्यय और टिलोप निपातन है । उत्कृष्टो हन्यते ज्ञायत इत्युद्घो मनुष्यः, यहाँ गतित्व से हन् धातु को ज्ञानार्थ मानकर उससे कर्म में अप् और पूर्ववत् टिलोप हो जाता है ॥

१४२६–निघो निमितम् ॥ ३ । ३ । ८७ ॥

निमित अभिधेय हो, तो निघ यह निपातन हो।

सब प्रकार से जो मित—परिपूर्णता को प्राप्त हो वह 'निमित' कहाता है। निर्विशेषेण हन्यन्ते ज्ञायन्त इति=निघा वृक्षाः। निघाः शालयः। निघाः यवाः। 'निमित' से अन्यत्र—निघातः ॥

१४२७–ड्वितः क्त्रिः ॥ ३ । ३ । ८८ ॥

डु, जिसका इत् गया हो उस धातु से भावादिकों में क्त्रि प्रत्यय हो।

(क्त्रेर्मम् नित्यम् ॥ ४ । ४ । २०) इस सूत्र में नित्य ग्रहण से क्त्रि प्रत्ययविषयक विग्रह मप् से अलग नहीं होता। जैसे—'डुपचष् पाके'—पचनेन निर्वृत्तं=पक्त्रिमम्—पचने से सिद्ध हो गया। 'डुकृञ् करणे'—कृत्रिमम्। 'डुवप् बीजसन्ताने'—उप्त्रिमम् ॥

१४२८–ट्वितोऽथुच् ॥ ३ । ३ । ८९ ॥

टु जिसका इत् गया हो, उस धातु से भावादिकों में अथुच् प्रत्यय हो।

'टुवेपृ कंपने'—वेपनं वेपथुः। टुओश्वि—श्वयथुः ॥

१४२९–यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ॥ ३। ३ । ९० ॥

भाव और अकर्त्ता कारक में यज आदि धातुओं से नङ् प्रत्यय हो।

यज—यजनं यज्ञः। टुयाचृ—याचनं याच्ञा। 'यती प्रयत्ने'—यत्नः। 'विच्छ गतौ'—विश्नः, यहाँ छ को श् आदेश हो जाता है और नङ् के ङित् करण से गुण नहीं होता। प्रच्छ—प्रश्नः, यहां संप्रसारण (२८६) से प्राप्त है सो (७५०) सूत्र में 'प्रश्न' शब्द के पढ़ने से नहीं होता॥

१४३०–स्वपो नन् ॥ ३ । ३ । ९१ ॥

स्वप् धातु से नन् प्रत्यय हो।

'ञिष्वप् शये'—स्वपनं स्वप्नः ॥

१४३१–उपसर्गे घोः किः ॥ ३ । ३ । ९२ ॥

उपसर्ग उपपद हो, तो घुसंज्ञकों से कि प्रत्यय हो ।

प्रदानं प्रदिः । प्रधानं प्रधिः । विधानं विधिः । संधानं संधिः । अन्तर्धानमन्तर्द्धिः । आधिः । व्याधिः ॥

१४३२–कर्मण्यधिकरणे च ॥ ३ । ३ । ९३ ॥

कर्म उपपद हो, तो घुसंज्ञक धातुओं से अधिकरण में कि प्रत्यय हो ।

जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति = जलधिः । वारिधिः । तोयधिः । पयोधिः । यशांसि धीयन्तेऽस्मिन्निति = यशोधिः । इषुधिः ॥

१४३३–स्त्रियां क्तिन् ॥ ३ । ३ । ९४ ॥

स्त्रीलिङ्गविषयक भावादिकों में धातु से क्तिन् प्रत्यय हो ।

घञ्, अच्, अप्, इन सबका अपवाद है । डुकृञ्—करणं कृतिः । चिञ्—चयनं चितिः ।

१४३४–वा०–क्तिन्नाबादिभ्यः ॥ ३ । ३ । ९४ ॥

आप्लृ आदि धातुओं से भवादिकों में क्तिन् प्रत्यय हो ।

आप्तिः । राद्धिः । दीप्तिः यहां अ (१४५०) प्रत्यय प्राप्त था, उसके बाधने के लिये क्तिन् का विधान है ।

१४३५–वा०–श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे ॥ ३ । ३ । ९४ ॥

श्रु, यज, इष, ष्टुञ् इन धातुओं से करण में क्तिन् प्रत्यय कहना चाहिये ।

श्रूयतेऽनयेति = श्रुतिः । इज्यतेऽनयेति = इष्टिः । इष्यतेऽनयेति = इष्टिः । स्तूयतेऽनयेति = स्तुतिः ।

१४३६–वा०–ग्लाम्लाज्याहाभ्यो निः ॥ ३ । ३ । ९४ ॥

ग्लै, म्लै, ज्या, ओहाक्, ओहाङ् इन धातुओं से नि प्रत्यय कहना चाहिये ।

ग्लानिः । म्लानिः । ज्यानिः । हानिः ।

१४३७–वा०–ऋकारल्वादिभ्यः क्तिन् निष्ठावत् ॥ ३ । ३ । ९४ ॥

ऋकारान्त और 'लूञ् छेदने' इत्यादि धातुओं से क्तिन् प्रत्यय को निष्ठा के तुल्य कहना चाहिये ।

कॄ—कीर्णिः । गॄ—गीर्णिः । लूञ्—लूनिः । धूञ्—धूनिः, यहाँ क्तिन् के निष्ठावद्भाव से (ल्वादि० ॥ ८ । २ । ४४) सूत्र से निष्ठा के तुल्य क्तिन् के तकार को नकारादेश हो जाता है ॥

१४३८–स्थागापापचो भावे ॥ ३ । ३ । ९५ ॥

स्था आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्गविषयक भाव में क्तिन् प्रत्यय हो ।

यह आङ् का अपवाद है । ष्ठा—प्रस्थितिः । उपस्थितिः । संस्थितिः । गै शब्दे—संगीतिः । उद्गीतिः । पा—प्रपीतिः । डुपचष्—पक्तिः ॥

१४३९–मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः ॥ ३ । ३ । ९६ ॥

मन्त्रविषय में वृष आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग भाव में क्तिन् प्रत्यय हो और वह उदात्त भी हो ।

वृष—वृष्टिः । इषु—इष्टिः । डुपचष्—पक्तिः । मन—मतिः । विद—वित्तिः । भू—भूतिः । वी—वीतिः । रा—रातिः । यद्यपि धातुमात्र से क्तिन् विहित भी है, तथापि उदात्तत्व के लिये विधान है ॥

१४४०–ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च ॥ ३ । ३ । ९७ ॥

ऊति आदि शब्द क्तिन्प्रत्ययान्त अन्तोदात्त निपातन हैं ।

ऊतिः— यहाँ 'अव' धातु से क्तिन् और अव को ऊठ् (ज्वर० ॥ ६ । ४ । २०) से आदेश होता है । यूतिः । जूतिः—'यु और जु' से क्तिन्

और उनको दीर्घ होता है। सातिः—यहाँ 'षो अन्तकर्मणि' को क्तिन् के परे (द्यति० ॥ ७।४।४०) से प्राप्त जो इकारादेश उसका अभाव निपातन से हो जाता है, वा क्तिन् के परे षण् धातु को आकारादेश (जनसन० ॥ ६।४।४२) से हो जाता है। हेतिः—यहाँ क्तिन् के परे हन् को हि आदेश वा 'हि गतौ वृद्धौ च' धातु को गुणादेश निपातन है। कीर्तिः—'कृत संशब्दने' से क्तिन् प्रत्यय होता है॥

१४४१—व्रजयजोर्भावे क्यप् ॥ ३।३।९८॥

व्रज और यज धातु से स्त्रीलिङ्ग भाव में क्यप् प्रत्यय हो, सो उदात्त हो।

व्रज—व्रज्या। यज—इज्या, (२८३) से संप्रसारण होता है॥

१४४२—संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः॥ ३।३।९९॥

संज्ञाविषय में सम्पूर्वक अज आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्गविषयक भाव और कर्तृवर्जित कारक में क्यप् प्रत्यय हो।

सम् अज—समजन्ति यस्यां सा—'सम्+अज+क्यप्+सु' इस अवस्था में (१५५) सूत्र से 'अज' को वी भाव प्राप्त हुआ, उसके निषेध के लिये अगला वार्तिक है—

१४४३—वा०—घञपोः प्रतिषेधे क्यप उपसंख्यानम् ॥ २।४।५६॥

घञ् और अप् प्रत्यय के परे अज धातु को वी भाव के प्रतिषेध में क्यप् प्रत्यय का भी उपसंख्यान करना चाहिये।

इससे वी भाव का प्रतिषेध होगया = समज्या सभा।

निषद—निषीदन्त्यस्यां सा = निषद्या—दूकान। निपत—निपतन्त्यस्यां = निपत्या—खन्दकीली भूमि। मन—मन्यतेऽनयेति = मन्या—

गलपार्श्वशिरा । विद विदन्त्यनयेति = विद्या । षुञ्—सवनं सुत्या अभिषवः । शीङ्—शेतेऽस्यामिति = शय्या । भृञ्—भरणं भरन्त्यनया वा = भृत्या । इण्—ईयते गम्यतेऽनया सा = इत्या शिविका—पालकी ॥

१४४४–कृञः श च ॥ ३ । ३ । १०० ॥

कृञ् धातु से स्त्रीलिङ्गविषयक भावादिकों में श और क्यप् प्रत्यय हों।

क्रिया, (२३९) । कृत्या ।

१४४५–वा०–कृञः श चेति वा वचनम् ॥ ३ । ३ । १०० ॥

(कृञः श च) यहाँ विकल्प भी ग्रहण करना चाहिये ।

जिससे क्तिन् प्रत्यय भी हो—कृतिः ॥

१४४६–इच्छा ॥ ३ । ३ । १०१ ॥

इष धातु से भाव में श प्रत्यय और यक् (७२०) का अभाव निपातन है ।

'इष + श + सु' = इच्छा, (२७३) ।

१४४७–वा०–अत्यल्पमिदमुच्यते इच्छेति, इच्छापरिचर्या-परिसर्यामृगयाऽटाटचानामुपसंख्यानम् ॥ ३ । ३ । १०१ ॥

'इच्छा' इतना निपातन अत्यन्त न्यून है, इससे इच्छा, परिचर्या, परिसर्या, मृगया, अटाट्या इन शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये।

परिचर्यादिकों में श प्रत्यय और उसके परे यक् (७२०, भी होता है। परिचर—परिचरणं परिचर्य्या—सत्कार। परिसृ—परिसरणं परिसर्या—रिंगना, यहाँ गुण भी निपातन से है । 'मृग अन्वेषणे' चुरादि अदन्त है—'मृग + णिच् + यक् + श + सु' = मृगया, यहाँ यक् के परे (१७७) से णिलोप

होजाता है। 'अट् गतौ'—'अट्+यक+श+सु' = अटाट्या, यहां ट्य भाग को द्वित्वादेश तथा (हलादिः शेषः ॥ ७ । ४ । ६०) होकर दीर्घ हो जाता है।

१४४८–वा०–जागर्त्तेरकारो वा ॥ ३ । ३ । १०१ ॥

जागृ धातु से अ प्रत्यय विकल्प करके हो।

जागरा, (३६२); जागर्या ॥

१४४९–अ प्रत्ययात् ॥ ३ । ३ । १०२ ॥

अप्रत्ययान्त धातु से स्त्रीविषय भावादिकों में अ प्रत्यय हो।

'कृञ्+सन्+अ+सु' = चिकीर्षा। पिपासा। कण्डूया, इत्यादि ॥

१४५०–गुरोश्च हलः ॥ ३ । ३ । १०३ ॥

गुरुमान् जो हलन्त धातु, उससे स्त्रीलिङ्ग में अ प्रत्यय हो।

ईहा। ऊहा। 'गुरु' ग्रहण से यहां न हुआ—भज—भक्तिः। शक्लृ—शक्तिः। 'हल्' ग्रहण से यहां न हुआ—क्षितिः। नीतिः। प्रीतिः ॥

१४५१–षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

ष् जिनका इत्संज्ञक हो उनसे और भिद् आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो।

त्रपूष्—त्रपा। क्षमूष्—क्षमा 'भिदिर् विदारणे'—भेदनं भिदा। **'भिदा विदारण इति वक्तव्यम्'**—विदारण अर्थ में 'भिदा' यह प्रयोग हो। अन्यत्र—'भित्तिः' होता है। छिदिर—छिदा **'छिदा द्वैधीकरण इति वक्तव्यम्'**—दो भाग करने अर्थ में 'छिदा' यह हो। अन्यत्र—छित्तिः' होता है। 'आङ्+ऋ+अङ्+सु' = आरा, यहां (सन्धि०—११०) सूत्र से वृद्धि होती है। **'आरा शस्त्र्यामिति वक्तव्यम्'**—शस्त्री—जो भाषा में आरा प्रसिद्ध है अर्थ में 'आरा' यह प्रयोग है। अन्यत्र—'आर्त्तिः' होता है।

धृञ्—ध्रियते धार्य्यते वा जलमनयेति = धारा। **'धारा प्रपात इति वक्तव्यम्'**—अत्यन्त गिरने—जो भाषा में धारा प्रसिद्ध है—अर्थ में 'धारा' यह 'प्रयोग हो। अन्यत्र—'धृतिः' होता है। गुहू—गुहा। **गुहा गिर्य्योषध्योरिति वक्तव्यम्'**—गिरि अर्थात् पर्वत के एकदेश और ओषधि अर्थ में 'गुहा' यह प्रयोग हो। अन्यत्र—क्तिन् प्रत्ययान्त 'गूढिः' होता है॥

१४५२–चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च॥ ३। ३। १०५॥

चिन्ति आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो।

यह युच् का अपवाद है। **'चिति स्मृत्याम्'**—चिन्ता। **'पूज पूजायाम्'**—पूजा। **'कथ वाक्यप्रबन्धे'**—कथा। **'कुबि आच्छादने'**—कुंबा। **'चर्च अध्ययने'**—चर्चा॥

१४५३–आतश्चोपसर्गे॥ ३। ३। १०६॥

उपसर्ग उपपद हो, तो आकारान्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो।

उपधा। अवस्था। श्रत् और अन्तर् इनकी उपसर्गवद्वृत्ति है—श्रद्धा। अन्तर्द्धा॥

१४५४–ण्यासश्रन्थो युच्॥ ३। ३। १०७॥

णिजन्त, आस, श्रन्थ इनसे स्त्रीलिङ्ग में युच् प्रत्यय हो।

णिजन्त—'कृञ्+णिच्+युच्+सु'+कारणा। हारणा। आस—आसना। 'श्रन्थ विमोचनप्रतिहर्षयोः' क्र्यादिः— श्रन्थना।

१४५५–वा०–युच्प्रकरणे घट्टिवन्दिविदिभ्य उपसंख्यानम्॥

३। ३। १०७॥

युच्प्रकरण में घट्टि, वन्दि, विद, इन धातुओं से भी युच् का उपसंख्यान करना चाहिये।

'घट्ट चलने' तुदादिः—घट्टना। वन्दि—वन्दना विद्—वेदना।

१४५६—वा०—इषेरनिच्छार्थस्य ॥ ३ । ३ । १०७ ॥

युच् के प्रकरण में इच्छा अर्थ से रहित जो इष धातु उसका भी उपसंख्यान करना चाहिये।

अन्विष्यत इति = अन्वेषणा।

१४५७—वा०—परेर्वा ॥ ३ । ३ । १०७ ॥

युच् प्रकरण में परि से परे अनिच्छार्थक इष धातु का विकल्प करके उपसंख्यान करना चाहिये।

पर्य्येषणा; परिष्टिः। अन्यां परीष्टिं चर। अन्यां पर्य्येषणां चर॥

१४५८—रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

रोग की आख्या गम्यमान हो, तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से बहुल करके ण्वुल् प्रत्यय हो।

'उच्छृदिर दीप्तिदेवनयोः'—प्रच्छर्दिका। 'वह प्रापणे'—प्रवाहिका। 'चर्च अध्ययने'—विचर्चिका। 'बहुल' ग्रहण से कहीं नहीं भी होता—शिरोर्तिः।

१४५९—वा०—धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

धात्वर्थनिर्देश अर्थात् क्रिया के निर्देश में धातु से ण्वुल् प्रत्यय कहना चाहिये।

'आस उपवेशने'—आसिका। का नामासिका अन्येष्वीहमानेषु—औरों के काम करते हुए क्या बैठक। यहां उपवेशन क्रिया का कथन करना है। का नाम शायिका अन्येष्वधीयानेषु—औरों के पढ़ते हुए क्या सोना। तथा यहां भी शयन क्रिया का कथन है।

१४६० वा०—इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

धातु के कहने मात्र में इक् और श्तिप् प्रत्यय कहना चाहिये।

पचिः; पचतिः। (१४५८) इस के बहुल विषय से कहीं नहीं भी होता है, जैसे (कृञः श च ॥ ३ । ३ । १००)। यद्यपि यह श्तिप कर्त्ता में नहीं भी होता, तथापि शित् करण से श्तिप् के परे शप् आदि विकरण होते ही हैं। जैसे—भवतेरः ॥ ७ । ४ । ७३) इत्यादि।

१४६१–वा०–वर्णात्कारः ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

वर्ण के निर्देश में वर्ण से कार प्रत्यय कहना चाहिये।

अकारः। ककारः। मकारः। बहुलविषय से कहीं नहीं भी होता। जैसे—(अस्य च्वौ ॥ ७ । ४ । ३२)। कहीं वर्णसमुदाय से भी होता है—एवकारः।

कित्विषयक प्रयोजनों के अभाव से कार प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा नहीं होती, और कृत् अधिकार में विधान से इस कार प्रत्यय की कृत् संज्ञा होती है। इससे 'अकारः' आदि में कृदन्त मान कर प्रातिपदिक संज्ञा आदि कार्य्य होते हैं।

१४६२–वा०–रादिफः ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

र वर्ण के निर्देश में र से इफ प्रत्यय कहना चाहिये।

रेफः ॥

१४६३–वा०–मत्वर्थाच्छः ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

मत्वर्थ शब्द से छ प्रत्यय कहना चाहिये।

मत्वर्थीयः—यहां छ प्रत्यय के परे भ संज्ञा के विना भी भाष्यकार के 'मत्वर्थीयः' (३ । १ । ७ ।) में इस शब्द के पढ़ने से वा बहुलभाव से छ के पूर्व अकार का लोप हो जाता है।

१४६५–वा०–इणजादिभ्यः ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

अज आदि धातुओं से इण् प्रत्यय कहना चाहिये।

'अज गतिक्षेपणयोः'—आजिः। 'अत सातत्यगमने'—आतिः। अद भक्षणे—आदिः।

१४६५–वा०–इञ् वपादिभ्यः ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

वप आदि धातुओं से इञ् प्रत्यय कहना चाहिये।

'डुवप बीजसंताने—वापिः। वासिः। वादिः।

१४६६–वा०–इक् कृष्यादिभ्यः ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

कृष आदि धातुओं से इक् प्रत्यय कहना चाहिये।

'कृष विलेखने'—कृषिः। 'कॄ विक्षेपे'—किरिः। 'गॄ निगरणे गॄ शब्दे वा'—गिरिः।

१४६७–वा०–संपदादिभ्यः क्विप् ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

संपद आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय कहना चाहिये।

'सम्+पद+क्विप्+सु'=संपत्। विपत्। आपत्। प्रतीपत्। परिसीदन्ति जना अस्यां सा=परिषत्। बहुलभाव से क्तिन् (१४३३) भी होता है—संपत्तिः। विपत्तिः इत्यादि॥

१४६८–संज्ञायाम् ॥ ३ । ३ । १०९ ॥

स्त्रीलिङ्गविषयक संज्ञा में धातु से ण्वुल् प्रत्यय हो।

'भञ्जो आमर्दने'—उद्दालकपुष्पभञ्जिका। 'वह प्रापणे'—वारणपुष्पवाहिका॥

१४६९–विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च ॥३।३।११०॥

परिप्रश्न—पूछना, आख्यान—कहना अर्थात् उसका उत्तर देना गम्यमान हो, तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से इञ् और ण्वुल् विकल्प करके हों।

दूसरे पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं। प्रथम प्रश्न तदनन्तर उसका उत्तर होता है, परन्तु अल्पाच्तर होने से सूत्र में आख्यान शब्द का पूर्वनिपात है।

त्वं कां कारिमकार्षीः। त्वं कां कारिकामकार्षीः। कां क्रियामकार्षीः। कां कृत्यामकार्षीः। कां कृतिमकार्षीः—तूने कौन क्रिया की। अहं सर्वां कारिमकार्षम्। सर्वां कारिकामकार्षम्। सर्वां क्रियामकार्षम्। सर्वां कृत्यामकार्षम्। सर्वां कृतिमकार्षम्—मैंने सब क्रिया कर ली, इत्यादि॥

१४७०—पर्य्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच्॥ ३। ३। १११॥

पर्य्याय—परिपाटीक्रम, अर्ह—योग्यता, ऋण—दूसरे का द्रव्य धारण करना, उत्पत्ति—जन्म ये अर्थ गम्यमान हों, तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से ण्वुच् प्रत्यय विकल्प करके हो।

पर्याय—तव शायिका—तुम्हारा सोना। मम शायिका—मेरा सोना। अर्ह—त्वमर्हसि दुग्धपायिकाम्—तू योग्य है दूध पीने को। ऋण—मम शाकभक्षिकां धारय—मेरी शाकभाजी तू लिये रह। उत्पत्ति—मह्य शाकभक्षिकामुदपादि—मेरे लिये शाकभाजी बना।

इसी प्रकार—ओदनभोजिका। अग्रगामिका। अग्रग्रासिका। इक्षुभक्षिका आदि बहुत प्रयोग बन सकते हैं। द्वितीय पक्ष में—तव चिकीर्षा। मम चिकीर्षा। तव क्रिया। मम क्रिया इत्यादि॥

१४७१—आक्रोशे नञ्यनिः॥ ३। ३। ११२॥

आक्रोश—कोसना गम्यमान हो और नञ् उपपद हो, तो धातु से स्त्रीलिङ्ग में अनि प्रत्यय हो।

यह क्तिन् आदि का अपवाद है। अजीवनिस्ते शठ भूयात्। 'आक्रोश' से अन्यत्र अजीवनमस्य रोगिणः, यहां ल्युट् हो जाता है। 'नञ्' ग्रहण से यहां न हुआ—मृतिस्ते वृषल भूयात्।

इसी सूत्र तक (भावे; अकर्त्तरि च कारके०) इन सूत्रों (१३३९, १३४४) की अनुवृत्ति है ।।

१४७२–नपुंसके भावे क्तः ।। ३ । ३ । ११४ ।।

नपुंसकलिङ्गविषयक भाव में धातु से क्त प्रत्यय हो ।

'हसे हसने'––हसितम् । 'षह मर्षणे'––सहितम् ।।

१४७३–ल्युट् च ।। ३ । ३ । ११५ ।।

नपुंसकलिङ्गविषयक भाव में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो ।

कृञ्––करणम् । पठ––पठनम् । शीञ्––शयनम् ।।

१४७४–कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्त्तुः शरीरसुखम् ।। ३ । ३ । ११६ ।।

स्पर्श करने से जिससे कर्त्ता को शरीर का सुख हो, ऐसा कर्म उपपद हो, तो धातु से ल्युट् प्रत्यय हो ।

यह पूर्व सूत्र (१४७३) से सिद्ध था, परन्तु उपपद समास होने के लिये विधान है । पयःपानं सुखम् । 'कर्म' ग्रहण से यहां न हुआ—तूलिकाया उत्थानं सुखम्, यहां तूलिका शब्द अपादान है । 'संस्पर्श' ग्रहण से यहां न हुआ––अग्निकुण्डस्योपासनं सुखम् । 'कर्त्तृ' ग्रहण से यहां न हुआ—गुरोः स्नापनं सुखम्, यहां गुरु शब्द कर्म है । 'शरीर' ग्रहण से यहां न हुआ––पुत्रस्य परिष्वञ्जनं सुखम्, यहां सुख मानस प्रीति है । 'सुख' ग्रहण से यहां न हुआ––कण्टकानां मर्द्दनं दुःखम् ।।

१४७५–वा यौ ।। २ । ४ । ५७ ।।

यु अर्थात् ल्युट् प्रत्यय परे हो, तो अज धातु को वी आदेश विकल्प करके हो ।

'प्र+अज+ल्युट्+सु'=प्रवयणम्; प्राजनम् ।।

१४७६—करणाधिकरणयोश्च ॥ ३ । ३ । ११७ ॥

करण और अधिकरण में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो ।

ओव्रश्चू—प्रवृश्चतीध्मानि येन स = इध्मप्रव्रश्चन: कुठार: । दुह—गां दोग्धि यस्यां सा = गोदोहनी स्थाली ॥

१४७७—पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ॥ ३ । ३ । ११८ ॥

संज्ञा अभिधेय हो, पुँल्लिङ्गविषयक करण और अधिकरण में धातु से प्राय: करके घ प्रत्यय हो ।

'अमो रोगे,—अमन्ति रुजन्त्यनेन = अम: रोग: । आकुर्वन्त्यस्मिन्निति = आकर: । आलीयन्ते स्थाप्यन्ते पदार्था अस्मिन्निति = आलय: । 'पुंसि' ग्रहण से यहां नहीं होता—प्रसाधनम् । 'संज्ञा' ग्रहण से यहां नहीं होता—प्रहरणो दण्ड: ॥

१४७८—छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ॥ ६ । ४ । ९६ ॥

दो उपसर्गों से रहित जो छादि अङ्ग, उसकी उपधा को ह्रस्व आदेश हो ।

दन्ता छाद्यन्तेऽनेनेति = दन्तच्छद: । उरश्छद: पट: । 'अद्व्युपसर्ग' ग्रहण से यहां उपधा को ह्रस्व नहीं होता—समुपच्छाद: ।

अद्विप्रभृत्युपसर्गस्येति वक्तव्यम् ॥ महाभाष्य ६ । ४ । ९६ ॥

दो आदि उपसर्गयुक्त को निषेध करना चाहिये—समुपातिच्छाद: ॥

१४७९—गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ॥

३ । ३ । ११९ ॥

संज्ञा अभिधेय हो, तो पुँल्लिङ्गविषयक करण और अधिकरण में गोचर, सञ्चर, वह, व्रज, व्यज, आपण, निगम ये घप्रत्ययान्त निपातन हैं ।

गावश्चरन्त्यस्मिन्निति = गोचरो देश: । सञ्चरन्त्यस्मिन्निति = सञ्चरो मार्ग: । वह—वहन्ति येन = वह: स्कन्ध: । व्रज = व्रजो मार्ग: । गावो

व्रजन्त्यस्मिन्निति = व्रजो गोष्ठः--गोंडा । व्यज--व्यजन्ति तेन = व्यजस्तालवृन्तः--ताड़ की डार वा ताड़ का व्यजन (पङ्खा), यहां निपातन से वी भाव (१५५) से नहीं होता ।

आपणन्ते व्यवहरन्तेऽस्मिन्निति = आपणः पण्यस्थानम्—दूकान । निगम्यन्तेऽनेन पदार्था इति = निगमो वेदः । यहां चकार अनुक्त के समुच्चय के लिये है—कषन्ति तेन कषः । निकषः ॥

१४८०—अवे तृस्त्रोर्घञ् ॥ ३ । ३ । १२० ॥

पुंल्लिङ्गविषयक संज्ञावाच्य हो और अव उपपद हो, तो करण और अधिकरण में तृ, स्तृ धातु से घञ् प्रत्यय हो ।

पिछले, घ (१४७७) प्रत्यय का अपवाद है । अवतारः । अवस्तारो जवनिका—(ओट कनात) । यहां 'प्राय' शब्द की अनुवृत्ति करके (१४७७) कहीं असंज्ञा में भी होता है—अवतारः सागरस्य—सागर का उतरना ॥

१४८१—हलश्च ॥ ३ । ३ । १२१ ॥

संज्ञा वाच्य हो, तो हलन्त धातु से पुंल्लिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ् प्रत्यय हो ।

आरमन्त्यस्मिन्निति = आरामः—बाग । अपमृज्यन्ते रोगा अनेनेति = अपामार्गः—चिरचिटा । विदन्ति तत्वज्ञानाद्यनेनेति = वेदः ।

१४८२—वा०—घञ्विधौ अवहाराधारावायानामुपसंख्यानम् ॥ ३ । ३ । १२१ ॥

घञ् के विधान में अवहार, आधार, आवाय इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये ।

अवह्रियन्तेऽस्मिन्निति = अवहारः । आध्रियन्तेऽस्मिन्निति = आधारः । आवयन्त्यस्मिन्निति = आवायः ।

१४८३–अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ।। ३ । ३ । १२२ ।।

संज्ञा वाच्य हो, तो पुंलिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ् प्रत्ययान्त अध्याय आदि शब्द निपातन हैं।

अधीङ्—अधीयतेऽस्मिन्निति = अध्यायः । नीयन्तेऽनेन व्यवहारा इति = न्यायः । उद्युवन्ति अस्मिन्निति—उद्यावः । संह्रियन्तेऽनेन भटादय इति = संहारः ॥

१४८४–उदङ्कोऽनुदके ।। ३ । ३ । १२३ ।।

उदकभिन्न संज्ञाविषय में उदङ्क यह निपातन है।

घृतमुदच्यतेऽस्मिन्निति = घृतोदङ्कः—घृत जिसमें निकालें वह 'घृतोदङ्क' कहावे। यहां उद् पूर्वक अञ्चु धातु से घञ् प्रत्यय इस निपातन से और (९४५) सूत्र से कुत्व तथा परसवर्ण (२६४) से हो जाता है। 'अनुदक' ग्रहण से यहां न हुआ—उदकोदञ्चनः = जल भरने का पात्र ॥

१४८५–जालमानायः ।। ३ । ३ । १२४ ।।

जाल वाच्य हो, तो आनाय यह निपातन है।

आनीयन्ते मत्स्यादयोऽनेनेति = आनायः—धीवर आदि जनों का जाल। 'जाल' से अन्यत्र—आनयनः ॥

१४८६–खनो घ च ।। ३ । ३ । १२५ ।।

खन् धातु से करण और अधिकरण में घ और घञ् प्रत्यय हो।

आ खन्–आखनः। आखानः। इस खन से जो घ प्रत्यय का विधान किया है, इसमें घ पढ़ना अनर्थक है, क्योंकि घित् कार्य खन् को प्राप्त नहीं हैं इससे घित्करण सामर्थ्य से घ प्रत्यय और धातुओं से भी होता है। जैसे भज—भगः। पद—पदम् इत्यादि।

१४८७–वा०–खनो डडरेकेकवकाः ॥ ३ । ३ । १२५ ॥

खन् धातु से ड, डर, इक, इकवक ये प्रत्यय कहने चाहियें ।

ड—आखः । डर—आखरः । इक—आखनिकः । इकवक—आखनिकवकः ॥

१४८८–ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥३।३।१२६॥

कृच्छ्र—दुःख, और अकृच्छ्र—सुख अर्थ में वर्त्तमान ईषत्, दुर्, सु उपपद हों, तो धातु से खल् प्रत्यय हो ।

यह प्रत्यय (९१६) सूत्र के अनुसार भाव और कर्म में होता है । 'ईषत्, दुर, सु' इन में दुर् के साथ कृच्छ्र और ईषत् तथा सु के साथ अकृच्छ्र अर्थ की योग्यता है । ईषत्करः । दुष्करः । सुकरः कटो भवता । ईषद्गमः । दुर्गमः । सुगमः इत्यादि । 'ईषद् आदि' के ग्रहण से यहां न हुआ—कृच्छ्रेण कटः कार्य्यः । 'कृच्छ्राकृच्छ्रार्थ' ग्रहण से यहां न हुआ—ईषत्कार्य्यः ।

१४८९–वा०–निमिमीलियां खलचोः प्रतिषेधः ॥

६ । १ । ५० ॥

खल् और अच् प्रत्यय के परे निमि, मी, ली इन धातुओं के एच् को आकारादेश न हो ।

यहीं अच् प्रत्यय (१३८७; ९५७) सूत्र विहित अचों का ग्रहण है । खल्—'नि + डुमिञ्' = ईषन्निमयः । दुर्निमयः । सुनिमयः । अच्—निमयो वर्त्तते । निमयः पुरुषः । इसी प्रकार मी—ईषत्प्रमयः । सुप्रमयः । ली—ईषद्विलयः, इत्यादि समझना चाहिये ॥

२४९०–उपसर्गात् खलघञोः ॥ ७ । १ । ६७ ॥

खल् और घञ् प्रत्यय परे हों, तो उपसर्ग से ही परे लभ धातु को नुमागम हो ।

खल्—ईषत्प्रलम्भः । दुष्प्रलम्भः । सुप्रलम्भः । घञ्—उपालम्भः । 'उपसर्ग' ग्रहण से यहां न हुआ—ईषल्लभः । लाभः ।

१४६१–न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् ।। ७ । १ । ६८ ।।

खल्, घञ् परे हों, तो केवल सु और दुर् से परे लभ धातु को नुम् न हो ।

सुलभः । दुर्लभः । 'केवल' ग्रहण से यहां होता है—सुप्रलम्भः । अतिदुर्लम्भः । 'अतिसुलभम्; अतिदुर्लभम्' ये तो सु, अति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा में होंगे । जैसे—सुलभमतिक्रान्तम् = अतिसुलभम् इत्यादि ।।

१४६२–कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ।। ३ । ३ । १२७ ।।

कर्त्ता और कर्म ये यथाक्रम से उपपद हों, तथा ईषत् आदि भी उपपद हों, तो भू और कृञ् धातु से खल् प्रत्यय हो ।

खल्कर्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोः ।। महाभाष्य ३ । ३ । १२७ ।। यह खल् प्रत्यय च्व्यर्थ अर्थात् अभूततद्भाव अर्थ में कर्त्ता और कर्म हों तो कहना चाहिये ।

यहां ईषदादिकों से परे कर्त्ता कर्म और उनसे परे धातु का प्रयोग होता है । जैसे—अनाढ्येन भवता ईषदाढ्येन शक्यं भवितुम् = ईषदाढ्यम्भवं भवता, (१०३७) से मुम् । अनाढ्येन भवता दुःखेनाढ्येन भवितुं शक्यम् = दुराढ्यम्भवं भवता । अनाढ्येन भवता सुखेनाढ्येन भवितुं शक्यम् = स्वाढ्यम्भवं भवता । अनाढ्यमीषदाढ्यं कर्त्तुं शक्यम् = ईषदाढ्यङ्करः । अनाढ्यं दुःखेनाढ्यं कर्त्तुं शक्यम् = दुराढ्यंकरः । अनाढ्यं सुखेनाढ्यं कर्त्तुं शक्यम् = स्वाढ्यंकरः । च्व्यर्थ कहने से—'आढ्येन सुभूयते'* इत्यादि में नहीं होता ।।

---

* 'स्वाढ्येन भूयते' यह जयादित्य ने प्रत्युदाहरण दिया है, सो उनका मत्तप्रलाप है, क्योंकि जहाँ खल् प्रत्यय नहीं होता, वहां धातु से अलग उपसर्ग का प्रयोग नहीं होता, किन्तु (ते प्राग्धातोः ।। १ । ४ । ८०) इस सूत्र के अनुसार पूर्व ही प्रयोग होता है ।।

१४९३–आतो युच् ।। ३ । ३ । १२८ ।।

कृच्छ्, अकृच्छ्रार्थ, ईषत् आदि उपपद हों, तो आकारान्त धातु से युच् प्रत्यय हो ।

ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ।।

१४९४–छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ।। ३ । ३ । १२९ ।।

वेदविषय में कृच्छ् अकृच्छ्रार्थ, ईषत् आदि उपपद हों, तो गति अर्थवाले धातुओं से युच् प्रत्यय हो ।

'सु + उप + षद' — सूपसदनोऽग्निः । सूपसदनमन्तरिक्षम् इत्यादि ।।

१४९५–अन्येभ्योऽपि दृश्यते ।। ३ । ३ । १३० ।।

वेदविषय में कृच्छ्राकृच्छ्रार्थ, ईषदादि उपपद हों, तो गत्यर्थकों से अन्य जो धातु हैं, उन से भी युच् प्रत्यय देखा गया है ।

सुदोहनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् । सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् ।।

१४९६–वा०–भाषायां शासियुधिदृशिधृषिभ्यो युच् ।। ३ । ३ । १३० ।।

भाषा—लोक में कृच्छ्राकृच्छ्रार्थ, ईषदादि उपपद हों, तो शासि, युधि, दृशि, धृषि इन धातुओं से युच् प्रत्यय कहना चाहिये ।

दुःशासनः । दुर्योधनः । दुर्दर्शनः । दुर्धर्षणः इत्यादि ।

१४९७–वा०–मृषेश्चेति वक्तव्यम् ।। ३ । ३ । १३० ।।

उक्त विषय में मृष धातु से भी युच् प्रत्यय कहना चाहिए ।

दुर्मर्षणः ।।

१४९८–आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ।। ३ । ३ । १७० ।।

आवश्यक और आधमर्ण्य—ऋण लेना अर्थयुक्त कर्त्ता वाच्य हो, तो धातु से णिनि प्रत्यय हो ।

अवश्यङ्कारी । शतंदार्या, यहां सामासिक (मयूर० ॥ २ । १ । ७२) से समास होता है ॥

१४९९—कृत्याश्च ॥ ३ । ३ । १७१ ॥

आवश्यक और आधमर्ण्य अर्थ में धातु से कृत्यसंज्ञक प्रत्यय हों ।

भवतावश्यं गुरुः सेव्यः । भवतावश्यं सहस्रं देयम् ॥

१५००—क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥ ३ । ३ । १७४ ॥

संज्ञा गम्यमान हो, तो आशीर्वाद अर्थ में धातु से क्तिच् और क्त प्रत्यय हों ।

भूतिर्भवतात्—भूति नामवाला हो, यहां (तितुत्र० ॥ ७ । २ । ९) इस सूत्र से इट् न हुआ । क्त प्रत्यय संज्ञा में—जैसे—ब्रह्म एनं देयात्= ब्रह्मदत्तः । ईश्वरदत्तः ।

१५०१—न क्तिचि दीर्घश्च ॥ ६ । ४ । ३९ ॥

क्तिच् प्रत्यय परे हो, तो अनुदात्तोपदेश—अनिट, तथा वनति और तनोति आदि अङ्गों के अनुनासिक का लोप तथा उनकी उपधा को दीर्घ न हो ।

अनुदात्तोपदेश - यच्छतीति=यन्तिः—जो कार्य्यों से निवृत्ति को प्राप्त होता है, वह 'यन्ति' कहाता है । यन्तिर्यच्छतात्—यन्ति नामवाला निवृत्त हो । वनुत इति=वन्तिः । वन्तिर्वनुतात् । तनुत इति=तन्तिः । तन्तिस्तनुतात्, इत्यादि ॥

१५०२—सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ६ । ४ । ४५ ॥

क्तिच् प्रत्यय के परे सन् धातु को आकारादेश और उसका लोप विकल्प करके हो ।

सन्—सातिः; सतिः; सन्तिः; सनुतात् ॥

१५०३–तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यै-कध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ॥ ३ । ४ । ६ ॥

वेदविषय में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में धातु से—से, सेन्, असे, असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन् ये प्रत्यय हों।

तुमर्थ से भाव* लिया जाता है। से—वच् = वक्षे, 'वक्तुं' प्राप्त था। यहां वच् धातु से 'से' प्रत्यय (सन्धि०—३०२ से) कुत्व, और ष (५६) से आदेश हो जाता है। वक्षे रायः। सेन्—एषे, इण् धातु को सेन् प्रत्यय के परे गुण (२१) और षत्व हो जाता है। तावामेषे रथानाम्। असे; असेन्— जीव = क्रत्वे दक्षाय जीवसे। शारदो जीवसे धाः।

क्से—'प्र + इण्' = प्रेषे भगाय। कसेन्—श्रिञ् = गवामिव श्रियसे। अध्यै; अध्यैन्—'उप + आङ् + चर' = कर्मण्युपाचरध्यै। कध्यै—'आङ् + हु' = इन्द्राग्नी आहुवध्यै। कध्यैन्—श्रिञ् = श्रियध्यै। शध्यै— मदी + णिच्' = राधसः सह मादयध्यै, यहां शध्यै के परे शप् होकर णिच् को गुण हो जाता है। शध्यैन्—पा = वायवे पिबध्यै। तवै—'पा पाने' = सोम-मिन्द्राय पातवै। तवेङ्—षूङ् = दशमे मासि सूतवे। तवेन्—गम्लृ = स्वर्देवेषु गन्तवे॥

१५०४–प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै ॥ ३ । ४ । १० ॥

वेदविषय में प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै ये शब्द तुमर्थ में निपातन किये हैं।

---

* तुमुन् प्रत्यय किसी विशेष अर्थ में नहीं कहा और 'अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति' (महा० ३ । ४ । ९) जिन प्रत्ययों का विशेष अर्थ नहीं कहा है, वे स्वार्थ में होते हैं। स्वार्थ धातुओं का भावमात्र है, इससे तुमर्थ करके भाव का ग्रहण है॥

'प्रयै'—यहां प्रपूर्वक या धातु से कै प्रत्यय और आलोप (२४४) से हो जाता है। प्रयै देवेभ्यः। 'प्रयातुम्' प्राप्त था। 'रोहिष्यै'—यहां रुह धातु से इष्यै प्रत्यय होता है। अपामोषधींनां रोहिष्यै। 'रोहितुम्' प्राप्त था। 'अव्यथिष्यै'—यहां नञ्पूर्वक व्यथ धातु से इष्यै प्रत्यय होता है। 'अव्यथितुम्' प्राप्त था ॥

१५०५–दृशे विख्ये च ॥ ३ । ४ । ११ ॥

वेदविषय में तुमर्थ में दृशे, विख्ये ये निपातन हैं।

'दृश' धातु से के प्रत्यय हो जाता है। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्। 'वि+ख्या' से के प्रत्यय हुआ। विख्ये त्वा हरामि ॥

१५०५–शकि णमुल्कमुलौ ॥ ३ । ४ । १२ ॥

वेदविषय में शक्लृ धातु उपपद हो, तो तुमर्थ में धातु से णमुल् और कमुल् प्रत्यय हों।

णमुल्—'वि+भज' = अग्नि वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्। 'विभक्तुं' प्राप्त था। णित् से वृद्धि हो जाती है। कमुल्—'अप्+लुप्लृ' = अपलुपं नाशक्नुवन्। 'अपलोप्तुं' प्राप्त था ॥

१५०६–ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥ ३ । ४ । १३ ॥

वेदविषय में ईश्वर शब्द उपपद हो, तो धातु से तोसुन् और कसुन् प्रत्यय हों।

ईश्वरो विचरितोः। 'विचरितुम्' प्राप्त था। ईश्वरोऽभिचरितोः। 'अभिचरितुम्' प्राप्त था। ईश्वरो विलिखः। 'विलिखितुम्' प्राप्त था ॥

१५०८–कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ॥ ३ । ४ । १४ ॥

वेदविषय में कृत्यार्थ (भाव; कर्म) में धातु से तवै, केन्, केन्य, त्वन् ये प्रत्यय हों।

तवै—'म्लेच्छ' = म्लेच्छितवै । म्लेच्छितव्यम् । 'अनु + इण्' = अन्वेतवै । अन्वेतव्यम् । केन्—'अव + गाहू' = नावगाहे । नावगाहितव्यम् । केन्य—'श्रु + सन्' = शुश्रूषेण्यः । शुश्रूषितव्यम् । त्वन्—'डुकृञ्'—कर्त्वं हविः । 'कर्त्तव्यम्' प्राप्त था ।

१५०९—अवचक्षे च ।। ३ । ४ । १५ ।।

वेदविषय में कृत्यार्थ में अवपूर्वक चक्षिङ् धातु से एश् प्रत्यय निपातन है ।

रिपुणा नावचक्षे । 'अवख्यातव्यम्' प्राप्त था ।।

१५१०—भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन्।। ३ । ४ । १६ ।।

वेदविषय में भावलक्षण—क्रिया जिससे लक्षित हो उस अर्थ में वर्तमान स्था, इण्, कृञ्, वदि, चरि, हु, तमि, जनि इन धातुओं से तुमर्थ में तोसुन् प्रत्यय हो ।

'सम् + स्था' = संस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति—समाप्तिपर्यन्त वेदी में ठहरते हैं । यहां संस्थिति अर्थात् समाप्ति से ठहरना क्रिया लिखी गई, इसलिए सम् पूर्वक 'स्था' धातु से तोसुन् प्रत्यय हुआ । इसी प्रकार अगले प्रयोग भी समझने चाहिये ।

'उद् + इण्' = पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः । 'अप + आङ् + कृङ्' पुरा वत्सानामपाकर्त्तोः । 'प्र + वद' = पुरा प्रवदितोरग्नौ प्रहोतव्यम् । 'प्र + चरि' = पुरा प्रचरितोराग्नीध्रे होतव्यम् । हु = आहोतोरप्रमत्तस्तिष्ठति । तमु = आतमितोरासीत् । जनी = काममाविजनितोः संभवाम ।।

१५११—सृपितृदोः कसुन् ।। ३ । ४ । १७ ।।

वेदविषय में भावलक्षण में वर्तमान सृपि और तृद धातु से तुमर्थ में में कसुन् प्रत्यय हो ।

सृप—पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । तृद—पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।।

१५१२–अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥ ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेध अर्थवाले अलं और खलु उपपद हों, तो प्राचीनों के मत में धातु से क्त्वा प्रत्यय हो ।

कृत्प्रत्ययान्त अव्यय भाव में होते हैं । इससे क्त्वा को भाव में जानना चाहिये । डुदाञ्—अलं दत्वा—मत देओ । पठ—खलु पठित्वा—मत पढ़ो । 'अलं खलु' ग्रहण से यहां न हुआ—मा कार्षीत्—वह मत करे । 'प्रतिषेध' ग्रहण से यहां न हुआ—अलङ्कारः । यहा 'प्राचां' ग्रहण सत्कार के लिये है, क्योंकि वासरूपविधि से यथाप्राप्त अन्य प्रत्यय हो ही जायेगा । जैसे—अलं रोदनेन ॥

१५१३–उदीचां माङो व्यतीहारे ॥ ३ । ४ । १९ ॥

उदीचों के मत में व्यतीहार—उलट-पलट होना अर्थ में वर्तमान मेङ् धातु से क्त्वा प्रत्यय हो ।

'अप+मेङ्+क्त्वा+सु' यहां (कुगति० ॥ २ । २ । १८) सूत्र से समास होकर—

१५१४–समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ॥ ७ । १ । ३७ ॥

नञ्पूर्वक समास न हो, तो क्त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश हो ।

इससे क्त्वा को ल्यप् आदेश होकर 'अप्+मेङ्+ल्यप्+सु' इस अवस्था में—

१५१५–मयतेरिदन्यतरस्याम् ॥ ६ । ४ ७० ॥

ल्यप् परे हो तो आकारान्त मेङ् धातु को इकारादेश विकल्प करके हो ।

(सन्धि०—५८) इस सूत्र के अनुसार मेङ् के अन्त्य को इकार होकर (सन्धि०—२७३) से तुक् हो जाता है । जैसे—अपमित्य याचते—

वस्त्र आदि को उलटते-पलटते मांगता है। जहां इकार न हुआ वहां आत्व (२४२) से होता है। जैसे—अपमाय याचते।

यहां पूर्वकाल की प्रतीति नहीं है, इससे यह क्त्वा विधान किया क्योंकि पूर्वकाल में क्त्वा (१५१८) से विधान करेंगे। 'उदीचों' के ग्रहण से औरों के मत में पूर्वकाल क्त्वा भी मेङ् धातु से होता है। जैसे—याचित्वा अपमयते॥

१५१६–क्त्वापि छन्दसि॥ ७। १। ३८॥

वेद विषय में अनञ्पूर्वसमास में क्त्वा को क्त्वा और ल्यप् आदेश हों।

क्त्वा—कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा। प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्थयित्वा। ल्यप्—उद्धृत्य जुहोति। 'वा' ग्रहण से भी दोनों आदेश हो जाते, तथापि यहां क्त्वा ग्रहण सर्वोपाधि की निवृत्ति के लिये है, इससे असमास में भी ल्यप् होता है—अर्च्य तान् देवान् गतः॥

१५१७–परावरयोगे च॥ ३। ४। २०॥

पर से पूर्व का और अवर अर्थात् पूर्व से पर का योग गम्यमान हो, तो धातु से क्त्वा प्रत्यय हो।

परयोग—अप्राप्य ग्रामं पर्वतः स्थितः—ग्राम को न पाकर पर्वत रहा, अर्थात् ग्राम से परे पर्वत है। यहां प्रपूर्वक 'आप्लृ' धातु से क्त्वा प्रत्यय, फिर प्रादिसमास सामासिक(कुगति०॥ २। २। १८) होने से ल्यप् आदेश होकर नञ्समास होता है। अवरयोग—अतिक्रम्य पर्वतं ग्रामः स्थितः—पर्वत को अतिक्रमण करके ग्राम रहा, अर्थात् पर्वत ग्राम से पहिले है॥

१५१८–समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले॥ ३। ४। २१॥

जिन का समान कर्त्ता है ऐसे जो धातु, उन में जो पूर्वकालविषयक अर्थ में वर्त्तमान धातु, उससे क्त्वा प्रत्यय हो।

भुक्त्वा व्रजति—भोजन करके जाता है, यहां भोजन क्रिया प्रथम करना है, इससे 'भुज' धातु से क्त्वा प्रत्यय हो गया। इसी प्रकार 'स्नात्वा पठति' इत्यादि समझना चाहिये।

'समानकर्त्तृकयोः' यह द्विवचन अतन्त्र है, इससे 'स्नात्वा, पीत्वा, भुक्त्वा, पठित्वा गच्छति' इत्यादिकों में भी क्त्वा प्रत्यय होता है।

'समानकर्त्तृक' ग्रहण से यहां न हुआ—वर्षति मेघे देवदत्तो गतः। 'पूर्वकाल' ग्रहण से यहां न हुआ—गच्छन् पठति—जाता हुआ पढ़ता है। यहां पूर्वकालता नहीं, तथा 'मुखं व्यादाय स्वपिति' यहां भी पूर्वकालता नहीं, क्योंकि सोनेवाले का मुख सोने में पीछे फैलता है तथापि मुख फैले पीछे जो निद्रा है उससे मुख का फैलना पूर्वकाल में है, इससे पूर्वकालता सिद्ध है, क्योंकि सोनेवाला मुख फैले पीछे दो घड़ी अवश्य सोवेगा।

१५१९—क्त्वि स्कन्दिस्यदोः ॥ ६ । ४ । ३१ ॥

क्त्वा प्रत्यय परे हो, तो स्कन्द और स्यन्दू धातु के उपधा नकार का लोप न हो।

'स्कन्दिर् गतिशोषणयोः'—स्कन्त्वा। 'स्यन्दू प्रस्रवणे—यह ऊदित् है, इससे परे क्त्वा को विकल्प करके इट् होगा, जिस पक्ष में इट् नहीं होता उस पक्ष में (१३९) से प्राप्त जो नलोप उसका निषेध हो गया-स्यन्त्वा।

और जहां इट् होता है वहां—

१५२०—न क्त्वा सेट् ॥ १ । २ । १८ ॥

सेट्—इट्सहित क्त्वा प्रत्यय कित्संज्ञक न हो।

इससे कित् संज्ञा का निषेध होकर नलोप भी नहीं होता। जैसे—स्यन्दित्वा। शयित्वा। 'सेट्' ग्रहण इसलिये है कि—'कृत्वा, हृत्वा' इत्यादि में कित् निषेध न हो॥

१५२१–मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा।। १ । २ । ७ ।।

मृड, मृद, गुध, कुष, क्लिश, वद और वस धातु से परे सेट् क्त्वा कित्संज्ञक हो ।

पिछले सूत्र से कित्संज्ञा का निषेध था, इसलिए विधान किया । मृडित्वा । मृदित्वा । गुधित्वा । कुषित्वा । 'क्लिशू विबाधने'—क्लिशित्वा, (स्वरति० ।। ७ । २ । ४४) ; क्लिष्ट्वा । वद—उदित्वा,(२८३) । वस—उषित्वा ।।

१५२२–नोपधात्थफान्ताद्वा ।। १ । २ । २३ ।।

नकार जिस के उपधा में तथा थ और फ अन्त में हों, उस धातु से परे सेट् क्त्वा कित्संज्ञक विकल्प करके हो ।

थान्त—श्रथित्वा; श्रन्थित्वा । फान्त—गुफित्वा; गुम्फित्वा । 'नोपध' ग्रहण से 'कोथित्वा' यहां कित् संज्ञा का विकल्प नहीं होता, किन्तु (१५२०) से नित्य कित् संज्ञा का निषेध होकर गुण हो जाता है ।।

१५२३–वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ।। १ । २ । २४ ।।

वञ्चि, लुञ्चि, ऋत् इन धातुओं से परे सेट् क्त्वा विकल्प करके कित्संज्ञक हो ।

'वञ्चु गतौ'—वञ्चित्वा; वचित्वा । **'लुञ्च अपनयने'** लुञ्चित्वा; लुचित्वा । ऋत्—यह सौत्र धातु है—ऋतित्वा; अर्तित्वा ।।

१५२४–तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ।। १ । २ । २५ ।।

काश्यप आचार्य के मत में तृषि, मृषि और कृशि धातु से परे सेट् क्त्वा विकल्प करके कित्संज्ञक हो ।

ञितृष—तृषित्वा; तर्षित्वा । मृष—मृषित्वा; मर्षित्वा । कृश—कृशित्वा; कर्शित्वा ।।

द्युतित्वा; द्योतित्वा, लिखित्वा; लेखित्वा, (५१४)। उषित्वा; वसित्वा, (११७५)। अञ्चित्वा, (११७६)। लुभित्वा; लोभित्वा, (११७७)॥

१५२५–जॄव्रश्चचोः क्त्वि ॥ ७ । २ । ५५ ॥

जॄ और व्रश्चू धातु से परे क्त्वा को इट् आगम हो।

जॄष्—जरित्वा (३६४); जरीत्वा। ओव्रश्चू—व्रश्चित्वा॥

१५२६–उदितो वा ॥ ७ । २ । ५६ ॥

जिसका उकार इत्संज्ञक हो, उस धातु से परे क्त्वा को इट् विकल्प करके हो।

शमु—शमित्वा; शान्त्वा, (५८८)।

१५२७–क्रमश्च क्त्वि ॥ ६ । ४ । १८ ॥

झलादि क्त्वा प्रत्यय परे हो, तो क्रम् धातु के उपधा को विकल्प करके दीर्घ हो।

क्रमु—क्रन्त्वा; क्रान्त्वा, (सन्धि०—२५९; २६४)। झलादि ग्रहण से यहां उपधालोप न हुआ—क्रमित्वा, (१५२६)॥

१५२८–जान्तनशां विभाषा ॥ ६ । ४ । ३२ ॥

जकार जिनके अंत में हो, उन अङ्गों और नश अङ्ग की उपधा का लोप विकल्प करके हो।

'भञ्जो आमर्दने'—भक्त्वा; भङ्क्त्वा। रञ्ज—रक्त्वा; रङ्क्त्वा। नश—नष्ट्वा, यहां (४०९) से नुम् होता है, उसका एक पक्ष में लोप हो गया, और दूसरे पक्ष में न हुआ, जैसे—नंष्ट्वा। (४०७) सूत्र से पक्ष में—नशित्वा॥

खन—खात्वा, (३९४)॥

दो—दित्वा । षो—सित्वा । मा—मित्वा । स्था—स्थित्वा, इन सब में (१२०९) सूत्र से इकार होता है। डुधाञ्—हित्वा, (१२११) ॥

१५२९—जहातेश्च क्त्वि ॥ ७ । ४ । ४३ ॥

वेदविषय में जहाति-'ओहाक्' अंग को विकल्प करके हि आदेश हो, क्त्वा परे हो तो ।

'ओहाक् त्यागे'—हित्वा । और 'ओहाङ् गतौ' इसका 'हात्वा' होगा । अद-जग्ध्वा, (१२१८) सूत्र से जग्धि आदेश हो जाता है ॥

१५३०—वा ल्यपि ॥ ६ । ४ । ३८ ॥

ल्यप् प्रत्यय परे हो, तो अनुदात्तोपदेश, वनति और तनोत्यादि अंगों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके हो ।

यह व्यवस्थित विभाषा है, इससे मकारान्त अङ्गों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके तथा औरों के अनुनासिक का नित्य होता है । जैसे—मान्त अङ्ग-गम्—आगत्य; आगम्य । नम्—प्रणत्य; प्रणम्य । मान्तों से अन्यत्र—हन्—प्रहत्य । मन्—प्रमत्य । वन्—प्रवत्य ॥

(परिभा०—४६) परिभाषा के अनुसार ल्यप् के विषय में 'हि, दथ्, श्रा, इत्, दीर्घ, इट्' ये विधि क्त्वा प्रत्यय के आश्रय से होनेवाले अन्तरङ्ग भी हैं, पर नहीं होते किन्तु क्त्वा को बहिरङ्ग ल्यप् आदेश हो जाता है। जैसे—हि—विधाय, (१२११) । दथ्—प्रदाय, (१२१३) । श्रा—प्रखन्य, (३९४) । इत्—प्रस्थाय, (१२०९) । दीर्घ—प्रक्रम्य, (५८८) । इट्—प्रदीव्य, (४६) ॥

१५३१—न ल्यपि ॥ ६ । ४ । ६९ ॥

ल्यप् परे हो, तो घुसंज्ञक, मा, स्था, गा, पा, जहाति—'ओहाक्' और सा इन अंगों को ईकारादेश न हो ।

धेट्—प्रधाय । माङ्—प्रमाय । स्था—प्रस्थाय । गै—प्रगाय । **'पा पाने'**—प्रपाय । हा-प्रहाय । पो—प्रसाय । **'मीङ् हिंसायाम्'**—प्रमाय । **'डुमिञ् प्रक्षेपणे'**—निमाय । **'दीङ् क्षये'**—अवदाय, इनमें आत्व (३९९) से । **'लीङ् श्लेषणे'**—विलाय, इसमें (४००) से विकल्प से आत्व होजाता है । दूसरे पक्ष में—विलीय । 'विचर+णिच्'=विचार्य, यहां णिलोप (१७७) से हो जाता है ॥

१५३२–ल्यपि लघुपूर्वात् ॥ ६ । ४ । ५६ ॥

ल्यप् परे हो, तो पूर्व जो लघु हो उसके परे णि के स्थान में अय् आदेश हो ।

'वि+गण+णिच्'=विगणय्य । प्रणमय्य, यहां णकार का अकार पूर्व है, उससे उत्तर णि को अय् आदेश हो जाता है, किन्तु लोप(१७७) से नहीं होता । 'लघुपूर्व' ग्रहण से यहां न हुआ—संप्रधृञ्+णिच्'= संप्रधार्य्य ॥

१५३३–विभाषापः ॥ ६ । ४ । ५७ ॥

आप्लृ धातु से परे णि को अय् आदेश विकल्प करके हो ।

'प्र+आप्लृ+णिच्=प्रापय्य प्राप्य वा पठति, यहां णिलोप (१७७) से हो जाता है ॥

१५३४–जनिता मन्त्रे ॥ ६ । ४ । ५३ ॥

मंत्रविषय में णिलोप से 'जनिता' यह निपातन है ।

यो नः पिता जनिता, यहां 'जन' धातु से इडादि तृच् प्रत्यय के परे णिलोप निपातन से होता है । मंत्र से अन्यत्र—जनयिता ॥

१५३५–शमिता यज्ञे ॥ ६ । ४ । ५४ ॥

यज्ञकर्म में णिलोप से 'शमिता' यह निपातन है ।

शृतं हविः शमितः, यह संबुद्धि विषय में प्रयोग है। यहाँ 'शमु' धातु से तृच् प्रत्यय के परे णिच् का लोप हो जाता है। यज्ञ से अन्यत्र--'शमयितः' यह प्रयोग होगा ।।

१५३६–युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि ।। ६ । ४ । ५८ ।।

ल्यप् परे हो, तो वेदविषय में यु और प्लु धातु को दीर्घादेश हो।

यु—दान्त्यनुपूर्वं वियूय, यहाँ विपूर्वक यु धातु को ल्यप् के परे दीर्घ होता है। प्लु—यत्रायो दक्षिणा परिप्लूय, यहाँ परिपूर्वक प्लु को दीर्घ होता है। वेद से अन्यत्र—संयुत्य। संप्लुत्य ।।

१५३७–क्षियः ।। ६ । ४ । ५९ ।।

ल्यप् परे हो, तो क्षि धातु को दीर्घादेश हो।

प्रक्षीय। संक्षीय ।।

१५३८–ल्यपि च ।। ६ । १ । ४१ ।।

ल्यप् परे हो, तो वेञ् धातु को संप्रसारण न हो।

'प्र+वेञ्'=प्रवाय तिष्ठति ।।

१५३९–ज्यश्च ।। ६ । १ । ४२ ।।

ल्यप् परे हो, तो ज्या धातु का भी संप्रसारण न हो।

'ज्या वयोहानौ'—प्रज्यायोपरमते—बुड्ढा होकर सब कामों से निवृत्त होता है ।।

१५४०–व्यश्च ।। ६ । १ । ४३ ।।

ल्यप् के परे व्येञ् धातु को भी संप्रसारण न हो।

व्येञ् संवरणे—उपव्याय ।।

१५४१—विभाषा परेः ।। ६ । १ । ४४ ।।

ल्यप् परे हो, तो परि उपसर्ग से परे व्येञ् धातु को विकल्प करके संप्रसारण हो ।

परिवीय, यहाँ संप्रसारण किये पीछे (संधि०—२७३) सूत्र से तुक् प्राप्त था, उसको बाधकर (हलः ।। ६ । ४ । २) सूत्र से दीर्घादेश हो जाता है ।।

१५४२—आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ।। ३ । ४ । २२ ।।

आभीक्ष्ण्य—बार बार होना अर्थ गम्यमान हो, तो समानकर्तृक धातुओं में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है, उससे क्त्वा और णमुल् प्रत्यय भी हों ।

१५४३—वा०—आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।।

८ । १ । ४ ।।

आभीक्ष्ण्य * अर्थ में वर्त्तमान जो शब्द है, उसको द्विर्वचन हो ।

जैसे— भुज्—भोजं भोजं व्रजति । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति । स्मृ—स्मारं स्मारं पठति । स्मृत्वा स्मृत्वा पठति । यहाँ पूर्व सूत्र से णमुल् प्रत्यय होकर क्त्वा और णमुल् प्रत्ययान्त को द्विर्वचन हो जाता है ।।

---

*(नित्यवीप्सयोः ।। ८ । १ । ४) इस सूत्र से जो द्विर्वचन होता है, वह नित्य अर्थात् क्रिया के अविच्छिन्न होने में होता है किन्तु बार बार होने में नहीं होता । जैसे किसी ने कहा—स जीवति जीवति, यहाँ यह अर्थ प्रतीत होगा कि वह जीवता ही है, किन्तु जी के मरता फिर मर के जीता यह नहीं प्रतीत होगा । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति; भोजं भोजं व्रजति, यहाँ भोजन करता फिर जाता है, फिर भोजन करता फिर जाता है, यह भोजन क्रिया का बार बार होना प्रतीत होता है । इसलिये क्रिया के बार बार होने में 'नित्यवीप्सयोः' से द्विर्वचन नहीं प्राप्त था, इससे आभीक्ष्ण्य अर्थ में द्विर्वचन का विधान किया ।।

१५४४–न यद्यनाकाङ्क्षे ॥ ३ । ४ । २३ ॥

यद् शब्द उपपद हो और अनाकाङ्क्ष वाच्य हो, तो धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय न हों।

जिस वाक्य में अगली-पिछली दो क्रिया रहैं, और वह कुछ पर की आकाङ्क्षा न करे, उसका यहां ग्रहण है। जैसे—यदयं पठति ततः पचति—जब यह पढ़ लेता है, तदनन्तर पाक करता है, यहाँ 'यदयं पठति' इस अंश में। जो पठन क्रिया है, उसको कुछ पचन की आकाङ्क्षा नहीं है।

'अनाकाङ्क्ष' ग्रहण से यहाँ निषेध नहीं होता—यदयं पठित्वा गच्छति ततः परमेव प्रसीदति—जब यह पढ़ के जाता है, तदनन्तर ही प्रसन्न होता है। यदयं बालः श्रावं श्रावं विस्मरति ततः परमेव पापृच्छ्यते, इत्यादि ॥

१५४५–विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥ ३ । ४ । २४ ॥

अग्रे, प्रथम, पूर्व ये उपपद हों तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है, उससे क्त्वा और णमुल् प्रत्यय विकल्प करके हों। यह अप्राप्त विभाषा है। अग्रे पठित्वा गच्छति; अग्रे पाठं गच्छति। प्रथमं पठित्वा गच्छति; प्रथमं पाठं गच्छति। पूर्वं पठित्वा गच्छति; पूर्वं पाठं गच्छति। 'विभाषा' ग्रहण इसलिये है कि जब क्त्वा और णमुल् नहीं होते तब लट् आदि प्रत्यय होते हैं। जैसे—अग्रे पठति ततो व्रजति।

आभीक्ष्ण्य अर्थ में तो पूर्व विप्रतिषेध से नित्य क्त्वा और णमुल् होते हैं। जैसे—अग्रे पठित्वा पठित्वा गच्छति। अग्रे पाठं पाठं गच्छति, इत्यादि ॥

१५४६–कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ॥ ३ । ४ । २५ ॥

आक्रोश गम्यमान हो और कर्म्म उपपद हो, तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु उससे खमुञ् प्रत्यय हो।

चोरङ्कारमाक्रोशति—चोर कह कर कोसता है। यहाँ 'कृञ्' धातु उच्चारण अर्थ में है ॥

१५४७–स्वादुमि णमुल् ॥ ३ । ४ । २६ ॥

स्वादु शब्द के अर्थवाले शब्द उपपद हों, तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उससे णमुल् प्रत्यय हो।

स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते। लवणङ्कारं भुङ्क्ते। यहाँ 'सम्पन्न' 'लवणं' शब्द स्वादु शब्द के पर्य्यायवाचक हैं।

स्वादुमि मान्तनिपातनं क्रियते ईकाराभावार्थम्, च्व्यन्तस्य च मकारार्थम्। महाभाष्य ३ । ४ । २६ ॥ स्वादु शब्द से ईकार का अभाव और च्व्यन्त स्वादु शब्द को मकारान्त रहने के लिये 'स्वादुमि' यहाँ स्वादु शब्द को मकारान्त निपातन किया है। ईकार—स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय से प्राप्त है। जैसे—स्वाद्वीं कृत्वा यवागूं भुङ्क्ते, यहाँ (स्त्रैण०-७६) इस सूत्र से उकारान्त गुणवाची स्वादु शब्द से ङीष् प्राप्त था, सो न हुआ। च्व्यन्त—अस्वादु स्वादु कृत्वा भुङ्क्ते =स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते।

अब णमुल् का अधिकार है, सो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है, उससे प्रायः होता है ॥

१५४८–अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ॥३।४।२७॥

जो सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग हो और अन्यथा, एवं, कथं, इत्थं ये उपपद हों तो कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

जो कृञ् धातु के प्रयोग के विना भी अभीष्ट अर्थ वाक्य से कहा जाय तो 'कृञ्' के प्रयोग को भी अप्रयोग के तुल्य समझना चाहिये। जैसे—**अन्यथाकारं पठति शिक्षाविरहो बालः**—शिक्षा से रहित बालक अन्यथा अर्थात् उच्चारणादि नियम से रहित पढ़ता है। यह अर्थ तो 'अन्यथा' पठति शिक्षाविरहो बालः' इस वाक्य से भी होता है। इसलिये पूर्व वाक्य में सिद्ध 'कृञ्' धातु का अप्रयोग समझना चाहिये।

'सिद्धाप्रयोग' ग्रहण से यहाँ णमुल् नहीं होता—शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते—शिर को और ढंग से करके भोजन करता है। यह अर्थ "शिरोऽन्यथा भुङ्क्ते" इस वाक्य से न होगा ॥

१५४९–यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥ ३ । ४ । २८ ॥

सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग हो, असूयाप्रतिवचन गम्यमान हो और यथा तथा शब्द उपपद हों, तो कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

असूया अर्थात् जो न सहन कर के दूसरे की निन्दा करना उसका प्रतिवचन उत्तर। जैसे—कथं तत्र पठिष्यसि ? यथाकारं पठिष्यामि तथाकारं पठिष्यामि किं तवानेन ? कैसे वहाँ पढ़ेगा ? जैसे पढ़ूंगा वैसे पढ़ूंगा तुझको इससे क्या ?

'असूयाप्रतिवचन' के ग्रहण से यहाँ न हुआ—यथा कृत्वाऽहं पठिष्यामि तथा त्वं द्रक्ष्यसि। 'सिद्धाप्रयोग' के ग्रहण से यहाँ न हुआ—शिरो यथा कृत्वाहं भोक्ष्ये किं तवानेन ॥

१५५०–कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये । ३ । ४ । २९ ॥

कर्म उपपद हो, तो साकल्य अर्थ में दृश और विद धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

पुस्तकदर्शं पठति—अर्थात् जो जो पुस्तक देखता है, उस उस को पढ़ लेता है। भिक्षुवेदं ददाति—जिस जिस को भिखारी जानता पाता विचारता उस उस को देता है। ब्राह्मणवेदं भोजयति। 'विद' से ज्ञान, लाभ और विचार इन अर्थोंवाले 'विद' धातु का ग्रहण है। 'साकल्य' ग्रहण से यहाँ न हुआ—पुस्तकं दृष्ट्वा पठति ॥

१५५१–यावति विन्दजीवोः ॥ ३ । ४ । ३० ॥

यावत् उपपद हो, तो विद्लृ और जीव धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

यावद्वेदं भुङ्क्ते—अर्थात् जितना पाता है, उतना भोजन करता है। यावज्जीवमधीते—जितना जीता है, उतना अध्ययन करता है ।।

१५५२–चर्मोदरयोः पूरेः ।। ३ । ४ । ३१ ।।

चर्म और उदर उपपद हों, तो णिजन्त पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

'पूरी+णिच्=चर्मपूरमाच्छादयति—चाम पूरा ढांपता है, अर्थात् जितना शरीर का चाम है, सब ढाँपता है। उदरपूरं भुङ्क्ते—पेट भर भोजन करता है ।।

१५५३–वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ।।३।४।३२।।

प्रकृति प्रत्यय के समुदाय से जो वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो, तो कर्मोपपद णिजन्त पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो, और इस पूरी धातु के ऊकार का लोप भी विकल्प करके हो।

गोः पदं=गोष्पदं, गोष्पदं पूरयित्वा वृष्टो मेघः=गोष्पदपूरं वृष्टो मेघः। ऊलोपपक्ष में—गोष्पदप्रं वृष्टो मेघः—गौ के खुर भरने मात्र मेघ बरसा। 'अस्य' ग्रहण इसलिये है कि धातु ही के ऊकार का लोप हो, उपपद के ऊकार का न हो। जैसे—मूषिकाबिलपूरं वृष्टो मेघः=मूषिकाबिलप्रं वृष्टो मेघः ।।

१५५४–चेले क्नोपेः ।। ३ । ४ । ३३ ।।

वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो और चेल शब्दार्थक कर्म उपपद हो, तो णिजन्त क्नूयी धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

चेलक्नोपं वृष्टो मेघः। वसनक्नोपं वृष्टो मेघः। चीरक्नोपं वृष्टो मेघः— कपड़ा भिगोने भर मेघ बरसा ।।

१५५५–निमूलसमूलयोः कषः ।। ३ । ४ । ३४ ।।

निमूल और समूल कर्म उपपद हों, तो कष धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

१५५६—शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ।। ३ । ४ । ३५ ।।

शुष्क, चूर्ण, रूक्ष ये कर्म उपपद हों, तो पिष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

शुष्कपेषं पिनष्टि—सूखा पीसता हो वैसे पीसता है । चूर्णपेषं पिनष्टि । रूक्षपेषं पिनष्टि ।।

१५५७—समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ।। ३ । ४ । ३६ ।।

समूल, अकृत, जीव ये कर्म उपपद हों, तो यथासंख्य करके हन्, कृञ् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

समूलघातं हन्ति—मूल समेत जैसे मारता हो वैसे मारता है । अकृतकारं करोति—न किये को जैसे करता हो वैसे करता है । जीवग्राहं गृह्णाति—जीव का ग्रहण करता हो वैसे ग्रहण करता है ।।

१५५८—करणे हनः ।। ३ । ४ । ३७ ।।

करण उपपद हो, तो हन् धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

पादेन हन्ति—पादघातं हन्ति । यष्टिकाघातं हन्ति—लात व लट्ठ से मारता हो वैसे मारता है ।।

१५५९—स्नेहने पिषः ।। ३ । ४ । ३८ ।।

स्नेहन अर्थात् जिससे सचिक्कण करे ऐसा करण उपपद हो, तो पिष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

उदपेषं पिनष्टि । तैलपेषं पिनष्टि । कषायपेषं पिनष्टि—उदक से पीसता है इत्यादि ।।

१५६०—हस्ते वर्त्तिग्रहोः ।। ३ । ४ । ३९ ।।

हस्तवाची करण उपपद हो, तो णिजन्त वृतु और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

हस्तेन वर्त्तयति = हस्तवर्त्तं वर्तयति। हस्तेन गृह्णाति = हस्तग्राहं गृह्णाति। करग्राहं गृह्णाति॥

१५६१—स्वे पुषः॥ ३। ४। ४०॥

स्व शब्दार्थक करण उपपद हो, तो पुष् धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

स्व शब्द आत्मा, आत्मीय, ज्ञाति और धन का वाची है। स्वेन पुष्णाति = स्वपोषं पुष्णाति। आत्मपोषं पुष्णाति। पितृपोषम्, मातृपोषम्, धनपोषम्, रैपोषम् वा पुष्णाति॥

१५६२—अधिकरणे बन्धः॥ ३। ४। ४१॥

अधिकरणवाची उपपद हो तो बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

चक्रे बध्नाति = चक्रबन्धं बध्नाति। शकटबन्धं बध्नाति। मुष्टिबन्धं बध्नाति—पहिये गाड़ी वा मुट्ठी में बांधता हो वैसे बांधता है॥

१५६३—सञ्ज्ञायाम्॥ ३। ४। ४२॥

सञ्ज्ञाविषय में बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

क्रौञ्च इव बध्नाति = क्रौञ्चबन्धं बध्नाति। क्रौञ्चबन्धं बद्धः। मयूरिकाबन्धं बध्नाति। अट्टालिकाबन्धं बध्नाति—ये बन्धनों के नाम हैं, क्रौञ्चपक्षी मोरनी और अटारी के समान बांधता हो वैसे बांधता है॥

१५६४—कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः॥ ३। ४। ४३॥

कर्तृवाचक जीव और पुरुष शब्द उपपद हों, तो यथासंख्य करके नश और वह धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

जीवनाशं नश्यति—जीव के समान नष्ट होता है। पुरुषवाहं वहति—अर्थात् पुरुष जैसे जहाँ तहां वस्तु ले जाने ले आने में वहता रहता है वैसे वहता है। 'कर्तृवाचक' के ग्रहण से यहाँ न हुआ—जीवेन नष्टः, पुरुषेणोढः। यहां जीव और पुरुष ये करण हैं, इससे णमुल् न हुआ, किन्तु क्त प्रत्यय हो जाता है॥

१५६५–ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ।। ३ । ४ । ४४ ।।

ऊर्ध्व शब्द कर्तृवाचक उपपद हो, तो शुष् और पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

ऊर्ध्वशोषं शुष्यति—ऊपर को सूखता हो वैसे सूखता है । वृक्ष आदि ऊपर ही को खड़े खड़े सूखते हैं । ऊर्ध्वपूरं पूर्यते घटः—ऊपर को पूरा होता हो वैसे घट पूरा होता है, अर्थात् घट आदि का ऊपर को मुख होता वर्षा आदि के जल से परिपूर्ण भर जाता है ।।

१५६६–उपमाने कर्मणि च ।। ३ । ४ । ४५ ।।

उपमानवाची कर्त्ता व कर्म उपपद हों, तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

कर्म—घृतमिव निदधाति = घृतनिधायं निदधाति जलम्—घी के समान धरता हो, वैसे जल को धरता है । कर्त्ता—अज इव नश्यति = अजनाशं नश्यति—छेरी के समान नष्ट होता हो वैसे नष्ट होता है ।।

१५६७–कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ।। ३ । ४ । ४६ ।।

उक्त कषादिकों में यथाविधि अनुप्रयोग हो, अर्थात् जिस जिस धातु से णमुल् कहा है, उसी का पीछे से प्रयोग हो ।

इसी क्रम से कषादिकों में उदाहरण दिये हैं । जैसे—निमूलकाषं कषति, इत्यादि ।।

१५६८–उपदंशस्तृतीयायाम् ।। ३ । ४ । ४७ ।।

तृतीयान्त उपपद हो, तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकालविषयक अर्थ में उपपूर्वक दंश धातु उससे णमुल् प्रत्यय हो ।

यहां से णमुल् के प्रकरण की समाप्ति तक पूर्वकाल का सम्बन्ध है । मूलकेनोपदंश्य भुङ्क्ते = मूलकोपदंशं भुङ्क्ते—मूली को काट के उससे भोजन करता है ।

यहां 'मूलकमुपदशति' इस अवस्था में 'मूलक' शब्द 'उपदंश' धातु का कर्म भी है, तथापि भुजि क्रिया का करण होने से तृतीयान्त हो जाता है। यद्यपि मूलक शब्द का उपदंश के साथ शब्दसम्बन्ध नहीं है, तथापि कर्म होने से उसका अर्थकृत सम्बन्ध है। इतने ही सामर्थ्य से 'मूलक+टा+उपदंश इससे णमुल् प्रत्यय होता है, और सामासिक (तृतीया० ॥ २। १। ३७) इस सूत्र—सामर्थ्य से उपपद समास होता है, तथा आगे भी उसी सूत्र से विकल्प करके उपपद समास होता है ॥

१५६९—हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ॥३।४।४८॥

तृतीयान्त उपपद हो, तो अनुप्रयोग जो धातु उससे जिनका समान कर्म है, उन हिंसार्थकों से णमुल् प्रत्यय हो।

दण्डोपघातं गाः कलयति। दण्डेनोपघातं गाः कलयति—दण्ड से पीट कर गौओं को गिनता है। दण्डोपताडं वृषं बध्नाति। दण्डेनोपताडं वृषं बध्नाति। 'समानकर्मक' ग्रहण से यहाँ नहीं होता—अश्वं दण्डेनोपहत्य गाः कलयति, यहाँ उपपूर्वक हन् और कल धातु का एक कर्म नहीं है ॥

१५७०—सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥ ३। ४। ४९ ॥

सप्तम्यन्त और तृतीयान्त उपपद हो, तो उपपूर्वक पीड, रुध और कर्ष धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

पार्श्वोपपीडं शेते। पार्श्वयोरुपपीडं शेते—पसली में दाब कर सोता है। पार्श्वाभ्यामुपपीडं शेते—पसली से दाब कर सोता है। व्रजोपरोधं गाः कलयति। व्रज उपरोधं गाः कलयति—गोशाला में रोक कर गौओं को गिनता है। व्रजेनोपरोधं गाः कलयति—गोशाला से रोक कर गौओं को गिनता है।

पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति। पाणावुपकर्षं धानाः संगृह्णाति—हाथ में मीज कर धानों का संग्रह करता है। पाणिनोत्कर्षं धानाः संगृह्णाति—हाथ से मीज कर धानों का संग्रह करता है ॥

१५७१–समासत्तौ ।। ३ । ४ । ५० ।।

समासत्ति—संनिकट अर्थ गम्यमान हो, और तृतीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो, तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

केशग्राहं युध्यन्ते । केशेषु ग्राहं केशैर्ग्राहं वा युध्यन्ते । हस्तग्राहं हस्तेषु ग्राहं हस्तैर्ग्राहं वा युध्यन्ते—अर्थात् युद्ध की प्रबलता से अत्यन्त निकट होकर लड़ते हैं ।

१५७२–प्रमाणे च ।। ३ । ४ । ५१ ।।

प्रमाण गम्यमान हो और तृतीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो, तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्, द्व्यङ्गुल उत्कर्षम्, द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम् वा काष्टं छिनत्ति—दो अंगुल के प्रमाण में वा दो अंगुल के प्रमाण से काष्ठ को काटता है, इत्यादि ।।

१५७३–अपादाने परीप्सायाम् ।। ३ । ४ । ५२ ।।

अपादान उपपद हो तो परीप्सा—सब ओर से चाहना अर्थ में धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

शय्याया उत्थाय=शय्योत्थायं धावति—खाट से उठा और भग अर्थात् और कुछ काम नहीं देखता है । जहाँ परीप्सा नहीं है, वहाँ नहीं होता । जैसे—आसनादुत्थाय गच्छति ।।

१५७४–द्वितीयायां च ।। ३ । ४ । ५३ ।।

द्वितीयान्त भी उपपद हो, तो परीप्सा अर्थ में धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

यष्टिग्राहं युध्यन्ते । लोष्टग्राहं युध्यन्ते—युद्ध की शीघ्रता में, और शस्त्रों को छोड़ लाठी वा ढेले लेकर युद्ध करते हैं ।

१५७५–अपगुरो णमुलि ॥ ६ । १ । ५३ ॥

णमुल् परे हो, तो अपपूर्वक गुरी धातु के एच् को विकल्प करके आकारादेश हो ।

'गुरी उद्यमने'—असिमपगूर्य्य युध्यन्ते = अस्यपगोरम् अस्यगारं वा युध्यन्ते ॥

१५७६–स्वाङ्गेऽध्रुवे ॥ ३ । ४ । ५४ ॥

अध्रुव—अस्थिर स्वांगवाची द्वितीयान्त उपपद हो, तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

अक्षिनिकाणं जल्पति—आंख निकाल कर कहता है । भ्रूविक्षेपं—कथयति भौंहों को फरका कर कहता है । 'अध्रुव' ग्रहण से यहाँ न हुआ—उत्क्षिप्य शिरः कथयति—शिर पटक के कहता है ॥

१५७७–परिक्लिश्यमाने च ॥ ३ । ४ । ५५ ॥

परिक्लिश्यमान अर्थात् सब प्रकार से विशेष पीड़ा को प्राप्त जो स्वाङ्ग तद्वाचक जो द्वितीयान्त सो उपपद हो, तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो ।

उरःपेषं युध्यन्ते । छाती पीसते लड़ते हैं । उरःप्रतिपेषं युध्यन्ते । शिरःपेषं युध्यन्ते । शिरःप्रतिपेषं युध्यन्ते—समस्त शिर पीसते लड़ते हैं । यह ध्रुवार्थ आरम्भ है ॥

१५७८–विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥ ३ । ४ । ५६ ॥

व्याप्यमान—व्याप्ति को प्राप्त, और आसेव्यमान—सेवा को प्राप्त अर्थ गम्यमान हो, और द्वितीयान्त उपपद हो, तो विश आदि धातुओं से णमुल् प्रत्यय हो ।

विश आदि क्रियाओं से जो गेहादि द्रव्यों का निश्शेष सम्बन्ध है, सो यहाँ व्याप्ति और क्रिया का जो बार बार होना, वह 'आसेवा' समझनी चाहिये। द्रव्य में व्याप्ति और क्रिया में आसेवा रहती है।

विश—गेहानुप्रवेशमास्ते—घर घर में प्रवेश करके बैठता है, वा घर में पैठ पैठ बैठता है। यहाँ समास से ही व्याप्ति और आसेवा उक्त हैं। इससे (नित्य० ॥ ८ । १ । ३) सूत्र से णमुल् प्रत्ययान्त का द्विर्वचन नहीं होता।

और उपपद समास का जहां विकल्प पक्ष है, वहाँ व्याप्ति अर्थ में द्रव्य को द्विर्वचन और आसेवा में क्रिया को द्विर्वचन होता है। जैसे—व्याप्ति—गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते आसेवा—गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते। पति—गेहानुप्रपातमास्ते। गेहं गेहमनुप्रपातमास्ते। गेहमनुप्रपातमनुप्रपातमास्ते। पदि—गेहानुप्रपादमास्ते। गेहं गेहमनुप्रपादमास्ते। गेहमनुप्रपादमनुप्रपादमास्ते। स्कन्दिर्—गेहावस्कन्दमास्ते। गेहं गेहमवस्कन्दम्। गेहमवस्कन्दमवस्कन्दम्।

'व्याप्यमान आसेव्यमान' अर्थों के ग्रहण से यहाँ न हुआ—गेहमनुप्रविश्य भुङ्क्ते। आसेवा आभीक्ष्ण्य है, और आभीक्ष्ण्य अर्थ में णमुल् कहा है, इसलिये यह सूत्र द्वितीयोपपद होने से उपपद समास के लिये है॥

१५७९–अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु ॥ ३ । ४ । ५७ ॥

कालवाची द्वितीयान्त उपपद हो, तो क्रिया का व्यवधान करानेवाला जो अर्थ उसमें वर्त्तमान जो अस्यति, तृष धातु उनसे णमुल् प्रत्यय हो।

'असु क्षेपणे'—द्व्यहात्यासं गाः पाययति। द्व्यहमत्यासं गाः पाययति—दो दिन छोड़ के गौओं को पिलाता है। यहाँ द्व्यह शब्द कालवाची द्वितीयान्त है। अतिपूर्वक अस धातु पान क्रिया के व्यवधान में वर्त्तमान है। इसी प्रकार—'द्व्यहतर्षं गाः पाययति। द्व्यहं तर्षं गाः पाययति' यहाँ भी जानना चाहिये।

'अस्यति; तृप्' ग्रहण से यहाँ न हुआ—द्व्यहमुपोष्य भुङ्क्ते। 'क्रियान्तर' ग्रहण से यहाँ न हुआ—अहरत्यस्य मगधान् गतः। 'काल' ग्रहण से यहाँ न हुआ—योजनमत्यस्य जलं पिबति। यहाँ अध्वविषयक योजन शब्द उपपद है॥

१५८०—नाम्न्यादिशिग्रहोः॥ ३। ४। ५८॥

द्वितीयान्त नाम शब्द उपपद हो, तो आङ्पूर्वक दिश् और ग्रह् धातु से णमुल् प्रत्यय हो।

नामादिश्याचष्टे = नामादेशमाचष्टे। नाम गृहीत्वाचष्टे = नामग्राहमाचष्टे—नामोच्चारण कर वा नाम लेकर कहता है॥

१५८१—अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ॥ ३। ४। ५९॥

अयथाभिप्रेताख्यान—अभिप्रायविरुद्ध अर्थात् अप्रिय वाक्य को ऊंचे स्वर से कहना, और प्रिय वाक्य को नीचे स्वर से कहना अर्थ गम्यमान हो, और अव्यय उपपद हो, तो कृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों।

उच्चैःकृत्य, उच्चैःकृत्वा, उच्चैःकारमप्रियमाचष्टे। नीचैःकृत्य नीचैःकृत्वा, नीचैःकारं प्रियं ब्रवीति—अप्रिय को ऊंचे स्वर से और प्रिय को नीचे स्वर से अर्थात् धीरे कहता है।

यहां क्त्वा ग्रहण (क्त्वा च॥ २। २। २२) इस सामासिक सूत्र से समास होने के लिये है॥

१५८२—तिर्यच्यपवर्गे॥ ३। ४। ६०॥

अपवर्ग—समाप्ति अर्थ गम्यमान हो और तिर्य्यंच् शब्द उपपद हो, तो कृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो।

तिर्य्यक्कृत्य, तिर्य्यक्कृत्वा, तिर्य्यक्कारं कार्यं गतः—कार्य्य को समाप्त करके गया। जहाँ अपवर्ग न हो वहाँ नहीं होते—तिर्य्यक्कृत्वा (१५१८) काष्ठं गतः—काठ को तिरछा करके गया। यहाँ समाप्ति कथन नहीं है॥

१५८३–स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ॥ ३ । ४ । ६१ ॥

तस्प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाची उपपद हो, तो कृ भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों।

मुखतःकृत्य गतः मुखतःकृत्वा गतः; मुखतःकारं गतः—मुख से [मुख की ओर] करके गया। पृष्ठतोभूय, पृष्ठतोभूत्वा, पृष्ठतोभावं गतः—पीठ से [पीठ की ओर] हो के गया। 'स्वांग' ग्रहण से यहाँ न हुआ—सर्वतः कृत्वा गतः। 'तस्' ग्रहण से यहाँ न हुआ—मुखीकृत्य गतः, यहाँ (स्त्रैण०—८५६) से च्वि प्रत्यय होता है ॥

१५८४–नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ॥ ३ । ४ । ६२ ॥

च्व्यर्थ नाधार्थप्रत्ययान्त शब्द उपपद हों, तो कृ और भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों।

अनाना नाना कृत्वा गतः=नानाकृत्वा गतः; नानाकृत्य गतः; नानाकारं गतः—थोड़े को बहुत करके गया। विनाकृत्वा गतः; विनाकृत्य गतः; विनाकारं गतः। नानाभूय गतः; नानाभूत्वा गतः; नानाभावं गतः। विनाभूय गतः; विनाभूत्वा गतः; विनाभावं गतः।

द्विधाकृत्य; द्विधाकृत्वा, द्विधाकारं गतः। द्विधाभूय, द्विधाभूत्वा; द्विधाभावं गतः। द्वैधंकृत्य, द्वैधंकृत्वा; द्वैधंकारं गतः। द्वैधंभूय; द्वैधंभूत्वा; द्वैधंभावं गतः। 'प्रत्यय' ग्रहण से यहाँ नहीं होते—हिरुक् कृत्वा गतः—विना करके गया। पृथक् कृत्वा गतः—अलग करके गया। 'च्व्यर्थ' ग्रहण से यहाँ न हुआ—नानाकृत्वा काष्ठानि गतः—काष्ठों को फैला के गया ॥

१५८५–तूष्णीमि भुवः ॥ ३ । ४ । ६३ ॥

तूष्णीम् शब्द उपपद हो, तो भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों।

तूष्णीं भूत्वा स्थितः। तूष्णीम्भावं स्थितः—चुप होकर ठहर रहा ॥

१५८६–अन्वच्यानुलोम्ये ॥ ३ । ४ । ६४ ॥

अन्वच् शब्द उपपद हो, तो भू धातु से आनुलोम्य—अनुकूलपन अर्थात् दूसरे के चित्त की प्रसन्नता रखने अर्थ में क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों।

अन्वग्भूय आस्ते; अन्वग्भूत्वास्ते; अन्वग्भावमास्ते—दूसरे के अनुकूल होकर बैठता है। 'आनुलोम्य' ग्रहण से यहाँ नहीं होते—अन्वग् भूत्वा (१५१८) पठति—पीछे होकर पढ़ता है ॥

इत्याख्यात: प्रवरितगिराख्यात आख्यातिकेन,
प्रोक्तः पातञ्जलमथ मतं प्रेक्ष्य दाक्षीसुतस्य ।
वेदाधीनान्नियतविषयस्थानमारोप्य योगान्,
विज्ञायन्तां निगमवचनान्याशु जिज्ञासुभिर्यत् ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृत
आख्यातिको ग्रन्थः
पूर्त्तिमगात् ॥

प्रकाशक :
वैदिक पुस्तकालय
दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर (राजस्थान)